प्रयाग-प्रदीप

श्री शालिग्राम श्रीवास्तव

[इलाहाबाद, आर्कियालॉजिकल सोसाइटी के लिए]

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्त प्रांत, इलाहाबाद

१९३७

द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

ः अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़
। १।)

—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित
३)

ध्याय डाक्टर गंगानाथ झा एम्० ए० डी०

अरब और भारत के संबंध—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी (लंदन)। मूल्य ६)

जंतु-जगत—लेखक, बाबू व्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी। सचित्र। मूल्य ६॥)

गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबर दत्त बड़थ्वाल एम्० ए० डी० लिट्०। सचित्र। मूल्य ३)

सतसई-सप्तक—संग्रहकर्त्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी। मूल्य ३)

हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १॥)

सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मू० ३)

वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र मूल्य ३)

भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य ३॥) सजिल्द, बिना जिल्द ३)

प्रयाग-प्रदीप

प्रयाग-प्रदीप

लेखक

श्री शालिग्राम श्रीवास्तव

भूमिका-लेखक

डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी

एम्० ए०, डी० एस् सी० (लंदन)

[इलाहाबाद आर्कियालॉजिकल सोसाइटी के लिए]

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

१९३७

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी एकेडेमी यू० पी०
इलाहाबाद

मूल्य { कपड़े की जिल्द ४) / साधारण जिल्द ३॥) }

मुद्रक
राजनारायण अवस्थी
कायस्थ पाठशाला प्रेस, इलाहाबाद।

प्राक्कथन

हमारे संयुक्त प्रांत में किसी समय आर्यों ने सभ्यता की ऐसी उन्नति की थी, जिस की समकक्षता संभवतः पंजाब के आर्यों की उन्नति भी नहीं करती। बिहार और पंजाब के बीच के अनेक सुविधा-संपन्न प्रदेशों में धर्म, साहित्य, दर्शन-शास्त्र और ललित-कलाओं में जो उन्नति हुई है वह सर्वथा आदरणीय ही नहीं वरन् संभवतः सर्वोच्च है। यहीं पर राम, कृष्ण के अवतार हुए, यहीं व्यास और वाल्मीकि हुए, यहीं सूर, तुलसी और कबीर हुए। यही नहीं, बौद्धधर्म के पहले और उस के पश्चात् भी यहाँ अनेक साम्राज्यों का भी स्थापन समय-समय पर हुआ है। प्राचीन भारत और गुप्त-काल से राजपूत-काल के अंत तक यहाँ पर बहुत से राज्य बने जिन की राजधानियाँ और मुख्य नगर इसी प्रांत में थे। काशी, अयोध्या, मथुरा, प्रयाग, कन्नौज, महोबा, जौनपुर, आगरा आदि उन विगत राज्यों की स्मृतियाँ अद्यावधि जागृत कर रही हैं। इन के अतिरिक्त अनेक ध्वस्त नगर, पट्टन, पुर, तीर्थ आदि ऐसे भी हैं जिन की स्मृतियाँ उन के ध्वंसावशेषों और मूक पार्थिव चिन्हों के द्वारा ही अभी तक जीवित-सी हैं। खोजों और प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री की सहायता से इन के विषय में कुछ बातें जानी गई हैं। किंतु अब भी उस से कई गुना ज्ञातव्य हैं। पुरातत्व-विभाग ने उन स्थानों की अभी तक पीठ ही खुजलाई है किंतु इतने से भी बहुत सी मनोरंजक और उपयोगी बातों का पता चल गया है। इन खोजों से प्राप्त सामग्री प्रायः अंग्रेजी आदि भाषाओं में ही छिपी हुई है। हिंदी भाषा-भाषियों को उन से अभी तक विशेष लाभ नहीं हुआ। इस के दो मुख्य कारण हैं। पहला तो यह कि इस ओर हमारी जनता की यथेष्ट रुचि नहीं है। दूसरा यह कि इस विषय पर हिंदी में ग्रंथों का एक प्रकार से नितांताभाव ही है। जब पुस्तकें ही नहीं मिलतीं तो पढ़ने की चर्चा ही व्यर्थ है।

यह बात तो विवाद-ग्रस्त नहीं कि स्थानिक अन्वेषणों और गवेषणाओं से बहुत कुछ ऐसी सामग्री मिल सकती है जो प्राचीन पुस्तकों और वस्तुओं द्वारा भी नहीं प्राप्त हो सकतीं। इस का प्रमाण तो अंग्रेजी पुस्तकों से स्पष्ट मिलता है। अंग्रेजी में आगरा, मथुरा, देहली, लाहौर, अजमेर, तक्षशिला, ढाका, पटना, होपी आदि नगरों पर जो पुस्तकें मिलती हैं उन के पढ़ने से उपर्युक्त कथन की सिद्धि हो सकती है। किंतु फारसी और उर्दू में भी ऐसे अनेक ग्रंथ रचे जा चुके हैं जिन में 'तारीख़' जौनपुर, 'आसारुस्सनादीद लखनऊ' आदि सुप्रसिद्ध हैं। किंतु हिंदी में उन के टक्कर की कोई भी पुस्तकें देखने में नहीं आतीं। इस कमी की पूर्ति शीघ्रातिशीघ्र होनी चाहिए। जो सज्जन इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न करें वे स्वागत और सत्कार के पात्र हैं।

उन प्राचीन स्थानों में से कई स्थान ऐसे हैं जो इलाहाबाद अथवा प्रयाग जिले में हैं। कौशांबी, प्रतिष्ठानपुर, कड़ा, प्रयाग, गढ़वा, भीटा, पभोसा आदि अनेक स्थान इस जिले में हैं। उन में से कुछ के विषय में तो हमें कुछ-कुछ ज्ञान है, किंतु अभी और अनेक स्थान हैं जिन के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की अयन्त आवश्यकता है। अतएव इस में लेशमात्र भी संदेह नहीं कि पुरातत्व-खोज का क्षेत्र प्रयाग में बहुत विस्तृत है। आवश्यकता है उत्साही, परिश्रमी और शिक्षित अन्वेषकों की। कुछ वर्ष हुए कि स्थानीय म्यूनिसिपैलिटी के उत्साही कार्यकर्त्ता रायबहादुर पंडित ब्रजमोहन व्यास जी के उद्योग से एक आर्कियालॉजिकल सोसाइटी अर्थात् पुरातत्व-संघ की स्थापना हुई है। आशा है कि वह हमारी विगत सभ्यता और महत्व के अवशिष्ट चिन्हों का संरक्षण, संशोधन और अन्वेषण यथेष्ट रूप से करेगी। फिर भी इस उद्योग में तभी पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है जब निःस्वार्थ और उत्साही कार्यकर्त्ता मिलें।

एक दूसरा विषय यह भी विचारणीय है कि हमारी आधुनिक परिस्थिति का भी चित्रण होना आवश्यक है। खेद की बात है कि इस त्रुटि के कारण हमें सौ या पचास वर्ष के पहले का भी अच्छी तरह ज्ञान नहीं। यदि हम अपने समय में इस त्रुटि को दूर न करेंगे तो सौ वर्ष के पश्चात् हमारा वर्तमान भी धुँधला हो कर विस्मृत हो जायगा। इस लिए एतत्कालीन सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और मानसिक परिस्थिति का संतोषजनक विवरण होना और उन्हें सुरक्षित रहना चाहिए। यह अपनी भावी संतान और देश के प्रति हमारा कर्तव्य है। सामयिक बातों को तुच्छ, नगण्य और अनध्ययनीय समझना एक साधारण भ्रम है। इस भ्रम को दूर कर के इन का संग्रह और संरक्षण करना एक प्रकार की साहित्यिक और सामाजिक सेवा है। इस साधन से हम वर्तमान की स्मृति भविष्य के लिए संचित कर जायँगे, जिस से भावी संतान का ज्ञान-कोष तो बढ़ेगा ही, संभव है कि उन को स्वाभिमान और स्फूर्ति भी मिले। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लोग अपने काल का चित्रण करते रहें तो एक प्रकार से हम अपनी सभ्यता को अमर करने के यश-भागी होंगे। व्यक्ति का जीवन-काल तो परिमित है किंतु जातीय और सामाजिक जीवन का एक छोर अनादि से और दूसरा अनंत से संबद्ध है। इस अनंत प्रवाह में सभ्यता की लहरें उठती रहती और गिरती रहती हैं। एक लहर अपनी संपत्ति दूसरे को दे कर काल के गर्तावर्त में विलीन हो जाती है। किंतु मनुष्य के पास ऐसा साधन है कि वह सभ्यता का चित्र बना सकता, और भविष्य को अर्पित कर सकता है। यह साहित्य द्वारा सुलभ हो सकता है। यह सेवा अन्य भाषाभाषी योरप, अमरिका जापान आदि के लोग तो कर रहे हैं किंतु दुर्भाग्यवश हम उस की ओर से अपने अज्ञान अथवा आलस्य के कारण विमुख हैं।

यह बड़े हर्ष का विषय है कि प्रस्तुत ग्रंथ 'प्रयाग-प्रदीप' के उत्साही, परिश्रमी और योग्य प्रणेता श्री शालिग्राम जी ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया वरन् अपने

ग्रंथ द्वारा पथ-प्रदर्शक का भी गुरुता और उत्तरदायित्व-पूर्ण भार उठाया है। यद्यपि आप सरकारी कर्मचारी रहे हैं—पेशकार थे, और इस लिए दफ़्तर के चक्कर में पिसते रहते थे—किंतु आपके अदम्य उत्साह, अथक, परिश्रम, और स्वार्थ-मुक्त साहित्य-सेवा के भाव ने सब कठिनाइयों की अवहेलना कर के इस ग्रंथ को जन्म दिया है। इस में आपने केवल पुराने ग्रंथों और दूसरों की खोजों से ही लाभ नहीं उठाया है वरन् स्वयं अनुसंधान और अन्वेषण करके, घूम-घूम, पूछ-पूछ और जाँच-पड़ताल करके अनेक नई चीजों की ओर ध्यान भी आकृष्ट किया है। अतएव आपके ग्रंथ की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। इस में बहुत सी ज्ञातव्य बातें संकलित और एकत्रित तो हैं ही कुछ ऐसी भी हैं, जिन की सहायता से इस क्षेत्र में भविष्य में काम करने वालों को सुविधा हो जायगी।

ग्रंथकार महोदय ने अपने अन्वेषण-क्षेत्र को संकुचित नहीं रक्खा। उन की दृष्टि बहुमुखी है। इस पुस्तक में वे अनेकानेक विषय हैं जो प्रायः जिलों के गजेटियरों में होते हैं। इस में ऐतिहासिक, आर्थिक, समाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, नैतिक आदि साधारण जीवन के प्रायः सभी मुख्य विभागों का समावेश किया गया है। इस से लाभ यह है कि संपूर्ण परिस्थिति का एक सांगोपांग चित्र खड़ा हो जाता है, जो एकत्रित अन्वेषणों से संभवतः नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के अन्वेषण में समय और श्रम दोनों अधिक लगता है। ग्रंथकार ने अपने अवकाश का जिस तरह पर उपयोग किया है, उस से हमारे अन्य बंधुजन शिक्षा और उत्साह प्राप्त कर सकते हैं। हमारे ग्रंथकार की उन कुछ गिने-चुने भारतीयों में गणना हो सकती है जिन में सर सैयद अहमद, मोहम्मद हुसैन, शिबली, हरबिलास शारदा, पारसनीस, आदि हैं।

यों तो प्रस्तुत ग्रंथ में बाबू शालिग्राम जी ने बहुत सी उपयोगी और ज्ञातव्य बातें लिखी हैं किंतु कुछ अंश इस के विशेष द्रष्टव्य और मनोरंजक है। प्रयाग के जिले की बोली, उस के पुराने चिन्हों एवं स्थानों का वर्णन प्रयाग नगर और कड़ा के इतिवृत्त और सामायिक जीवन का वर्णन बड़ा मनोरंजक और उत्साह-वर्द्धक है।

ग्रंथकार ने जिस शुभ कार्य का सूत्रपात किया है उस को आगे बढ़ाना साहित्य-सेवियों और पुरातत्व-प्रेमियों का कर्तव्य है। आशा है कि इस प्रकार के या इस से भी अच्छे ग्रंथ सब प्राचीन और अर्वाचीन नगरों और स्थानों के संबंध में लिखे जायँगे। यह काम अन्य देशों में होता है; कोई कारण नहीं कि हम ही चुप बैठे रहें और हिंदी का भंडार उस से रिक्त रह जाय।

अंत में हम ग्रंथकार महाशय को उन की सुकृति पर बधाई देते और उन की

साहित्य सेवा के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हुए इस ग्रंथ का हिंदी संसार में शुभ-कामना-पूर्वक स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि विद्या-प्रेमी, देश-प्रेमी और विशेषतया हिंदी भाषा-भाषी जनता इस का यथेष्ट आदर करेगी और उन का एवं इस क्षेत्र के भावी कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ाएगी।

विश्वविद्यालय
प्रयाग
मार्च १९३७

रामप्रसाद त्रिपाठी

वक्तव्य

अगले पृष्ठों में जो सामग्री एकत्र की गई है, वह मेरे दस-पंद्रह वर्षों के अन्वेषण और परिश्रम का फल है। लोग बड़े-बड़े देशों का इतिहास लिखते हैं, मैं ने अपनी अल्प शक्ति के अनुसार केवल एक ज़िले का वृत्तांत लिखा है। मेरी धारणा है कि एक ज़िला क्या एक-एक ग्राम, नहीं-नहीं एक-एक घर और परिवार के इतिहास से राष्ट्र के इतिहास का निर्माण होता है, इस लिए मैंने एक नगर और उस के समीपवर्ती मुख्य स्थानों का वर्णन कुछ अधिक विस्तार के साथ लिखना उपयुक्त समझा है।

ऐसी पुस्तकें अंग्रेज़ी में 'गज़ेटियर' कहलाती हैं। प्रयाग के गज़ेटियर से मैंने भी लाभ उठाया है परंतु महाकवि 'ग़ालिब' के इस पद्य के अनुसार—

मेरा अपना जुदा मआमला: है।
ग़ैर के लेन-देन से क्या काम?

मैंने अपनी खोज और निजी अनुसंधान के आधार पर इस पुस्तक में अनेक ऐसे विषयों का प्रतिपादन किया है जिन का गज़ेटियर आदि में कहीं उल्लेख नहीं है।

वास्तव में जैसी मैं चाहता था, वैसी यह पुस्तक नहीं बन सकी। कारण यह है कि पुस्तकों के अतिरिक्त जिन बातों को व्यक्तिगत लोगों से पूछ कर मालूम करना था उन के जानने में बड़ी कठिनाई हुई। सरकार को जिस प्रकार की सूचना की आवश्यकता होती है वह बहुत-कुछ अपने प्रभाव और दबाव से कर्मचारियों द्वारा प्राप्त कर लेती है। यहां अपने पास सिवा याचना और प्रार्थना के अन्य कोई साधन नहीं था। बहुत-कुछ समय तो पत्र-व्यवहार में नष्ट हुआ, क्योंकि जिन को लिखा गया था उन में से बहुत कम लोगों ने संतोष-जनक उत्तर देने की कृपा की। तब उन के पास दौड़-धूप की गई, फिर भी आशातीत सफलता नहीं हुई। इधर यह पुस्तक मेरे सिर पर सवार थी। किसी न किसी प्रकार इस की पूर्ति करनी थी। अतः जो कुछ सामग्री मिल सकी, उसी के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। इस कारण जो न्यूनता और त्रुटियाँ रह गई हैं आशा है, उन की पूर्ति अगले इतिहासकार करेंगे। यदि मेरी इस तुच्छ रचना से प्रयाग के विषय में पाठकों के ज्ञान में कुछ वृद्धि होगी तथा हिंदी के सुयोग्य लेखकों को अन्य ऐसे स्थानों के प्रति विस्तृत वृत्तांत लिखने के लिए प्रेरणा मिलेगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। संसार में सदा से कुछ न कुछ मतभेद होता चला आया है इस लिए इस पुस्तक में जहाँ-कहीं मैंने अपना निजी मत प्रकट किया है, अथवा किसी घटना से कोई विशेष निष्कर्ष निकाला है, यदि उस से कोई सज्जन सहमत न हों तो मुझे उस पर कोई आग्रह नहीं है। अपना-अपना मत निर्धारित करने में सभी स्वतंत्र हैं।

अंत में मुझे दो शब्द अपने सहायकों के प्रति कहना उचित है जिन्हों ने इस पुस्तक की रचना में मेरी बड़ी सहायता की है। मेरे परम सखा श्री खानचंद जी यदि मुझे प्रेरित

न करते तो इस की बिखरी हुई सामग्री का पुस्तकाकार होना ही असंभव था। उन के सुयोग पुत्र प्रोफ़ेसर डाक्टर धीरेंद्र वर्मा एम० ए० डी० लिट्० (पेरिस) तथा प्रोफ़ेसर डाक्टर बाबूराम सकसेना एम० ए० डी० लिट्० (प्रयाग), पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०, प्रोफ़ेसर रघुबर मिट्ठूलाल शास्त्री एम० ए०, सरस्वती-संपादक पंडित देवीदत्त शुक्ल आदि सज्जनों से भी विशेष सहायता मिली है। प्रोफ़ेसर डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए० डी० एस-सी० (लंदन) ने तो अध्यापन तथा अन्यान्य साहित्यिक कार्यों से समय न होने पर भी एक विस्तृत प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। अतः मैं इन सब महानुभावों का अत्यंत आभारी हूँ।

इन के अतिरिक्त दो सज्जन और भी धन्यवाद के पात्र हैं। एक तो रायबहादुर पंडित ब्रजमोहन व्यास सेक्रेटरी डिस्टिक्ट आरकियालोजिकल सोसाइटी इलाहाबाद, जिन की सहायता से इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था की गई है, दूसरे हिंदुस्तानी एकेडेमी के हिंदी-विभाग के लिटरेरी असिस्टेंट श्रीरामचंद्र टंडन एम० ए०, एल० एल० बी० जिन्होंने इस पुस्तक की छपाई तथा प्रूफ़ संशोधनादि में विशेष परिश्रम किया है।

कुछ अनिवार्य कारणों से पुस्तक के प्रकाशित होने में विलंब हुआ है, अतएव पुस्तक में दिए हुए आँकड़े पुराने हो गए हैं। परंतु उन से जो निष्कर्ष निकलते हैं उन में अंतर न समझना चाहिए।

श्रीप्रयागराज
विजयादशमी, सं० १९९२

शालिग्राम श्रीवास्तव

विषय-सूची

पहला खंड—ऐतिहासिक

दूसरा खंड—वर्तमान प्रयाग

आठवाँ अध्याय—प्रयाग ज़िले के प्राचीन स्थानों का वर्णन

नवाँ अध्याय—प्रयाग के रईसों के वंश का इतिहास

चित्र-सूची

(नोट—चित्र ३३४ पृष्ठ के बाद एक साथ लगे हुए हैं।)

——:o:——

——:o:——

उपर्युक्त चित्रों में नं० २, ८, तथा १४ से २२ तक के ब्लाक इंडियन प्रेस के जेनरल मैनेजर श्री हरिकेशव घोष के अनुग्रह से प्राप्त हुए हैं। चित्र नं० ९ डाक्टर गोरख प्रसाद की अनुमति से प्रकाशित किया जाता है।

——:o:——

आवश्यक सूचना

नीचे लिखे अंश को ३३१ पृष्ठ पर 'परिशिष्ट' के साथ जोड़ कर पढ़िए :—

पृष्ठ १५०—लाला सीताराम जी का १ जनवरी, १९३७ ई० को देहांत हो गया।

पृष्ठ १४७—संगीत-समिति के मुख्य कार्यकर्ता बाबू बैजनाथ सहाय जी ऐडवोकेट हैं।

पृष्ठ २१४—कृषि-संघ के कर्णधार पंडित मूलचंद मालवीय हैं।

——:०:——

पहला खंड

ऐतिहासिक

पहला अध्याय

प्रयाग का प्रारंभिक इतिहास

प्रयाग भारत का एक अति प्राचीन स्थान है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के २१ वें श्लोक में इस का नाम इस प्रकार आया है :—

मनु

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये, यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च, मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

अर्थात् हिमालय और विंध्याचल के बीच उस स्थान से पूर्व जहां सरस्वती नदी बालू में लोप हो जाती है, और 'प्रयाग' के पश्चिम में जो देश है, उस को 'मध्यदेश' कहते हैं।

वाल्मीकीय रामायण में कुछ अधिक विस्तार के साथ प्रयाग का वर्णन मिलता है।

रामायण

उस के अयोध्याकांड के ५० से लेकर ५२ सर्ग तक में लिखा है कि जब श्रीरामचंद्रजी को पिता से बनवास का आदेश मिला तो वह अयोध्या से चलकर श्रृंगबेरपुर (वर्तमान सिंगरौर) में गंगा के तट पर आए और उसी घाट से पार उतरकर 'वत्सदेश' में पहुँचे।

यह वत्सदेश प्रयाग के पश्चिम के उस भूभाग को समझना चाहिए, जो गंगा और यमुना के बीच में अब 'अंतरवेद' अथवा 'दोआबा' कहलाता है, इस की राजधानी 'कौशांबी' थी, जिस का विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

इस के अनंतर ५४ वें सर्ग में लिखा है कि फिर "राम एक बड़ा बन पार कर के उस देश को चले, जहां गंगा और यमुना का संगम है।" प्रयाग के निकट पहुँचकर उन्हों ने लक्ष्मण से कहा कि "हे सौमित्र ! देखो यही प्रयाग है, क्योंकि यहां मुनियों द्वारा किए हुए अग्निहोत्र का सुगंधित धुवां उठ रहा है। अब हम निश्चय गंगा और यमुना के संगम

के निकट आ गए, क्योंकि दोनों नदियों के जल के मिलने का (कल-कल) शब्द सुनाई पड़ता है।"

इस के आगे भरद्वाज मुनि के आश्रम[१] में पहुँचने और वहां विश्राम करने का वर्णन है।

फिर आगे ५५वें सर्ग में भरद्वाज मुनि ने रामचंद्र को प्रयाग से चित्रकूट जाने का जो रास्ता बतलाया है, वह भी उल्लेखनीय है, क्योंकि उस से उस समय के प्रयाग के निकटवर्ती स्थानों की स्थिति का कुछ पता चलता है। लिखा है कि भरद्वाज ने कहा, "राम, आप गंगा और यमुना के संगम से पश्चिमाभिमुख होकर यमुना के किनारे-किनारे कुछ दूर तक चले जाइए; फिर उसे पार करके कुछ दूर और चलिए, तो आप को बरगद का एक बड़ा वृक्ष मिलेगा, जिस के चारों ओर बहुत से छोटे-छोटे पौधे उगे होंगे। उस बड़े वृक्ष में कुछ श्यामता भी आप को मिलेगी। उस के नीचे सिद्धगण बैठे हुए तप कर रहे होंगे। वहां से एक कोस पर नील-वर्ण के वृक्षों का एक सघन बन मिलेगा, जिस में पलाश, बेर और जामुन आदि के बहुत से वृक्ष होंगे। बस उसी बन से होकर चित्रकूट जाने का रास्ता है।"

फिर उसी कांड में भरतजी का चित्रकूट जाते हुए प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम में ठहरने तथा युद्ध कांड में रामचंद्रजी का पुष्पक विमान पर चढ़ कर प्रयाग होते हुए अयोध्या लौटने का वर्णन है, परंतु उन में प्रयाग के विषय में कुछ अधिक वृत्तांत नहीं है।

ऊपर के वृत्तांत से विदित होता है कि रामायण के समय में प्रयाग एक तपोभूमि थी, जिस के इर्द-गिर्द बड़े-बड़े बन थे। उन दिनों अक्षयवट इत्यादि तीर्थ-स्थानों का कहीं पता न था, जिन का उल्लेख पौराणिक काल के साहित्य में बड़े महत्त्व के साथ हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि यही रामायण का "श्याम रंग का वटवृक्ष" जो उस समय यमुना के उस पार था, पीछे किसी समय इस पार अक्षयवट के रूप में परिणत कर लिया गया; और फिर धीरे-धीरे सरस्वती, वासुकि तथा अन्य तीर्थों का प्रादुर्भाव हो गया।

महाभारत

अच्छा अब प्रयाग के विषय में महाभारत की कथा सुनिए। आदिपर्व के अध्याय ५५ में लिखा है कि प्रयाग में सोम, वरुण और प्रजापति का जन्म हुआ था।

बनपर्व अध्याय ८४ में प्रयाग और अध्याय ८५ में प्रयाग तथा प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) वासुकी (बसकी, नागबासू) और दशाश्वमेध (दारागंज) का वर्णन है।

इसी पर्व के अध्याय ८७ में लिखा है कि उसी पूर्व-दिशा में पवित्र ऋषि-सेवित,

---

[१] यह स्थान इस समय प्रयाग के कर्नलगंज मुहल्ले में है। वहां भरद्वाज का तो नाम ही है, वास्तव में महादेव का एक बड़ा मंदिर और कुछ अन्य देवी-देवताओं के छोटे-छोटे देवालय हैं। इन्हीं सब की पूजा होती है।

लोक-विख्यात गंगा और यमुना का उत्तम संगम है, जहां पहले भगवान् ब्रह्मा ने यज्ञ किया था। इसी से इस का नाम प्रयाग[1] हुआ है।

इसी प्रकार उद्योगपर्व अध्याय १४४, तथा अनुशासनपर्व अध्याय १५ में प्रयाग का उल्लेख है।

पुराणों में प्रयाग का विस्तार इस प्रकार वर्णन किया गया है।

मत्स्य-पुराण (अ० १०६ तथा १०६) में प्रयाग-मंडल का विस्तार २० कोस बतलाया गया है। कूर्म-पुराण (उत्तरार्द्ध, अध्याय ३६) में प्रयाग-क्षेत्र का परिमाण ६ हज़ार धनुष है। इसी पुराण के ३४ तथा ८२ अध्यायों में प्रयाग नाम से ब्रह्मा का क्षेत्र ५ योजन में फैला हुआ लिखा है। पद्म-पुराण के स्वर्ग-खंड (अ० ५७) में प्रयाग का क्षेत्र ५ योजन और ६ कोस बतलाया गया है। इसी पुराण के अध्याय ५८ में प्रयाग-क्षेत्र की लंबाई-चौड़ाई डेढ़ योजन लिखी है और उस में ६ किनारे बताए गए हैं।

पुराणों में प्रयाग की स्थिति के विषय में इस प्रकार लिखा है।

मत्स्य-पुराण के अध्याय १०४ में लिखा है कि गंगा और यमुना के मध्य में पृथ्वी की जंघा है। उसी को 'प्रयाग' कहते हैं, और वही तीनों लोक में प्रसिद्ध है। अग्नि-पुराण के अध्याय १११ और कूर्म-पुराण के अध्याय ३७ में भी इसी प्रकार प्रयाग को पृथ्वी की जंघा बतलाया गया है।

कूर्म-पुराण के अध्याय ३६ में लिखा है कि प्रयाग प्रजापति का क्षेत्र है। इसी प्रकार मत्स्य-पुराण के अध्याय १०८ तथा अग्नि-पुराण के अध्याय १११ में इस स्थान को प्रजापति की वेदी बतलाया है। वामन-पुराण के अध्याय २२ में इतना और है कि ब्रह्मा के यज्ञ की ५ वेदियां हैं, जिन में मध्य-वेदी प्रयाग है।

प्रयाग के अंतर्गत तीर्थस्थानों का वर्णन पुराणों में इस प्रकार किया गया है—

वराह-पुराण के अध्याय १३८ में लिखा है कि प्रयाग में त्रिकंटकेश्वर, शूलकंटक और सोमेश्वर आदि लिंग तथा वेणीमाधव हैं। मत्स्य-पुराण के अध्याय १०८ में लिखा है कि प्रयाग के कंबल और अश्वतर दो तट हैं; वहां भोगवती पुरी है। वह प्रजापति की वेदी की रेखा है। कूर्म-पुराण के अध्याय ३७ में इन दोनों तटों को यमुना के दक्षिण बतलाया है। मत्स्य-पुराण के अध्याय १०५ में लिखा है कि यमुना के उत्तर-तट पर प्रयाग से दक्षिण ऋणमोचन तीर्थ है। इसी अध्याय में गंगा के पूर्व और उत्तर उर्वशी-रमण, हंसप्रपतन, विपुल तथा हंसपांडुर तीर्थों का होना बतलाया गया है। वराह-पुराण के अध्याय १३८ में भी हंसतीर्थ का नाम आया है। मत्स्य-पुराण के अध्याय ३० और ३१ में गंगा के पूर्व समुद्रकूप का वर्णन है। पद्म-पुराण के अ० २३ और २५ में अक्षयवट की चर्चा आई है,

---

[1] प्र (=प्रकृष्ट)+याग (=यज्ञ), अर्थात् वह स्थान, जहां विशेष रूप से यज्ञ किए गए हों।

और लिखा है कि उस के पत्तों पर विष्णु भगवान् सोते हैं। मत्स्य-पुराण के अ० १०४ में भी अक्षयवट तथा अग्नि-पुराण के अ० १११ में अक्षयवट, वासुकी और हंसतीर्थ का उल्लेख है।

इन तीर्थों में कुछ इस समय भी इन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं; जैसे वासुकी बसकी के नाम से दारागंज में, अक्षयवट क़िले के भीतर, सोमेश्वरनाथ और वेणीमाधव के मंदिर अरैल में तथा हंसतीर्थ और समुद्रकूप झूँसी में हैं।

प्रयाग के माहात्म्य के विषय में पुराणों में अध्याय के अध्याय रँगे पड़े हैं। उन सब के उल्लेख के लिए इस पुस्तक में स्थान नहीं हैं। बानगी के रूप में एक दो बातें लीजिए:—

मत्स्य-पुराण के अ० ६ और ७ में लिखा है कि माघ के महीने में यहां ६० हज़ार तीर्थ एकत्र होते हैं। इसी पुराण के अ० १०२ में लिखा है कि सूर्य की पुत्री यमुना जिस स्थान पर प्रयाग में आई है, उसी स्थान पर साक्षात् महादेवजी की स्थिति है। वामन-पुराण के अ० ८३ में लिखा है कि यहां ब्रह्मा ने स्नान किया था। वराह-पुराण के अ० १३८ में लिखा है कि यह पृथ्वीमंडल के सब तीर्थों से उत्तम और तीर्थराज है।

इन के अतिरिक्त मत्स्य-पुराण अ० १०५-१०६, अग्नि-पुराण अ० १११, स्कंद-पुराण, काशीखंड अ० ७, शिवपुराण खंड ८ अ० १, खंड ११ अ० १६, तथा पद्म-पुराण सृष्टि-खंड १८, स्वर्गखंड अ० ५२, ५४, ६८, ८२, ८४, ८६, ८७, ६६, १००, १०१ में तथा पातालखंड के अ० १ से १०० तक में प्रयाग के स्नान और उस के अंतर्गत विविध तीर्थस्थानों के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

प्रयाग का उल्लेख तंत्र-ग्रंथों में भी हुआ है। तांत्रिकों के ६४ पीठों में एक प्रयाग भी है, जिस की अधिष्ठातृ ललितादेवी हैं। इन का मंदिर नगर के दक्षिण यमुना-तट की ओर मीरापुर में है। बंगदेशीय शाक्त इस स्थान का बड़ा महत्व मानते हैं और जब यहां आते हैं तब उक्त देवी का दर्शन अवश्य करते हैं।

रघुवंश

कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश के १३ वें सर्ग में प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम का दृश्य बहुत ही सुंदर शब्दों में वर्णन किया है। हम उस का भावार्थ पाठकों के मनोविनोदार्थ नीचे लिखते हैं।

लंका से लौटते समय श्रीरामचंद्रजी पुष्पक विमान पर सीता से कहते हैं:—

"अब हम प्रयाग आ गए हैं। देखो, वह वही 'श्याम' नाम का वटवृक्ष है, जिस की पूजा करके एक बार तुम ने कुछ याचना की थी। यह इस समय ख़ूब फल रहा है। चुन्नियों सहित पन्नों के ढेर की तरह चमक रहा है।"

"हे निर्दोष अंगोंवाली सीते, गंगा और यमुना के संगम का दर्शन करो। यमुना की नीली से नीली तरंगों से पृथक् किया गया, गंगा का प्रवाह, बहुत ही भला मालूम होता है। कहीं तो गंगा की धारा बड़ी प्रभा विस्तार करने वाले, बीच-बीच नीलम गुँथे हुए, मोतियों के हार के सदृश शोभित हैं; और बीच-बीच नीले कमल पोहे हुए सफ़ेद कमलों की लालिमा के समान, शोभा पाती है। कहीं तो वह (गंगा की धारा) मानस-सरोवर के प्रेमी, राजहंसों

की उस पंक्ति की तरह मालूम होती है, जिस के बीच-बीच नीले पंख-वाले कदंब-नामक हंस बैठे हों; और कहीं कालागरु के बेल-बूटे सहित, चंदन से लिपी हुई पृथ्वी के सदृश, मालूम होती है। कहीं तो वह छाया में छिपे हुए अँधेरे के कारण, कुछ-कुछ कालिमा दिखलाती हुई, चाँदनी के रूप में जान पड़ती है; और कहीं खाली जगहों से, थोड़ा-थोड़ा आकाश दिखलाती हुई, शरत्-काल की श्वेत मेघमाला के समान, प्रतीत होती है। नीलिमा और शुभ्रता का ऐसा अद्भुत समावेश देखकर चित्त बहुत ही प्रसन्न होता है। गंगा और यमुना नामक समुद्र की पत्नियों के संगम में स्नान करनेवाले देहधारियों की आत्मा पवित्र हो जाती है[1]।

(पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के हिंदी-रघुवंश से उद्धृत)

कालिदास की कुशल लेखनी ने गंगा और यमुना के श्वेत और नील जल के समावेश का जो सुंदर चित्र खींचकर, अनुपम उपमाओं द्वारा रंजित किया है, उस को विकराल काल की गति अब तक विकृत नहीं कर सकी। आज भी तीर्थराज में इन दोनों पवित्र नदियों के संगम का दृश्य, ठीक उसी रूप में विद्यमान है, जिस के दर्शनों तथा उस में स्नान के लिए हर साल लाखों की संख्या में, जनसमूह सुदूर देशों से आकर यहां एकत्र होता है।

---

[1] गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी दृश्य का इस प्रकार वर्णन किया है:—

सोहै सितासित को मिलबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे-तृन चारु चरैं, बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥

(कवितावली, उत्तरकांड, छंद १४४)

अर्थात् यमुना की नीली धाराएं, गंगा के श्वेत तरंगों में मिलकर, इस तरह उन में विलीन हो जाती हैं, जैसे इधर-उधर कामधेनु के, सफ़ेद रंग के, छिटके हुए, बछड़े हरी-हरी घास चर रहे हों।

दूसरा अध्याय

बौद्धकाल के कुछ पहले से लेकर यवनकाल के आरंभ तक का इतिहास

हम पिछले अध्याय में रामायण के आधार पर बतला आए हैं कि प्रयाग के निकट गंगा और यमुना के मध्य की भूमि 'वत्स' देश कहलाती थी, जिस की राजधानी प्रयाग से लगभग ३० मील पश्चिम यमुना के दाहिने किनारे पर कौशांबी नगरी थी। यह कौशांबी भी अति प्राचीन स्थान है। इस को राजा कोशंब ने अपने नाम पर बसाया था, जो चंद्रवंशीय नरेशों की दसवीं पीढ़ी में हुआ था। इस स्थान का चिह्न अब कुछ बड़े टीलों के रूप में विद्यमान है और उस के निकट का गाँव कोसम कहलाता है। इस का विस्तृत इतिहास इसी पुस्तक में आगे लिखा जायगा। यहां केवल यह कहना है कि अति-प्राचीन समय में प्रयाग का कौशांबी-राज्य के अंतर्गत होना पाया जाता है।

इस के पश्चात् बहुत दिनों तक प्रयाग का इतिहास अज्ञात है। फिर सन् ईसवी से लगभग ४५० वर्ष पहले से इस स्थान का कुछ-कुछ पता चलता है, जब महात्मा गौतम बुद्ध यहां पधारे थे; और कुछ दिनों तक ठहर कर उन्हों ने स्वधर्म-प्रचार किया था। उस समय मगध में अजातशत्रु राज्य करता था।

४५० ई० पू०

सन् ईसवी से ३१६ वर्ष पहले चंद्रगुप्त मौर्य मगध के राजसिंहासन पर बैठा। यह बड़ा शक्तिशाली राजा था। इस ने समस्त उत्तर-भारत को जिस के अंतर्गत प्रयाग भी था, अपने अधिकार में कर लिया था[1]।

३१६ ई० पू०

---

[1] विष्णु-पुराण के चतुर्थ अंश, अध्याय २४ के ६३ वें श्लोक में भविष्यवाणी के रूप में है कि गंगा के निकटवर्ती प्रयाग और गया में मागध और गुप्त राजे राज्य करेंगे।

प्रयाग के निकटवर्ती स्थानों में गुप्त-काल के अनेक ऐतिहासिक चिह्न पाए गए हैं, जिन का सविस्तर वर्णन आगे किया जायगा।

याद रहे कि यद्यपि वत्सदेश उस समय से मगध नरेशों के अधीन हो गया था तथापि उन के शासक प्रायः कौशांबी ही में रहा करते थे।

इसी चंद्रगुप्त के दरबार में तत्कालीन यवन (यूनानी)—नरेश सिल्यूकस की ओर से एक राजदूत मेगास्थनीज़ नामक नियुक्त था। उस की पुस्तक में दो जगह प्रयाग की कुछ चर्चा आई है, परंतु उन में कुछ विशेष ज्ञातव्य बातें नहीं हैं। एक जगह केवल इतना लिखा है कि वह (मेगास्थनीज़) किसी स्थान से, जिस का नाम उस ने कालीनीपाक्सा लिखा है, गंगा और यमुना के संगम पर (प्रयाग में) आया था और फिर यहां से पटना को चला गया। दूसरी जगह इस प्रकार लिखा है कि "यमुना नदी पालीबोथेरी से होकर मेथोरा और कलीसोबोरा नामक नगरों के बीच गंगा में गिरती है[1]।"

इस पुस्तक के भाष्यकारों ने 'पालीबोथरी' से तात्पर्य मगध की राजधानी पाटलि-पुत्र के अधीन प्रदेशों को बतलाया है। मेथोरा स्पष्टतया 'मथुरा' का अपभ्रंश है। तीसरे स्थान कलीसोबोरा के विषय में बहुत कुछ मतभेद है। हमारी समझ में मेगास्थनीज़ के शब्दों में यह प्रयाग ही का नाम है।[2]

२७३ ई० पू०

सन् ईसवी से २७३ वर्ष पहले ऊपर्युक्त मौर्य-वंश में महान अशोक मगध का राजा हुआ। यह चंद्रगुप्त का पौत्र था, जो बौद्ध-नरेशों में बड़ा प्रसिद्ध सम्राट् हुआ है। उस ने कौशांबी को उप-राजधानी बनाया, जहां वह अपनी युवराज-अवस्था में पिता (बिंदुसार) की ओर से, पश्चिमोत्तर-प्रदेशों की देख-रेख के लिए नियुक्त था। उस ने वहां पत्थर का एक अपना कीर्ति-स्तंभ भी खड़ा किया था, जिस पर उस की तथा उस की राजपत्नी की ओर से प्रजा के कल्याण और हित के लिए उस समय के बोल-चाल की भाषा में आदेश अंकित हैं। ये आज्ञाएं बड़े महत्व की हैं। इन को हम अनुवाद-सहित आगे लिखेंगे। इस समय यह स्तंभ प्रयाग के क़िले में है।

सन् ३२६ ई०

सन् ३२६ ई० में गुप्त-वंश का महाप्रतापी राजा समुद्रगुप्त मगध की गद्दी पर बैठा। उस ने पूर्व से लेकर दक्षिण-समुद्र के तट पर होते हुए, पश्चिमीय सीमा के समस्त छोटे-बड़े राजाओं को जीत कर अपने अधीन कर लिया, और तत्पश्चात् एक बड़ा अश्वमेध यज्ञ किया। इस दिग्विजय का वर्णन

---

[1] मेगास्थनीज़, २६ वां अवतरण (मैकक्रिंडल का अनुवाद)

[2] इस की पुष्टि एरोस्मिथ के 'एंशेंट ऐटलस' से भी होती है जो लंदन से प्रकाशित हुआ है। इस में भारत तथा अन्य देशों के प्रत्येक स्थान, नदी और पर्वतों के नाम यूनानी उच्चारण के अनुसार दिए गए हैं।

बड़े विस्तार के साथ ऊपर बतलाए हुए अशोक की लाट पर अंकित है। इस अभिलेख में तत्कालीन उन समस्त राजाओं और जातियों के नाम गिनाए गए हैं, जिन के देश उस ने जीत कर फिर उन को लौटा दिए थे और उन से कर वसूल किया था। इस अभिलेख का विस्तृत वृतांत आगे दिया जायगा। समुद्रगुप्त भारतवर्ष का अंतिम चक्रवर्ती राजा था। उस के पीछे इस देश में कोई नरेश ऐसा प्रचंड विजेता नहीं हुआ। पश्चिमीय इतिहासकारों ने उस को भारत का नेपोलियन माना है। प्रयाग के निकट पुरानी भूँसी में एक ऊँचे टीले पर एक बड़ा पक्का कुँवा है, जिस को लोग समुद्रकूप संभवतः इसी सम्राट् के संबंध से कहते हैं।

सन् ४०० ई०

सन् ४०० ईसवी के पश्चात् चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में चीन देश का पहला बौद्ध यात्री फ़ाहियान भारत में आया। उस ने प्राचीन बौद्धधर्म-संबंधी साहित्य विशेषतया विनयपिटक की खोज में इस देश के प्रायः सभी प्रसिद्ध-स्थानों में भ्रमण किया था। प्रयाग का नाम उस की पुस्तक में स्पष्ट रूप में नहीं पाया जाता, परंतु काशी से वह कौशांबी आया था, जिस का अंतर उस ने १३ योजन बतलाया है। इस के आगे उस ने लिखा है कि "इस स्थान से आठ योजन पूर्व वह जगह है, जहां महात्मा बुद्ध (कुछ दिनों) रहे थे और वहां एक बड़े पिशाच को बौद्ध-धर्म का अनुयायी बनाया था। वहां के लोगों ने उन स्थानों पर स्तूप बनाए हैं जहां भगवान् बुद्ध उस समय ठहरे और चले-फिरे थे। वहां अब तक एक संघाराम (विहार) भी है, जहां लगभग एक-सौ भिक्षु होंगे।[1]

फ़ाहियान ने कौशांबी से इस स्थान का जो अंतर बतलाया है वह कुछ अधिक है, वह स्थान कौशांबी के पूर्व सिवाय प्रयाग के दूसरा नहीं हो सकता।[2]

---

[1] बील, 'बुद्धिस्टिक रेकार्ड्स,' जिल्द १, पृ० ७१ (भूमिका)

[2] कनिंघम साहब ने इस स्थान को पभोसा समझा है। परंतु पभोसा कौशांबी के पूर्व नहीं है, वरन् पश्चिम है। इस लिए उन का मत ठीक नहीं जान पड़ता।

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने जो फ़ाहियान का अनुवाद प्रकाशित किया है, उस के टीकाकार श्रीयुत जगत मोहन वर्मा का मत है कि "फ़ाहियान काशी से कौशांबी गया ही नहीं था। उसने सुना-सुनाया हाल कौशांबी और उस के निकटवर्ती स्थानों का लिख दिया है।" यह सच है कि काशी और कौशांबी के बीच में प्रयाग पड़ता है और उस ने वहां का कोई विशेष वृत्तांत नहीं लिखा, परंतु इस का कारण स्पष्ट है कि वह विनय-पिटक की खोज में था, इस लिए जहां-जहां उस के मिलने की संभावना थी प्रायः उन्हीं स्थानों का उस ने कुछ अधिक हाल लिखा है। दूसरे यदि विचार से देखा जाय तो उस की सारी पुस्तक ही अत्यंत संक्षिप्त है; फिर वह विशेषतया प्रयाग का विस्तृत वृत्तांत क्यों लिखने बैठता। दूसरी बात यह है कि फ़ाहियान के पश्चात् जो दूसरे चीनी यात्री ह्वेन सांग ने

ईसा की छठवीं शताब्दी के लगभग एक चौथाई तक प्रयाग मगध-राज्य ही के अधीन रहा। इस के अंतर्गत उक्त प्राचीन साम्राज्य भी कालचक्र के प्रभाव में आकर जर्जरित हो गए थे। यह वह समय था जब इस देश पर हूणों के आक्रमण आरंभ हो गए थे। उन लोगों ने अपने लगातार धावों से उत्तर-भारत में गंगा के किनारे-किनारे प्रायः सभी प्रसिद्ध स्थानों और नगरों में एक भयंकर उत्पात मचा रक्खा था। यह मध्य-एशिया की एक असभ्य जाति थी। मिहरगुल अथवा मिहरकुल नामक व्यक्ति उन का प्रसिद्ध नेता था, जिस ने स्यालकोट में या उस के निकट अपनी राजधानी बना रक्खी थी।

५२५ ई० से ६०० ई० तक

हम ऊपर बता आए हैं कि मगध के राज्य में उस समय इन विदेशी डाकुओं के दमन करने की पूर्ण शक्ति न थी इस लिए उस के तत्कालीन नरेश नरसिंह गुप्त ने, मध्यभारत के एक और नरेश यशोधर्मन की सहायता लेकर, जिस की राजधानी कदाचित् उज्जैन थी, इन हूणों को सदैव के लिए परास्त कर दिया। यह घटना लगभग सन् ५२५ ई० में हुई थी। परंतु इस का परिणाम यह हुआ कि मगध राज्य की निर्बलता का अनुभव कर के यशोधर्मन ने धीरे-धीरे उस के पश्चिमोत्तर भाग पर, जिस में प्रयाग भी सम्मिलित था, अपना अधिकार जमा लिया।

५२५ ई०

इस के पश्चात् यशोधर्मन के मरने पर सन् ६०६ ई० के लगभग उस के बेटे को थानेश्वर के राजा[1] हर्षवर्धन ने जीत कर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। तब से प्रयाग कन्नौज-राज्य के अंतर्गत हुआ।

६०६ ई०

उत्तर भारत में हर्षवर्धन एक बड़ा शक्तिशाली राजा हुआ था। उस ने पूर्व और पश्चिम में अपने राज्य की सीमा बहुत दूर तक बढ़ाई, अलबत्ता दक्षिण में वह नर्मदा से आगे नहीं जा सका। इसी के समय में चीन का दूसरा[2] प्रसिद्ध यात्री ह्वेन सांग[3] भारत में आया। वह लगभग १४ वर्ष इस देश में रहा और प्रायः सभी प्रसिद्ध स्थानों में घूम-फिर कर उन का विस्तृत वृत्तांत लिखा है।

आकर प्रयाग का वृत्तांत लिखा है उस का बहुत कुछ मिलान इस स्थान के वर्णन से होता है। देखिए आगे इसी पुस्तक में ह्वेन सांग का प्रयाग-वर्णन।

[1] हर्षवर्धन का नाम 'श्रीहर्ष' और 'शीलादित्य' भी था। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट इसी के समय में हुआ था। उस ने 'हर्षचरित' नामक ग्रंथ में इस राजा का विस्तृत वर्णन किया है।

[2] वास्तव में यह पाँचवां चीनी यात्री था। परंतु फ़ाहियान के पश्चात् इसी ने इस देश का विस्तृत वृत्तांत लिखा है। इस दृष्टि से हम ने इस को दूसरा लिखा है।

[3] एक यूरोपियन अनुवादक ने इस का नाम "हुएन च्वांग" और काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के अनुवादक ने "सुयेन च्वांग" वा "ह्येन सांग" लिखा है। हम इस का शुद्ध उच्चारण पाठकों पर छोड़ते हैं।

बड़े विस्तार के साथ ऊपर बतलाए हुए अशोक की लाट पर अंकित है। इस अभिलेख में तत्कालीन उन समस्त राजाओं और जातियों के नाम गिनाए गए हैं, जिन के देश उस ने जीत कर फिर उन को लौटा दिए थे और उन से कर वसूल किया था। इस अभिलेख का विस्तृत वृतांत आगे दिया जायगा। समुद्रगुप्त भारतवर्ष का अंतिम चक्रवर्ती राजा था। उस के पीछे इस देश में कोई नरेश ऐसा प्रचंड विजेता नहीं हुआ। पश्चिमीय इतिहासकारों ने उस को भारत का नेपोलियन माना है। प्रयाग के निकट पुरानी झूँसी में एक ऊँचे टीले पर एक बड़ा पक्का कुँवा है, जिस को लोग समुद्रकूप संभवत: इसी सम्राट् के संबंध से कहते हैं।

सन् ४०० ई०

सन् ४०० ईसवी के पश्चात् चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में चीन देश का पहला बौद्ध यात्री फ़ाहियान भारत में आया। उस ने प्राचीन बौद्धधर्म-संबंधी साहित्य विशेषतया विनयपिटक की खोज में इस देश के प्राय: सभी प्रसिद्ध-स्थानों में भ्रमण किया था। प्रयाग का नाम उस की पुस्तक में स्पष्ट रूप में नहीं पाया जाता, परंतु काशी से वह कौशांबी आया था, जिस का अंतर उस ने १३ योजन बतलाया है। इस के आगे उस ने लिखा है कि "इस स्थान से आठ योजन पूर्व वह जगह है, जहां महात्मा बुद्ध (कुछ दिनों) रहे थे और वहां एक बड़े पिशाच को बौद्ध-धर्म का अनुयायी बनाया था। वहां के लोगों ने उन स्थानों पर स्तूप बनाए हैं जहां भगवान् बुद्ध उस समय ठहरे और चले-फिरे थे। वहां अब तक एक संघाराम (विहार) भी है, जहां लगभग एक-सौ भिक्षु होंगे।[1]

फ़ाहियान ने कौशांबी से इस स्थान का जो अंतर बतलाया है वह कुछ अधिक है, वह स्थान कौशांबी के पूर्व सिवाय प्रयाग के दूसरा नहीं हो सकता।[2]

---

[1] बील, 'बुद्धिस्टिक रेकार्ड्स,' जिल्द १, पृ० ७१ (भूमिका)

[2] कनिंघम साहब ने इस स्थान को पभोसा समझा है। परंतु पभोसा कौशांबी के पूर्व नहीं है, वरन् पश्चिम है। इस लिए उन का मत ठीक नहीं जान पड़ता।

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने जो फ़ाहियान का अनुवाद प्रकाशित किया है, उस के टीकाकार श्रीयुत जगत मोहन वर्मा का मत है कि "फ़ाहियान काशी से कौशांबी गया ही नहीं था। उसने सुना-सुनाया हाल कौशांबी और उस के निकटवर्ती स्थानों का लिख दिया है।" यह सच है कि काशी और कौशांबी के बीच में प्रयाग पड़ता है और उस ने वहां का कोई विशेष वृत्तांत नहीं लिखा, परंतु इस का कारण स्पष्ट है कि यह विनय-पिटक की खोज में था, इस लिए जहां-जहां उस के मिलने की संभावना थी प्राय: उन्हीं स्थानों का उस ने कुछ अधिक हाल लिखा है। दूसरे यदि विचार से देखा जाय तो उस की सारी पुस्तक ही अत्यंत संक्षिप्त है; फिर वह विशेषतया प्रयाग का विस्तृत वृतांत क्यों लिखने बैठता। दूसरी बात यह है कि फ़ाहियान के पश्चात् जो दूसरे चीनी यात्री ह्वेन सांग ने

५२५ ई० से ६०० ई० तक

ईसा की छठवीं शताब्दी के लगभग एक चौथाई तक प्रयाग मगध-राज्य ही के अधीन रहा। इस के अंतर्गत उक्त प्राचीन साम्राज्य भी कालचक्र के प्रभाव में आकर जर्जरित हो गए थे। यह वह समय था जब इस देश पर हूणों के आक्रमण आरंभ हो गए थे। उन लोगों ने अपने लगातार धावों से उत्तर-भारत में गंगा के किनारे-किनारे प्रायः सभी प्रसिद्ध स्थानों और नगरों में एक भयंकर उत्पात मचा रक्खा था। यह मध्य-एशिया की एक असभ्य जाति थी। मिहरगुल अथवा मिहरकुल नामक व्यक्ति उन का प्रसिद्ध नेता था, जिस ने स्यालकोट में या उस के निकट अपनी राजधानी बना रक्खी थी।

५२५ ई०

हम ऊपर बता आए हैं कि मगध के राज्य में उस समय इन विदेशी डाकुओं के दमन करने की पूर्ण शक्ति न थी, इस लिए उस के तत्कालीन नरेश नरसिंह गुप्त ने, मध्यभारत के एक और नरेश यशोधर्मन की सहायता लेकर, जिस की राजधानी कदाचित् उज्जैन थी, इन हूणों को सदैव के लिए परास्त कर दिया। यह घटना लगभग सन् ५२५ ई० में हुई थी। परंतु इस का परिणाम यह हुआ कि मगध राज्य की निर्बलता का अनुभव कर के यशोधर्मन ने धीरे-धीरे उस के पश्चिमोत्तर भाग पर, जिस में प्रयाग भी सम्मिलित था, अपना अधिकार जमा लिया।

६०६ ई०

इस के पश्चात् यशोधर्मन के मरने पर सन् ६०६ ई० के लगभग उस के बेटे को थानेश्वर के राजा[1] हर्षवर्धन ने जीत कर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। तब से प्रयाग कन्नौज-राज्य के अंतर्गत हुआ।

उत्तर भारत में हर्षवर्धन एक बड़ा शक्तिशाली राजा हुआ था। उस ने पूर्व और पश्चिम में अपने राज्य की सीमा बहुत दूर तक बढ़ाई, अलबत्ता दक्षिण में वह नर्मदा से आगे नहीं जा सका। इसी के समय में चीन का दूसरा[2] प्रसिद्ध यात्री ह्वेन सांग[3] भारत में आया। वह लगभग १४ वर्ष इस देश में रहा और प्रायः सभी प्रसिद्ध स्थानों में घूम-फिर कर उन का विस्तृत वृत्तांत लिखा है।

आकर प्रयाग का वृत्तांत लिखा है उस का बहुत कुछ मिलान इस स्थान के वर्णन से होता है। देखिए आगे इसी पुस्तक में ह्वेन सांग का प्रयाग-वर्णन।

[1] हर्षवर्धन का नाम 'श्रीहर्ष' और 'शीलादित्य' भी था। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट इसी के समय में हुआ था। उस ने 'हर्षचरित' नामक ग्रंथ में इस राजा का विस्तृत वर्णन किया है।

[2] वास्तव में यह पाँचवां चीनी यात्री था। परंतु फ़ाहियान के पश्चात् इसी ने इस देश का विस्तृत वृत्तांत लिखा है। इस दृष्टि से हम ने इस को दूसरा लिखा है।

[3] एक यूरोपियन अनुवादक ने इस का नाम "हुएन च्वांग" और काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के अनुवादक ने "सुयेन च्वांग" वा "हियेन सांग" लिखा है। हम इस का शुद्ध उच्चारण पाठकों पर छोड़ते हैं।

वह सन् ६४४ ई० के लगभग हर्षवर्धन के साथ प्रयाग में भी आया था। इस स्थान का उस ने अपनी भाषा में जो नाम लिखा है वह नाम 'पो-लोये-किया' है। वह लिखता है:—

६४४ ई०

"इस देश का विस्तार कोई ५०० ली है, परंतु प्रयाग नगर दो नदियों (गंगा और यमुना) के बीच २० ली के घेरे में है (५ ली = १ मील), अन्न यहां बहुत पैदा होता है और फलों के वृक्ष भी खूब उत्पन्न होते हैं। यहां का जल-वायु उष्ण है, परंतु (स्वास्थ्य के) अनुकूल है। यहां के लोग नम्र और सुशील हैं। उन्हें पठन-पाठन और विद्या से विशेष प्रेम है, परंतु निर्मूल और असत्य सिद्धांतों पर उन का अधिक विश्वास है[१]। नगर में केवल दो संघाराम[२] हैं, जिन में थोड़े से हीनयान[३] संप्रदाय के अनुयायी हैं। दूसरी ओर (पौराणिक) देवताओं के मंदिर अधिक हैं और उन के अनुयायियों की संख्या भी बहुत है। नगर के दक्षिण और पश्चिम चंपक की वाटिका में एक बड़ा स्तूप[४] है, जिस को सम्राट् अशोक ने बनवाया था। इस की दीवारें भूमि से अधिक ऊँची हैं। यह वह स्थान है जहां प्राचीन समय में (ईसवी सन् से ४५० वर्ष पहले) भगवान् बुद्ध ने विधर्मियों को परास्त किया था। इस के बग़ल में एक और स्तूप है, जिस में उन के पवित्र केश और नख समाधिस्थ हैं। इस स्थान पर भगवान् बैठे और चले-फिरे थे। इसी पिछले स्तूप के समीप वह जगह है, जहां देव बोधिसत्व[५] ने 'सत्यशास्त्र वाय पुलियम' की रचना की थी। इस में उन्हों ने हीनयान-संप्रदाय के सिद्धांतों का खंडन करके अपने विपक्षियों का मुँह बंद किया था। देव, दक्षिण-भारत से आकर पहले इसी संघाराम में ठहरे थे। उन के आगमन का समाचार पाकर नगर का एक ब्राह्मण जो तर्क-शास्त्र में बहुत प्रवीण था, उन को परास्त करने के अभिप्राय से आया, परंतु शास्त्रार्थ में वह स्वयं परास्त होगया।"

चीनी यात्री ने जिन स्तूपों की ऊपर चर्चा की है, अब उन के चिन्ह भी नहीं हैं। नगर के दक्षिण यमुना बहती है। उसी ने इन स्तूपों को धीरे-धीरे काट कर बहा दिया होगा।

बौद्ध-संस्थाओं का इतना वृत्तांत लिख कर वह ब्राह्मणों की संस्था के विषय का इस प्रकार वर्णन करता है:—

---

[१] ह्वेन सांग एक कट्टर बौद्ध था। उस ने यहां के तत्कालीन ब्राह्मणों के धर्म के प्रति बड़े कटु शब्दों का प्रयोग किया है।

[२] बौद्ध साधुओं के मठ।

[३] बौद्धधर्म की दो प्रधान शाखाएं हैं। एक को महायान दूसरी को हीनयान कहते हैं। चीनवाले महायान शाखा के अनुयायी हैं।

[४] एक बड़ा घंटाकार गुंबददार मठ।

[५] महायानवालों का विश्वास है कि कुछ जीव ऐसे हैं जो बुद्धत्व लाभ करने के लिए पुरुषार्थ करते हैं और अंत में उन्नति करते-करते स्वयं बुद्ध हो जाते हैं। वे इस अवस्था के प्राप्त करने के पहले बोधिसत्व कहलाते हैं।

"नगर में एक देव-मंदिर (किले के भीतर वर्तमान पातालपुरी के मंदिर के स्थान पर रहा होगा) है, जो अपनी सजावट और विलक्षण चमत्कारों के लिए विख्यात है। इस के विषय में प्रसिद्ध है कि जो कोई यहां एक पैसा चढ़ावे, उस ने मानों और (तीर्थ) स्थानों में एक सहस्र सुवर्ण-मुद्राएँ चढ़ाई, और यदि यहां आत्मघात द्वारा अपने प्राण विसर्जन कर दे तो वह सदैव के लिए स्वर्ग में चला जाता है । मंदिर के आँगन में एक विशाल वृक्ष (अक्षयवट) है, जिस की शाखाएं और पत्तियां बहुत दूर तक फैली हुई हैं। इस की सघन छाया में दाहिने और बायें अस्थियों के ढेर लगे हुए हैं। ये उन यात्रियों की हड्डियां हैं, जिन्हों ने स्वर्ग की लालसा में इस वृक्ष से गिर कर अपने प्राण दिए हैं। यहां एक ब्राह्मण वृक्ष पर चढ़ कर स्वयं आत्मघात करने को उद्यत होता है। वह बड़े ओजस्वी शब्दों में लोगों को प्राण देने को उत्तेजित करता है। परंतु जब वह गिरता है तो उस के (साधक-सिद्धक) मित्र नीचे उस को बचा लेते हैं। वह कहता है देखो ! देवता मुझे स्वर्ग से बुला रहे थे, परंतु ये लोग बाधक हो गए, इत्यादि ।"

इस के आगे उस ने लिखा है कि "संगम में जो इस स्थान से कुछ पूर्व है, सैकड़ों मनुष्य आ-आ कर स्नान करते और उन में से कितने वहां भी प्राण देते हैं। उन का विश्वास है कि यहां स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं और आत्मघात करने से वह सीधे स्वर्ग में जन्म लेंगे। जिन को ऐसा करना होता है वह सात दिन तक भोजन नहीं करते, केवल एक चावल का व्रत रखते हैं और अंत में दोनों धाराओं के बीच में कूद कर प्राणों का विसर्जन कर देते हैं। कोई-कोई बंदर भी मनुष्यों की देखा-देखी ऐसा करते हैं। कुछ लोग इस प्रकार की तपस्या करने का अभ्यास करते हैं कि नदी के बीच में एक स्तंभ-सा खड़ा कर लेते हैं। जब सूर्य अस्त होने लगता है तो वह एक पाँव और एक हाथ के सहारे उस पर चढ़ते हैं और अपनी दृष्टि सूर्य पर जमाए रहते हैं। जब बिल्कुल अँधेरा हो जाता है तो वह नीचे उतर आते हैं। उन का विश्वास है कि ऐसा करने से वह आवागवन से रहित हो जायेंगे।"

इस स्थान के तत्कालीन दान-दक्षिणा का वर्णन ह्वेन सांग ने इस प्रकार किया है:—

"नगर से पूर्व १० ली के अंतर पर दो नदियों के बीच में पृथ्वी रम्य और ऊँची है और सुंदर स्वच्छ बालुका से ढकी हुई है। प्राचीन काल से यह प्रथा चली आती है कि राजे-महाराजे और अन्य बड़े-बड़े धनाढ्य लोग जब यहां आते हैं तो वह अपना धन दान-पुण्य में दे डालते हैं। महाराज हर्षवर्धन ने भी, अपने पूर्वजों का अनुसरण करते हुए पाँच वर्ष का संचित धन एक दिन में बाँट दिया। पहले दिन उन्हों ने भगवान् बुद्ध की एक मूर्ति बनवा कर अपने सब बहुमूल्य रत्न उस पर चढ़ा दिए। तदनंतर उन्हों ने वहां के रहनेवाले पुजारियों को वह सब दान कर दिया। उस के पीछे उन पुजारियों को दिया, जो बाहर से आकर वहां ठहरे थे। फिर विद्वानों और अंत में विधवाओं, अनाथों और दीन दुखियाओं को अपना सारा धन लुटा दिया। जब उन के पास कुछ न रह गया तो उन्हों ने अपना रत्न-जड़ित मुकट और गले से मुक्तामाल भी उतार कर दे दिया। ऐसा करने में महाराज को तनिक भी कष्ट नहीं हुआ, वरन् वह प्रसन्नतापूर्वक इस सुकार्य से अपने को धन्य मानते

थे। इस के पश्चात् विविध प्रदेशों के मांडलिक राजाओं ने जो महाराज हर्षवर्धन के अधीन हैं, नाना प्रकार के रत्न इत्यादिक उन को भेंट किए, जिस से राजकीय कोष खाली न रहे।"

इस वर्णन से जान पड़ता है कि यह अवसर कुंभ अथवा अर्ध-कुंभी का रहा होगा, जिस पर पाँच वर्ष का संचित धन छठवें वर्ष दान दे दिया गया था। इस वृत्तांत से यह भी पता चलता है कि भारत उस समय कितना धन-धान्यपूर्ण तथा समृद्धशाली देश था, जहां के राजे-महाराजे दान-पुण्य में सारा कोष ही लुटा दिया करते थे। 'महाभारत' तथा 'रघुवंश' आदि काव्य-ग्रंथों में ऐसी अनेक कथाएं हैं कि ब्राह्मणों की याचना पर राजाओं ने अपना राजपाट तक दे दिया। पर आजकल लोग इन बातों पर विश्वास नहीं करते, वरन् इन को पुराने कवियों की गप समझते हैं। लेकिन ऊपर की घटना से क्योंकर इन्कार किया जायगा, जिस को एक विदेशी लेखक ने अपनी आँखों देखी लिखा है।

प्रयाग से ह्वेन सांग कौशांबी गया, जिस के मार्ग का वर्णन उस ने इस प्रकार किया है :—

"इस देश (प्रयाग) से दक्षिण और पश्चिम जा कर हम एक बड़े सघन बन में पहुँचे, जिस में वन्य जीव-जंतु और जंगली हाथी भरे हुए थे। यदि यात्रियों की संख्या अधिक न होती, तो इस से हमारा पार होना कठिन था।"

सन् ६४८ ई० में हर्षवर्धन का देहांत हो गया। उस के अनंतर कुछ दिनों तक यहां का इतिहास फिर लुप्तप्राय है। ऐसा जान पड़ता है कि कुछ दिनों तक (संभवतः ७३२ से ७४८ ई० तक) प्रयाग गौड़ के पाल नरेशों —'गोपाल' और 'धर्मपाल'—के अधीन रहा। इसी सातवीं और आठवीं शताब्दी के भीतर कहा जाता है, कि कुमारिल भट्ट ने प्रयाग ही में शरीर त्याग किया था और यहीं स्वामी शंकराचार्य से उन की भेंट हुई थी।

सन् ८१० ई० से कन्नौज में परिहार राजपूतों का राज्य हुआ और वह बहुत दिनों तक रहा। जैसा कि कड़ावाले अभिलेख से, जिस का विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा, विदित होता है, प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) और कौशांबी उन की उपराजधानियां थीं। इस वंश का राजा त्रिलोचनपाल सन् १०२७ ई० में प्रयाग में रहता था। ये सब बातें झूँसी तथा कड़ा वाले लेखों में हैं, जो सन् १०३६ ई० का लिखा हुआ है। इस के पीछे बहुत से छोटे-छोटे राजे हो गए; जिस से यह राज्य भी निर्बल हो गया।

अंत में सन् १०६० ई० में चंद्रदेव गहरवार ने कन्नौज का राज्य ले लिया। तब से मुसलमानों के आने तक यह राज्य उसी के घराने में रहा, और प्रयाग भी उसी के अंतर्गत रहा। कड़ा में कन्नौज के अंतिम नरेश जयचंद्र के क़िले का चिन्ह अब तक गंगा के किनारे मौजूद है। प्रयाग के ज़िले में मांडा और डैया के राजा तथा बड़ोखर और कुलमई के रईस इन्हीं जयचंद्र के वंशज बताए जाते हैं, जिन के घराने का विस्तृत इतिहास इसी पुस्तक में आगे मिलेगा।

———

तीसरा अध्याय

मुसलमानों के समय का इतिहास

(सन् ११९४ से १८०० ई० तक)

ईसा की बारहवीं शताब्दी के अंत में उत्तर-भारत में देशीय नरेशों की, दिल्ली और कन्नौज, यही दो बड़ी राजधानियां थीं। पर उन का जीवनरूपी दीपक एक ओर आपस के कलह और वैमनस्य, दूसरी ओर विदेशियों के ताबड़तोड़ चढ़ाइयों की आंधी से झिलमिला रहा था।

इस परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि सन् ११९४ ई० में शहाबुद्दीन ग़ोरी ने एक-एक कर के इन दोनों राज्यों को हस्तगत कर लिया; और पूर्व में काशी तक अधिकार जमा लिया। उसी समय से प्रयाग भी पहले-पहल मुसलमानी राज्य के अंतर्गत हुआ।

महमूद ग़ज़नवी के दरबार के प्रसिद्ध विद्वान् अलबेरूनी ने प्रयाग के अक्षयवट इत्यादि का कुछ वर्णन अपनी पुस्तक में किया है, परंतु उस में एक तो लगभग उन्हीं बातों का उल्लेख है जो ह्वेन सांग ने लिखी हैं, दूसरे वह स्वयं प्रयाग नहीं आया किंतु सुना-सुनाया हाल दिया है। इस लिए हम उस को छोड़े देते हैं।

तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली के मुसलमान बादशाहों के पूर्वीय प्रदेशों की देख-रेख के लिए कड़ा एक केंद्र बनाया गया। वहां जयचंद्र के समय का एक पुराना क़िला गंगा के तट पर पहले से मौजूद था। उन दिनों प्रायः नदियां ही गमनागमन का मुख्य साधन थीं। अतः उस क़िले में कुछ सेना लेकर एक सूबेदार रहने लगा। वह समय दिल्ली के प्रथम बादशाह क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ का था। तब से लेकर तीन सौ वर्ष से कुछ ऊपर तक प्रयाग कड़े के शासकों के अधीन रहा, जिस का विस्तृत इतिहास इसी पुस्तक में अन्यत्र मिलेगा। फिर भी संगति के हेतु उस समय की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओं का यहां उल्लेख किया जाता है।

सन् १२४७ ई० में दिल्ली के आठवें बादशाह नासिरुद्दीन महमूद, अपने योद्धा अलग़ ख़ां के साथ कड़ा आया था और यहां से उस ने आस-पास के हिंदू राजाओं पर चढ़ाइयां की थीं। तत्पश्चात् सन् १२५३ में अलग़ ख़ां यहां का सूबेदार हो गया, सन् १२५६ में क़तलग़ ख़ां ने यहां विद्रोह मचाया, जिस को अर्सला ख़ां ने शांत किया। पीछे (सन् १२८५ में) अर्सलां ख़ां भी बाग़ी हो गया। उस को अलग़ ख़ां ने परास्त किया। यह समय ग़यासुद्दीन बलबन के राज्यकाल का था। सन् १२८६ में कैकुबाद और उस के पिता बुग़रा ख़ां में यहीं संधि हुई थी, जिस के अनुसार कैकुबाद दिल्ली के तख़्त पर बैठा था, उस के तीन वर्ष पीछे जलालुद्दीन ख़िलजी के राज्यकाल में मलिक छज्जू कड़े में बाग़ी हो गया। अतः उस की जगह अलाउद्दीन यहां का हाकिम हुआ, जिस ने सन् १२९६ ई० में इसी स्थान में कूटनीति द्वारा जलालुद्दीन का बध किया; और उस की जगह स्वयं बादशाह बन कर दिल्ली चला गया। इसी के शासनकाल में सन् १३०० के लगभग वैष्णव-मत के सुप्रसिद्ध आचार्य स्वामी रामानंद[1] का जन्म प्रयाग में हुआ था, जो पीछे काशी चले गए और फिर वहीं साधु होकर रह गए।

सन् १३५० के लगभग जब कि दिल्ली में महम्मद तुग़लक बादशाह था, निज़ाम सूबेदार ने कड़े में बग़ावत की। सन् १३९४ में यह सूबा ख़्वाजा जहां को मिला और तत्पश्चात् सन् १४७९ ई० तक यहां जौनपुरवालों का अधिकार रहा। उस समय के जौनपुरी सिक्के अब तक प्रयाग के ज़िले में यत्र-तत्र मिलते हैं। सन् १४९९ ई० में सिकंदर लोदी के समय में कड़ा आज़म हुमायूं को जागीर में मिला। इसी के लगभग बंगाल के सुप्रसिद्ध वैष्णव धर्म के प्रचारक महाप्रभु चैतन्य प्रयाग आए थे।

सन् १५३९ में हुमायूं, शेर ख़ां से, जो पीछे शेरशाह के नाम से दिल्ली का बादशाह हुआ था, परास्त होकर चुनार से अरैल आया था। यहां राजा वीरभानु बघेल की सहायता से वह पार उतरा। रास्ते में रसद न मिलने के कारण उस के सिपाही भूखों मर रहे थे। राजा ने बाज़ार लगवा दिया। जो लोग पैदल हो गए थे, उन्हों ने नए घोड़े ख़रीद लिए, दूसरे दिन हुमायूं राजा से विदा हो कर कड़े की ओर चला गया[2]।

सन् १५६७ ई० में अकबर का एक सरदार अलीकुली ख़ां जिस की पदवी 'ख़ाने ज़मां' थी और उस का भाई बहादुर ख़ां बादशाह से बाग़ी होगया। अकबर ने उन का दमन करने के लिए स्वयं एक बड़ी सेना ले कर पीछा किया; और कड़े से दक्षिण १० मील पर उन को जा घेरा। वहां दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ। अंत में बादशाही सेना की जीत हुई

---

[1] यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन का आदिनाम 'रामदत्त' था। १२ वर्ष की अवस्था में साधारण शिक्षा प्राप्त करके विशेष अध्ययन के लिए काशी चले गए।

[2] देखिए गुलबदन बेगम का 'हुमायूंनामा'।

और वे दोनों भाई मारे गए। अकबर ने इस विजय के स्मारक रूप उस स्थान का नाम 'फ़तेहपुर' रक्खा जो अब तक परगना कड़ा में 'फ़तेहपुर बेला' के नाम से प्रसिद्ध है।

अकबर इस लड़ाई से निपट कर प्रयाग आया और दो दिन यहां ठहर कर काशी की ओर चला गया। कहते हैं कि गंगा और यमुना के बीच की सुरक्षित भूमि को देख कर, उसी समय उस का ध्यान यहां एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाने की ओर आकर्षित हुआ था। परंतु उस समय वह विद्रोहियों से लड़ने-भिड़ने में लगा हुआ था, इस लिए इस विचार को कार्य रूप में परिणत नहीं कर सका।

उस समय झूँसी और प्रयाग अकबर के एक सरदार हाजी महम्मद खां की जागीर थी, जो पीछे १५६८ ई० में उस के प्रसिद्ध योद्धा आसफ़ खां को मिली। सन् १५८० ई० के लगभग नयाबत खां नाम का एक सरदार इन स्थानों का जागीरदार था। वह अकबर के विरुद्ध हो गया और कुछ सेना इकट्ठी कर के उस ने कड़े के क़िले पर आक्रमण कर दिया। यहां का क़िलेदार इलियास ख़ां मारा गया। अकबर ने यह समाचार पाकर नयाबत ख़ां को दंड देने के लिए एक बड़ी सेना भेजी। नयाबत ख़ां यह सुन कर कड़े से भाग कर प्रयाग पहुँचा और वहां से अरैल के घाट से यमुना पार उतर कर पूर्व की ओर चला गया। बादशाही सेना ने कंतित तक, जो मिर्ज़ापुर के निकट है, उस का पीछा किया और वहां उस को परास्त कर के मार भगाया।

कहा जाता है कि उन्हीं दिनों के लगभग प्रयाग के क़िले की नींव पड़ी थी। अकबर द्वारा इस नगर के नूतन नाम-करण तथा क़िले की निर्माण-तिथि के विषय में तत्कालीन इतिहासकारों में कुछ मत-भेद पाया जाता है। हम उन का वर्णन यथातथ्य नीचे लिखते हैं।

अकबर के दरबार के तीन प्रसिद्ध इतिहास-लेखक थे। उन में से अब्दुल क़ादिर बदायूनी ने 'मुंतख़बुल्-तवारीख़' में लिखा है "कि सन् ९८२ हिजरी (= १५७४ ई०) में सफ़र महीने की २३ वीं तारीख़ को अकबर पयाग में आकर ठहरा, जिस को लोग प्रायः 'इलाहाबास' कहते हैं और जहां गंगा और यमुना मिलती हैं। हिंदू[1] इस स्थान को पवित्र समझते हैं।..............अकबर ने इस स्थान में एक बड़े राज्य-प्रासाद की आधार-शिला रक्खी और इस नगर का नाम 'इलाहाबाद' रक्खा। फिर आगे चल कर लिखा है कि "सन् ९९१ हिजरी (= १५८३ ई०) में अकबर मिर्ज़ा ख़ां को गुजरात भेज कर पटना से लौटते हुए पयाग आया, जहां उस समय बहुत सी इमारतें बन गई थीं। यहां आज़म खां ने आकर बादशाद से भेंट की। अमीरों ने भी बड़े-बड़े मकान बनवाए। और उस समय से यह निश्चित हुआ कि यही स्थान राजधानी समझी जाय। उस ने यहां सिक्का भी ढलवाया और फिर फ़तेहपुर सीकरी चला गया।"

---

[1] **बदायूनी बड़ा कट्टर मुसलमान था। उस ने मूल पुस्तक में हिंदुओं के लिए 'काफ़िर' शब्द का प्रयोग किया है, जिस के अर्थ विधर्मी के हैं।**

निज़ामुद्दीन अहमद ने 'तबक़ाते-अकबरी' नामक ग्रंथ में इस घटना को, अकबर के राज्यकाल के २६ वें वर्ष (= १५८४ ई०,) में, इस प्रकार लिखा है कि (अकबर ने) "पयाग में जहां गंगा और यमुना का जल एक साथ पहुँचता है, एक नगर की नींव डाली और कुछ क़िलों को भी बनवाया। उस नगर का नाम 'इलाहाबास' रक्खा। उस ने आगरे से नौका द्वारा इलाहाबास आकर ४ महीने यहां आमोद-प्रमोद के साथ व्यतीत किए। उन्हीं दिनों आज़म खां ने हाजीपुर से इलाहाबास आकर (बादशाह से) भेंट की, और फिर चला गया। फिर जब गुजरात के उपद्रव का समाचार पहुँचा तो बादशाह आगरा और फ़तेहपुर की ओर चला गया।"

अकबर के प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने 'आईनेअकबरी' में कोई सन्-संवत् न देकर केवल इतना लिखा है कि "यह स्थान प्राचीन काल से 'पयाग' (प्रयाग) कहलाता था। बादशाह ने इस का नाम 'इलाहाबास' रक्खा और यहां पत्थर का एक क़िला बनवाया, जिस में अनेक सुंदर महल बने हुए हैं।" अलबत्ता 'अकबर नामा' में उस ने इस का वर्णन अकबर के राज्यकाल के २८वें[१] वर्ष (सन् १५८३ ई०) में कुछ अधिक विस्तार के साथ इस प्रकार किया है कि "अपने साम्राज्य के प्रत्येक विषयों की जानकारी रखनेवाले सम्राट् (अकबर) के हृदय में, जो हानि-लाभ को दूरदर्शिता रूपी तुला से तौलता रहता है, बहुत दिनों से यह विचार था कि क़स्बा 'पयाग' में जहां गंगा और यमुना एक दूसरे से मिल कर एकता का दम भरती हैं और भारत के श्रेष्ठ लोग जिस को बहुत ही पवित्र समझते हैं, एक दुर्ग बनाया जाय और कुछ दिनों वहां सिंहासनासीन रहे, जिस से आस-पास के सिर उठानेवाले उद्दंड लोग अधीनता स्वीकार करें।"

"तदनुसार सम्राट् आबान[२] (= अक्टूबर) महीने की पाँचवीं तारीख़ को फ़तेह-पुर सीकरी की राजधानी से तीन सौ नावों का बेड़ा लेकर यमुना के मार्ग से अज़ार[३] महीने की पहली तारीख़ को वहां (प्रयाग में) पहुँचा और दूसरे दिन शुभ मुहूर्त में 'इला-हाबाद' के नगर की नींव रक्खी। वहां चार क़िले बनवाए और प्रत्येक में सुंदर-सुंदर भवन निर्माण कराए। इस क़िले का आरंभ वहां से किया गया था, जहां दो नदियां परस्पर मिलती हैं। पहले क़िले या क़िले के पहले खंड में १२ आनंद वाटिकाएं बनाई गईं और प्रत्येक में सुंदर-सुंदर महल और भव्य राज्य-प्रासाद स्वयं सम्राट् के रहने के लिए बनवाए गए। दो क़िलों में बेगमों शाहज़ादों और उन के नौकरों-चाकरों के लिए तथा शेष चौथे में सैनिकों के रहने के लिए स्थान बनाए गए। बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कार्य-कुशल एकत्र हुए और अल्प समय में संपूर्ण काम समाप्त कर दिया। अन्य लोगों ने भी अपनी-अपनी

---

[१] 'मिफ़्ताहुल-तवारीख़' में 'मिरातेजहां' के आधार पर अकबर के राज्य के १२वें वर्ष इस क़िले का बनना लिखा है।

[२-३] ये ईरानी महीनों के नाम हैं। अकबर के समय में अरबी और ईरानी दोनों महीनों के लिखने का रवाज था।

शक्ति के अनुसार अच्छे-अच्छे घर बनवाए, जिस से थोड़े दिनों में एक ख़ासा शहर आबाद हो गया। एक जगह यह भी लिखा है कि इस अवसर पर अकबर की मां यहां आई थी।

ये तीनों इतिहासकार अकबर के समकालीन थे। परंतु वास्तव में किस वर्ष इस क़िले का बनना आरंभ हुआ, इस विषय में उन में जो कुछ मत-भेद है, वह पाठकों की जानकारी के लिए ज्यों-का-त्यों ऊपर लिख दिया गया है। अब दो एक मुख्य यूरोपियन इतिहासकारों की भी रायें देखिए। सर एलक्ज़ेंडर कनिंघम का मत है कि सन् १५७२ ई० में प्रयाग का क़िला बना था[1]। सब से पीछे के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक विसेंट० ए० स्मिथ साहब ने लिखा है कि सन् १५८३ ई० के नवंबर महीने में यह क़िला बना था[2]।

हम अबुलफ़ज़ल के कथन को अधिक प्रामाणिक मानते हैं और उस ने जो तिथि अकबर के राज्यकाल के २८ वें वर्ष आज़र महीने की पहली तारीख़ के दूसरे दिन, प्रयाग के क़िले की नींव डालने की लिखी है, वह हमारे गणित के अनुसार सन् १५८३ ई० के नवंबर महीने की १४वीं तारीख़ है और दिन सोमवार निकलता है। अएतव उसी दिन प्रयाग के क़िले की नींव पड़ी थी।

इसी प्रकार इस विषय में भी कि इस नगर का नाम 'इलाहाबास' रक्खा गया था अथवा 'इलाहाबाद', ऊपर के मुसलमान इतिहासकारों का कथन एक दूसरे से पूर्णतया नहीं मिलता। इस के लिए हम उन सिक्कों की ओर दृष्टि डालते हैं, जो उस समय से प्रयाग की टकसाल में ढलने आरंभ हुए थे। इस समय तक जिन मुग़ल बादशाहों के प्रयाग के ढले हुए सिक्के मिले हैं वे अकबर, जहाँगीर, शाहजहां, औरंगज़ेब, फर्रुख़सियर, महम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर सानी, और शाह आलम के समय के हैं[3]। इन में से जहाँगीर से ले कर शाह आलम तक के सिक्कों की अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन सब पर 'इलाहाबाद' ही अंकित है। अकबर के समय के सिक्के के विषय में बदायूनी ने अपने इतिहास में लिखा है कि सन् ९९१ हिजरी में जब यहां क़िला बना और यह निश्चित हुआ कि इस स्थान को राजधानी बनाया जाय, तब अकबर ने यहां सिक्का ढलवाया, जिस पर 'शरीफ़ सरमदी' का यह पद्य अंकित हुआ था:—

एक ओर	همیشه همچو زر مهر و ماه رایج باد (हमेशः हमचुज़रे मिह्रोमाह रायज बाद)
दूसरी ओर	ز شرق و غرب جہاں سکۂ الہ آباد (ज़िशर्क़ो ग़र्ब जहाँ सिक्कए इलाहाबाद)[4]

---

[1] 'कॉर्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम', पृ० ३२।

[2] विंसेंट स्मिथ, 'अकबर'।

[3] नेल्सन राइट, 'कैटेलाग अव काइन्स इन इंडियन म्यूज़ियम कैलकटा' जिल्द ३

[4] अर्थात् 'सूर्य और चंद्र रूपी मुद्राओं के सदृश इलाहाबाद का सिक्का सदैव पूर्व से पश्चिम तक चलता रहे।'

ये चाँदी के सिक्के हैं और कलकत्ता के सरकारी अजायब-घर में मौजूद हैं, परंतु एक तो इन पर कोई सन्-संवत् अंकित नहीं है दूसरे सन् ३३ इलाही अर्थात् अकबर के राज्य-काल के ३३वें वर्ष की दो सोने की मुहरें ऐसी मिली हैं जिन पर "इलाहाबास" अंकित है; इस लिए कुछ यूरोपियन इतिहासकारों[१] का यह अनुमान है कि उक्त चाँदी वाले सिक्के जहाँगीर ने ढलवाए होंगे, जब वह अपने बाप से बाग़ी हुआ था; क्योंकि उस के नाम से कोई और सिक्का इलाहाबाद की टकसाल का ढला हुआ उस समय तक नहीं मिला। कुछ लोगों का यह भी मत है कि अकबर के राज्य-काल के ४० वें वर्ष यह सिक्का जारी हुआ था। मिस्टर एच० नेलसन राइट का अनुमान है कि संभव है इस प्रकार के बिना सन्-संवत् के सिक्के सन् ९९१ और १००३ हिजरी के बीच ढाले गए हों[२]। परंतु बदायूनी के कथनानुसार यह सिक्का सन् ९९१ हिजरी अर्थात् १५८४ ई० में जारी हुआ था, जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

सारांश यह है कि अकबर के समय में इस नगर का नवीन नाम 'इलाहाबास' और 'इलाहाबाद' दोनों था और उन में भी 'इलाहाबास' नाम उस समय अधिक प्रसिद्ध था, क्योंकि आईन-अकबरी में भी यही नाम मिलता है। फिर पीछे धीरे-धीरे 'इलाहाबाद' ही अधिक प्रचलित हो गया। अकबर की गंगा-यमुनी नीति थी। वह अपने राज्य की स्थिति और विस्तार के लिए हिंदू और मुसलमान दोनों को प्रसन्न रखना चाहता था; इस लिए संभव है उस ने इस स्थान का आधा नाम मुसलमानी ढंग का और आधा हिंदुआना अर्थात् 'अल्लाह' वा 'इलाहाबास' पहले रक्खा होगा, जिस का अर्थ 'ईश्वर का निवास स्थान' होता है।

जब क़िला और नगर बन चुका तब अकबर ने कड़ा और जौनपुर के पुराने सूबों को तोड़कर इस स्थान को एक नए सूबे का केंद्र बनाया। अकबर के बारह सूबों (प्रांतों) में पहला सूबा 'इलाहाबास' ही था, जिस का विवरण अबुलफ़ज़ल ने आईन-अकबरी में इस प्रकार लिखा है:—

"यह सूबा दूसरे इकलीम[३] में है। इस की लंबाई सिंझौली (ज़िला जौनपुर) से दक्षिणीय पहाड़ियों (राज्य रीवां की सीमा पर कैमोर) तक १६० कोस, चौड़ाई चौसा घाट (ज़िला ग़ाज़ीपुर की पूर्वीय सीमा) से घाटमपुर (वर्तमान कानपुर ज़िले के अंतर्गत) तक १२२ कोस है। इस के पूर्व में बिहार, उत्तर में अवध, दक्षिण में बांधव (रीवां राज्य) और पश्चिम में आगरा का सूबा है। गंगा और यमुना इस की मुख्य नदियां हैं। जल-वायु इस सूबे का स्वास्थ्य के लिए हितकर है। इस में अनेक प्रकार के फल-फूल उत्पन्न होते हैं;

---

[१] देखिए एच० नेलसन राईट साहब की बनाई हुई कलकत्ता के अजायब-घर के सिक्कों की सूची की भूमिका।

[२] वही।

[३] यह एक भौगोलिक परिभाषा है। मुसलमानों ने भूमि के सात विभाग किए हैं। प्रत्येक को 'इक़लीम' कहते हैं।

विशेष कर अंगूर और ख़रबूज़ा ख़ूब पैदा होता है। कृषि की दशा अच्छी है। अलबत्ता मोठ की पैदावार बहुत कम है।"

उक्त इतिहासकार के शब्दों में राजधानी का कुछ वर्णन हम ऊपर कर आए हैं, शेष में वह लिखता है:—

"हिंदू इस को तीर्थराज कहते हैं। इस के निकट गंगा, यमुना तथा सरस्वती का संगम है। इन में पिछली नदी अदृश्य है।"

फिर इस के आगे इस सूबे का राजनैतिक विभाग और आय-व्यय का ब्योरा इस प्रकार दिया गया है:—

"इस सूबे में ३ दस्तूर (मंडल)[1] १० सरकार (उपप्रांत) और १७७ परगने या महाल हैं, जिन की सरकारी जमा २१,२४,२७,८१९ दाम[2] (=५३,१०,६९६ रुपया) और १२ लाख ताम्बूल (पान) हैं। इन में से १३१ परगनों की मालगुज़ारी फ़स्ल की पैदावार (बँटाई) से वसूल होती है। शेष ४६ परगना की जमा नक़दी है। कुछ जमा ऐसी भी है, जिस के बदले इस सूबे के मन्सबदार लोग सेना रखते हैं, और जब आवश्यकता होती है उस को ले कर बादशाह की सेवा में उपस्थित होते हैं। ऐसी जमा का नाम 'सैयूर-ग़ाल' है। इस प्रकार की सेना की संख्या इस सूबे में ११,३७५ सवार, २,३७,८७० पैदल और ३२३ हाथी है।"

इस पुस्तक के लिए सूबा 'इलाहाबास' का संक्षिप्त वर्णन इतना ही बहुत है। अब सरकार 'इलाहाबास' का हाल सुनिए। लिखा है:—

इस सरकार में ११ महाल—परगने हैं, जिन के खेतों का क्षेत्रफल ५,७३,३१२ बीघे हैं। इन में से ९ महालों की जमा २,०८,३३,३७४½ दाम नक़दी है। सैयूरग़ाल ७,४७,००१½ दाम है। सवारों की संख्या ५८० और पैदल की ७,१०० है। सरकार इलाहाबास का ब्योरा परगनेवार इस प्रकार है:—

---

[1] इन १० सरकारों के नाम ये थे :—इलाहाबास, कड़ा, मानिकपुर, भटगोरा, कालिंजर, कोड़ा, बनारस, ग़ाज़ीपुर, चुनार और जौनपुर। पीछे इन की संख्या में बहुत कुछ हेर-फेर हो गया, जिस का विवरण यदुनाथ सरकार की पुस्तक 'इंडिया अव् औरंगज़ेब' में इस प्रकार है।

औरंज़ेब के राज्यकाल—(सन् १६६५) में १७ सरकारें तथा २१६ परगने थे।
" (" १६६५) में १६ " २४७ "
" (" १७००) में १७ " २६१ "

क्षेत्रफल और मालगुज़ारी में जो परिवर्तन हुआ था उस का विवरण यह है:—

सन् १५९४ में खेतों का क्षेत्रफल ५७३३११ बीघा और मालगुज़ारी ५२०३३४ रु० और सन् १७२० में खेतों का क्षेत्रफल १५५३६०७ बीघा और मालगुज़ारी ३६६१४१ रु० थी

[2] ४० दाम = १ रुपया।

परगना या महाल का नाम	क्षेत्रफल खेतों का (बीघों में)	सरकारी मालगुज़ारी (दामों में)	सैयूरग़ाल (दामों में)	स्थानिक सेना		ज़मींदार	विशेष सूचना
				पैदल	सवार		
(१) इलाहाबास हवेली (चायल)	२,८४,०५७	९२,६७,३५९	२,५३,२६१	१०००	..	ब्राह्मण	यहां एक पत्थर का क़िला है।
(२) हादिया बास (झूँसी)	४२,४२२	२०,१८,०१४	९७,०७८	४००	२०	ब्राह्मण तथा राजपूत	...
(३) किवाई	१४,३८५	७,२१,११५	१९,००५	४००	१५	ब्राह्मण	...
(४) मह	२१,९८२	११,३९,९८०	२२,४९५½	४००	२०	गहरवार [राजपूत]	इस परगने में पत्थर का एक क़िला था, जिसका डीह अब तक 'महटीकर' नामक गाँव के पास है।
(५) सिकंदरपुर (सिकंदरा)	३४,७५६	१८,६७,७०४	९२,१३८	५००	२५	ब्राह्मण	इस का नाम सिकंदर लोदी ने रक्खा था। पहले यहां एक पत्थर का क़िला गंगा के किनारे पर था, पर अब उस का पता नहीं है।
(६) सोरांव	६३,९३२	३२,४७,१२७	१,६१,२५७	१०००	५०	ब्राह्मण तथा चंदेल [राजपूत]	...
(७) सिंगरौर (नवाबगंज)	३८,५३६	१८,८५,०६६	७४,८८३	...	...	कायस्थ तथा मुसलमान	अवध के नवाब वज़ीर सफ़दर जंग ने 'नवाब गंज' के नाम से एक बाज़ार बसा कर परगने का नाम बदल दिया। सिंगरौर में एक क़िला पक्की ईंट का था, जिस का चिह्न अब तक गंगा के किनारे पर है।

(८) जलालाबास (अरैल)	...	७,३७,२२०	...	४०,० १०		ब्राह्मण	
(९) खारागढ़ (खैरागढ़)	...	४,००,०००	...	५०,००,२००		राजपूत	यहां पहाड़ी पर एक पत्थर का क़िला था। खारा नामक गाँव के निकट अब तक एक पत्थर के क़िले का चिन्ह टोंस नदी के पूर्वीय किनारे पर है।
(१०) भदोही [अब यह बनारस राज्य में है]	७३,२५२	३६,६०,९१८	३७,५३४	५०,००,२००		राजपूत तथा ब्राह्मण	एक ईंट का क़िला गंगा के किनारे था।
(११) कंतित [अब यह मिरज़ापुर में है]	७४,७५३	१८,६७,७०४	९२,१३८	५,००,२५		ब्राह्मण	एक पत्थर का क़िला गंगा के किनारे था।

अब इतने परगने इलाहाबाद के ज़िले में और बढ़ गए हैं।

(१) बारा	...	...	..	...	..	...	पहले इस का नाम 'भटगोरा' था। इस का कोई ब्योरा नहीं मिला।
(२) हवेली कड़ा	९,६३९	५१,४२,१७०	४,४२,०८०	१०००	१००	ब्राह्मण, राजपूत तथा कायस्थ	पहले ये परगने सरकार कड़ा में थे।
(३) अथरबन	१८,५१,७४४	८,९४,०३७	४,७७०	२००	१०	राजपूत	
(४) करारी	३९,६८७	१,४१,९५३	...	...	...	...	एक क़िला ईंट का यमुना के किनारे था। वह स्थान अब 'गढ़वा' कहलाता है।
(५) जलालपुर बेलखर (मिरज़ापुर चौहारी)	७६,५१७	३९,१३,०१७	१,४०,३२५	५०००	४००	ब्राह्मण	पहले यह परगना सरकार मानिकपुर में था।

अबुलफ़ज़ल ने अकबर के समय में परगनेवार ज़मींदारों की जो जातियाँ लिखी हैं उन में अब कहीं-कहीं बहुत बड़ा हेर-फेर हो गया है, जैसे परगना चायल, किवाई और सिकंदरा में ब्राह्मणों की अब बिलकुल ज़मींदारी नहीं है। परगना झूँसी में ब्राह्मणों की कुछ ज़मींदारी अवश्य है, परंतु वे पुराने ज़मींदार नहीं मालूम होते। परगना अरैल में भूमिहारों की ज़मींदारी अवश्य है। सोरॉव में इन के दो तालुके होलागढ़ और खरगापुर के नाम से थे, जिन पर अब सरकार का क़ब्ज़ा है। संभव है, अबुलफ़ज़ल का तात्पर्य इन्हीं लोगों से रहा हो, क्योंकि उस ने अपनी पुस्तक में ब्राह्मणों के लिए 'जुन्नारदार' अर्थात् 'जनेऊधारी' का शब्द प्रयोग किया है। परगना मह में गहरवार और सोरॉव में चंदेल राजपूतों का कहीं अब पता नहीं है।

अकबर के समय में राजनैतिक दृष्टि से यह एक बड़े महत्व का सूबा था, इस लिए इस का शासक राजघराने ही का कोई व्यक्ति हुआ करता था। उस की सहायता के लिए क़िले में कुछ सेना एक पृथक् आफ़िसर के अधीन रहती थी, जिस को 'फ़ौजदार' कहते थे। इस नियम के अनुसार सन् १५९७ ई० में अकबर का पुत्र दानियाल यहां का सूबेदार हुआ था। उस के पहले का हाल मालूम नहीं है। दो वर्ष पीछे युवराज सलीम इस पद पर नियुक्त हुआ, जो सन् १६०५ ई० में अकबर के मरने पर जहाँगीर के नाम से राजसिंहासन पर बैठा। वह अपने राज्याभिषेक के पहले तक बराबर यहां का सूबेदार रहा। यहां जो कुछ मुसलमानी इमारतें हैं वह उसी के समय की हैं। ख़ुल्दाबाद की सराय और ख़ुसरोबाग़[1] उसी के बनवाए हुए हैं। प्रयाग में एक महल्ला 'शहराराबाग़' कहलाता है। हमारा अनुमान है कि इस स्थान पर भी उस ने कोई बाग़ इस नाम से बनवाया था[2]। परंतु अब उस का कोई चिह्न नहीं है।

उस समय के प्रयाग के शिल्प तथा कला-कौशल की भी कुछ चर्चा इतिहासों में आई है। लिखा है कि क़ालीन यहां बहुत अच्छे बनते थे। उन दिनों रेल न होने से प्रायः जल-मार्ग द्वारा ही व्यापार हुआ करता था। यहां गंगा और यमुना का संगम था। अतः हर प्रकार का माल यहां देसावरों से आया-जाया करता था। इस लिए यहां की सब से बड़ी कारीगरी नाव बनाने की प्रसिद्ध थी। उन दिनों बड़ी-बड़ी नावें, यहां तक कि छोटे-मोटे जहाज़ भी, यहां बनते थे और गंगा द्वारा समुद्र तक पहुँचते थे।

जैसा कि पहले लिखा गया है, क़िले में उन दिनों चाँदी और ताँबे के सिक्कों की सरकारी टकसाल थी। एक बार सलीम यहां अकबर से पृथक् होकर स्वतंत्र राज्य करना चाहता

---

[1] 'मिफ़्ताहुल्-तवारीख़' में है कि क़िले के बचे हुए मसाले से जहाँगीर ने ख़ुसरो बाग़ की दीवार बनवाई थी।

[2] 'तुज़ुक जहाँगीरी' में जो स्वयं जहाँगीर की लिखी हुई है, 'शहराराबाग़' का नाम आया है। उस में लिखा है कि क़ैदी ख़ुसरो को उक्त बाग़ में स्वच्छंद घूमने-फिरने की आज्ञा थी।

अकबर के समय का सरकार इलाहाबास
अर्थात
सन् १५९६ ई० के इलाहाबाद के जिले का मानचित्र
आइन अकबरी के आधार पर

था। इस अभिप्राय से उस ने आस-पास के कई सूबों पर, जिस का उस से संबंध न था, अधिकार जमा लिया और उक्त टकसाल में ऐसे सिक्के ढलवाए, जिन पर अकबर का नाम न था, जैसा कि पीछे वर्णन किया गया है। अकबर यह सुन कर बेटे को समझाने के लिए आगरे से चला, परंतु रास्ते में अपनी माता की मृत्यु का समाचार सुन कर लौट गया। यह घटना सन् १६०५ ई० की है।

जहाँगीर

उसी वर्ष (सन् १६०५ ई० में) अकबर के मरने पर सलीम, 'जहाँगीर' के नाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा और अपने बेटे परवेज़ को इलाहाबाद का सूबेदार बना कर भेजा। उसी साल जहाँगीर ने प्रयाग के क़िले में अशोक की लाट पर फ़ारसी अक्षरों में अपनी वंशावली और अपने राज्याभिषेक की तिथि आदि अंकित कराई।

सन् १६०६ ई० में जहाँगीर के बड़े बेटे ख़ुसरो ने भी तख़्त पर बैठने का उद्योग किया था। परंतु वह लाहौर के निकट बादशाही सेना से परास्त हो कर पकड़ लिया गया। जहाँगीर ने उस को अंधा कर के क़ैद कर दिया। सन् १६२२ ई० में ख़ुसरो बुरहानपुर में था। उस के भाई ख़ुर्रम ने (जो पीछे शाहजहां के नाम से तख़्त पर बैठा था) उस को मरवा डाला और उस का मृतक शरीर पहले आगरे में लाया गया; फिर वहां से प्रयाग में लाकर ख़ुसरो बाग़ में गाड़ा गया। इस बाग़ का विस्तृत वर्णन प्रयाग की ऐतिहासिक इमारतों के प्रकरण में किया जायगा।

सन् १६२४ ई० में जहाँगीर के दूसरे पुत्र ख़ुर्रम ने भी बाप के विरुद्ध सिर उठाया। उस समय मिर्ज़ा रुस्तम प्रयाग का सूबेदार था। ख़ुर्रम बंगाल और बिहार को हस्तगत कर के पच्छिम की ओर बढ़ा। जहाँगीर ने यह सुन कर अपने दूसरे बेटे परवेज़ को एक बड़ी सेना लेकर बंगाल के बिद्रोह का दमन करने के लिए भेजा। परंतु वहां परवेज़ के पहुँचने से पहले ख़ुर्रम के एक सरदार अब्दुल्ला ख़ां ने झूँसी में मोर्चा लगा कर प्रयाग के क़िले को हस्तगत करने का प्रयत्न किया। परवेज़ ने यह देख कर तुरंत नावों के पुल-द्वारा अपनी सेना को गंगा-पार उतारा और शत्रु को वहां से मार भगाया। अब्दुल्ला ख़ां जौनपुर होता हुआ बनारस पहुँचा। ख़ुर्रम ने यह सुन कर फिर अपनी सेना एकत्रित की और गंगा के दाहिने किनारे-किनारे टोंस नदी तक आ पहुँचा। इधर सामने गंगा के इस पार दुमदुमा[1] में बादशाही सेना की ओर से एक सरदार महम्मद ज़मां कुछ आदमी ले कर जौनपुर का मार्ग रोके पड़ा था। ख़ुर्रम ने यह रंग देख कर उस समय उस से लड़ना उचित न समझा और पनासा[2] के घाट से इस पार उतर आया। यहां महम्मद ज़मां ने उस के रोकने का बहुत

---

[1] यह स्थान प्रयाग से कोई २० मील पूर्व गंगा के बाँए किनारे पर परगना किवाई में है।

[2] प्रयाग से पूर्व गंगा के दाहिने ओर टोंस के किनारे परगना अरैल में एक प्रसिद्ध गाँव है।

उद्योग किया, परंतु वह सफल न हुआ और उस को विवश होकर उल्टा झूँसी की ओर भागना पड़ा। लेकिन उधर यमुना पार ख़ुर्रम की सेना, जो टोंस के किनारे पड़ी थी, बादशाही सेना से हार कर तितर-बितर होगई, जिस पर इस झगड़े का अंत हो गया।

शाहजहां

१६२८ ई० में जहाँगीर के मरने पर ख़ुर्रम, 'शाहजहां' के नाम से दिल्ली का बादशाह हुआ। कहते हैं, इसी के समय से इस स्थान का नाम 'इलाहाबास' के स्थान में पक्के तौर पर 'इलाहाबाद' हुआ। शाहजहाँ के राज्यकाल में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना प्रयाग में नहीं हुई।

औरंगज़ेब

सन् १६५८ ई० में जब औरंगज़ेब अपने पिता शाहजहां को क़ैद करके गद्दी पर बैठा और उस के भाइयों से राज्य के लिए झगड़ा आरंभ हुआ तो उस समय औरंगज़ेब के बड़े भाई दारा शिकोह की ओर से क़ासिम बारहा प्रयाग का सूबेदार था। जब दूसरी बार दारा शिकोह को औरंगज़ेब की सेना से पंजाब में नीचा देखना पड़ा तो उस समय उस का बेटा सुलैमान शिकोह प्रयाग से तीन मंजिल पश्चिम कड़े के निकट डेरा डाले पड़ा था। वह पिता की हार का समाचार पाकर तुरंत प्रयाग के क़िले में आया। यहां वह एक सप्ताह ठहरा और भविष्य के लिए अपने सरदारों के साथ विचार करता रहा। अंत में यही निश्चय हुआ कि पिता की सहायता के लिए अवश्य जाना चाहिए। तदनुसार वह अपने बाल-बच्चों को यहां छोड़ कर एक बड़ी सेना के साथ गंगा के पार उतरा और रुहेलखंड के मार्ग से बाप के पास जाना चाहा, परंतु औरंगज़ेब की सेना ने उस को दारा से मिलने न दिया। इधर पूर्व में औरंगज़ेब का दूसरा भाई शुजा बंगाल और बिहार का स्वतंत्र मालिक बन बैठा था। पहले तो उस से और दारा से कुछ अनबन रही, परंतु पीछे कुछ सोच समझ कर दारा ने क़ासिम को लिख भेजा कि प्रयाग का क़िला शुजा के हवाले कर दिया जाय। क़ासिम ने शुजा को इस की सूचना दी और उस ने तुरंत आकर क़िले को अपने अधिकार में ले लिया। उधर औरंगज़ेब ने पहले से अपने एक सरदार ख़ां-ने-दौरां को प्रयाग हस्तगत करने के लिए भेज रक्खा था, परंतु जब औरंगज़ेब को वहां शुजा के पहुँचने का हाल मालूम हुआ, तो उस ने अपने बड़े बेटे महम्मद सुल्तान को भी एक बड़ी सेना के साथ प्रयाग भेजा; और उस के पीछे वह स्वयं भी आया। इधर शुजा भी प्रयाग से अपनी सेना के साथ औरंगज़ेब से लड़ने के लिए आगे बढ़ा। उस के साथ यहां का क़िलेदार क़ासिम भी था। प्रयाग के पश्चिम खजुआ[1] में दोनों दलों की मुठभेड़ हो गई और वहां एक घमासान लड़ाई हुई। इस युद्ध में औरंगज़ेब की जीत रही और शुजा हार कर भाग गया।

---

[1] भूषण ने इसी घटना का संकेत इन शब्दों में किया है "दारा की न दौर यह रारि नहीं खजुवे की ... " इत्यादि। देखिए शिवा बावनी का ३६ वां कबित्त। खजुआ इस समय फ़तेहपुर के ज़िले में एक प्रसिद्ध क़स्बा है।

प्रयाग का क़िलेदार क़ासिम यह रंग देख कर चुपचाप उल्टे पाँव अपने क़िले में लौट आया। यहां शुजा ने पहुँच कर फिर क़िला लेना चाहा, परंतु क़ासिम ने अब की बार उस को घुसने न दिया। अतः वह विवश हो कर लौट गया। इधर शाहज़ादा सुल्तान कुछ सेना ले कर शुजा की खोज में प्रयाग आया। क़ासिम ने विचार किया कि इस समय औरंगज़ेब का ही पल्ला भारी है, अतएव उसी की अधीनता स्वीकार करने में कुशल है। तदनुसार उस ने क़िले की कुंजी बिना किसी रोक-टोक के सुल्तान के हवाले कर दी। उस के स्थान में ख़ान-दौरां यहां का क़िलेदार बनाया गया और क़ासिम औरंगज़ेब के पास आगरे चला गया। यह घटना सन् १६६१ ई० की है।

औरंगजेब के समय में फ्रांस का प्रसिद्ध यात्री टैवर्नियर भारत की सैर के लिए आया था। ६ दिसंबर सन् १६६५ ई० को वह 'आलमचंद' से नाव-द्वारा प्रयाग में पहुँचा। उस ने यहां का तत्कालीन वृत्तांत इस प्रकार लिखा है—

"इलाहाबास (=इलाहाबाद) एक बड़ा शहर है, जो गंगा और यमुना के संगम की नोक पर बसा हुआ है। यहां (क़िले में) तराशे हुए पत्थर का एक बहुत ही सुंदर महल है, जिस के गिर्द दोहरी खाँई है। इस महल में सूबेदार रहता है, वह भारत के उच्च श्रेणी के अधिकारियों में है। कोई मनुष्य बिना सरकारी आज्ञा के गंगा या यमुना-पार नहीं कर सकता। मुझे इस के लिए प्रातःकाल से दोपहर तक नाव पर प्रतीक्षा करनी पड़ी। अंत में एक डच डाक्टर की कृपा से आज्ञा-पत्र मिला। यहां प्रत्येक लदी हुई नाव का चार रुपया महसूल लिया जाता है। किनारे पर एक दरोग़ा इस बात की जाँच कर के लिखता है कि कहां किस प्रकार का माल जाता है [1]।"

टैवर्नियर केवल एक दिन यहां ठहर कर बनारस चला गया, इस लिए और कुछ हाल यहां का नहीं लिखा।

सन् १६६६ ई० में महाराज शिवाजी अपनी विलक्षण चतुराई और अपूर्व कार्य-कौशल के द्वारा दिल्ली में औरंगजेब के कपट-जाल से मुक्त हो कर, मथुरा होते हुए प्रयाग पधारे थे और यहां दारागंज में किसी पंडे के यहां ठहरे थे। दक्षिणीय यात्रियों के अधिकांश पंडे अब भी इसी महल्ले में रहते हैं। शिवाजी का पुत्र शंभु (संभा) जी उस समय बालक था। अतएव मार्ग की थकावट से उसे बहुत कष्ट हो रहा था। महाराज उस को उक्त पंडे या किसी अन्य विश्वासपात्र व्यक्ति के यहां सुरक्षित छोड़ कर आप यहां से काशी होते हुए अपने देश को चले गए। कुछ लोगों का कहना है कि जिस के यहां संभाजी रहा था उस का नाम 'कवि कलस' था, जिस को संभाजी ने गद्दी पर बैठने पर अपना मंत्री बनाया था।

प्रयाग से कुछ दूर पश्चिम, जहां ई० आई० आर० की लाइन बड़ी सड़क (ग्रांड

---

[1] टैवर्नियर, 'ट्रैविल्स इन इंडिया' १६७६, जिल्द १, पृ० ६३–६४

ट्रंक रोड) को काटती है, एक छोटा सा गाँव 'सिपहदार गंज' के नाम से बसा हुआ है। यह बस्ती उसी समय का चिह्न स्वरूप है। सन् १६६२ से लेकर सन् १६६६ ई० तक सिपहदार खां यहां का सूबेदार रहा था। उसी ने इस स्थान को अपने नाम से बसाया था।

शाहजहां के राज्यकाल के पश्चात् यद्यपि औरंगजेब की कूट-नीति से दारा शिकोह को दिल्ली का राज्य नहीं मिला, तो भी हम देखते हैं कि प्रयाग में दारा के अनेक चिह्न अब तक पाए जाते हैं। क़िले के उत्तर मुहल्ला 'दारागंज' और कड़े के पास क़स्बा 'दारानगर' तो स्पष्ट ही उस के नाम से बसे हुए हैं। परंतु हमें खोज करने से प्रयाग से चार मील पश्चिम बड़ी सड़क से थोड़ा दाहने ओर एक और ऐसी बस्ती का पता लगा है, जिस के विषय में वहां के पुराने लोगों का कहना है (और हम ने स्वयं वहां के एक मुसलमान सज्जन [1] के यहां एक हस्तलिखित पुस्तक में लिखा हुआ देखा है) कि उस बस्ती को दारा शिकोह की पत्नी 'नादिरा बेगम'[2] ने बसाया था। इस बस्ती का नाम 'बेगम सराय' है इस सराय की कुछ पुरानी दीवारें जहां-तहां अब तक बनी हुई हैं, जिस से लगा कर लोगों ने घर बना लिए हैं, उस के पूर्वीय विशाल फाटक की मिहराब अभी सन् १६२५ ई० की वर्षा में गिरी है। पश्चिम का फाटक पहले गिर चुका था, जिस के बड़े-बड़े पत्थर अब तक उस स्थान पर पड़े हुए हैं। यह सराय ख़ुल्दाबाद की सराय से किसी अंश में छोटी न थी, वरन् उस के फाटक ख़ुल्दाबाद के फाटक से कहीं ऊँचे थे, परंतु अब उन का शेष बहुत ही जीर्ण अवस्था में है और इस लिए कुछ दिनों में उन का भी चिह्न न रहेगा[3]। काल-चक्र का यही नियम है, किसी कवि ने ठीक ही कहा है :—

मिटे नामियों के, निशां कैसे कैसे

सरायें प्रायः सड़क के किनारे होती हैं, परंतु यह सराय वर्तमान पक्की सड़क से तीन *फ़र्लांग के लगभग उत्तर की ओर हट कर है। इसी प्रकार इस स्थान से कोई १२ मील* पश्चिम एक और पुरानी बस्ती आलमचंद है। मुसलमानी समय के इतिहासों में उस की

---

[1] इन का नाम शेख़ नवाब हुसेन था, जिन का देहांत हो गया है। इन के लड़के अब शहर में महल्ला दुहीपुर में रहते हैं।

[2] नादिरा परवेज़ की बेटी और जहाँगीर की पोती थी, जो सन् १६३४ ई० में पैदा हुई थी। सन् १६५९ में मरी और लाहौर में मियांमीर के आश्रम में गाड़ी गई।

[3] यह ग्राम इस पुस्तक के लेखक के बाप-दादों का जन्म-स्थान है। इस लिए उस ने इस स्थान का ऐतिहासिक अनुसंधान करके कुछ अधिक वृत्तांत लिखना अपना कर्तव्य समझा है। पाठक क्षमा करेंगे। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

भी चर्चा 'सराय आलमचंद' के नाम से बहुधा आई है। यह स्थान भी वर्तमान पक्की सड़क से कुछ दूर उत्तर की ओर हट कर है। बात यह है कि उस समय बड़ी सड़क (ग्रांड ट्रंक रोड) कुछ उत्तर की ओर हट कर गंगा के किनारे-किनारे इन स्थानों में से होती हुई गई थी। सन् १७८२ ई० में एक अंगरेज़ यात्री जार्ज फ़रेस्टर ने इन सरायों में अपने ठहरने का उल्लेख किया है। औरंगजेब के राज्य-काल में सरकार इलाहाबाद में ११ महाल और ५५१२ गाँव थे [1]।

सन् १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उस समय से ले कर सन् १७१२ ई० तक अब्दुल्ला खां प्रयाग का हाकिम रहा। उस समय उस का और उस के भाई हुसैन अली का दिल्ली दरबार में ऐसा रंग जमा हुआ था कि ये लोग 'बादशाह गर' कहलाते थे अर्थात् जिस को चाहते थे, बादशाह बनाते थे।

औरंगज़ेब के मरने पर उस का बेटा 'आज़म शाह' तख़्त पर बैठा। तब ये लोग उस के नौकर बने रहे। परंतु जब पीछे आज़म का भाई मुअज़्ज़म उस को लड़ाई में मार कर 'बहादुर शाह' के नाम से बादशाह बन बैठा। तब ये लोग बहादुर शाह के बेटे अज़ीमुश्शान के पक्ष में हो गए, जो उस समय बंगाल का सूबेदार था। उस ने अपनी ओर से इलाहाबाद का सूबा अब्दुल्ला को और बिहार उस के भाई हुसैन अली को दे दिया।

१७१२ ई० में बहादुर शाह के मरने पर उस का बेटा जहाँदार शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। अज़ीमुश्शान को उस के भाइयों ने मिल कर एक युद्ध में मार डाला। इस लिए उस का बेटा फ़र्रुख़सियर जो उस समय बंगाल में था, पटना पहुँचा और इन दोनों भाइयों (अब्दुल्ला और हुसेन अली) से सहायता माँगी। हुसैन अली पटना से प्रयाग को चला, परंतु उस के पहले इन दोनों भाइयों के षड्यंत्र की ख़बर दिल्ली में पहुँच गई थी। वहां से राजे महम्मद ख़ां अब्दुल्ला की जगह पर प्रयाग का सूबेदार नियुक्त हुआ। वह आठ हज़ार सवार और चौदह हज़ार पैदल सेना ले कर प्रयाग की ओर चला। अब्दुल ग़फ़्फ़ार नामक एक और योद्धा उस के साथ कर दिया गया। जब ये लोग कड़े के निकट पहुँचे तो वहां का सूबेदार सरबुलंद ख़ां भी इन की सहायता के लिए साथ हो गया। इधर से अब्दुल्ला ने भी अपनी सेना इन लोगों से लड़ने के लिए भेजी। प्रयाग से पश्चिम आलमचंद में इन दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हो गई। पहले कुछ दिन इधर-उधर की कहा-सुनी में व्यतीत हुए। इतने में फ़र्रुख़सियर पटना से आ गया और अब्दुल्ला भी जो कुछ दिनों के लिए क़िले में घिर गया था, मुक्त हो गया। तब वह स्वयं और सेना ले कर आगे बढ़ा और आलमचंद में अपने आदमियों से जा मिला। वहां लड़ाई छिड़ गई। कोई छः घंटे तक दोनों ओर

---

[1] सर यदुनाथ सरकार, 'इंडिया अव् औरंगज़ेब'।

की सेनाओं में घमसान युद्ध होता रहा[१]। इधर से अब्दुल्ला उधर से अब्दुल ग़फ़्फ़ार बड़ी चतुराई से अपने-अपने दल का संचालन कर रहे थे। इतने में एक बड़ी विचित्र घटना हुई। न जाने किस तरह संभवतः अब्दुल्ला के कौशल से बादशाही सेना में एक बारगी यह हल्ला मचा कि उन का नायक अब्दुल ग़फ़्फ़ार मारा गया। बस फिर क्या था? यह सुनते ही उधर के सिपाहियों के पाँव उखड़ गए। और वे मैदान छोड़-छोड़-कर शाहज़ाद-पुर की ओर भाग निकले, यद्यपि यह बात सर्वथा झूठ थी। अब्दुल गफ़्फ़ार स्वयं अपनी पगड़ी हाथ में लिए चिल्लाता फिरता था कि 'मैं जीता हूँ'। परंतु उस हुल्लड़ में कौन सुनता था, जिधर जिस की सींग समाई भाग निकला। यह घटना २ अगस्त सन् १७१२ ई० की है। इस प्रकार सहज ही में विजय-लक्ष्मी अब्दुल्ला के पक्ष में रही। वह आलमचंद से प्रयाग लौट आया और यहां १२ नवंबर को उस से और फ़र्रुख़सियर से भेंट हुई। उस समय फ़र्रुख़सियर की सेना झूँसी, सराय बाबू और सराय जगदीश में डेरा डाले पड़ी थी। इस अवसर पर उस ने झूँसी में शेख़ तक़ी[२] की क़ब्र की ज़ियारत (दर्शन) की। उस की सेना गंगा के इस पार उतर कर सिपहदारगंज में ठहरी और वह अब्दुल्ला से समझौता करके जहाँदार से लड़ने के लिए आगे बढ़ा।

उस लड़ाई (सन् १७१३ ई०) में जिस में जहाँदार मारा गया और फ़र्रुख़सियर उसकी जगह गद्दी पर बैठा, छबीले राम नागर ने भी फ़र्रुख़सियर की बड़ी सहायता की थी। यह एक गुजराती ब्राह्मण था और जहाँदार के समय में कोषविभाग का मंत्री था। फ़र्रुख़-सियर ने इस उपलक्ष्य में उस को प्रयाग का सूबेदार बना कर भेज दिया और अब्दुल्ला को प्रधान मंत्री बना कर अपने पास बुला लिया। छबीले राम बड़ा वीर पुरुष था। वह इन सैयद-बंधुओं (अब्दुल्ला और हुसैन अली) से दबता न था। अतः इन लोगों ने उस के विरुद्ध बादशाह के कान भरने आरंभ किए। बादशाह इन के हाथ में कठपुतली बना हुआ था। ये लोग जो कुछ चाहते थे, उस से हुक्म दिला देते थे। निदान अगस्त सन् १७१९ ई० में तंग आकर छबीले राम खुल्लम-खुल्ला इन के विरुद्ध हो गया। हुसैन अली ने उस को

---

[१] उस समय प्रयाग के एक कवि श्रीधर ने अपने 'जंगनामा' नामक काव्य में इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"तेहि बीच झुकि पर थोर तें तरवारि झम झम झम परी।
झर लगी तीरन की महा मनु लगी सावन की झरी॥"

यह लड़ाई कितनी देर तक हुई थी? इस के विषय में वह लिखता है :—

दुई पहर उस्सल पसल भट रन सिंधु पार न पावहीं

[२] शेख़ तक़ी एक प्रसिद्ध मुसलमान फ़क़ीर थे जो सन् १३२० में पैदा हुए थे और १३८४ में मरे थे। पुरानी झूँसी में इन की क़ब्र समुद्र कूपवाले टीले के दक्षिण गंगा के किनारे पर है। यहां साल में एक बार कार्तिक में मेला लगता है।

प्रयाग के क़िले से बेदख़ल करने के लिए आगरे से कुछ सेना भेजी। रास्ते में और भी कई मुसलमान सरदार अपने-अपने आदमियों को ले कर उस के साथ हो लिए। छबीलेराम अपने भतीजे गिरिधर बहादुर को क़िले में छोड़ कर आप एक बड़ी सेना ले कर उन लोगों से लड़ने के लिए आगे बढ़ा। लेकिन एक-दूसरे का अभी आमना-सामना भी न हुआ था कि अकस्मात् छबीलेराम का देहांत हो गया। यह सुन कर मुसलमान योद्धा बड़े ख़ुश हुए और इस घटना को उन्हों ने एक प्रकार की ताईद ग़ैबी (दैवी सहायता) समझी। उन में से एक का नाम अब्दुल नबी ख़ां था। उस ने शाहज़ादपुर में ठहर कर गिरिधर बहादुर से कहला भेजा कि यदि तुम क़िला ख़ाली कर दो तो तुम को अवध की सूबेदारी मिल जायगी। गिरिधर ने इस वचन का विश्वास न कर के क़िला छोड़ने से इन्कार कर दिया। इस पर उन लोगों ने और भी सेना इकट्ठी कर के फ़र्रुख़ाबाद के नवाब महम्मद ख़ां बंगश को साथ ले कर प्रयाग के क़िले पर बड़े समारोह के साथ चढ़ाई की। इधर गिरिधर ने भी पूरी तैयारी कर रक्खी थी। आस-पास के समस्त बड़े-बड़े हिंदू ज़मींदारों और बुद्ध-सिंह बुंदेला को अपना सहायक बना रक्खा था। क़िले में कई वर्ष के लिए रसद भी जमा कर ली थी। दोनों ओर से लगभग सात दिन तक सिर-तोड़ लड़ाई होती रही। बादशाही सेना के कई योद्धा बुरी तरह घायल हुए, परंतु क़िला फ़तेह न हुआ। अंत में संधि के लिए फिर बातचीत आरंभ हुई। गिरिधर बहादुर का पहले तो यही कहना था कि जब तक चचा (छबीलेराम) की बर्सी न हो जाय वह इस स्थान को छोड़ नहीं सकता। अंत में उस ने साफ़ कहला भेजा कि मुझे तुम लोगों की किसी बात का विश्वास नहीं है। यदि राजा रत्नचंद स्वयं आकर वचन दें तो मैं क़िला छोड़ने के लिए तैयार हूँ। इस कहा-सुनी में महीनों बीत गए। इतने में इधर दिल्ली में फ़र्रुख़सियर की जगह पर महम्मदशाह (स० १७१६ ई० में) तख़्त पर बैठा, रत्नचंद महम्मदशाह के दरबार के एक ऊँचे दर्जे के पदाधिकारी थे। सैयद बंधुओं ने उन को इस झगड़े के निपटाने के लिए प्रयाग भेजा।

सन् १७२० ई० के अप्रैल महीने में राजा रत्नचंद कुछ सेना साथ ले कर प्रयाग आए और यहां गिरिधर बहादुर से मिल कर उस को विश्वास दिलाया कि इस क़िले के बदले उस को अवध की सूबेदारी, राजा की पदवी के साथ मिलेगी, जिस में उस को हर प्रकार के पूरे अधिकार रहेंगे; तथा ३० लाख रुपया नक़द, मोतियों की माला, जड़ाऊ ख़िलअत् हाथी सहित बादशाह के दरबार से मिलेगा। गिरिधर ने इस को स्वीकार कर लिया और ११ मई १७२० को अपना कुल ख़ज़ाना, माल असबाब और बाल-बच्चों को ले कर क़िले से चला गया।

गिरिधर के क़िला छोड़ने पर अहमद ख़ां इस में रहने लगा। अगले साल महम्मद ख़ां बंगश प्रयाग का सूबेदार हुआ और सन् १७३२ ई० तक यह सूबा उसी के अधिकार में रहा। वह प्रायः फ़र्रुख़ाबाद में रहा करता था। यहां उस की ओर से कभी उस का बेटा अकबर ख़ां और कभी उस का भाई अहमद ख़ां काम-काज करते थे, उन्हीं दिनों बुंदेल-खंडके महाराज छत्रसाल ने यमुना-पार प्रयाग की सीमा तक बादशाही इलाके पर अधिकार

जमा लिया। महम्मद ख़ां दिल्ली दरबार के आज्ञानुसार उन से लड़ने के लिए इसी क़िले में तैयारी कर के यमुनापार उतरा। यह लड़ाई सन् १७२५ ई० से ले कर लगभग चार-पाँच वर्ष तक छिड़ी रही।

सन् १७३२ ई० में यह सूबा सरबुलंद ख़ां को मिला। उस ने अपनी ओर से रोशन ख़ां को[1] अपना नायब बनाकर भेजा। परंतु सन् १७३५ ई० में फिर महम्मद ख़ां यहां का सूबेदार हुआ। उस समय सर बुलंद ख़ां दिल्ली में था। उस ने यह सुनकर अपने एक और नायब शाहनिवाज़ ख़ां को लिखा कि वह महम्मद ख़ां को क़ब्ज़ा न दे। इधर भदोही और कंतित के राजा महम्मद ख़ां की सहायता के लिए पहुँचे। शाहनिवाज़ उस समय सिंगरौर के क़िले में पहुँच गया था। वह कसौंधन (उपनाम लच्छागिर) के घाट से गंगा के इस पार उतरा, परंतु यहां उस के पहले ही अरैल में उस के नायब सैयद महम्मद ख़ां और राजा से लड़ाई छिड़ गई थी, जिस में पहले तो महम्मद ख़ां हारा, फिर अंत में राजा हार कर विजयपुर की ओर चला गया। इस घटना के पश्चात् कुछ दिनों तक यह सूबा महम्मद ख़ां बंगश ही के अधिकार में रहा, परंतु सन् १७३६ ई० में फिर सरबुलंद ख़ां को मिल गया।

इस के पश्चात् सन् १७३९ ई० में अमीर ख़ां उम्दतुल् मुल्क यहां का सूबेदार हुआ। सन् १७४३ ई० में वह मारा गया। तब यह सूबा अवध के नवाब सफ़दर जंग को मिला। वह प्राय: दिल्ली या कभी-कभी अवध में रहा करते थे। यहां उन की ओर से आमिल या नायब काम-काज करते थे।

उन के समय में मराठों ने यहां बहुत उत्पात मचाया। सन् १७३९ में नागपुर के राघोजी भोसला ने प्रयाग पर चढ़ाई की और यहां के आमिल शुजा ख़ां को मार कर शहर को लूटा और बहुत-सा माल यहां से ले गए। सन् १७४२ ई० में फिर उन्हों ने प्रयाग पर धावा करना चाहा, परंतु जल्द ही उन को गायकवाड़ से लड़ने के लिए मालवा की ओर चला जाना पड़ा। प्रयाग में दारागंज के समीप नागबासू का मंदिर और पक्का घाट उन्हीं के बनवाए हुए बतलाए जाते हैं।

मराठे सन् १७३६ ई० से मथुरा प्रयाग और काशी के तीर्थ स्थानों को सदैव के लिए अपने अधिकार में रखना चाहते थे। अत: वे सन् १७६१ ई० तक इन स्थानों से कुछ-न-कुछ कर 'चौथ' के नाम से बराबर वसूल करते रहे। सन् १७४४ ई० के लगभग पेशवा और राघो जी के बीच में यह संधि हुई कि प्रयाग से जो कुछ कर मिलेगा वह बालाजी का भाग समझा जायगा।

---

[1] प्रयाग नगर में रोशन ख़ां के बाग़ का चिह्न अब तक मौजूद है, जो करैला बाग़-वाली सड़क के पूर्व नई बस्ती में है। इस बाग़ में रोशन ख़ां की क़ब्र पत्थर की एक सुंदर दालान में बनी हुई है।

सन् १७४६ ई० में नवाब सफ़दर जंग की ओर से राजा नवल राय[1] प्रयाग के आमिल नियुक्त हुए। उन्हों ने नवाब के आज्ञानुसार फ़र्रुख़ाबाद के बंगश पठानों पर चढ़ाई की। वहां के नवाब महम्मद खां बंगश की विधवा मालिया बेगम उपनाम बीबी साहिबा ने संधि के लिए प्रार्थना की। नवल राय ने ५० लाख पर मामला तय किया। परंतु पीछे बीबी के साथियों ने यह रक़म देना स्वीकार नहीं किया। इस पर नवल राय ने फ़र्रुख़ाबाद पहुँच कर वहां के क़िले पर कब्ज़ा कर लिया और बीबी तथा उस के पांच बेटों को क़ैद कर के लड़कों को प्रयाग के क़िले में भेज दिया। लेकिन उन की मां को उस के साथियों ने नवल राय के किसी तरह जोड़-तोड़ लगाकर छुड़ा लिया। उस के पीछे फ़र्रुख़ाबाद के पठान महम्मद खां को अपना सरदार बनाकर नवल राय के इलाके में लूट-मार करने लगे। इस पर नवल राय अपनी सेना लेकर उन लोगों को दबाने के लिए आगे बढ़ा। ख़ुदागंज[2] में पहुँच कर लड़ाई छिड़ गई। नवल राय हाथी पर सवार होकर अपनी सेना का संचालन कर रहा था और शत्रुओं पर स्वयं तीर चला रहा था। अंत में उसी युद्ध में बड़ी वीरता के साथ काम आया[3]। यह घटना सन् १७५० ई० के अगस्त महीने के आरंभ में हुई थी। प्रयाग के

---

[1] हकीम नजमुलग़नी खां-कृत 'तारीख़-अवध' जिल्द अव्वल में लिखा है कि नवल राय (खरे) सकसेना (सैरुल मुताख़िरीन के अनुसार श्रीवास्तव) कायस्थ था और परगना इटावा का मौरूसी कानूनगो था। पहले-पहल सन् १७२० ई० में राजा रत्नचंद्र का ध्यान उस के गुणों की ओर आकर्षित हुआ। और फिर धीरे-धीरे वह अपनी योग्यता से सफ़दर जंग का बख़्शी (दीवान) हो गया। वह शासन-प्रबंध बड़ा दक्ष था और साथ ही सैनिक योग्यता भी अच्छी रखता था। उस ने अवध में पहुँच कर नवाब की सेना को बहुत सुधारा। २ हज़ार सवार उस के अधिकार में थे; इस के सिवाय बहुत से प्यादे और तोपख़ाना भी था। वह अपने सामने सब को हर महीने वेतन चुकवाता था। प्रत्येक गाँव की जमा वह स्वयं ख़ूब जाँच-पड़ताल करके तजवीज़ करता था और कभी उस से अधिक नहीं लेता था। प्रजा उस के न्याय से बहुत प्रसन्न थी, अलबत्ता जो ज़मींदार सिर उठाता उस को वह स्वयं पहुँच कर दंड देता था।

[2] फ़र्रुख़ाबाद से १७ मील पश्चिम और दक्षिण।

[3] एक मुसलमान कवि ने राजा की मृत्यु पर फ़ारसी भाषा में निम्नलिखित पद्य रचना की थी, जिस के अंतिम वाक्य 'ऐ नवल सुर्ख़' से अबजद के हिसाब से सन् ११६३ हिजरी निकलता है।

روان کرد خون یلان جو بلا جو - ادا کرد حق نمک موبمو -
زیزدان رسیدند حور ملک-بیارو بزو اے نول سرخ رو -

(रवांकर्द ख़ूने यलां जूबजू। अदा कर्द हक़्क़े नमक मूबमू।
ज़ियज़दां रसीदंद हूरो मलक। बयारो बरो ऐ नवल सुर्ख़ रू ॥)

क़िले के निकट, कीटगंज से मिला हुआ 'तालाब नवल राय' का महल्ला और फ़ैज़ाबाद तथा उन्नाव ज़िले में 'नवल गंज' इन्हीं नवल राय के बसाए हुए बतलाए जाते हैं।

सफ़दर ज़ंग को नवल राय की मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ और उन्हों ने पठानों पर क्रोधित होकर प्रयाग के क़िले में महम्मद ख़ां के पाँचों बेटों को बड़ी निर्दयता से मरवा डाला।

अहमद ख़ां इस लड़ाई से निपट कर कन्नौज तक बढ़ा, परंतु यह सुन कर कि बक़ाउल्ला ख़ां जो नवल राय स्थान में प्रयाग में नियुक्त हुआ था, तथा, अमीर ख़ां (पहले-वाले अमीर ख़ां उमदतुल मुल्क का भतीजा) और राय प्रतापनारायण इत्यादि सफ़दरजंग की ओर से उस से लड़ने के लिए आ रहे हैं, वह लखनऊ हो कर झूँसी चला आया। यहां प्रयाग के आमिल अली कुली ख़ां से उस की मुठ-भेड़ होगई। इतने में बक़ाउल्ला इत्यादि भी यहां पहुँच गए। परंतु यह देख कर कि अहमद ख़ां का नायब शादी ख़ां उस की सहायता के लिए आ रहा है, ये लोग क़िले में चले आए। अहमद ख़ां यहां क़िला लेने के लिए आया था। प्रतापगढ़ के राजा पृथ्वीपति सिंह भी उस की सहायता के लिए अपनी सेना लेकर आए। इतने में सफ़दरजंग भी पहुँच गया। तब अहमद ख़ां सामने उस पार चला गया और अपनी तोपों को पुरानी झूँसी के टीलों पर लगा दिया। क़िला घिर गया। दैवयोग से उन दिनों कोई पाँच हज़ार नागा साधुओं का एक अखाड़ा यहां त्रिवेणी में स्नान करने आया था। उस के महंत का नाम इंद्रगिरि था। उस ने अपने साथियों से क़िलेवालों की बड़ी सहायता की। बक़ाउल्ला ख़ां ने यमुना में अरैल की ओर एक पुल बनवाया था। क़िले में उसी रास्ते से दक्खिणवाले फाटक के द्वारा रसद आती थी। बनारस से राजा बलवंत सिंह अहमद ख़ां की सहायता के लिए झूँसी में पहुँचे और उक्त पुल पर अधिकार जमा लिया। तब बक़ा उल्ला

इस का भाव यह है कि "उस ने रणक्षेत्र में शत्रुओं के रक्त की नदियां बहा दीं और अपने स्वामी का नमक बाल-बाल चुकाया। स्वर्ग से देवदूत और अप्सराओं ने प्रशंसा के साथ उन का स्वागत किया।"

एक और कवि ने भाषा में इस प्रकार कहा थाः—

'नवल से मर्द ग़ाज़ी को पहुँच गोली से मारा है'

४ अगस्त १७५० ई० को आजमऊ में, जो कानपुर से ७ मील पूर्व है, गंगा के तट पर नवल राय के शव का दाह-कर्म हुआ और उन के लड़के-बाले लखनऊ भेज दिए गए।

प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में राय बाबूलाल का एक प्रसिद्ध घराना है। यह लोग खरौव्वां सकसेने हैं और अपने को राजा नवल राय का वंशज बतलाते हैं। इस में संदेह नहीं कि इन के पास नवल राय संबंधी अनेक चीज़ें मिली हैं। एक तो उस का रंगीन चित्र था, जिस को अब लखनऊ म्यूज़ियम ने ले लिया है। उस के लड़के खुशहाल राय के नाम से कुछ फ़रमान हैं तथा एक उस की जन्म-पत्री कुछ खंडित मिली है। ये सब काग़ज़ अब प्रयाग के म्यूनिसिपल म्युज़ियम में हैं। कुंडली से उस का जन्म-संवत् १७६६ मालूम होता है।

ख़ां क़िले से बाहर निकल कर अपनी सेना को मैदान में लाया। क़िला और शहर के बीच में घोर युद्ध हुआ। उस दिन राजा पृथ्वीपति सिंह की सहायता से अहमद ख़ां की जीत रही। उस को गंगा पार से मंसूर अली खां[1] से भी मदद मिलती थी। इस युद्ध में बक़ाउल्ला ख़ां के अच्छे-अच्छे योधा काम आए और वह स्वयं भी पुल की उस ओर भगा दिया गया। फिर भी किले पर अहमद ख़ां का अधिकार न हो सका। इस लड़ाई में प्रयाग की बड़ी दुर्दशा हुई। सारा शहर किले से ले कर ख़ुलदाबाद तक फूँका और लूटा गया और सैकड़ों मनुष्य क़ैदी बनाए गए। केवल शेख़ महम्मद अफ़ज़ल का दायरा और दरियाबाद बचा रहा, जहां पठानों ने पहले ही से क़ब्ज़ा कर लिया था।

सितंबर सन् १७५० ई० से ले कर कोई पाँच महीने तक किला घिरा रहा। अंत में अहमद ख़ां ने यह सुन कर कि उस के नायब शादी ख़ां की कोयल के पास मराठों से हार हो गई है, वह फ़र्रुख़ाबाद चला गया और उस का बेटा महमूद ख़ां भी झूँसी छोड़ कर उसी ओर कूच कर गया।

मुसलमानों के समय में प्रयाग का यह अंतिम युद्ध था। इस के पीछे फिर यहां और कोई उल्लेख योग्य लड़ाई नहीं हुई। दिल्ली में उस समय अहमदशाह तख़्त पर था।

सन् १७५८ ई० में महम्मद क़ुली ख़ां प्रयाग का हाकिम था। उस समय अवध में उस का चचेरा भाई शुजाउद्दौला 'सफ़दर जंग का बेटा' सूबेदार था और दिल्ली में 'आलमगीर सानी (द्वितीय) बादशाह था। उस ने अपने बेटे 'आली गौहर' को, जो पीछे 'शाह आलम' के नाम से बादशाह हुआ। बंगाल का सूबेदार बनाकर भेजा। परंतु वहां उस समय अंग्रेजों की सहायता से मुर्शिदाबाद के मीर जाफ़र का अधिकार हो गया था। इस लिए 'आली गौहर' ने अपनी सहायता के लिए अवध से शुजाउद्दौला को बुला भेजा। वह (शुजाउद्दौला) बड़ा चतुर और काट-पेंच का आदमी था। उस ने आकर प्रयाग के सूबेदार महम्मद क़ुली ख़ां से, बंगाल से लौटने के समय तक, यहां के क़िले में अपने बाल-बच्चों और नौकरों के रहने के लिए आज्ञा लेली; और तत्पश्चात् क़ुली खां को भी आली गौहर के साथ लेकर पटना चला गया। वहां पहुँच कर शुजाउद्दौला ने नजफ़ खां[2] को प्रयाग भेजा कि वह तुरंत क़ुली ख़ां के आदमियों को किले से बाहर निकाल कर उस की ओर से क़िले पर क़ब्ज़ा कर ले। क़ुली ख़ां को जब इस विश्वासघात का पता लगा, तो वह तुरंत प्रयाग को लौटा। परंतु रास्ते में काशी के राजा बलवंत सिंह[3] ने शुजाउद्दौला की आज्ञा से उस को घेर कर

---

[1] प्रयाग के ज़िले में सिंगरौर के निकट मंसूराबाद एक गाँव है, जहां मंसूर अली ख़ां के वंशज अब तक रहते हैं।

[2] नजफ़ ख़ां सफ़दर जंग के भाई मिर्ज़ा मुहिसन का साला था। उस को बचपन से क़ुली ख़ां ने बेटे के समान पाला था।

[3] किन्हीं-किन्हीं इतिहासों में बलवंत सिंह के स्थान में अवध के राजा बेनी बहादुर का नाम लिखा है।

पकड़ लिया और उस (शुजाउद्दौला) के पास भेज दिया। शुजाउद्दौला ने पहले तो कुछ दिनों तक कुली ख़ां को क़ैद रक्खा फिर अंत में उस को मरवा डाला। इस प्रकार सन् १७५६ ई० में प्रयाग का क़िला और सूबा शुजाउद्दौला के हाथ लगा।

उसी साल आलमगीर सानी दिल्ली में मारा गया। आली गौहर उस समय बंगाल में था। पिता के मरने की ख़बर सुन कर वह वहीं 'शाह आलम' के नाम से बादशाह बन बैठा। शुजाउद्दौला उस को अपनी मुट्ठी में किए हुए था। उस की सलाह से शाह आलम बंगाल और बिहार में अंग्रेज़ों से कई बार लड़ा और हारा। शुजाउद्दौला लग भग दो वर्ष तक शाह आलम को एक प्रकार से अपना क़ैदी बनाए इधर-उधर लिए घूमता फिरा। अंत में बकसर की लड़ाई में जो सन् १७६४ ई० में हुई, शुजाउद्दौला अंग्रेज़ों से हार कर भाग गया। अब शाहआलम की आँखें खुलीं। उस को अंग्रेज़ों के सैनिक-बल का अच्छी तरह अनुभव हो चुका था, अतः उस ने बिना किसी संकोच के अपने को उन के हवाले कर दिया। अंग्रेज़ों ने शाह आलम के आत्म-समर्पण पर उस का बड़ा सम्मान किया। सर राबर्ट फ़्लेचर साहब, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के एक उच्च श्रेणी के सैनिक अफ़सर थे, स्वयं बादशाह को लेकर प्रयाग आए। यहां का क़िला घेर लिया गया, परंतु थोड़ी-सी रोक-टोक के पश्चात् क़िलेदार ने स्वयं क़िला हवाले कर दिया। यहां पहुँच कर शाह आलम ने नियमपूर्वक अंग्रेज़ों से संधि करली, जिस के अनुसार बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी की सनद एक दरबार करके लार्ड क्लाइव को दी गई, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के उस समय गवर्नर थे। शाह आलम को बंगाल के नवाब मीर क़ासिम से जो २५ लाख रुपया सालाना कर मिलना निश्चित हुआ था, उस की वसूली का भार भी कंपनी ने अपने ऊपर ले लिया। इस के सिवा शाह आलम को कुछ नक़द रुपया भी नज़राने के नाम से मिला; और इलाहाबाद से लेकर कोड़ा तक के इलाक़े पर उस को अधिकार दे दिया गया[1]। बादशाह ख़ुसरू बाग़ में चैन के साथ अपने दिन काटने लगा और क़िले पर अंग्रेज़ों का अधिकार रहा।

उस समय शुजाउद्दौला इधर-उधर घूमता फिरा। जब अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने के लिए उस को सहायता नहीं मिली, तो वह भी अंत में लाचार होकर सन् १७६५ ई० में अंग्रेज़ों की शरण में आ गया। कहते हैं कि पिछली लड़ाई में १०-१२ वर्ष के दो अंग्रेज़ बालक उस के हाथ लग गए थे, जिन को उस ने बहुत सुख से रक्खा था। उन्हों ने शुजाउद्दौला को विश्वास दिलाया कि यदि तुम हमें सुरक्षित कंपनी के अधिकारियों के हवाले कर दोगे, तो अंग्रेज़ तुम को तुम्हारे सूबे पर फिर बहाल कर देंगे। अतः वह उन लड़कों को इस अवसर पर अपने साथ प्रयाग लाया और उन्हें लार्ड क्लाइव को सौंप दिया, जो उस समय विशेष-

---

[1] देखिए संधि-पत्र नं० २० की चौथी धारा जो इलाहाबाद में १६ अगस्त सन् १७६५ ई० को लिखी गई थी। यह इलाक़ा इलाहाबाद के ज़िले से लेकर कानपुर तक था।

तथा इसी लिए यहां आया था। क्लाइव ने नवाब का बड़ा सत्कार किया। और उसे उस के पुराने सूबा अवध और इलाहाबाद पर, सिवा उस भाग के जो शाह आलम को पहले दिया जा चुका था, फिर अधिकार दे दिया।

किन्हीं-किन्हीं इतिहासों में यह भी लिखा है कि १७६७ ई० में शुजाउद्दौला ने प्रयाग का क़िला, चुनार के क़िले के बदले में अंग्रेज़ों को दे दिया था। इस से यह मालूम होता है कि सन् १७६४ ई० में जब पहले-पहल अंग्रेज़ों ने प्रयाग के क़िले को घेर कर ले लिया था तो संधि होने पर फिर शुजाउद्दौला को दे दिया होगा।

मई सन् १७७१ ई० तक शाह आलम प्रयाग ही में रहा। इस के पीछे उस को दिल्ली पहुँच कर तख़्त पर बैठने की धुन समाई। इस मतलब के लिए उस ने अंग्रेज़ों की मर्ज़ी के विरुद्ध मराठों[1] से संधि कर ली, जिस का सार यह था कि यदि बादशाह १० लाख रुपया मराठों को देवे तो वे उस को सारे राज्य पर अधिकार दिला देंगे। निदान शाह आलम यहां से उठ कर दिल्ली चला गया और मराठों ने उस संधि के अनुसार प्रयाग पर अधिकार जमाना चाहा। परंतु यहां के आमिल मुनीरुद्दौला ने उन को अधिकार देने से इनकार कर दिया; और अंग्रेज़ों से सहायता माँगी। इस पर अंग्रेज़ों ने मराठों को रोका और प्रयाग से कोड़ा तक के इलाक़े पर, जो शाह आलम को दिया गया था, अधिकार कर लिया। पीछे सन् १७७३ ई० में अंग्रेज़ों ने यह इलाक़ा ५० लाख रुपए पर शुजाउद्दौला के हाथ बेच डाला।[2]

सन् १७७५ ई० में शुजाउद्दौला मर गया और उस की जगह उस का बेटा आसफ़ुद्दौला गद्दी पर बैठा। उस से और अंग्रेज़ों से २१ मई सन् १७७५ ई० को एक संधि हुई जिस में यह निश्चय हुआ कि २ लाख ६० हजार रु० महीना वह अंग्रेज़ों को, उस पलटन के निमित्त दिया करेगा, जो उस की रक्षा के लिए अवध में रक्खी जायगी।

सन् १७८७ ई० में कंपनी के तत्कालीन गवर्नर लार्ड कार्नवालिस और नवाब से लिखा-पढ़ी हुई, जिस के अनुसार उक्त रक़म बढ़ कर ५० लाख रुपया सालाना हो गई।

आसफ़ुद्दौला के समय की दी हुई अनेक माफ़ियां अब तक प्रयाग के ज़िले में चली जाती हैं। यहीं उन की पत्नी शम्शुन्निसा बेगम का देहांत हुआ था, जो उस से रुष्ट हो कर प्रयाग चली आई थी। पीछे उस का शव गाड़ने के लिए लखनऊ भेज दिया गया।

सन् १७९७ ई० में आसफ़ुद्दौला की मृत्यु हो गई। उस के उत्तराधिकारी नवाब सआदत अली ख़ां ने एक संधि-पत्र के द्वारा, जो २१ फरवरी सन् १७९८ ई० को लिखा गया, ऊपर की रक़म को बढ़ा कर ७६ लाख रुपया सालाना कर दिया, तथा प्रयाग का क़िला

---

[1] इंदौर के तुक्कोजी राव होलकर और ग्वालियर के महादजी सेंधिया से।

[2] देखिए ७ सितंबर १७७३ ई० का संधि-पत्र जो बनारस में लिखा गया था।

अंग्रेजों को दे दिया[१], परंतु यह रक़म सदा बाक़ी में रहा करती थी। इस लिए उक्त नवाब ने [२] १४ नवंबर सन् १८०१ ई० को अंग्रेज़ों के साथ लखनऊ में फिर एक संधि की, जिस के अनुसार इस सालाना रक़म और पिछली बाक़ी के बदले में प्रयाग का ज़िला और इलाक़ों के साथ, सदैव के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी को दे दिया गया। बस उसी समय से प्रयाग में मुसलमानों के शासन-काल का अंत हो गया।

---

[१] इस के पहले २० मार्च १७७२ ई० को एक संधि-पत्र लिखा गया था, जिस में यह निश्चय हुआ था कि प्रयाग के क़िले पर शुजाउद्दौला का अधिकार रहेगा। उस में कंपनी की पलटन नवाब की ओर से रहेगी; और जब नवाब को क़िले की आवश्यकता होगी तो सूचना देने पर १० दिन के भीतर क़िला ख़ाली कर दिया जायगा।

[२] यह संधि-पत्र वास्तव में १० नवंबर १८०१ ई० को लखनऊ में लिखा गया था, परंतु इस की अंतिम स्वीकृति अंग्रेज़ों की ओर से १४ नवंबर को बनारस में हुई थी। इस की सातवीं धारा में यह शर्त थी कि सन् १२०९ फ़सली के आरंभ अर्थात् २२ सितंबर १८०१ से इस इलाक़े पर कंपनी का अधिकार समझा जायगा।

चौथा अध्याय

प्रयाग अंग्रेज़ी राज्य में

जब प्रयाग में अंग्रेज़ों का अधिकार हुआ तो उस समय मार्क्विस अव् वेलेसली ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से भारत के गवर्नर-जनरल थे। हम पीछे बता आए हैं कि अकबर के समय में इलाहाबाद के अंतर्गत १० सरकारें (ज़िले) और १७७ परगने थे। परंतु नवंबर १८०१ ई० में जब यह सूबा अंग्रेज़ों को मिला तो इस में केवल ५ सरकारें थीं, जिन के परगनों की संख्या २६ थी। वे ५ सरकारें यों थीं—इलाहाबाद, कड़ा, मानिकपुर, भटघोरा (बारा) और कोड़ा। उस समय फ़तेहपुर-हँसवा भी इलाहाबाद ही में सम्मिलित था, परंतु परगना किवाई इस से पृथक् था।

सन् १८१६ में परगना किवाई अवध से लेकर प्रयाग के ज़िले में सम्मिलित किया गया; और १८२५ में सरकार ने कड़ा और कोड़ा, कुछ पुराने परगनों को लेकर एक पृथक् ज़िला 'फ़तेहपुर' का बनाया। तब से इस ज़िले में चौदह परगने रह गए जो अब तक हैं। नौ तहसीलों में बारा की तहसील अक्टूबर १९२५ में तोड़ कर करछना में मिला दी गई है। शेष तहसीलों के स्थान में केवल इतना परिवर्तन हुआ है कि तहसील मंझनपुर सन् १८४३ के लगभग तक 'पच्छिम सरीरा' में और तहसील सिराथू सन् १८६५ तक दारानगर में रही थी।

सन् १८४१ से १८६२ तक ज़िले की सीमा में इतना और हेर-फेर हुआ है कि कुछ गाँव परगना कड़ा से फ़तेहपुर में और खैरागढ़ से मिर्ज़ापुर के ज़िले में मिलाए गए हैं।

इलाहाबाद के सब से पहले कलक्टर मिस्टर ए० अहमूटी थे, जिन के नाम से 'मुट्ठीगंज' का मुहल्ला बसा है।

मार्च सन् १८२९ से डिविज़नल कमिश्नरी स्थापित हुई। मिस्टर राबर्ट बार्लो यहां के पहले कमिश्नर हुए थे।

अब यहां के अंग्रेज़ी-शासन-प्रबंध का कुछ इतिहास लिखा जाता है। अंग्रेज़ी राज्य पहले बंगाल से आरंभ हुआ था। इस लिए यहां का शासन भी पहले कुछ दिनों तक बंगाल ही के शासकों-द्वारा होता रहा। सन् १८३६ ई० में ४१ ज़िलों का एक अलग प्रांत 'पश्चिमोत्तर-देश' के नाम से बनाया गया[१]; और उस की देख-रेख के लिए प्रयाग में एक लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर[२] नियुक्त किया गया। परंतु एक साल पीछे राजधानी इलाहाबाद के स्थान में आगरा बना दी गई, और सन् १८५७ के बलवे तक वहीं रही। हाई कोर्ट सन् १८४३ तक यहां रहा, इस के पश्चात् आगरा चला गया; पीछे सन् १८६८ ई० में फिर प्रयाग में आ गया। 'बोर्ड अव् रेवेन्यू' सन् १८३१ में स्थापित हुआ और तब से वह बराबर यहीं रहा।

पहले प्रयाग की क्या अवस्था थी? इस का वर्णन हम कुछ पुराने यूरोपीय ग्रंथकारों तथा यात्रियों की पुस्तकों से उद्धृत करते हैं।

सन् १६६५ ई० में फ्रांस का एक प्रसिद्ध जौहरी टैवर्नियर प्रयाग में आया था। उस ने अपने विवरण में लिखा है—

"यह एक बड़ा नगर है, जो गंगा और यमुना के संगम पर बसा हुआ है। यहां गढ़े हुए पत्थर का एक सुंदर महल बना हुआ है, जिस में गवर्नर रहता है। यह हिंदुस्तान के बड़े हाकिमों में से है। ८ दिसंबर को मैं एक बड़ी नौका-द्वारा गंगा के पार उतरा, जिस के लिए गवर्नर के आज्ञा-पत्र को मुझे सवेरे से दोपहर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। नदी के दोनों ओर एक-एक घाट-दारोग़ा रहता है, जो किसी यात्री को बिना आज्ञा लिए जाने नहीं देता और यह भी देखता है कि किस प्रकार का माल-असबाब उन के पास है। प्रत्येक बड़े छकड़े की ४ रुपया और छोटे की १ रुपया चुंगी देनी पड़ती है। नाव का महसूल इस के अतिरिक्त है[३]।"

सन् १८१५ ई० के ईस्ट इंडिया कंपनी के गैज़ेटियर में लिखा है कि "उस समय यहां १० घरों में ६ कच्चे थे। शहर में कुछ ही ईंट की इमारतें थीं। अफ़ीम, शक्कर, नील और कपास यहां से देसावर को जाया करता था।"

सन् १८२४ में बिशप हेबर ने यहां का वर्णन इन शब्दों में किया है:—

"प्रयाग दो नैसर्गिक धाराओं के संगम के ऊपर त्रिकोण भूमि पर बसा हुआ है। इस की स्थिति बहुत ही अनुकूल स्थान पर है, जैसा कि भारत में किसी बड़े नगर के लिए

---

१ उस समय झाँसी और अवध के बारहों ज़िले इस प्रांत में नहीं थे, परंतु अजमेर, दिल्ली, रोहतक, गुरगाँव और हिसार इसी में सम्मिलित थे।

२ यहाँ के सब से पहले लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर सर सी० टी० मिटकाफ़ थे।

३ टैवर्नियर, 'ट्रैवेल्स इन इंडिया' जिल्द १, अध्याय ८, पृ० ११-११

होना चाहिए। इस का जल-वायु शुष्क और स्वास्थ्यवर्धक है। नगर के भीतर घर बहुत रद्दी और गलियां बड़ी बेढंगी हैं। अधिकांश बस्ती यमुना के किनारे पर है[1]।"

सन् १८२६ में मि० स्किनर ने यहां के माघ-मेले को देख कर इस प्रकार लिखा था :—

"यह एक धार्मिक मेला था, जो दो धाराओं के संगम पर एकत्रित हुआ था। वहां मुझे कोई वस्तु बिकती हुई नहीं मालूम हुई। केवल स्नान-ध्यान और पूजा-पाठ ही वहां का मुख्य कार्य-कलाप था। बहुत से तख़्त ८–१० फुट के लगभग चौकोर, जिन में ऊँचे-ऊँचे पाये लगे थे, पानी में (किनारे के निकट) रक्खे हुए थे। उन पर बड़ी-बड़ी छतरियां लगीं थीं, जिन के नीचे प्रायः लोग बैठ कर विश्राम करते थे। पंडे जो प्रत्येक यात्री के एक विलक्षण प्रकार के गुरु मालूम होते थे, मध्य में आसन जमाए हुए थे। वे अपनी जगह से हिलते न थे। उन के हाथ में मालायें थीं और वे अपने यजमानों की पारलौकिक कामनाओं की पूर्ति की व्यवस्था करते थे। यह एक बड़ा ही मनोरंजक दृश्य था। स्त्रियां त्योहार के धराऊ कपड़े पहने हुए थीं; और गुलाबी रंग की चादरें ओढ़े जन-समूह में दूर से दृष्टिगोचर होती थीं[2]।"

सन् १८३७ में राबर्ट साहब ने लिखा था :—

"प्रयाग का वर्तमान नगर विशेषतया क़िले के पश्चिम यमुना के किनारे बसा हुआ है। इस की स्थिति बहुत ही उत्तम है, परंतु बस्ती में घरों की दशा बड़ी हीन और शोक-जनक है[3]।"

सन् १८४५ में जर्मनी के एक यात्री केप्टन वान ओरली ने यहां के सिविल स्टेशन के विषय में लिखा था :—

"फ़ौजी और सिविल अफ़सरों के बँगलों और कोठियों से, जिन के इर्द-गिर्द सुंदर-सुंदर वाटिकाएं लगी हुई हैं, इस स्थान की बड़ी शोभा है। भारत में बहुत कम ऐसी जगहें होंगी, जहां ऐसी सुंदर, सुडौल और इस ढंग की इमारतें बनी हों। बड़ी-बड़ी चौड़ी सड़कें हैं, जिन के बीच-बीच में वृक्षों की पंक्तियां लगी हुई हैं। इन में कोई क़िला, कोई शहर और कोई अन्य प्रसिद्ध स्थान को चली गई है।"

मार्क ट्वइन ने भी सिविल स्टेशन के विषय में इस प्रकार लिखा था: —

"यह एक ऐसा नगर है, जिस में चौड़ी-चौड़ी छायादार सड़कें हैं; और बीच-बीच में पर्याप्त अंतर होने से बहुत ही सुंदर और चित्ताकर्षक हैं; और जिस में एक धनाढ्य

[1] बिशप हेबर, 'ट्रेवेल्स', जिल्द १, अध्याय १३, पृ० ३३

[2] स्किनर, 'एक्सकर्शन इन इंडिया', जिल्द २, पृ० २९३ (लंदन, १८३३)

[3] राबर्ट, 'सीन्स अव् हिंदुस्तान'।

सहृदय पुरुष के लिए, अवकाश के समय, सोचने-विचारने के लिए पर्याप्त सामग्री उपस्थित है। बँगले बड़े-बड़े अहातों के बीच में, सुंदर घने वृक्षों की छाया में एकांत में स्थित हैं, और उन में बड़े-बड़े चित्रकार तथा समृद्धशाली व्यापारी अपना कारोबार करते हैं। यहां नगर के लोग अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए सवारियों पर आते हैं।"

मिस्टर डब्ल्यू एस् केन का प्रयाग के विषय में कहना है—

"जिस भूमि की नोक पर प्रयाग उपस्थित है, वह एक ही उपजाऊ स्थान है। भारत में और कहीं ऐसे सुंदर वृक्ष और वाटिकाएं नहीं पाई जातीं। जाड़े भर गुलाब तथा अन्य प्रकार के फूल खूब खिलते हैं। यहां का सिविल स्टेशन अपनी चौड़ी-चौड़ी सड़कों, सुंदर छायादार रास्तों, अच्छे-अच्छे बँगलों, बड़े-बड़े चौरस अहातों और बगीचों के साथ कोई ६–७ वर्ग मील में फैला हुआ है।"[१]

सिपाही विद्रोह के समय यहां जो-जो मुख्य घटनाएं हुई थीं, अब उन का संक्षेप से उल्लेख किया जाता है।

सन् १८५७ में प्रयाग में गोरों की सेना बिल्कुल न थी। केवल एक देशी पल्टन न० ६ कर्नल सिमसन के कमांड में थी। इस के सिवा थोड़े से देशी तोपची थे। क़िले में भी इसी पल्टन (न० ६) के थोड़े से सिपाही नियुक्त थे।

जब अफ़सरों को अन्य स्थानों में विद्रोह फैलने का समाचार मालूम हुआ तो उन्हों ने तोपख़ाने के ६० गोरों और फ़ीरोज़पुर रेजीमेंट के २०० सिक्खों को तुरंत बुलाकर क़िले में ठहरा दिया।

१२ मई को मेरठ की कारतूस तोड़नेवाली ख़बर प्रयाग की जनता में पहुँची। उसी समय से नगर में बेचैनी फैल गई। बाज़ार में खाने-पीने की चीज़ों की दर बहुत बढ़ गई। रोज़ नाना प्रकार की गप्पें उड़ा करती थीं। बलवाइयों के मुखिया अपने साथियों को उत्तेजित कर रहे थे। परंतु अभी तक नगर में उपद्रव छिड़ा नहीं था। एक दिन कुछ नावें आटे से लदी हुई यमुना में जा रही थीं। किनारे पर उन्हों ने लंगर डाला। मजिस्ट्रेट ने नाववालों को बनियों के हाथ माल बेचने के लिए हुक्म दिया। इस पर बड़ा शोर मचा। सारा बाज़ार बंद हो गया और यह संदेह हुआ कि अब यहां भी जल्दी ही उपद्रव मचा चाहता है। शहर के बदमाशों को सिपाहियों के बिगड़ने का हाल मालूम न था, क्योंकि मजिस्ट्रेट ने इस बात के छिपाने के लिए बहुत प्रबंध कर रक्खा था। लेकिन एक दिन पलटन न० ६ के सिपाहियों ने दो मेवातियों को, जो लाइन में आए थे, छोड़ दिया। उन लोगों ने शहर के बदमाशों के बहकाने में बड़ा भाग लिया।

१९ मई को सर हेनरी लारेंस ने कुछ सवार प्रतापगढ़ से ज़िले के अधिकारियों की

---

[१] केन, 'पिक्चरेस्क इंडिया'।

सहायता के लिए भेजे। ये लोग ख़ज़ाना और जेल की रक्षा के लिए नियुक्त किए गए। उस समय यहां के ख़ज़ाने में तीस लाख रुपए के लगभग थे। उस को क़िले में भेजने के लिए गाड़ियां मँगवाई गईं। परंतु अधिकारी-गण बड़े असमंजस में थे। इधर पल्टन न० ६ के सिपाहियों के साथ भेजना उचित न समझा गया। उधर यह संदेह था कि क़िले में इतना रुपया देख कर सिक्खों के मुँह में कहीं पानी न भर आए। इतने में सर हेनरी लारेंस का तार आया कि सिक्खों का भी विश्वास न किया जाय; केवल गोरों की सेना से क़िले की रक्षा की जाय। इस पर ख़ज़ाना जहां-का-तहां ही रक्खा रहा, कहीं नहीं भेजा गया।

५ जून को कानपुर से जनरल ह्वीलर का तार आया कि सब यूरोपियन क़िले में रक्खे जाँय। इस पर वे सब, सिवा पल्टन न० ६ के अफ़सरों के, क़िले में चले गए। कुछ अंग्रेज़ी सौदागरों ने अपनी दूकानें न छोड़ीं। यहां की देशी पल्टन न० ६ के सिपाहियों पर पहले अफ़सरों को बहुत भरोसा था। परंतु ४ जून को जब यह ख़बर इलाहाबाद में पहुँची कि बनारस के सिक्ख रेजीमेंट न० ११ के कुछ सिपाही बिगड़ कर इधर आ रहे हैं, तो यहां की पल्टन की अवस्था भी डावाँडोल हो गई।

६ जून को दोपहर के पीछे एक परेड किया गया। उस में सिपाहियों को गवर्नर-जनरल की चिट्ठी पढ़ कर सुनाई गई, जिस में इन के चाल-चलन की प्रशंसा की गई थी। उस को सुन कर सिपाही बहुत प्रसन्न मालूम हुए।

उसी दिन शाम को इस पल्टन की एक कंपनी लेफ़्टनेंट हिक्स और हारवर्ड के कमांड में, जिन के साथ दो तोपें भी थीं, दारागंज में नाव के पुल की रक्षा के लिए भेजी गई, क्योंकि बनारस के बलवाइयों के आने का समाचार यहां पहले ही से पहुँच चुका था।

६ जून १८५७ ई०

९ बजे रात को जैसे ही तोप दगी, इन सिपाहियों ने एक आतशबाज़ी का बान (हवाई) छोड़ा। उस के जवाब में तुरंत वैसा ही बान छावनी से छूटा। बस उसी समय से विद्रोह आरंभ हो गया। दारागंज से दोनों तोपें ले कर ये लोग छावनी की ओर चल दिए। लेफ़्टनेंट हिक्स दो और अंग्रेज़ों के साथ विद्रोहियों की क़ैद में पड़ गए। परंतु अंधेरे में वे किसी तरह भाग कर गंगा के रास्ते से क़िले में पहुँच गए। लेफ़्टनेंट हारवर्ड घोड़ा दौड़ा कर 'आलोपी-बाग़' पहुँचे, जहां लेफ़्टनेंट एलेक्ज़ैन्डर अपनी सेना लिए पड़े थे। उन के सिपाही भी बिगड़ गए और अंत में वे मारे गए। लफ़्टनेंट हारवर्ड वहां से भाग कर किसी तरह क़िले में पहुँचे। वहां इस ख़बर के पहुँचते ही पहले सिक्ख अलग एक बैरिक में कर दिए गए थे। तत्पश्चात् पल्टन न० ६ के सिपाहियों को डरा कर उन से हथियार रखवा लिए गए, और वे क़िले से बाहर निकाल दिए गए।

उसी रात को छावनी में जो उस समय कर्नलगंज के उत्तर 'चाथम लाइन' में थी, कुछ अंग्रेज़ अफ़सर खाने को बैठे थे कि पल्टन में बिगुल बजा। बिगुल सुन कर ये लोग दौड़ पड़े परंतु वहां पहुँचने पर मारे गए। इन में से केवल तीन अंग्रेज़ किसी तरह

भाग कर क़िले में पहुँचे। इस के पश्चात् कई अंग्रेज़ अफ़सरों का वध हुआ। विद्रोहियों ने ख़ज़ाना लूटा और गंगा पार कर के फाफामऊ पहुँचे। उस समय उस के पश्चिम शहाबपुर में एक छोटा-सा क़िला था। संग्रामसिंह वहाँ का ज़मींदार था। उस ने बलवाइयों से ख़ज़ाने का रुपया लेकर रसीद दे दी, और उन लोगों को अपने यहां नौकर रख लिया।

इधर शहर के बदमाश उठे, जिन में अधिकांश छीतपुर और समदाबाद[1] के मेवाती थे। पहले उन्हों ने जेल का फाटक तोड़ा। उस में से लगभग तीन हज़ार क़ैदी निकल भागे। इन लोगों ने सिविल-स्टेशन, छावनी और शहर को ख़ूब लूटा और फूँका। अंग्रज़ों के सिवा बंगालियों और अन्य धनाढ्य लोगों पर भी हाथ साफ़ किए। दूसरे दिन पुलीस भी बिगड़ गई। सवेरे कोतवाली पर विद्रोहियों का हरा झंडा लहराने लगा। परगना चायल में मँहगाँव का एक मौलवी लियाक़त अली था। वह उधर के बलवाइयों का सरदार बना। उस ने ख़ुसरोबाग़ में आकर डेरा जमाया और अपने को दिल्ली के बादशाह का सूबेदार प्रसिद्ध किया। सारांश यह कि जिधर जिस की सींग समाई उसी ओर वह मुखिया बन कर लूट-मार करने लगा। कुछ दिनों तक ऐसा ही उपद्रव मचा रहा।

अंत में ११ जून को कर्नल नील बनारस से गोरों की कुछ सेना ले कर आए। १२ जून को उन्हों ने दारागंज ले लिया। १३ जून को झूँसी में बलवा मचा, जिस के दमन करने के लिए ज्वाइंट मजिस्ट्रेट मिस्टर विलक कुछ सिक्ख और गोरे सिपाही लेकर वहां गए। कीडगंज को भी उसी दिन सिक्ख और वालंटियरों ने अपने अधिकार में कर लिया। १५ जून को कीडगंज और मुट्ठीगंज पर पूरा कब्ज़ा हो गया और उक्त मौलवी तोप और बहुत सा सामान छोड़ कर भाग गया। १७ जून को ज़िला मजिस्ट्रेट मिस्टर कोर्ट ने कोतवाली ले ली, और दूसरे दिन सिविल स्टेशन, दरयाबाद, सदियापुर और रसूलपुर पर अधिकार हो गया। इस प्रकार शहर में जल्द ही शांति होगई। परंतु देहात की आग के बुझाने में कुछ दिन लगे।

सब से अधिक उपद्रव गंगापार हुआ। वहां विद्रोहियों के कई अड्डे थे। मिस्टर मेन, जो पहले बाँदा के कलक्टर थे, गंगापार में शांति स्थापित करने के लिए नियुक्त हुए। उन के पास थोड़ी सी सिक्खों की पैदल सेना और कुछ सवार थे। पहले वह पूर्व से बनारसवाली सड़क पर हनुमानगंज तक गए। फिर वहां से फूलपुर गए। वहां विद्रोहियों से उन की मुठभेड़ हुई। जनवरी सन् १८५८ ई० में ब्रिगेडियर केम्बल ने मनसैता नदी पर सलोन के नायब-नाज़िम को परास्त किया। इस पर उस के साथियों ने आकर सोराँव पर अधिकार कर लिया और फाफामऊ तक फैल गए। उधर जनरल फ़्रैंक जौनपुर से कुछ सेना ले कर आए

---

[1] ये गाँव वहां पर थे जहां अब अल्फ्रेड-पार्क (कंपनी बाग़) बना हुआ है। इन मेवातियों के वंशज अब अधिकांश अतरसुइया के उत्तर मीराँपुर, तुलसीपुर और रसूलपुर में रहते हैं।

और नसरतपुर में इन लोगों पर आक्रमण कर के उन्हें अवध की ओर भगाया। इतने में मिस्टर मेन सोराँव पहुँचे और उस पर उन्हों ने अधिकार कर लिया।

अंतर्वेद में बड़ी सड़क के किनारे के ज़मींदार और परगना अथरबन में डिढ़ावल के एक ज़मींदार ने अधिक उपद्रव किया। उस समय मंझनपुर में मुंसफ़ी थी। बाबू प्यारे मोहन बनरजी वहां के मुंसिफ़ थे, उन्हों ने बड़ी वीरता से इधर के विद्रोहियों से लड़ कर उन्हें परास्त किया। तब से उन को लोग 'फ़ाइटिंग मुंसिफ़' अर्थात् 'लड़ाकू मुंसिफ़' कहा करते थे। यमुनापार में इस उपद्रव का बहुत कम प्रभाव रहा। अंत में जुलाई सन् १८५८ ई० में देहात में भी शांति हो गई।

इस विद्रोह के समाप्त होने पर सरकार द्वारा विद्रोहियों को दंड भी ख़ूब दिया गया। शहर और गाँवों में ख़ूब धर-पकड़ हुई। बाग़ियों को प्राण-दंड दिया गया और उन की जायदादें ज़ब्त हुई। भले आदमियों के लिए यह बड़े संकट का समय था। गाँवों में कितने बेचारे धर-पकड़ के भय से घरबार छोड़ कर बाल-बच्चों को लिए हुए दिन दिन भर नालों और खेतों में छिपे रहते थे।

फिर मुख्य-मुख्य बलवाइयों के मुक़दमे सुनने के लिए कुछ अफ़सरों का एक कमीशन बैठा और छान-बीन के पश्चात् जो लोग दोषी पाए गए उन को उचित दंड दिया गया और उन की जायदादें ज़ब्त की गईं।

परंतु इस वृतांत से यह न समझना चाहिए कि सारा प्रयाग उस समय सरकार के विरुद्ध हो गया था। ऐसे विकट समय में यहां के बहुत से रईसों और सरकारी कर्मचारियों ने अपनी जान जोखिम में डालकर अनेक प्रकार से सरकार की सहायता की थी। बहुतों ने कितने अंग्रेज़ों और उन के बाल-बच्चों को बचाया। सरकारी पल्टनों को रसद पहुँचाई और तहसीलों में ख़ज़ाने की रक्षा की। पीछे सरकार ने भी उन की इस सेवा का उचित पुरस्कार दिया। बारा के लाल बनस्पति सिंह को ५,०००) और डैय्या के लाल तेजबल सिंह को ३०००) सालाना मालगुज़ारी का इलाक़ा और जीवन-पर्यंत 'राजा' की पदवी मिली। इसी प्रकार धोकरी के ठाकुर शिवपाल सिंह, तारडीह के ठाकुर आसापाल सिंह, फूलपुर के राय मानिकचंद, मऊ के शेख़ नसीरुद्दीन, आनापुर के बाबू शिवशंकर सिंह, उदहिन के पांडे शिवसहाय, बीरपुर के ठाकुर अयोध्या बख़्श सिंह, सराय आक़िल के ठाकुर ज़ालिम सिंह और शाहपुर के ठाकुर नथन सिंह, शहर में लाला मनोहरदास, लाला बाबूलाल कलवार और दारागंज के बड़ी कोठीवालों इत्यादि को इलाक़े और किन्हीं-किन्हीं को पदवियां भी सरकार से ख़ैरख़्वाही में मिलीं।

इस प्रकार यह उपद्रव प्रयाग में कोई सवा वर्ष के भीतर समाप्त हुआ; और इसी के साथ इस देश में ईस्ट इंडिया कंपनी के राज्याधिकार का भी अंत हो गया।

विद्रोह के समाप्त होने पर भारत के शासन-प्रबंध में बहुत-कुछ हेर-फेर हुआ। सन् १८५८ की पहली नवंबर को किले के पश्चिम यमुना किनारे उस स्थान पर जहां अब मिन्टो-पार्क बन गया है, तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड कैनिंग ने महारानी विक्टोरिया का वह प्रसिद्ध घोषणा-पत्र पढ़कर सुनाया, जिस का एक-एक शब्द दया, क्षमा और आशा से परिपूर्ण था। उस समय तक इस देश का राज्य-प्रबंध 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के हाथ में ठेके के रूप में था। इस घोषणा के साथ इस का सीधा संबंध इंग्लैण्ड के नरेशों के साथ हो गया।

लार्ड कैनिंग का संबंध प्रयाग से बहुत कुछ है। उन के नाम से यहां का नया सिविल स्टेशन बना जो कैनिंग-टाउन' से संक्षिप्त होकर अब 'कनिंगटन' कहलाता है। एक बड़ी लंबी-चौड़ी सड़क भी उन्हीं के नाम से सिविल लाइन के बीच से होकर निकली है। यहां की बड़ी-बड़ी अंग्रेज़ी दूकानें प्रायः इसी सड़क पर हैं।

सन् १८५८ ई० में प्रांतिक सरकार की राजधानी आगरे से उठ कर स्थायी रूप से फिर प्रयाग में आई। उसी के साथ गवर्नमेंट प्रेस भी वहां से आया। पहले जब तक उस की इमारत नहीं बनी थी, वह उस स्थान में रहा जहां पायोनियर-प्रेस रहा है। सन् १८७४ में जब प्रेस का मकान बन कर तैयार हुआ, तब वह उस में आया। यह इमारत तीन लाख पैंतालीस हज़ार रुपए की लागत से बनी थी। राजधानी होने पर प्रयाग में बहुत-सी सरकारी संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ। उन में से कुछ का इतिहास नीचे लिखा जाता है।

सन् १८५८ में चौक की वह इमारत बनी जिस में अब चुंगी का दफ़्तर है। चायल से सदर तहसील उठ कर पहले-पहल उसी में आई थी। सन् १८७३ में तहसील की वर्तमान इमारत कलेक्टरी के पास बनी। तब वह उठ कर उस में गई। इस के पीछे चुंगीवाले भवन में कोतवाली कुछ दिनों तक रही। कोतवाली का पुराना स्थान वही है जहां वह अब है। सन् १८७४ में म्युनीसिपेलिटी ने ७५,१६३ रुपए की लागत से नई कोतवाली बनवाई। तब यह इमारत ख़ाली हो गई, और इस में चुंगी घर के दफ़्तर इत्यादिक आ गए।

सन् १८६१ में कालविन-डिस्पेन्सरी बनी। सन् १८६८ में क्लबघर स्थापित हुआ। गवर्नमेंट प्रेस के पश्चिम, जो चार बड़ी-बड़ी ऊँची इमारतें एक ही तरह की बनी हुई हैं, वे सन् १८७० में १३ लाख रुपए की लागत से तैयार हुई थीं। पीछे जब हाई कोर्ट में जगह की तंगी हुई तो कई बार यह प्रश्न उठा कि हाईकोर्ट का नया भवन यहां बने या लखनऊ में? दोनों ओर से खूब खींचा-खींची हुई और कुछ दिनों तक समाचार-पत्रों में वाद-विवाद भी होता रहा। अंत में यही निश्चय हुआ कि हाई कोर्ट यहीं रहे। तब उस का नया वर्तमान भवन १५ लाख रुपए की लागत से बनवाया गया और २७ नवंबर सन् १६१६ को तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग द्वारा उस का उद्घाटन संस्कार हुआ।

सन् १८७० ई० में मेटिओरोलाजिकल अबज़रवेटरी अर्थात् शीतोष्ण-परीक्षक-वेध-शाला स्थापित हुई, जिस को यहां लोग 'हवाघर' कहते हैं।

ज़िले की कचहरियों में 'जजी' पहले यमुना के पुल के पास पश्चिम की ओर थी और

जिस इमारत में अब जजी है उस में पहले कुछ दिनों तक 'बोर्ड आव् रेवेन्यू' का दफ़्तर था। सन् १८७० में जब बोर्ड उठकर वर्तमान भवन में गया तब इस में जजी यमुना किनारे से उठ कर आ गई।

कलक्टरी का पुराना स्थान वही है, जहां वह अब है, परंतु उस की वर्तमान इमारत सन् १८८६ में बनी थी। उस बीच में जब यह बन रही थी, कलक्टरी कुछ दिनों तक नार्मल स्कूल वाली इमारत में और कुछ दिनों वर्तमान दीवानीवाले भवन में रही थी। उन दिनों दीवानी उठ कर प्रयाग स्टेशन के पूर्व कंकरवाली कोठी में चली गई थी।

पहले फूलपुर और मंझनपुर में भी मुंसफ़ियां थीं, परंतु ग़दर के पीछे तोड़ दी गईं।

कमिश्नरी पहले भरद्वाज के टीले पर थी। पीछे उठ कर वर्तमान स्थान में गई। उस का पुराना बँगला बहुत दिनों तक 'भरद्वाज बोर्डिंग हाउस' के नाम से म्योर सेंट्रल कालेज के विद्यार्थियों का निवास स्थान रहा। पीछे उस में आग लग जाने से वह स्थान ख़ाली हो गया। अब सन् १९२२ से म्युनीसिपेलिटी ने उस जगह 'जवाहर पार्क' के नाम से एक बाग़ लगवा दिया है। शिक्षा-विभाग की इमारतों का वर्णन उत्तरार्ध में लिखा जायगा।

अब ग़दर से इधर की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओं का उल्लेख किया जाता है—

सन् १८८८ में यहां पहले-पहल 'इंडियन-नेशनल-कांग्रेस' का अधिवेशन हुआ। उन दिनों यहां के एक मात्र नेता स्वर्गीय पंडित अयोध्यानाथ जी थे। वह बड़े दृढ़-प्रतिज्ञ और उत्साही पुरुष थे। उन्हों ने कांग्रेस के जन्म-काल ही से उस में अग्र भाग लेना आरंभ कर दिया था। उन दिनों राजनैतिक क्षेत्र में काम करना सुगम न था। कारण यह था कि एक ओर जनता उस में योग देने में संकोच करती थी, दूसरी ओर अधिकारी वर्ग की दृष्टि में वह आंदोलन नवीन होने के कारण संदेह की वस्तु थी। ऐसी प्रतिकूल अवस्था में पंडित जी ने प्रयाग में कांग्रेस को निमंत्रित किया, यद्यपि इस के लिए उन को बहुत-कुछ कष्ट उठाना पड़ा। यहां तक कि अधिवेशन करने के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिलता था। अंत में दरभंगा कैसल मिल गया, जिस में मिस्टर जार्ज यूल के सभापतित्व में यहां पहली बार कांग्रेस का जलसा हुआ। उस की स्वागत-कारिणी-समिति के सभापति स्वयं पंडित जी हुए थे। यह कांग्रेस की चौथी बैठक थी।

कहते हैं, पंडित मदनमोहन मालवीय जी के राजनैतिक गुरु पंडित अयोध्यानाथ जी ही थे। सन् १८९२ में ५२ वर्ष की अवस्था में पंडित जी का देहांत हो गया। उस के बहुत दिन पीछे कोई १५–१६ वर्ष हुए, उन की स्मृति में नगर में एक 'अयोध्यानाथ—हाई स्कूल' खुला था। परंतु लोगों की उदासीनता से शीघ्र ही बंद हो गया। फिर उस के पश्चात् यहां किसी का ध्यान उन का स्मारक स्थापित करने की ओर नहीं गया।

इस के पश्चात् सन् १८९२ में यहां दूसरी बार कांग्रेस की बैठक मिस्टर उमेशचंद्र बनरजी के सभापतित्व में उसी दरभंगा कैसल में हुई। अब की पंडित विश्वंभरनाथ जी वकील हाई कोर्ट स्वागताध्यक्ष हुए थे।

सन् १६१० में यहां तीसरी बार कांग्रेस का अधिवेशन क़िले के उत्तर मैदान में एक पंडाल में हुआ था, जिस के अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्न थे और पंडित सर सुंदरलाल जी ने स्वागत-समिति के सभापति का आसन ग्रहण किया था।

उसी समय यहां सरकार की ओर से एक महती प्रदर्शिनी भी हुई थी, जो प्रयाग के इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगी। उस के पहले भी सन् १८६४ में यहां एक प्रदर्शिनी का होना पाया जाता है, परंतु उस में और इस में आकाश-पाताल का अंतर था। यह प्रदर्शिनी इतनी बड़ी तैयारी और समारोह के साथ हुई थी कि इस को एक प्रांतिक प्रदर्शिनी के स्थान में *अखिल-भारतीय प्रदर्शिनी कहना अनुचित न होगा। यह विशाल प्रदर्शिनी क़िले के पश्चिम* यमुना किनारे लगभग २०० बीघा भूमि पर दिसंबर सन् १६१० से तीन महीने तक बराबर खुली रही थी। इस को लग-भग आठ लाख दर्शकों ने देखा और इस पर साढ़े इक्कीस लाख रुपए के लगभग व्यय हुए थे। भारतवर्ष में पहले-पहल इसी अवसर पर हवाई जहाज़ उड़ाए गए थे। इस प्रदर्शिनी के देखने के लिए इस देश के समस्त राजों-महाराजों और गण्य-मानों के अतिरिक्त अन्य देशों से भी बहुत लोग आए थे जिन में जर्मनी के युवराज भी थे।

उस समय सर जान हीवेट इस प्रांत के लेफ़्टनेंट गवर्नर थे। उन्हीं की प्रेरणा से यह प्रदर्शिनी यहां हुई थी। उन्हों ने इस को अनुपम बनाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी थी।

यह प्रदर्शिनी इतनी बड़ी थी कि इस का पूरा विवरण एक सैकड़ों पृष्ठ की मोटी पुस्तक में 'दि अफ़िशियल हैंडबुक अव् दि यू० पी० एग्ज़िबिशन' के नाम से प्रकाशित हुआ था, अतः उस का दिग्दर्शन मात्र भी इस पुस्तक में नहीं आ सकता। फिर भी पाठकों की जान-कारी के लिए केवल इतना लिखा जाता है कि इस में जो अद्भुत वस्तुएं प्रदर्शनार्थ संग्रहीत की गई थीं, उन को बड़े-बड़े १२ विभागों में श्रेणीबद्ध किया गया था।

पहला विभाग डाक और तार संबंधी रोचक वस्तुओं का था। दूसरे में अनेक प्रकार की ललित-कलाओं का संग्रह था। तीसरे में लकड़ी और पत्थर की कारीगरी थी। चौथे में चमड़े और काग़ज़ तथा अनेक प्रकार की हज़ारों अन्य वस्तुएं थीं। पांचवां विभाग देशी रियासतों की कारीगरी तथा वहां की प्राचीन वस्तुओं का था। छठवें में हर प्रकार की शिक्षा-संबंधी वस्तुएं तथा कुछ उत्तम हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकें थीं। सातवां स्त्रियों की कारीगरी का विभाग था। आठवें में स्वास्थ्य और चिकित्सा-संबंधी अस्त्र-शस्त्र तथा अनेक प्रकार की अन्य वस्तुएं थीं। नवां इंजीनियरिंग अर्थात् हर प्रकार के कला-कौशल का विभाग था। दसवें में हर प्रकार की बुनाई का काम होते हुए दिखाया गया था। ग्यारहवां कृषि और बारहवां वन-विभाग था। ये अंतिम दो विभाग सब से बड़े थे।

इन के अतिरिक्त दर्शकों के मनोरंजन के लिए आतशबाज़ी, पोलो, हाकी, कुश्ती, कसरत, बाक्सिंग (मुक्केबाज़ी), थियेटर, बायस्कोप और संगीत इत्यादि अनेक प्रकार के चुने हुए खेल-तमाशों का भी प्रबंध किया गया था, जिन में पूर्वीय-ऐतिहासिक दल (ग्रैंड ओरियंटल पेजेंट) इस देश के लिए एक नई चीज़ थी। इस दल के लोग मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक घट-

नाओं का प्रदर्शन करने के लिए पुराने वेष में दल बाँध कर निकलते हैं अथवा उन का स्वांग भर कर नाटक के रूप में वार्तालाप करते हैं। उस अवसर पर यहां महर्षि भरद्वाज के आश्रम में श्री रामचंद्र जी का प्रवेश, सम्राट् अशोक तथा श्रीहर्ष का दरबार, अकबर के दरबार में इंग्लैंड की रानी एलीज़बेथ के दूतों का आगमन, शाह आलम का लार्ड क्लाइब को बंगाल की दीवानी की सनद देना, और लार्ड कैनिंग द्वारा महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र सुनाने का दृश्य इस दल-द्वारा दिखाया गया था।

इस प्रदर्शिनी में सैकड़ों अस्थाई सुंदर-सुंदर भवन बनाए गए थे, जिन के समूह से वहां एक छोटा नया नगर-सा बसाया गया था। बीच में एक घंटाघर था, जिस का प्रतिरूप चौक का घंटा घर है। खेद है कि अब वे सुंदर भवन नहीं रहे, केवल उन के चित्र पुस्तकों में रह गए हैं, जिन में कुछ इस पुस्तक में दिए जाते हैं।

इस के पश्चात् यहां की मुख्य घटनाओं में सांप्रदायिक दंगे हैं, जिन का संक्षिप्त वृत्तांत नीचे लिखा जाता है—

सन् १६१७ में प्रयाग में दशहरा और मुहर्रम एक साथ पड़े। नवमी तक हिंदू और मुसलमानों के दल अपने-अपने नियत समय पर निकलते रहे। दसमी के दिन शाम को अतुरसुइया के आगे दोनों में झगड़ा हो गया। कई दिनों के बाद शांति स्थापित हुई।

इस के पीछे २४ अप्रैल १६२३ को करारी में शिया-सुन्नियों में लड़ाई हुई, जिस में बंदूकों के चलने से कुछ लोग मरे और घायल हुए थे।

दूसरे साल १६२४ में दशहरे के अवसर पर हिंदू-मुसलमानों में फिर दंगा हुआ जो लगभग एक सप्ताह तक रहा। इसी साल से, मसजिदों के सामने बाजे का प्रश्न उपस्थित होने से प्रयाग में दशहरा और भरत-मिलाप स्थगित हो गए[1] हैं।

इस के पश्चात् सन् १६२६ में प्रयाग में हिंदू-मुसलमानों में दो बार दंगे हुए। एक तो जून के महीने में जब बक़रीद के दिन झूँसी में झगड़ा हो जाने के कारण वहां से कुछ मुसलमानों की लाशें शहर में आई थीं। दूसरे १२ सितंबर को जब चौक में दधिकाँदो का दल निकला था।

प्रयाग में इधर लगभग बीस वर्षों में बहुत सी राजनीतिक आंदोलन-संबंधी घटनाएं भी हुई हैं। पर उन की चर्चा इस पुस्तक में अभी अपूर्ण रहेगी, क्योंकि उन का सिलसिला

---

[1] सन् १६३३ में ज़िलाधीश ने बिना किसी शर्त के दशहरा करने की आज्ञा देदी थी और तदनुसार कई दिनों तक मेला निकलता रहा, परंतु पीछे पुलिस ने यह सूचना दी कि शाम को साढ़े छः बजे तक दल निकल कर अपने स्थान पर लौट जाय। इस पर हिंदुओं ने पंचमी से मेला फिर बंद कर दिया।

अब तक कुछ न कुछ जारी है; और उन की कार्य-प्रणाली में समय-समय पर परिवर्तन भी होता रहता है। अतः इस प्रसंग को हम अगले इतिहासकारों के लिए छोड़ते हैं।

प्रयाग के भविष्य के विषय में एक बात अवश्य उल्लेखनीय जान पड़ती है, वह यह कि यद्यपि यह स्थान इस प्रांत की राजधानी सरकारी काग़ज़ों में अब तक लिखी चली आती है, पर वह नाम-मात्र ही के लिए जान पड़ती है। कारण यह है कि सर हारकोर्ट बटलर के समय में प्रांतिक कौंसिल का विशाल भवन प्रयाग के स्थान में लखनऊ में बनाना निश्चित हुआ। यद्यपि यहां के लोगों ने उस समय इस का घोर विरोध किया था। फिर धीरे-धीरे अनेक प्रांतिक दफ़्तर यहां से उठ कर लखनऊ चले गए, यहां तक कि अब कुल सेक्रेटेरियट भी लखनऊ चला गया है। आगे क्या होगा? भगवान जाने। पर यदि, जैसा कि लोगों का अनुभव है, ये रहे सहे दफ़्तर भी यहां से कुछ दिनों बाद चले गए तो इलाहाबाद की प्रतिष्ठा पर धक्का अवश्य लगेगा। परंतु इधर इलाहाबाद के महत्व को बढ़ानेवाली भी एक बात हुई है। वह है यहां से तीन चार मील की दूरी पर बमरौली में हवाई जहाज़ों के अड्डे की स्थापना। बमरौली साम्राज्य की एयर-लाइन पर स्थित है और हवाई जहाज़ों की उन्नति के साथ इस की उन्नति भी संभावित है।

दूसरा खंड

वर्तमान प्रयाग

पहला अध्याय

प्राकृतिक अवस्था

स्थिति

प्रयाग जिस का यवनानी नाम 'काली सोबरा', चीनी नाम 'पोलोइकिया' और अकबरी नाम 'इलाहाबास' वा 'इलाहाबाद है',[1] संयुक्त प्रांत की राजधानी है। इस का स्थान भूगोल पर २४·४७ और २५·४७ (उत्तर) अक्षांश और ८१·६ तथा ८२.२१ (पूर्व) देशांतर पर है। इस के ज़िले की लंबाई पूर्व-पश्चिम ७२ मील चौड़ाई उत्तर-दक्षिण अधिक-से-अधिक ६४ मील तथा क्षेत्रफल २८४७ वर्ग मील है।

सीमा

प्रयाग के ज़िले के उत्तर में रायबरेली, प्रतापगढ़ और जौनपुर के ज़िले, पश्चिम में फ़तेहपुर, दक्षिण में बाँदा तथा रीवां राज्य और पूर्व में मिर्ज़ापुर और बनारस-राज्य का 'भदोही' ज़िला है।

प्राकृतिक विभाग

गंगा और यमुना ने इस ज़िले के तीन नैसर्गिक विभाग कर दिए हैं जिन को 'गंगा-पार' 'जमुना-पार' और इन दोनों नदियों के बीच की भूमि को 'अंतर्वेद' अथवा 'दोआबा' कहते हैं। इन में से प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन नीचे किया जाता है।

अंतर्वेद का क्षेत्रफल ८१७ वर्ग मील है। उत्तरीय भाग और कुछ बीच की समतल भूमि का पानी बह कर गंगा में, और दक्षिणी भाग का जल ससुर-खदेरी और किनाई नाम की उपनदियों द्वारा जमुना में जाता है। बीच की भूमि कुछ पश्चिम की ओर ढलवान होती चली गई है। धरातल ऊँचा होने से कुँवों में पानी अधिक गहराई पर निकलता है। नदियों के निकट ५०-६० हाथ रस्सी पानी भरने के लिए लगती है। रबी (चैती फ़सिल) में

---

[1] यह बात बहुत कम लोग जानते होंगे कि 'इलाहाबाद' नाम के चार और स्थान पंजाब में शेख़ूपुरा, गुजरानवाला, लायलपुर और भावलपुर में हैं।

गेहूं और चना और खरीफ़ (अगहनी) में जुआर और बाजरा अधिक पैदा होता है। परंतु पश्चिम की ओर जुआर-बाजरा के स्थान में धान अधिक होता है और जब से नहर आ गई है चायल और अथरबन के परगने में गन्ना भी अधिक बोया जाने लगा है। नदियों के किनारे की भूमि बलुई और कँकरीली है। जमुना के किनारे रेंडी अधिक पैदा होती है।

गंगा-पार का क्षेत्रफल ८५३ वर्ग मील है। यह खंड ज़िले भर में सब से अधिक उपजाऊ है, क्योंकि यहां सिंचाई के लिए बहुत सुविधा है। तालाबों की संख्या अधिक है और कुँवों में पानी निकट है। आम और महुवे के वृक्ष बहुत हैं, और बस्तियां भी घनी और एक दूसरे के निकट हैं। भूमि अधिकांश समतल है, अलबत्ता उत्तर की ओर कुछ ढलवान है। उत्तर और पूर्व की नीची भूमि का जल पहले झीलों और तालाबों में एकत्र होता है, और फिर जो उन से बचता है, वह बरना[1] उपनदी-द्वारा भदोही होता हुआ गंगा में बह जाता है। परगना सिकंदरा का अतिरिक्त जल, मनसैता उपनदी-द्वारा परगना किवाईं के पश्चिमीय भाग और कुछ परगना महका बैरगिया नाला के द्वारा और सोराम तथा नवाब-गंज का अधिक जल बड़े-बड़े नालों से गंगा में पहुँचता है। उत्तरीय भाग में गन्ना, धान और सनई विशेषकर परगना सोराम में अधिक पैदा होती हैं। ऊसर भूमि भी कहीं-कहीं अधिक है।

जमुना-पार का क्षेत्रफल ११८७ वर्ग मील है। एक पहाड़ी पूर्व से आरंभ हो कर पर-गना खैरागढ़ को दो हिस्सों में बाँटती हुई, पश्चिम टोंस तक पहुँचती है और फिर उस के पार बारा के परगने में सीधी चली गई है। इस के दक्षिण की भूमि अधिक पथरीली है। बस्ती दूर-दूर है। फल के वृक्ष कम हैं। यह खंड अधिक उपजाऊ नहीं है, परंतु जहां-जहां काली मिट्टी है, जिस को वहां 'मार' कहते हैं, चना और गेहूं खूब पैदा होते हैं।

जमुना-पार में खैरागढ़ सब से बड़ा परगना है, जिस की तहसील मेजा में है। भौगो-लिक दृष्टि से इस के तीन भाग हैं। उक्त पहाड़ी के उत्तर गंगा के किनारे तक 'टप्पा चौरासी' और 'माँडा हिटार' कहलाता है। इस की भूमि और जगहों से अधिक उपजाऊ है। पहाड़ी के दक्षिण बेलन नदी तक एक बहुत बड़ा टुकड़ा है, जिस को 'टप्पा लापर' कहते हैं। यह खंड अधिक उजाड़ है। बुंदेलखंड के सदृश यहां के खेतों की मिट्टी 'मार' और 'मटियार' ज़्यादा है। शेष भूमि पथरीली है। इस के पूर्व का बरसाती जल नालों के द्वारा बेलन नदी में गिर जाता है और पश्चिमीय भाग का जल लपरी उपनदी में हो कर टोंस में पहुँचता है। इसी कारण इस को 'टप्पा लापर' कहते हैं। यहां सिंचाई का कोई साधन नहीं है। वर्षा के भरोसे किसान खेती करते हैं। अकाल का प्रभाव सब से पहले यहीं

---

[1] यह वही 'बरना' है जिस ने काशी पहुँच कर उस का नाम 'बारांसी' कर दिया है। यहां यह परगना सिकंदरा में 'गमरहटा' गाँव के एक झील से निकली है, जो फूलपुर से ११ मील उत्तर और पश्चिम है।

पड़ता है। खेतों के लगान की दर बहुत कम है। बेलन के दक्षिण 'टप्पा पाल' कहलाता है। सरकारी काग़ज़ों में इसी का नाम 'टप्पा बड़ोखर' है। इस की दक्षिणीय सीमा रीवां-राज्य से मिली हुई है। इस में जंगल और पहाड़ कुछ अधिक हैं। परंतु यह लापर से अधिक उपजाऊ है। सड़कों के अभाव से ऊँट और बैलों पर माल बाहर जाता है, परंतु बेलन में पुल न होने से बरसात में ऊँटों तथा बैलों का उतरना भी बिल्कुल बंद हो जाता है।

प्रयाग के ज़िले की भूमि (जमुना-पार छोड़ कर) पश्चिम से पूर्व को कुछ ढालू है, जिस का व्योरा इस प्रकार है—पश्चिमीय सीमा की भूमि समुद्रतल से ३४७ फ़ुट, प्रयाग नगर में ३१५ फ़ुट, और पूर्वीय सीमा पर २६३ फ़ुट ऊँची है।

धरातल

जमुना-पार का ढलवान दक्षिण से उत्तर की ओर है। सब से अधिक ऊँचाई 'कैमोर' पर्वत पर समुद्र से १२१८ फ़ुट और सब से कम टोंस नदी पर ३२० फ़ुट है।

कुँओं में कम-से-कम (परगना बारा, किवाई और मह में) १८ फ़ुट और अधिक-से-अधिक (परगना चायल में) ६० फ़ुट पर पानी मिलता है। अधिकांश पानी पृथ्वी से ३०-३५ फ़ुट नीचे मिलता है।

सब से बड़ी नदी इस ज़िले में गंगा है, जो पश्चिम से पूर्व को ७८ मील बह कर आगे बढ़ गई है। इस का जल वर्षा में २८० फ़ुट और गर्मी में २३७ फ़ुट समुद्र-तल से ऊपर रहता है।

नदी

दूसरी बड़ी नदी यमुना है। यह इस ज़िले में ६३ मील बह कर प्रयाग में गंगा में मिल गई है। इस का जल धरातल से ४६ फ़ुट से लेकर ६५ फ़ुट ऊपर चढ़ जाता है।

इन दोनों नदियों में कई बातों में बड़ा भेद है। गंगा गहरी कम है, परंतु उस के प्रवाह का वेग अधिक है। जल पाचक है, यद्यपि उस में कुछ-कुछ बालू मिली रहती है। विपरीत इस के यमुना अधिक गहरी और शांत है। इस का जल निर्मल है। देखने में कुछ नीला या हरा जान पड़ता है। जहां ये दोनों नदियां एक दूसरे से मिली हैं, वहां से कोसों तक उन के रंग में कुछ भेद बना रहता है।

तीसरी नदी टोंस है, जो रीवां राज्य के पहाड़ों से निकल कर दक्षिण की ओर से आई है, और इस ज़िले में ४० मील बह कर परगना खैरागढ़ को बारा और अरैल से अलग करती हुई सिरसा के निकट गंगा में मिल गई है। इस का जल भी पाचक है। इस में मगरमच्छ बहुत हैं। इस की मछलियों का चालान कलकत्ते तक जाता है। गर्मी के दिनों में जल कम होने से इस में बहुत जगह उतार हो जाता है।

चौथी नदी बेलन है। यह मिर्ज़ापुर के ज़िले से आकर परगना खैरागढ़ में ४५ मील बह कर खीरी के पश्चिम में टोंस में मिल गई है। जाड़े और गर्मी के दिनों में इस में भी बहुत जगह उतार हो जाता है।

इन के अतिरिक्त कई एक उप-नदियां हैं, जो केवल बरसात में बहती हैं। दोआब में

ऐसी उपनदी ससुर खदेरी, किनाई; गंगापार में मनसैता, बरनां, बैरगिया नाला, और जमुना-पार में लपरी हैं। ये बरसात का अतिरिक्त जल नदियों में पहुँचाती हैं।

नहर

१६०० ई० से इस ज़िले में गंगा की एक छोटी-सी नहर कानपुर से निकल कर आई है, जिस का नाम 'लोअर गैंजेज़ कैनाल' है। तहसील सिराथू, मंझनपुर और चायल में ४० मील चल कर ससुर खदेरी द्वारा इस का बचा हुआ जल यमुना में चला जाता है। २० हज़ार बीघे से अधिक इन तीनों तहसीलों में सिंचाई होती है।

जलाशय

इस के अतिरिक्त अकाल के दिनों में परगना बारा में कई ढलवान जगहों में बंद बाँधकर बरसाती पानी रोक दिया गया है। उन से भी लगभग ४००० बीघे की सिंचाई होती है। पहले ये जलाशय सरकार के प्रबंध में थे, परंतु पीछे ज़मींदारों के हाथ बेच दिए गए हैं, और तब से वही लोग किसानोंसे पानी का महसूल लेते हैं।

झील

इस ज़िले में सब में बड़ी झील परगना अथरबन में अलवारे की है, जिस का क्षेत्र-फल लगभग ५ वर्ग मील है। यद्यपि कुछ छोटी-मोटी झीलें गंगापार में भी हैं, परंतु उन में से अधिकांश का जल गर्मियों में सूख जाता है।

बन

जमुनापार, परगना खैरागढ़ के दक्षिणीय भाग टप्पा बड़ोखर में, पहाड़ियों के ऊपर और उन की तराई में कुछ ऐसे जंगल अवश्य हैं, जिन में हिंसक पशु रहते हैं। परंतु कोई ऐसे बड़े बन नहीं हैं, जिन का प्रबंध सरकार-द्वारा होता हो। दोआब और गंगा-पार में कोई बड़े बन नहीं हैं, कहीं-कहीं ढाक के वृक्षों के समूह अवश्य हैं।

पर्वत

इस ज़िले में पर्वतों का अस्तित्व जमुना-पार, खैरागढ़ और बारा के परगने में, पाया जाता है। ये कैमोर की छोटी-छोटी शाखाएं हैं, जिन की ऊँचाई अधिक नहीं है। अरैल के परगने में भीटा के निकट देवरिया और मनकुआर में कुछ पथरीली भूमि है। दोआब में केवल परगना अथरबन में, पभोसा में, एक छोटी-सी पहाड़ी है। शेष ज़िले भर में कहीं कोई पर्वत नहीं है।

मिट्टी

दोआब और गंगा-पार में ऊँचाई पर बलुआ; और ढलवान में 'मटियार', 'चाचर', 'दोमट' और 'सीगों' मिट्टी[1] अधिक पाई जाती है। 'मार' अधिकतर जमुना-पार में है, जो काले रंग की होती है। गंगा-पार में परगना किवाई में भी कहीं-कहीं इस के छोटे-छोटे टुकड़े पाए जाते हैं। दोआब में परगना

---

[1] पिछले बंदोबस्त में जो दोआब और गंगापार में हुआ है, इन मिट्टियों के नाम 'गोहान', 'मनका', 'हार' और 'चाचर' रक्खे गए हैं।

अथरबन के दक्षिणीय भाग की कुछ मिट्टी बुंदेलखंड से मिलती है। गंगा-पार और दोआब में कहीं-कहीं ऊसर के बड़े-बड़े टुकड़े हैं।

खान

जमुना-पार में परगना बारा में प्रतापपुर में इमारती पत्थर की पुरानी खान है। यहां का पत्थर कुछ लाल रंग का होता है। कुछ दिनों से शंकरगढ़ की खानों से सफ़ेद रंग का बहुत ही उत्तम पत्थर निकलने लगा है, जिसको 'शिवराजपुरी' कहते हैं। प्रयाग में आज कल इमारतों में यही पत्थर अधिकतर काम में लाया जाता है। परगना खैरागढ़ का पत्थर अधिकांश गिट्टी के काम में आता है। माँडा के निकट भी कुछ इमारती पत्थर निकलता है, परंतु शिवराजपुरी के सामने वह घटिया समझा जाता है।

दोआब और गंगापार में कंकर अधिक निकलता है, जो कुछ तो सड़कों में पड़ता है और कुछ फूँक कर चूना बनाया जाता है। गंगापार में हंड़िया के पूर्व कंकर के बड़े-बड़े टुकड़े निकलते हैं और कहीं-कहीं जहां वह कुछ दिनों खोदे नहीं जाते, पत्थर के रूप में परिणत हो रहे हैं।

पशु

जंगली पशुओं में भेड़िये और सूअर बड़े-बड़े नालों और नदियों के कछार में बहुधा पाए जाते हैं। तहसील सिराथू और गंगापार के सिवार में कहीं-कहीं नीलगायें भी देख पड़ती हैं। हिरन, चिकारा, साँभर, बारहसिंघा, तेंदुए और कहीं-कहीं चीते भी अधिकतर परगना खैरागढ़ और बारा के दक्षिणीय भाग में रहते हैं। परगना खैरागढ़ में नोनमिट्टी और बैठकवा के जंगलों में चीते का शिकार होता है।

पालतू पशुओं की एक विस्तृत सूची अलग दी जाती है, जिस में सन् १९१५ से १९३० तक की संख्या ५-५ वर्ष के अंतर से दिखाई गई है।

(देखिए आगे का पृष्ठ)

प्रयाग के ज़िले में कृषि-संबंधी तथा अन्य पालतू पशुओं की संख्या

ब्यौरा	सन् १९१५ में	सन् १९२० में	सन् १९२५ में	सन् १९३० में	आवश्यक सूचना
साँड़ }	३२२,२९१	१,०४६	१,२०७	८७६	
बैल }		३३५,८९१	३५०,३३४	३४३,६०४	
गाय	१८३,७५९	२०६,६४९	२०७,१८९	२०५,५४१	
बछड़े	२४३,०९८	१९८,५०२	१९८,८४५	२०६,४७०	
भैंसे (नर)	२६,००४	३१,५६४	२४,४५६	२२,६९७	
भैंसे (मादा)	१०४,२९३	११२,९२०	११७,४७८	१२०,४१२	
बच्चे	गाय के बछड़ों में सम्मिलित हैं	७६,९३३	८२,११९	८६,६००	
भेड़	१०४,७९३	११४,७९६	८५,८१७	१०६,४५३	
बकरी	२६६,५०९	१,३८,८७६	२८२,५६०	२३६,७९३	
घोड़ा	६,९८१	६,३०८	६,६१७	६,८९०	
घोड़ी	७,११२	६,५१८	६,६३०	७,४२८	
बच्चे	घोड़ा घोड़ी में सम्मिलित हैं।	१,६८४	१,५३१	२,१४६	
ख़च्चर	५१३	९३	२१०	११९	
ग.दहे	७,५६९	७,६०४	७,२२९	६,६५९	
ऊँट	१,०३९	१,३४८	२,०२६	२,२०२	

इस सूची से पता चलता है कि सन् १९१५ से बछड़ों और नर भैंसों में अधिक कमी हो गई है। घोड़ों और खच्चरों का भी यही हाल है। इसी प्रकार सन् १९३० में बैलों, गायों तथा बकरियों में बहुत कमी हुई है।

यमुनापार के दक्षिणीय भाग को छोड़ कर और कहीं भी इस ज़िले में पशुओं के चरने के लिए सुभीता नहीं है। परती और तालाबों की भूमि तक लगान की लालच से ज़मींदार असामियों को जुतवाते जाते हैं। यही कारण है कि गोचर-भूमि दिन-दिन कम हो रही है।

कुछ दिन पहले सरकार ने एक जाँच कराई थी[1] उस से विदित होता है कि इस ज़िले में हर महीने ५५ हज़ार भेड़-बकरे और १२ हज़ार गाय-बैल मारे जाते हैं। इन के अतिरिक्त उक्त जाँच से यह भी पता चलता है कि साल में लगभग डेढ़ लाख पशु इस ज़िले की तहसील सोराँव, फूलपुर, हँडिया तथा रीवां और बाँदा से बध होने के लिए बाहर जाते हैं। इस संख्या में यदि इस ज़िले की संख्या आधी समझी जाय तो ७५,००० साल होती है। इन सब कारणों से अब पशु पहले से कहीं अधिक मँहगे हो रहे हैं। इस समय शहर में १२) से ले कर १५) तक की एक अच्छी दुधार बकरी मिलती है। २०–२२ वर्ष पहले इसी दाम में एक बैल मिला करता था।[2] अब हल में चलने योग्य ५०) रुपए का मामूली बैल मिलता है, और गाड़ियों में बोझ खींचने के लिए सौ-सवासौ रुपए से कम का न मिलेगा।

गंगापार में बोझ ढोने के लिए अधिकांश ऊँटों से काम लिया जाता है, जिन का दाम आज कल ८०) से ले कर १००) रुपए तक है। लगभग यही भाव मामूली घोड़ों का भी समझना चाहिए। ऊँटों पर ८–१० मन बोझ लादा जाता है। २–३ सेर दूध देनेवाली गाय ३०)–४०); और ७–८ सेरवाली ५०)–६०) रुपए में मिलती है। ऐसी भैंस का दाम इस से ड्योढ़ा समझना चाहिए। इस ज़िले के गाय-बैल छोटे होते हैं। अच्छी नस्ल के पशु मेरठ और आगरे की ओर से व्यापारी ले कर आते हैं। यहां के लोग अधिकांश उन्हीं से लेते हैं। इसी प्रकार अच्छे घोड़े मकनपुर और बटेश्वर के मेले से लोग ख़रीद कर लाते हैं।

खेद है कि यहां के लोग स्वयं अच्छी नस्ल के पशु पैदा करने का उद्योग नहीं करते। यहां के बैल ४–५ मन से अधिक बोझ नहीं ले जा सकते और न गायें २–३ सेर से अधिक दूध देती हैं। अलबत्ता भैंसें गायों से लगभग दूना दूध देती हैं।

हिंसक जीव-जंतु

इस ज़िले में यमुना-पार के दक्षिणीय भाग में साँप, बिच्छू और बिसखोपड़े कुछ अधिक हैं, जो प्रायः पानी बरसने पर बरसात में बहुत निकलते हैं। अन्य स्थानों की सामान्य दशा है।

फलदार वृक्षों में आम, महुआ तथा अमरूद अधिक हैं। आम और महुआ की

---

[1] 'रिपोर्ट अन् दि इंडस्ट्रियल सर्वे अव् अलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट', १९२३

[2] 'डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, अलाहाबाद', १९०७

वृक्ष

लकड़ी इमारतों के भी काम में आती है। अन्य प्रकार की इमारती लकड़ियों में सब से अधिक नीम और उस के बाद शीशम है। परगना बारा में बबूल के पेड़ अधिक हैं।

जल-वायु

प्रयाग एक उष्ण-प्रधान ज़िला है। गर्मी के दिनों में प्रायः झाँसी और आगरे से इस का मुक़ाबला रहा करता है। यहां का जल-वायु शुष्क है, इस लिए स्वास्थ्य के लिए हितकर है। मोटे हिसाब से यहां ४ महीने जाड़ा, ४ महीने गर्मी और ४ महीने बरसात के माने जाते हैं, परंतु वर्षा के महीने भी गर्मी ही के अंतर्गत हैं। जिस दिन पानी नहीं बरसता, धूप कड़ी होती है और गर्मी असह्य हो जाती है। उन दिनों पुरवा हवा चलती है। पानी ठंढा नहीं होता। पसीना अधिक निकलता है। जेठ और असाढ़ यहां प्रचंड गर्मी के दिन हैं। उन दिनों १०-११ बजे से भयंकर लू चलने लगती है, जो कभी-कभी आधी रात तक रहती है। परंतु वर्षा आरंभ होने पर वही हवा बदल कर ठंढी हो जाती है। जेठ के महीने में प्रायः एक-दो आँधियां पश्चिम की ओर से बड़े ज़ोर की आ जाती हैं, जिन के पीछे कुछ बूंदें भी पड़ जाती हैं।

मई के महीने में थरमामीटर का औसत ६४.५ रहता है। कभी-कभी ११७ तक पहुँच जाता है। ११३ से ११५ तक तो कई बार पहुँच जाता है। एक बार १६ जून सन् १८७८ को ११६.८ तक पहुँच गया था। जाड़ा प्रायः विजयादशमी से रात को कुछ-कुछ मालूम होने लगता है। पूस का महीना यहां के हेमंत ऋतु का यौवन-काल है। उन दिनों थरमामीटर का पारा प्रायः ६०·६ तक रहता है, और कम-से-कम ३६·६ तक गिर जाता है। कहीं-कहीं जहां तरी अधिक होती है, पाला भी पड़ जाता है, जिस से मटर और अरहर की फ़स्ल को विशेष हानि पहुँचती है। गर्मी के पिछले २० वर्ष का माध्यम मुख्य-मुख्य महीनों का इस प्रकार है—

जनवरी	मई	जुलाई	नवंबर
६१·१	६३·२	८५·६	६६·४

साल भर का माध्यम ७५·३, सब से अधिक ११७ और सब से कम ३६·६ है। सब से अधिक जाड़ा और गर्मी यमुना-पार के पहाड़ी स्थानों में होती है।

वर्षा

ऊपर बताया जा चुका है कि यहां ४ महीने बरसात के माने जाते हैं, परंतु वास्तव में आधे असाढ़ से आधे भादों तक अच्छी वर्षा होती है। फिर इस के पश्चात् आधे कुँवार अथवा बिजयादशमी तक कहीं-कहीं हल्की वर्षा हो जाती है। बरसात के पश्चात् पूस, माघ और कभी-कभी फागुन में कुछ वर्षा होती है, जिस को महावट कहते हैं। जहां सिंचाई के साधन नहीं हैं, वहां इस वर्षा से रबी की फ़स्ल को बहुत लाभ पहुँचता है। परंतु इन्हीं दिनों कहीं-कहीं ओले भी गिर जाते हैं, वे यदि बड़े हुए और फ़स्ल तैयार हुई तो उन से हानि पहुँच जाती है। इस ज़िले में पहले साल भर की वर्षा का माध्यम ३६ इंच से कुछ ऊपर था, परंतु अब घट कर ३७ इंच से कुछ अधिक रह गया है, जिस का १० वर्ष का ब्योरा एक नक़्शे के द्वारा अलग दिखाया जाता है।

प्रयाग ज़िले की १० वर्ष की वर्षा

वर्ष	अप्रैल से अगस्त तक			सितंबर से अक्तूबर तक			नवंबर से मार्च तक			कुल		
	कितना बरसना चाहिए था	कितना बरसा	कितने दिन बरसा	कितना बरसना चाहिए था	कितना बरसा	कितने दिन बरसा	कितना बरसना चाहिए था	कितना बरसा	कितने दिन बरसा	कितना बरसना चाहिए था	कितना बरसा	कितने दिन बरसा
	इंच	इंच		इंच	इंच		इंच	इंच		इंच	इंच	
१९१८—१९	२६'९३	१९'८९	२९	८'५१	३'०४	४	१'८४	३'३६	६	३७'२८	२६'२९	३९
१९१९—२०	,,	२५'५८	३३	,,	८'५६	१०	,,	०'६५	२	३७'२८	३४'७९	४५
१९२०—२१	,,	३०'०६	३२	,,	२'४३	४	,,	१'६३	३	...	३४'१२	३९
१९२१—२२	...	२४'०२	३२	,,	६'२२	११	,,	१'४०	२	...	३१'६४	४५
१९२२—२३	...	३८'२१	३८	,,	१०'१८	१३	,,	१'३१	३	...	४९'७०	५४
१९२३—२४	...	२७'५८	३०	,,	८'८२	७	,,	१'२५	३	...	३७'६५	४०
१९२४—२५	२७'१३	३१'७७	३६	८'४१	७'४५	११	१'६८	०'५३	१	३७'२२	३९'७५	४८
१९२५—२६	...	३३'५९	३७	...	१७'००	९	..	२'२६	५	...	५२'८५	५१
१९२६—२७	...	२१'०९	३०	...	१४'००	१७	...	२'१०	६	..	३७'१९	५३
१९२७—२८	...	२४'६४	३२	..	९'१७	८	...	७'४८	११	...	४०'६५	५१

पाठकों की जानकारी के लिए कुछ पिछले वर्षों की अतिवृष्टि और अल्प-वृष्टि का ब्यौरा भी नीचे दिया जाता है:—

अति-वृष्टि के साल

सन् ई०	कितनी वर्षा हुई	विशेष सूचना
१८६७	५०·२६ इंच	
१८७०	५४·६२ "	सब से अधिक परगना बारा में ६६·८ इंच वर्षा हुई थी।
१८६३	५२·३५ "	अरैल और खैरागढ़ के परगने में अधिक पानी बरसा था।
१८६४	६७·०१ "	दोआबा और फूलपुर में ७६·२५ इंच बरसा था।
१८६८	५२·२७ "	
१६२५	५२·८५ "	

अल्प-वृष्टिवाले साल

१८६४	१६·८२	सब से कम तहसील सिराथू में ६·७ इंच बरसा था।
१८६८	२५·२६	
१८७७	१६·७	
१८८०	१८·१७	मंझनपुर में ११·४ इंच वर्षा हुई थी।
१८६६	२०·७८	
१६०७	३०·०७	सब से कम बारा और मंझन पुर में वर्षा हुई थी।

बाढ़

प्रयाग में एक तो गंगा का क्षेत्र एक मील से कुछ अधिक चौड़ा है, दूसरे जमुना का संगम होने के कारण यदि इन में से किसी एक नदी में बाढ़ आ जाती है तो उस का अतिरिक्त जल दूसरी में समा जाता है। तीसरे क़िले से लेकर बघाड़ा तक ऊँचा बंद होने से, जो अकबर के समय का बना हुआ बतलाया जाता है, साधारण बाढ़ का प्रभाव नगर पर बहुत कम पड़ता है। फिर भी कभी-कभी असाधारण बाढ़ के आ जाने से नगर में पानी घुस आता है, और सैकड़ों कच्चे घर गिर जाते हैं।

ऐसी पहली बाढ़, जिस का उल्लेख मिलता है, सन् १८७५ ई० की है, जो गंगा और यमुना में एक साथ ही आ गई थी। उस साल ३ अगस्त को यहां समुद्र के धरातल से २६० फ़ुट तक जल ऊपर चढ़ आया था। दारागंज के निकट बंद के ऊपर से पानी इधर बह आने के कारण कीटगंज से लेकर भरद्वाज की तराई तक पानी भर गया था। दारागंज एक अलग टापू मालूम होता था। दो दिनों तक कचहरियां बंद रहीं। सरकार ने बड़ी कठिनाई से पलटन के सिपाहियों को लगा कर बंद ऊँचा करा के जल को रोका था।

इस के पश्चात् सन् १६१६ में जमुना में बाढ़ आई थी। उस साल १ सितंबर को २८७ फ़ुट तक पानी ऊँचा हो गया था। टकर साहब के पुल से बलुआघाट तक नाव चलती थी।

फिर १६२३ में बाढ़ आई, जिस में यहां लगभग २७६ फ़ुट तक पानी बढ़ा था।

अंतिम बार २६ अगस्त १६३४ में २८२·७५ फुट पानी बढ़ा था।

अकाल और मँहगी अंग्रेज़ी राज्य से पहले एक बड़ा अकाल, जिस का उल्लेख पुस्तकों में मिलता है, सन् १७८३–८४ ई० में पड़ा था। उस समय संवत् १८४० बिक्रमी था, इस लिए वह 'चालीसा अकाल' के नाम से प्रसिद्ध है।

दूसरा अकाल अंग्रेज़ी राज्य के आरंभ में सन् १८०३–४ में पड़ा था। सरकार की ओर से यह प्रबंध किया गया था कि बाहर से यहां अन्न लानेवालों को १०० मन पीछे २२-२३ रुपए सहायता के रूप में दिए जाते थे। लगभग १½ लाख रुपए की मालगुज़ारी भी माफ़ हुई थी।

इस के पश्चात् सन् १८१६ में कुछ मँहगी हुई, परंतु उस में कोई विशेष बात उल्लेखनीय नहीं है। अलबत्ता उस के पीछे सन् १८३७–३८ में दोआब और जमुना-पार में जो मँहगी पड़ी थी, उस में कई जगह लूट-मार हुई, यद्यपि उस समय रुपए का १७½ सेर अनाज बिकता था।

फिर सन् १८६०–६१ और १८६५ में मँहगी हुई थी, जिस का प्रभाव अधिकतर यमुना-पार ही में रहा था।

इस के पीछे सन् १८६८ तथा १८७३ और १८७७ में केवल मेजा और बारा में अकाल पड़े थे, जिन में मुहताजखाने खोले गए और श्रमजीवियों की सहायता के लिए कुछ काम जारी हुए थे।

इस के बाद सन् १८६६ में बहुत बड़ा अकाल पड़ा, जिस का प्रभाव तमाम ज़िले पर था। उस साल जून से सितंबर तक केवल २०·३४ इंच वर्षा हुई थी। कई जगह मुहताज-ख़ाने खोले गए और मज़दूरों के लिए इमदादी काम जारी हुए थे, जिन में १½ लाख से ऊपर लोग काम करते थे। शहर और देहात में बहुतेरे लोगों को ख़ैरात बाँटी गई थी। इस काम में अन्यान्य धनाढ्य लोगों ने भी सरकार की सहायता की थी। इतना प्रबंध होने पर भी बेचारे यमुना-पार के लोगों की बड़ी दुर्दशा हुई थी।

मेजा के दक्खिणी भाग (कोराँव) में एक बड़ा झुंड रीवां की ओर से काम करने के लिए आया था। संभवतः मटर तथा अन्य प्रकार के मोटे अनाज का कच्चा-पक्का भोजन खाने के कारण उन लोगों में एकाएक बड़े ज़ोर का हैज़ा फूट पड़ा। वे लोग घबड़ा कर चारों ओर भाग निकले, जिस का परिणाम यह हुआ कि बहुत जगह यह बीमारी फैल गई और हज़ारों आदमी बात-की बात में काल के गाल में जा पहुँचे। उस साल ७८ हज़ार रुपए से ऊपर मालगुज़ारी माफ़ हुई थी।

इस के उपरांत सन् १६०७ में अकाल पड़ा। इस का भी प्रभाव मेजा और बारा में अधिक रहा। कई एक इमदादी काम जारी हुए, मुहताजख़ाने खोले गए ख़ैरात बाँटी गई, लोगों को पहनने को कपड़े भी दिए गए, जिस में कुछ निज के लोगों ने भी धन से सहायता दी थी। सरकार ने ३ लाख रुपया के लगभग मालगुज़ारी माफ़ की थी। पशुओं के

लिए हजारों मन चारा बाहर से मँगाया गया, फिर भी १० हज़ार से ऊपर पशु लोगों ने चारे की कमी से बेच डाले और ३½ हज़ार के ऊपर मर गए।

स्वास्थ्य

संयुक्त-प्रांत में प्रयाग और उस का ज़िला सामान्य-रूप से एक स्वास्थ्यप्रद स्थान समझा जाता है। परंतु गंगापार में जहां झील और तालाब अधिक हैं तथा यमुना-पार के परगना खैरागढ़ और बारा में जहां मार मिट्टी पाई जाती है, कुंवार के महीने से मलेरिया बुख़ार फैल जाता है, जो यदि ठहर गया तो कभी-कभी 'चौथिया' के रूप में परिवर्तित हो जाता है और फिर बहुत दिनों बाद छूटता है। ऐसे रोगियों की बहुधा तिल्ली भी बढ़ जाया करती है।

इधर कोई २० वर्ष से लोगों को अंड-वृद्धि की बीमारी अधिक होने लगी है और स्त्रियों को हिस्टेरिया और श्वेत प्रदर अधिक होता है।

सन् १८९९ में पहले-पहल इस ज़िले में क़स्बा मऊ-आयमा में प्लेग फैला। वहां के बहुत से जुलाहे बंबई में नौकर थे। उन्हीं के द्वारा यह रोग यहां आया था। उस समय सरकार ने उस के दमन करने के लिए बहुत उद्योग किया, परंतु सब उपाय निष्फल हुए। उस के थोड़े ही दिनों पीछे शहर में यह रोग फूट पड़ा; और अब तो प्रायः हर साल ज़िले के किसी-न-किसी भाग में फैल जाया करता है।

चेचक और हैज़ा पुरानी बीमारियां हैं। कभी-कभी उन का भी प्रकोप हो जाया करता है।

सन् १९२० से १९२९ तक की जन्म और मृत्यु की एक-एक विस्तृत सूची और उन के रेखाचित्र दिए जाते हैं, जिन से पाठकों को विदित होगा कि प्रत्येक रोग से कितने लोग मरे और कितने पैदा हुए?
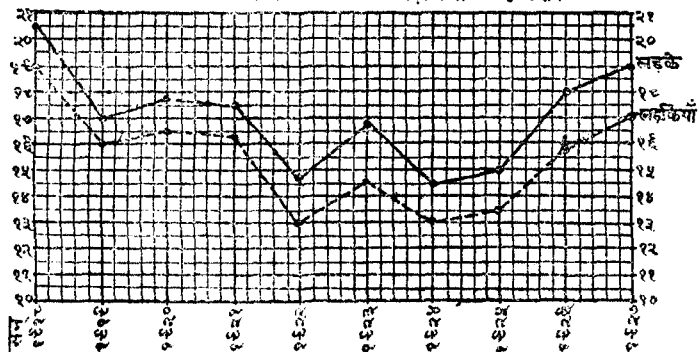
सन्	जन-संख्या सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार			जन्म-संख्या			जन्म-संख्या १०० की आबादी में			१०० लड़कियों के पीछे लड़कों की जन्म-संख्या	१००० की जन-संख्या में मृत्यु की अपेक्षा कितने अधिक जन्मे	पिछले ५ वर्षों में जन्म का मध्यम १००० की आबादी में।		
	पुरुष	स्त्री	कुल	लड़का	लड़की	कुल	लड़का	लड़की	कुल			लड़का	लड़की	कुल
१९२०	७४४,३८२	७२२,७५४	१४,६७,१३६	२६,०६३	२३,९६९	५०,०३२	१७'७६	१६'३४	३४'१०	१०८'७४	२'७८	२०'८५	१९'२८	४०'१३
१९२१				२४,८४४	२२,९५२	४७,७९६	१७'६९	१६'३४	३४'०३	१०८'२४	'०२	२०'१३	१८'६० क	३८'७३
१९२२				२०,६०२	१८,३२४	३८,९२६	१४'६७	१३'०५	२७'७२	११२'४८	२'४१	१९'२०	१७'७४	३६'९४
१९२३				२३,५९१	२०,५४४	४४,१३५	१६'७९	१४'६३	३१'४२	११४'८४	८'३२	१७'५२	१६'०३	३३'५५
१९२४				२०,२७३	१८,१४२	३८,४१५	१४'४३	१२'९२	२७'३५	१११'७५	१'२६	१६'७७	१५'१८	३१'९५
१९२५	७२२,१८८	६८२,२५७	१,४०४,४४५	२१,१३८	१८,८८९	४०,०२७	१५'०५	१३'३८	२८'४३	१११'९१	९'१०	१६'२७	१४'६६	३०'९३
१९२६				२४,९४५	२२,०७५	४७,०२०	१७'७६	१५'७२	३३'४८	११३'००	१३'९८	१५'७३	१४'०७	२९' ०
१९२७				२६,७७४	२३,६१०	५०,३८४	१९'०६	१६'८१	३५'८७	११३.४०	१५'७४	१५'७४	१३'९५	२९'६९
१९२८				२४,५२३	२२,०५५	४६,५७८	१७'४६	१५'७०	३३'१६	१११'१९	१३'९९	१६'६२	१४'७१	३१'३३
१९२९				२२,७७४	१९,९४५	४२,७१९	१६'२२	१४'२०	३०'४२	११४'१९	१२'०३	१६'७५	१४'९२	३१'६७

मृत्यु की संख्या १००० की आबादी पर
९०
८०
७०
६०
५०
४०
३०
२०
१०
सन् १९१८
१९१९
१९२०
१९२१
१९२२
१९२३
१९२४
१९२५
१९२६
१९२७

सन्	औसत आबादी का प्रति मील	मृत्यु-संख्या			१०० स्त्रियों की मृत्यु के पीछे पुरुषों की मृत्यु संख्या	१००० की आबादी पर मृत्यु की संख्या											पिछले ५ वर्षों में १००० की आबादी पर मृत्यु की संख्या			१००० की आबादी पर मृत्यु की संख्या			
						निम्न कारणों से								योग									
		पुरुष	स्त्री	कुल		हैज़ा	चेचक	प्लेग	ज्वर	उदर रोग	श्वास के रोग	आघात	अन्य कारण	पुरुष	स्त्री	कुल	पुरुष	स्त्री	कुल	हिन्दुओं में	मुसलमानों में	ईसाइयों में	अन्य लोगों में
१९२०	५१३	२७,९६१	२६,१५४	५४,११५	१०७	'०५	१४	'८३	२६'७७	'२८	१'२६	'७१	६'८४	२७'५९	२६'१९	२६'८८	४४'५७	४०'०१	४२'२९	२७'९३	३३'४	४'२५	...
१९२१		२५,३३३	२२,४९०	४७,८२३	११३	'३९	'१६	'८४	२३'१२	'२३	१'१२	'६१	७'५२	३५'०८	३२'९६	३४'०५	४६'७६	४६'१७	४६'४६	३४'०३	३५'४३	८'५८	...
१९२२		१९,४६५	१६,०८३	३५,५४८	१२१	'०१	'०४	'१३	१८'६५	'१७	'८८	'४४	४'९८	२६'९५	२३'५७	२५'३१	४७'८१	४७'१०	४७'४६	२५'५०	२५'०२	४'८०	..
१९२३		१७,६८४	१५,६८२	३३,३६६	१२०	'०२	'१६	'६४	१५'५३	'२१	'९१	'३९	५'१७	२४'४९	२१'५२	२३'०४	४६'०७	४४'३३	४५'२२	२३'०१	२४'१६	५'८२	...
१९२४		२०,१२२	१६,५१५	३६,६३७	१२२	'६०	'१६	१'४१	१८'२४	'२२	'७९	'४७	४'२५	२७'८६	२४'२१	२६'०९	३४'२७	३२'२८	३३'३०	५९'०३	२७'३७	८'२९	२'३९
१९२५	४९१	१५,२९६	११,८५६	२७,१५२	१२९	'०५	'०६	'३१	१३'०७	'१५	'७९	'४७	३'५१	२१'१८	१७'३८	१९'३३	३०'३९	२७'६९	२९'००	१९'२९	२०'२६	५'९६	७'१९
१९२६		१४,९१२	१२,५५५	२७,४६७	११९	'०३	'२३	'५८	१२'४७	'२३	'९५	'५७	४'४८	२०'५५	१६'४०	१९'५६	२७'११	२३'९३	२५'५६	१९'३७	२१'४४	२'३६	'३०
१९२७		१५,४०४	१२,८६५	२८,२६९	१२०	'३५	'४१	'२३	१३'०७	'२३	'९४	'५३	४'३७	२१'३३	१८'८६	२०'१३	२४'२३	२१'०२	२२'६७	२०'०५	२०'१२	११'३४	११'९०
१९२८		१४,६०१	१२,३२४	२६,९२५	११८	'५५	'१४	'६७	११'८७	'२३	१'०१	'५०	४'२०	२०'२२	१८'०६	१९'१७	२३'१०	२०'०७	२१'६३	१९'०३	२०'६७	९'७४	१'७९
१९२९		१३,९२७	११,९०६	२५,८३३	११७	१'०२	'१४	'२९	११'२८	'२८	१'०२	'४१	३'९५	१९'२८	१७'४५	१८'३९	२२'२५	१९'३८	२०'८९	१८'०३	२१'५४	५'०९	...

इन अंकों से यह भी पता चलता है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक जन्मते और मरते हैं। इसी प्रकार हिंदुओं से मुसलमानों की मृत्यु-संख्या कुछ अधिक मालूम होती है।

इस प्रसंग में पाठकों की जानकारी के लिए प्रयाग ज़िले की मृत्यु-संख्या के अंकों के साथ इस प्रांत के तीन बड़े नगरों के ज़िलों अर्थात् लखनऊ, बनारस और कानपुर की मृत्यु-संख्या के अंक नीचे दिए जाते हैं, जिस से विदित होगा कि इस विषय में उन के समक्ष प्रयाग की क्या अवस्था रही ?

पिछले ५ वर्षों में १००० की आबादी पर मृत्यु की संख्या।

साल	इलाहाबाद	लखनऊ	कानपुर	बनारस
१९१८	३०·३१	३५·४४	३४·८३	३२·५९
१९१९	४१·३९	४४·८२	४४·९८	४१·६२
१९२०	४२·२९	४५·४४	४७·५९	४४·३९
१९२१	४६·४६	४६·०५	४९·३२	४५·८७
१९२२	४७·४७	२७·१४	२९·८२	३०·५८
१९२३	४५·२२	४५·१८	४९·४१	४८·७९
१९२४	३३·३०	३०·५४	२९·८५	३२·४३
१९२५	२९·०७	२५·२९	२२·६५	२४·८०
१९२६	२५·५६	२६·७४	२२·९६	२८·३८
१९२७	२०·१३	२५·६५	१९·२०	२५·५८

यह बात शोचनीय है कि गाँवों के लोग विशेषतया दरिद्र और अशिक्षित होने के कारण सफ़ाई का मूल्य नहीं समझते। उन के कपड़े नगर-निवासियों की अपेक्षा प्रायः मैले रहते हैं। घरों से गंदा पानी निकलने का कोई अच्छा प्रबंध नहीं रहता। लोग प्रायः बस्ती के निकट खेतों में शौच के लिए जाते हैं। बच्चों के तो मल-मूत्र त्यागने के लिए कोई विशेष स्थान ही नहीं है; जहां जी चाहता है बिठाल देते हैं। बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर उसी के निकट घर बनाते हैं। कुछ छोटे लड़के और कभी-कभी रात को अन्य लोग भी उस में शौच जाते हैं, तथा घर का कूड़ा-कर्कट उसी में फेंकते हैं। वर्षा के दिनों में जब वे गड्ढे जल से भर जाते हैं, तो बहुत दिनों तक उन में गंदा पानी भरा रहता है, जिस में एक ओर लोग लुक-छिप कर शौच के पश्चात् शरीर धोते हैं, तो दूसरी ओर उसी में घर के बरतन माँजते हैं।

यदि पशु-शाला अलग न हुई तो पशुओं के गोबर और मूत्र से भी घरों में बड़ी गंदगी रहती है। विशेष कर वर्षा के दिनों में तो और भी दुर्गंध रहा करती है, क्योंकि उन की सफ़ाई का कोई अच्छा प्रबंध नहीं रहता। इन सब कारणों से गाँवों में कभी-कभी ऐसी भयंकर बीमारियां फूट पड़ती हैं कि उन से सैकड़ों मनुष्य अकाल मृत्यु की भेंट हो जाते हैं।

थोड़े दिनों से डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की ओर से गाँवों में सैनेटरी इन्सपेक्टर नियुक्त हुए हैं, परंतु उन के पास सफ़ाई के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं। इस लिए ग्रामीण जनता जब तक स्वयं इस की ओर ध्यान न दे वहां की सफ़ाई का पूरा प्रबंध नहीं हो सकता।

प्रयाग का समय

पृथ्वी के गोलाकार होने से सब जगह एक ही समय में सूर्य का उदय और अस्त नहीं होता। इस लिए प्रत्येक स्थान के दो प्रकार के समय माने जाते हैं। एक तो उस जगह का वास्तविक समय अर्थात् जब वहां सूर्य देख पड़ता है और जब अदृश्य होता है। इस को 'लोकल टाइम' अथवा 'स्थानीय समय' कहते हैं। दूसरा वह कल्पित समय जो रेल और तारघर इत्यादि में व्यवहार के लिए सब जगह एक समान माना जाता है। इस को 'स्टैंडर्ड-टाइम' वा 'सामान्य समय' कहते हैं। प्रयाग का लोकल टाइम, स्टैंडर्ड अथवा रेलवे टाइम से ५ मिनट के लगभग अधिक है।

नीचे के रेखा चित्र-द्वारा हम यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि प्रयाग के समय से भारत के अन्य प्रसिद्ध नगरों के समय में कितना अंतर है?
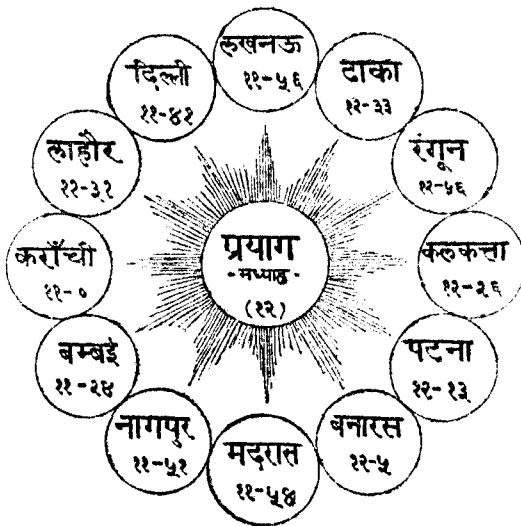
इस के अतिरिक्त पाठकों की जानकारी के लिये अगले पृष्ठ पर प्रयाग के लोकल टाइम की एक सारिणी है। वह नाटिकल आलमेनिक के आधार पर बनाई गई है। याद रखना चाहिए कि हर साल किसी एक ही तिथि पर ठीक उसी समय सूर्य का उदय और अस्त नहीं होता, किंतु थोड़ा-थोड़ा अंतर पड़ता रहता है, जो तीन वर्ष में जा कर बराबर हो जाता है। इस लिए इस सारिणी में जो समय दिया गया है उस में किसी वर्ष एक-आध मिनट का अंतर पड़ जाना संभव है।

धूपघड़ी के अनुसार प्रयाग में सूर्योदय का समय

तारीख़	जनवरी		फ़रवरी		मार्च		अप्रेल		मई		जून		जुलाई		अगस्त		सितम्बर		अक्टूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०
१	६	४५	६	४३	६	२३	५	५२	५	२४	५	६	५	१३	५	२६	५	४०	५	५२	६	७	६	२८
२		४५		४३		२३		५१		२४		६		१३		२७		४१		५२		८		२६
३		४६		४३		२[illegible]		५०		२३		६		१३		२८		४२		५२		८		३०
४		४६		४२		२१		४६		२२		६		१४		२८		४२		५३		६		३०
५		४६		४५		२०		४८		२२		६		१४		२८		४२		५३		१०		३१
६		४६		४१		१६		४७		२१		६		१४		२६		४२		५४		१०		३२
७		४७		४०		१८		४६		२०		६		१५		२६		४३		५४		११		३२
८		४७		४०		१७		४५		१६		६		१५		३०		४३		५५		१२		३३
९		४७		४०		१६		४४		१६		६		१५		३०		४३		५५		१३		३४
१०		४७		३६		१५		४३		१८		६		१६		३१		४३		५६		१३		३४
११		४७		३८		१४		४२		१८		६		१६		३१		४४		५६		१४		३५
१२		४७		३७		१३		४१		१७		६		१७		३२		४४		[illegible]७		१४		३५
१३		४७		३७		१२		४०		१७		६		१८		३२		४५		५७		१५		३६

१४	४७	३६	११	३९	१६	९	१८	३२	४५ ६	५७	१६	३७
१५	४७	३६	१०	३८	१६	९	१८	३३	४५	५८	१७	३७
१६	४७	३५	९	३७	१५	९	१९	३३	४६	५८	१७	३८
१७	४७	३४	७	३६	१५	९	१९	३४	४६	५९	१८	३९
१८	४७	३३	६	३५	१४	१०	२०	३४	४७	०	१८	३९
१९	४७	३२	६	३४	१४	१०	२०	३५	४७	०	१९	४०
२०	४७	३२	५	३४	१३	१०	२०	३५	४७	०	२०	४०
२१	४७	३१	४	३३	१३	१०	२१	३६	४७	१	२१	४१
२२	४६	३०	३	३२	१३	१०	२२	३६	४८	१	२२	४१
२३	४६	२९	२	३१	१२	११	२३	३६	४८	२	२२	४२
२४	४६	२८ ५	१	३०	१२	११	२३	३७	४९	३	२३	४२
२५	४५	२७	०	२९	११	११	२३	३७	४९	३	२४	४३
२६	४५	२६	५८	२८	११	११	२४	३८	५०	४	२५	४३
२७	४५	२५	५७	२७	११	११	२५	३८	५०	४	२५	४३
२-	४५	२४	५६	२६	१०	१२	२५	३८	५०	५	२६	४४
२९	४४	२४	५५	२६	१०	१२	२५	३९	५१	५	२६	४४
३०	४४	...	५४	२५	१०	१२	२६	३९	५१	६	२७	४४
३१ ...	४३	...	५३	...	१०	...	२६	४०	..	७	...	४५

धूपघड़ी के अनुसार प्रयाग में सूर्यास्त का समय

तारीख	जनवरी		फ़रवरी		मार्च		अप्रैल		मई		जून		जुलाई		अगस्त		सितम्बर		अक्टूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०	घं०	मि०
१	५	२१	५	४४	६	२	६	१६	६	३०	६	४५	६	५४	६	४५	६	१९	५	४७	५	२०	५	९
२		२२		४५		२		१६		३१		४६		५४		४५		१८		४६		१९		१०
३		२३		४५		३		१७		३१		४६		५४		४४		१७		४५		१८		१०
४		२३		४६		३		१७		३२		४७		५४		४३		१६		४४		१७		१०
५		२४		४७		४		१८		३२		४७		५४		४२		१५		४३		१७		१०
६		२५		४८		४		१८		३२		४८		५४		४२		१४		४२		१७		१०
७		२६		४८		५		१९		३३		४८		५४		४१		१३		४१		१६		१०
८		२७		४९		५		१९		३३		४९		५३		४०		१२		४०		१५		११
९		२८		५०		६		१९		३४		४९		५३		४०		११		३९		१५		११
१०		२८		५१		६		२०		३५		४९		५३		३९		१०		३८		१४		११
११		२९		५१		६		२०		३५		५०		५३		३९		९		३७		१४		११
१२		२९		५२		७		२०		३६		५०		५३		३८		८		३६		१३		११
१३		३०		५२		८		२१		३६		५१		५३		३७		७		३५		१३		१२

१४	३०		५३	८		२२	३६		५१	५३	३६	६	३४	१२	१२
१५	३१		५३	९		२२	३७		५१	५३	३५	५	३३	१२	१३
१६	३२		५४	९		२२	३७		५१	५२	३५	४	३२	१२	१३
१७	३३		५५	९		२३	३८		५२	५२	३४	३	३१	११	१३
१८	३४		५५	१०		२४	३९		५२	५२	३३	२	३१	११	१३
१९	३५		५६	१०		२४	३९		५२	५१	३२	१	३०	११	१४
२०	३५		५६	११		२५	४०		५३	५१	३२	...	२९	११	१४
२१	३६		५७	११		२५	४०		५३	५०	३१	५८	२८	१०	१५
२२	३७		५८	१२		२५	४०		५३	५०	२९	५७	२७	१०	१५
२३	३७	६	५८	१२		२६	४१		५३	५०	२८	५६	२६	१०	१६
२४	३८		५९	१३		२६	४२		५३	४९	२७	५५	२५	१०	१६
२५	३९		...	१३		२७	४२		५४	४९	२६	५४	२५	१०	१७
२६	४०		...	१४		२८	४३		५४	४९	२५	५३	२४	१०	१७
२७	४१		१	१४		२८	४३		५४	४८	२४	५२	२३	९	१८
२८	४२		१	१५		२८	४४		५४	४७	२३	५१	२२	९	१९
२९	४२		२	१५		२९	४५		५४	४७	२२	५०	२२	९	१९
३०	४३	...	...	१५		२९	४५		५४	४६	२१	४९	२१	९	२०
३१	४३	...	...	१६	...	...	४५	..	...	४६	२०	..	२०	...	२१

दूसरा अध्याय

जन-संख्या तथा जनता-संबंधी वृत्तांत

प्रयाग के तीन प्राकृतिक विभागों की चर्चा पीछे आ चुकी है। कुल ज़िले में ८ तहसीलें, १४ परगने, २ म्यूनिसिपैलटियाँ, ९ क़स्बे, ३५३५ गाँव (सन् १९३१ की मनुष्य-गणना) के अनुसार ३२७७५५ बसे हुए घर तथा १४९१९१३ आबादी है।

पहले की जन-संख्या इस प्रकार थी :—

सन् १८४७ ई०	में	७,१०,२६३
,, १८५३	,,	१,३७९,७८८
,, १८६५	,,	१,४०६,६२४
,, १८७२	,,	१,३९६,२४१
,, १८८१	,,	१,४७४,१०६
,, १८९१	,,	१,५५०,०११
,, १९०१	,,	१,४९०,३९७
,, १९११	,,	१,४६७,१३६
,, १९२१	,,	१,४०४,४४५

सन् १९३१ की संख्या ऊपर दी गई है। उस का ब्यौरा इस प्रकार है:—

प्रतापगढ़
मिर्जापुर चौहारी
जौनपुर
बनारस (राज)
मिर्जापुर
रीवाँ (राज)
बाँदा
फतेहपुर
प० सोराँव
प० सिकंदरा
प० नवाबगंज
प० कड़ा
प० चायल
प० करारी
प० अथरबन
प० झूँसी
प० मह
प० किवाई
प० अरैल
प० बारा
प० खैरागढ़
गंगा नदी
जमुना नदी
टौंस नदी
सीटा
कोरांव
प्रयाग प्रदीप-
वर्तमान प्रयाग-मंडल (जिला) का
मानचित्र
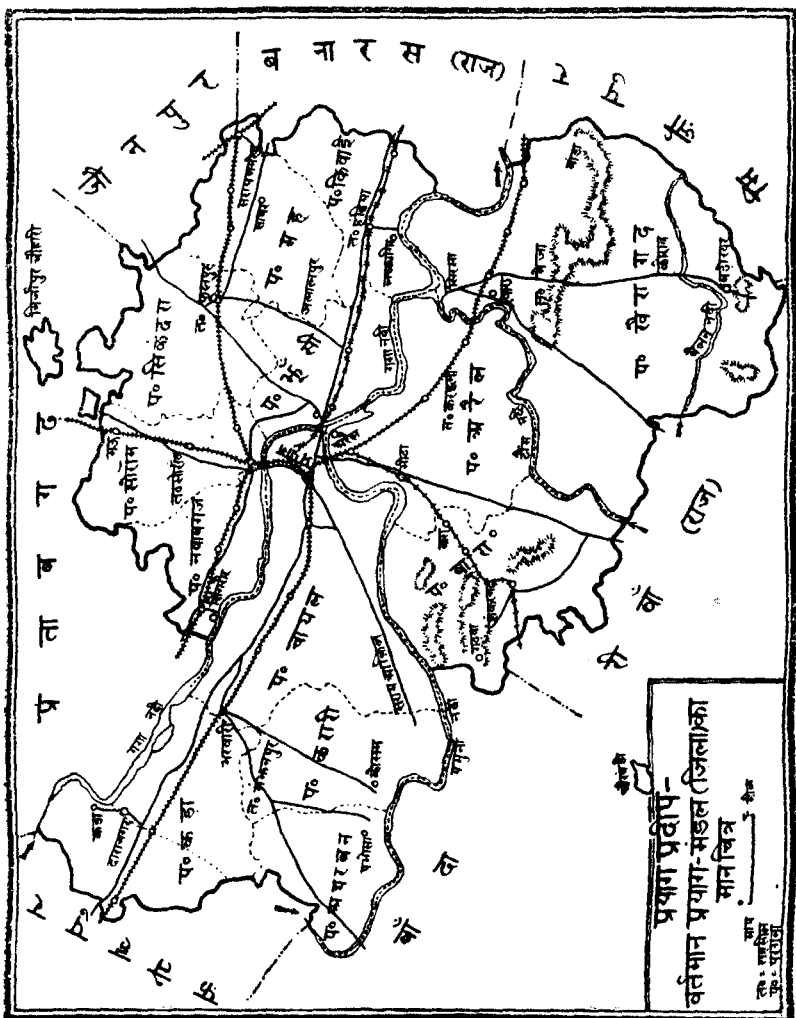
प्राकृतिक विभाग	परगना	तहसील	क्षेत्रफल (वर्गमील)	म्युनिसिपैलिटी	क़स्बा	गाँव	घर	जन-संख्या	औसत आबादी फ़ी वर्ग मील
दोआब	चायल	इलाहाबाद	३०३	१	१	३४६	७१,८५६	३४६,४४१	११५३
	कड़ा	सिराथू	२३७	·	२	२५४	२८,२०७	१२२,५४०	५१७
	करारी, अथरबन	मंझनपुर	२७४	·	१	२७४	२६,६०८	१३०,०३२	४७५
गंगा-पार	सोराम, नवाबगंज, मिर्ज़ापुर	सोराम	२६५	·	१	४३६	४२,८१४	१८७,५७०	७०८
	चौहारी, सिकंदरा, झूँसी	फूलपुर	२८८	१	१	५००	३५०,२७	१७०,४८६	५९२
	केवाई, मह	हँडिया	२९७	·	·	५८३	३७,७४१	१७८,०३२	५९९
जमुना-पार	अरैल, बारा, खैरागढ़	करछना	५२१	·	१	५९४	४१,६३२	१६१,६५१	३१८
		मेजा	६६२	·	२	५४३	३५,५६६	१६१,८५८	२४४
३	१२	८	२८४७	२	९	३५,३३	३२७,७२५	१४,६१,६१६	५२४

इलाहाबाद के अतिरिक्त दूसरी म्युनीसिपैलटी फूलपुर में है। क़स्बों का क्रम आबादी के हिसाब से इस प्रकार है :—

(१) मऊ-आयमा (त० सोराम) (२) भारतगंज (३) सिरसा (त० मेजा) (४) कड़ा

(त० सिराथू) (५) सराय-आक़िल (त० इलाहाबाद) (६) करमा (त० करछना) (७) झूँसी (त० फूलपुर) (८) दारानगर (त० सिराथू) (९) मंझनपुर [1]।

अर्थात् सब से अधिक आबादी मऊ-आयमा की है और सब से कम मंझनपुर की।

प्रयाग के ज़िले की जन-संख्या मत-मतांतरों के भेद से इस प्रकार है।

हिंदू १२,७७,४५७; आर्य्य १२३८; ब्राह्मो २९; जैन ५५९; सिक्ख १३८; बौद्ध ४२; राधास्वामी ९४; मुसलमान २०४,७८८; ईसाई ७,४५१; पारसी ११३; यहूदी ४।

हिंदू मुसलमानों से छः गुने हैं। सब से अधिक हिंदुओं की संख्या तहसील करछना में है और उस के बाद हँडिया का नंबर है। मुसलमान सब से अधिक चायल में हैं और उस के बाद सोराम में। ज़िले भर में सब से कम मुसलमान मेजा में हैं। इस दृष्टि से करछना का नंबर दूसरा है।

हिंदुओं में एक लाख से ऊपर पाँच जातियाँ हैं जिन की नामावली संख्या के क्रम से इस प्रकार है:—ब्राह्मण—चमार—अहीर—पासी—कुरमी।

ब्राह्मणों में सरवरिया अर्थात् सरयूपारी, क्षत्रियों में बिसेन और वैश्यों में केसरवानी अधिक हैं।

मुसलमानों में सुन्नियों की संख्या शियों से अधिक है।

जनता का रहन-सहन तथा चाल-ढाल इत्यादि

१—मकान

पहले अधिकांश कच्चे मकान बनते थे, परंतु दीवारें एक ग़ज़ तक चौड़ी होती थीं। नीचे बाँस की कमचियों का ठाठ और उस के ऊपर खपरैल, यह यहां घर बनाने की पुरानी प्रथा है। गाँव में अरहर और सरसों के सूखे डंठल, सरकिंडे और झाऊ के भी ठाठ बनाते हैं। शहर और क़स्बों में अब लोग लकड़ी के पतले बत्ते लोहे की कीलों से जड़ कर ठाठ बनाते हैं और उस पर बड़े-बड़े खपरे रख देते हैं, जिन को 'इलाहाबाद टाइल' कहते हैं। इस का छाजन १५–२० वर्ष तक चलता है। गाँवों में नीची जातिवालों के अधिकांश ऐसे घर होते हैं, जिन पर फूस का छप्पर होता है, और उन के दरवाज़ों में किवाड़ नहीं होते। कुत्ते-बिल्ली की रोक के लिए केवल एक टट्टी लगा दी जाती है। बहुधा घरों के आगे बाहर एक खुली दालान बनाई जाती है, जिस को 'ओसार' या 'चौपार' (चौपाल) कहते हैं। कुछ लोग उसी में इधर-उधर गाय बैल भी बाँधते हैं। बड़े लोगों का गोरुआर (पशुशाला) अलग होता है, जिस को 'बगर' कहते हैं और बड़े-बड़े घरों को 'बखरी' बोलते हैं। गाँवों में चोरी का भय अधिक रहता है, इस लिए कहीं-कहीं पिछवाड़े की दीवार से मिलाकर एक और कुछ कम ऊँची दीवार रक्षा के लिए उठा लेते हैं और उस पर पिछली

---

[1] इन में से १९३२ में न० ४, ६, ८ और ९ टूट गए हैं।

दीवार के पानी गिरने के लिए खपरे रख देते हैं। ओलती के नीचे टेक के लिए बहुधा लकड़ी के तोड़े लगा देते हैं जिन की पंक्ति देखने में बड़ी सुंदर मालूम होती है।

गाँवों की छतें बाँस अरहर के डंठल और कहीं-कहीं सरकिंडों के मुट्ठों से पाटी जाती हैं, जो ५०–६० वर्ष तक चलती हैं। जहां की मिट्टी मज़बूत है वहां कच्ची छतें खुली हुई भी बनती हैं जिन को यहां 'मुंडा कोठा' कहते हैं। गाँवों में संभवतः चोरी के डर से घरों में खिड़कियां रखने का रवाज नहीं है। इस लिए प्रायः पटे हुए मकानों में दिन में इतना अँधेरा रहता है कि बिना दीपक के सूझ नहीं पड़ता। गाँवों में कोठे के ऊपर के दूसरे खंड की दीवारें बहुधा बड़ी नीची बनाते हैं।

पुराने मकानों में कहीं-कहीं तहख़ाने देखे जाते हैं, परंतु अब इन के बनाने का रवाज बहुत कम है।

पहले घरों में शौच के लिए एक गहरा गड्ढा 'संडास' के नाम से खोदा जाता था, परंतु अब म्यूनिसिपैलटी ने इन को बंद करा दिया है।

हम पहले बता चुके हैं कि यहां पहले कच्चे मकान बहुत बनते थे। उन की दीवारें या तो मिट्टी की या कच्ची ईंटों की होती थीं। यहां तक कि बहुत से पुराने बंगलों की दीवारें भी इसी प्रकार की हैं, परंतु अब विशेषतया शहर में जो घर बनते हैं उन की दीवारें पक्की होती हैं, जिन की चौड़ाई प्रायः डेढ़ ईंट की होती है। पहले यहां मकानों के लिए मिर्ज़ापुर से पत्थर लाना पड़ता था। पीछे शंकरगढ़ के निकट शिवराजपुर में इमारती पत्थर की खान निकल आने से अब अधिकांश वहीं से तथा मानिकपुर आदि स्थानों से पत्थर आता है। परंतु थोड़े दिनों से यहां अब सीमेंट से पत्थर का काम अधिक लिया जाने लगा है। छतों में लकड़ी के स्थान में लोहे का रवाज अब अधिक है और सीमेंट की जोड़ाई से चपटी छतें अधिक बनती हैं।

पुराने पक्के मकानों में बाहर की बैठक में बहुधा दोहरे किवाड़ हुआ करते थे—भीतर की ओर शीशे का और बाहर झिलमिलीदार लकड़ी का। परंतु अब एक ही दिल-हेदार किवाड़ों का रवाज है।

२—सजावट के सामान

पहले दीवारों पर विविध प्रकार के रंगों से देवताओं तथा अन्य प्रकार के चित्रों के बनाने का रवाज था। परंतु अब जब से छपे हुए रंगीन चित्र सस्ते दामों में बिकने लगे हैं, बहुधा लोग सजावट के लिए उन्हीं को लगा देते हैं, तथा नए-नए ढंग के कलेंडर (तिथि-पत्र) निकले हैं, सजावट के लिए वे भी लटका दिए जाते हैं। पहले मेज़-कुर्सियां बहुत कम थीं। अब गाँवों में भी बहुत जगह ये चीज़ें पहुँच गई हैं। ब्याह-शादी के अवसर पर अब रंगीन काग़ज़ के बंदन वार अधिक लगाए जाते हैं। और मशाल इत्यादि के स्थान में रंगीन काग़ज़ की कंदीलें जलाई जाती हैं, तथा मोमबत्तियों के स्थान में गैस और शहर में बिजली की रोशनी का रवाज अब अधिक बढ़ता जाता है।

३—खान-पान

गाँवों के लोग चरबन अर्थात् विविध प्रकार का भुना हुआ अन्न और गुड़ का सेवन अधिक करते हैं और जब बाहर जाते हैं तो एक-दो वक्त सत्तू पर निर्वाह करते हैं। देहात के ब्राह्मण और कहीं-कहीं क्षत्रिय कुर्मी तक पूड़ी भी कपड़ा उतार कर चौके में खाते हैं। बाज़ार की मिठाई केवल वही खाते हैं, जिस में अन्न न हो। परंतु अब यह बंधन ढीला पड़ता जाता है।

शहर और कस्बों के लोग अधिक चटोरे होते हैं। वे तेल के बड़े, फुल्के और पकौड़ियां इत्यादि, जिन को यहां 'चटपटा' कहते हैं, अधिक खाते हैं। जाड़ों में मूँगफली भी इन के साथ अब बहुत बिकने लगी है, जिस को, सोंधी होने के कारण, बच्चे अधिक खाते हैं। पहले बिस्कुट और लेमनेड से ऊँची जाति के हिंदू परहेज़ करते थे, परंतु अब कहीं-कहीं गाँवों तक में ये चीज़ें पहुँच गई हैं।

इस ज़िले में अधिकांश सरयूपारी ब्राह्मण हैं, जो समष्टि रूप से मांस मछली तथा हुक्क़ा सिगरेट से घृणा करते हैं, परंतु तमाकू खाने और सूँघने से उन को, परहेज़ नहीं है।

गाँवों में काम-काज के अवसर पर ब्राह्मण तरकारी में पहले नमक नहीं डालते, किंतु पीछे खाते समय मिलाते हैं। रसदार तरकारी का उन में बिल्कुल रवाज नहीं है।

अग्रवाल वैश्य प्याज़ लहसुन से घृणा करते हैं। ब्राह्मण भी प्याज़ नहीं खाते। लहसुन खाते हैं।

शहर में छूआछूत कुछ ढीली हो रही है, परंतु गाँवो में जो चमार-पासी इत्यादि अपने देवताओं के पुजारी होते हैं, वह किसी ऊँची जातिवाले यहां तक कि ब्राह्मणों के यहां का भी कच्चा भोजन अर्थात् रोटी-दाल ग्रहण नहीं करते।

भोज के अवसर पर २५ वर्ष पहले अधिकांश खत्रियों और अग्रवालों में मिठाई का रवाज था। अन्य लोगों में बड़े आदमियों को छोड़ कर साधारण श्रेणी के लोग प्रायः दही-चीनी खिलाते थे, परंतु अब वे भी मामूली कामों तक में मिठाई परोसना आवश्यक समझते हैं और फिर उन पर चाँदी के वर्क़ का भी रवाज होता जाता है।

चाय पीने का रवाज बंगालियों में अधिक है, परंतु अब अन्य लोग भी उन का अनुकरण करने लगे हैं।

४—पहनावा

पहले सिर पर पगड़ी बाँधने या बँधी हुई पगड़ी पहनने का रवाज अधिक था। अब हर में यह प्रथा उठ सी गई है। हां, गाँवों में कुछ लोग बड़े-बड़े साफ़ों से ले कर छोटे-छोटे अगौछे सिर पर लपेटते हैं। परंतु वहां भी अब टोपियां अधिक चल पड़ी हैं। पहले लोग जाड़ों में सिर पर रुईदार कंटोप पहनते थे और कुछ लोग उस के ऊपर छोटा सा डुपट्टा भी बाँध लेते थे। अब लोगों ने इस को गँवारू वेष समझ कर बहुत-कुछ छोड़ दिया है। पहले अधिकांश दुपल्ली टोपियां पहनी जाती थीं। कुछ भले आदमी चौगोशिया टोपी पहिनते थे। एक और गोल टोपी सूज़नी की होती थी, जिस पर रंगीन अथवा सादे रेशम से बेल-बूटे कढ़े

हुए होते थे। इन टोपियों को धुलने के बाद कलफ़ लगा कर, टीन या लकड़ी के ढाँचों पर चढ़ा कर सुखा लेते थे, जिस से वह कड़ी हो कर पहनने योग्य हो जाती थीं। इन ढाँचों का नाम 'क़ालिब' था। फिर यह फ़ैशन निकला कि गोल टोपियों पर दो-दो अंगुल चौड़े लैस लगा कर शौक़ीन बूढ़े तक पहनते थे। परंतु अब इस का रवाज बिल्कुल जाता रहा। अनेक प्रकार की कामदार गोल टोपियाँ पहले से थीं, जिन को अब विशेष कर ब्याह शादी के अवसर पर सिवाय बच्चों के कोई नहीं पहनता। इसी के साथ-साथ फ़ेल्ट और उस की नक़ल गोल टोपियों का अधिक रवाज हुआ, जो कुछ न कुछ अब तक चला जाता है। क्योंकि इधर ८-१० वर्ष से इन की जगह गांधी टोपियों ने अधिक ले ली है, जिन को पहले 'किश्ती नुमा' या 'किश्तीदार' टोपी कहते थे। पर वे सादे कपड़े की धुलाने योग्य नहीं होती थी। बहुधा मख़मल की होती थीं जो जाड़ों में पहनी जाती थीं। जो टोपियां सूती कपड़े की बनती थीं उनकी दीवारों को अंदर मोटा काग़ज़ देकर कड़ा कर दिया जाता था। पुराने फ़ैशन के पंडित लोग मलमल की चँदवेदार गोल टोपी पहनते हैं, जिस की बनावट विशेष प्रकार की होती है अर्थात् ऊपर कपड़े को कुछ चुनाव दे कर उस पर एक दूसरे कपड़े का गोल टुकड़ा सी दिया जाता है, जो बीचो-बीच में नहीं होता किंतु कुछ पीछे की ओर हटा रहता है। अब शहर में हैट का रवाज अधिक होता जाता है। यहां तक कि बच्चों को कामदार टोपी के स्थान में यही पहनाना लोग पसंद करते हैं। कुछ लोग कुर्ता-धोती और शेरवानी-पायजामे पर हैट लगाते हैं। यहां इस को सब से पहले बंगालियों ने आरंभ किया था।

पहले गले में रेशमी या सूती डुपट्टों के डालने का अधिक रवाज था। मामूली रूमाल भी कुछ लोग गले में बाँधते थे। कुछ लोग जाड़े में ऊनी गुलूबंद गले में लपेट लेते हैं और कुछ लोग उस को गले में डाल कर ऊपर कोट पहनते हैं।

अंगरेज़ी फ़ैशन के लोग गले में टाई बाँधते हैं, परंतु थोड़े दिनों से टाई न बाँधने का भी फ़ैशन निकला है; लेकिन ऐसी सूरत में कमीज़ के ऊपर का एक बटन खुला रखना आवश्यक है। इस फ़ैशन की पूर्ति के लिए अब नए ढंग की कमीज़ें ऐसी सिलने लगी हैं कि जिन का गला कुछ ढीला होता है और बाहें आधी होती हैं।

पुराने लोग नीचे कुर्ता पहन कर ऊपर से अँगरखा पहनते थे। अब शहर में अधिक और देहात में कुछ लोग कुर्ता या कमीज़ के नीचे बनियाइन पहनते हैं। गाँवों में अब तक कुछ लोग पुराने चाल की बंददार मिर्ज़ई कमर तक पहनते हैं, परंतु शहर में इस की चाल अब बिलकुल नहीं है। पहले अंगरखे के नीचे केवल कुर्ते पहने जाते थे। अब अचकन या कोट के नीचे लोग क़मीज़ पहनते हैं, जिन के गले में चौड़े या पतले कालर या बाहों के सिरे पर एक बटन की कफ़ होती है। अब कमीज़ों का नया फ़ैशन यह चला है कि गला कुछ ढीला होता है और बाहें केवल कुहनी तक होती है। कुर्तों में यह परिवर्तन हुआ है कि वह पहले से अधिक नीचा होता है और उस की बाहें चौड़ी होती हैं। दूसरा नए चाल का कुर्ता रेशम या टसर का निकला है, जिस की बाहें तंग और पूरी होती हैं।

कुर्तों या क़मीज़ों के ऊपर वास्कट पहनने का भी अधिक रवाज हो गया था, पर

अब कम हो गया है। पहले लोग बंददार अँगरखे और उस पर शौक़ीन लोग सदरी पहनते थे, जिस पर आगे अनेक प्रकार के सुंदर बेल-बूटे बने होते थे; और सामने छाती और पेट के दोनों पल्लों पर अर्थात् दाहिने और बाएँ नीचे से ऊपर तक शोभा के लिए बहुत सी घुंडियां लगी रहती थीं। अब सदरी यहां कहीं देखने में नहीं आती।

अँगरखे के पश्चात् बटन-दार अचकनों और फिर शेरवानियों का रवाज हुआ। जिन को अब तक कुछ लोग पहनते हैं, परंतु कोट के पहनने का रवाज अब अधिक बढ़ता जाता है।

पहले जाड़ों में प्रायः एक रंग अथवा अनेक रंग के छीटों के रूईदार कपड़े पहने जाते थे। अब ऊनी कोट और स्वेटर पहनने की प्रथा अधिक चल गई है। कुछ लोग रुई-दार केवल एक छोटा कपड़ा कमर तक नीचे पहनते हैं जिस को मिर्ज़ई या बंडी कहते हैं।

धोतियों में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ, सिवाय इस के कि पहले गाँवों में लोग मोटी धोतियां बिना किनारे की अधिक पहनते थे; और इस लिए कि जल्द मैली न हो, लाल मिट्टी से रंग लेते थे। अब कुछ पतले कपड़े की किनारे-दार धोतियां अधिक चल पड़ी हैं। नीची श्रेणी के मुसलमान अधिकांश एक छोटा कपड़ा लपेटते हैं जिस को लुंगी कहते हैं।

पायजामों में बड़ी काट-छाँट हुई है। पहले दो प्रकार के पायजामे थे। एक तंग मुहरी का चूड़ीदार और दूसरा बहुत ढीली मुहरी का कलीदार, जिस में नीचे चार अंगुल चौड़ा गोट लगा रहता था। चूड़ीदार का रवाज अब भी कुछ है, परंतु अधिकांश लोग ५–६ गिरह चौड़ी मुहरी रखते हैं। ढीली मुहरी का पायजामा बहुत दिनों तक बिलकुल बंद रहा। अब कुछ नए फ़ैशन के लोग उस को फिर पहनने लगे हैं, परंतु उस में न तो कली होती है, न नीचे गोट लगा होता है। कोट के साथ पतलून और बिरजिस पहनने का रवाज हुआ। पर अब एक प्रकार का नीचा जाँघिया अधिक पहना जाता है जिस को 'नेकर' या 'हाफ़पैंट' कहते हैं। इस के नीचे गाँठ तक एक लंबा मोज़ा भी पहना जाता है। यों भी पाँव में छोटे-बड़े मोज़ों के पहनने का रवाज अब पहले से अधिक है।

जाड़ों में एक और रूईदार लंबा कपड़ा सब से ऊपर पहना जाता था जिस का नाम 'लबादा' था। ऐसा ही एक ऊनी कपड़ा भी होता था जो 'चोग़ा' कहलाता था। इस के कंधे पर और गर्दन के पीछे तथा कुछ आगे शोभा के लिए फूल-पत्ते कढ़े हुए होते थे। ऊपर से दुशालों या रूईदार दुलाइयों के ओढ़ने का रवाज था। इन सबों के स्थान में कुछ दिनों तक ऊनी ओवरकोट चला, पर अब अधिकांश लोग कंबल ओढ़ते हैं। हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान रंगीन वस्त्र कुछ अधिक पहनते हैं।

पहले घर में लोग पाँव में खूँटीदार खड़ाऊं और हाफ स्लीपर पहनते थे। अब खूँटी-दार की जगह फ़ीतेदार खड़ाऊँ और हाफ़ स्लीपर के स्थान में चप्पल या चट्टियां अधिक पहनी जाती हैं।

स्त्रियों के वस्त्रों में सब से बड़ा परिवर्तन यह हुआ है कि भले घर की स्त्रियां पहले अनेक रंग के लँहगे पहनती थीं, जिन का घेरा कम से कम ३–४ गज़ का हुआ करता था, और नीचे ४ अंगुल चौड़ा गोट लगता था। परंतु इस को पहन कर कोई स्त्री चौके के भीतर

नहीं जा सकती थी और न सिवाय नई बहुओं के कोई स्त्री इस को पहन कर कच्चा खाना (रोटी दाल इत्यादि) खा सकती थी। सारांश यह कि लँहगा सिला हुआ होने के कारण धोती की अपेक्षा कुछ छुतिहा (अपवित्र) समझा जाता था।

पहले भले आदमियों की नई बहुएं नीचे आँगिया—महरम और नीची जाति की स्त्रियां झुल्ला पहनती थीं, जो बिना बाँह और बिना बटन की एक छोटी कुरती होती थी। यह कपड़ा आगे से बंद रहता था। केवल गले के पास थोड़ा सा खुला रहता था और उस में घुंडी-तुकमा लगता था। अब इस का रवाज बहुत कम हो गया है। गाँवों में भी बटनदार कुर्तियां चल गई हैं, जिन में बाहें या तो कुहुनी तक या पूरे हाथ की होती हैं। शहर में कमर तक की कमीज़ जाकेट और कहीं-कहीं वास्कट भी पहिनी जाती है। अब जंपर के पहनने का रवाज बढ़ रहा है जिस को पुराने झुल्ले का स्थानापन्न समझना चाहिए। जब से महीन साड़ियां चलीं उन के नीचे परदे के लिए एक छोटा सा लँहगा पहना जाता है, जिस को पेटीकोट या शमीज़ कहते हैं।

पहले हिंदू स्त्रियों में जूता बिलकुल नहीं पहना जाता था। नीची जाति की या भले घरों की कुछ स्त्रियां गाँवों की बनी हुई मामूली चट्टियां पहनती थीं, जिन को इस ज़िले में कहीं 'लतरी' कहीं 'खतरी' या 'बधौरी' कहते हैं। फिर पीछे बड़े घरों में हाफ़ स्लीपर का रवाज हुआ और अब विशेषतः शहर में धीरे-धीरे कामदार और बूट-जूते पहने जाते हैं। इसी के साथ अब स्त्रियां मोज़ा भी पहनने लगी हैं।

भले घरों की स्त्रियां जब बाहर जाती हैं तो ऊपर से एक बड़ी चादर ओढ़ती हैं, परंतु शहर में अब नए फ़ैशन की स्त्रियां इस को एक व्यर्थ बोझ समझ कर छोड़ती जाती हैं। भले घरों की मुसलमान स्त्रियां चूड़ीदार पायजामों पर ओढ़नी ओढ़ती हैं परंतु अब कुछ नए फ़ैशनवाली बीबियां साड़ियां पहनने लगी हैं।

५—गहने

चाँदी के गहने अधिकांश गाँवों में पहने जाते हैं और बहुधा भारी होते हैं। उन का ब्योरा इस प्रकार है:—

सिर पर बंदी (प्रायः बनियों में); कानों में ढार (ढाल) करनफूल, बाली-पत्ते (मुसलमानों में); नाक में बुलाक़, गले में तौक़ (मुसलमानों में) हँसुली, तावीज़, ढोलना जुगनूं, हमेल, कठुला; हाथों में छल्ला, मुँदरी, अँगूठी आरसी, मोतेहरा (पछेलिया), छन्न कड़ा, कंगन, पहुँची, तोड़ा, बाज़ूबंद, टँडिया, बैरखी, जौशन, बहुँटा; कमर में करधनी; पाँव में ठोस या झाँझ कड़ा, पायज़ेब, छड़ा, लच्छा, छागल और पाँव की उंगलियों में आठे, छल्ले और बिछुए पहने जाते हैं।

अहीरों की स्त्रियां हाथ में चूड़ियों की जगह चाँदी या फूल का चौड़ा अगेला पहनती हैं, पर अब शहरों की अहीरनें इस की जगह चूड़ियां पहनने लगी हैं। गाँवों में अधिकांश और शहर में कुछ नीची जाति की स्त्रियां पाँवों में काँसे या फूल के कड़े और प्रायः यमुना पार में पैरी पहनती हैं जो कुछ चौड़ी छागल के ढंग की होती हैं।

शहर में सिवाय ग़रीबों के चाँदी का गहना अब केवल पाँव में पहना जाता है। अब शहर में अहीरों और कहारों की स्त्रियां भी पाँवों में चाँदी के लच्छे और कड़े पहनने लगी हैं।

सोने के गहनों का वृत्तांत यह है कि सिर में सीस-फूल, झूमड़, टीका, वेना; कान में करनफूल झूमक, बाली, पत्ता; नाक में नथ, बुलाक़, बेसर, कील, लौंग; गले में हँसुली गुलूबंद, पँचलड़ी तौक़, माला, हार; बाँह पर जौशन, बाज़ूबंद, अनंत; हाथ में पछेलिया छल्ल, तोड़ा, पहुँची, कंगन, चूड़ी, पटरी, कड़ा; उँगलियों में अँगूठी और कमर में करधनी पहनी जाती हैं।

इन में से टीका, बेना, नथ और बेसर का रवाज अब अधिकांश गाँवों में रह गया है। बुलाक़ पहले हिंदू स्त्रियां बिल्कुल नहीं पहिनती थीं, पर पीछे थोड़े दिनों से इस का रवाज कुछ अधिक बढ़ा था, अब फिर बहुत कम हो रहा है।

पहले पुरुष भी नगीनेदार अँगूठियां पहनते थे। अब अधिकांश अंग्रेज़ी चाल की सादी अँगूठियां पहनी जाती हैं, जिन में कुछ लोग अपने नाम के प्रारंभिक अक्षर खुदा लेते हैं और जिन को दाहिने हाथ के स्थान में अंग्रेजों की देखा-देखी बाएं हाथ में पहनने लगे हैं। पहले प्रागवाल, बनिए, पहलवान और कुछ गुंडे गले में सोने के मोटे-मोटे कंठे पहनते थे, पर इस का रवाज अब बहुत कम हो गया है। अग्रवाल, खत्री, ब्याह-शादी के अवसर पर गले में कई लड़ी की सोने की बारीक ज़ंजीर पहनते हैं। अहीर, कुरमी और काछी इत्यादि गले में सोने का ढोलना और मुहर और कुछ लोग कानों के लव में छोटे-छोटे दोहरे छल्ले पहनते हैं। इन जातियों के लोगों तथा कहारों में हाथ में चाँदी के कड़े पहनने का भी रवाज है, जिस को गंगा और यमुना-पार में 'ढरकौआ' कहते हैं। बनिए और कलवार इत्यादि उँगलियों में लपेटदार सोने के छल्ले पहनते हैं, जिस का नाम 'फेरवा' है। पहले प्रायः बनिए-कलवार कमर में चाँदी की करधनी और ये लोग तथा कुछ और ऊँची जातिवाले पाँव के अंगूठे में छल्ला पहनते थे। अब यह रवाज बहुत कम हो गया है।

६—वेश-भूषा

पहले भले आदमी बहुधा सिर पर बड़े-बड़े बाल गर्दन तक रखते थे, जिस का नाम 'पट्टा' था। इस के बीचो-बीच मांग निकाली जाती थी। जो लोग सिर पर छोटा बाल रखते थे उस का किनारा मत्थे के ऊपर छुरे से ठेक दिया जाता था, जिस को 'ख़त' कहते थे। कुछ लोग सिर पर बालों के बीच में थोड़ी सी जगह चौकोर मुँड़ा देते थे और उस का लाभ यह बताया जाता था, कि इस से सिर की गर्मी निकल जाती है और मस्तिष्क ठंडा रहता है। कोई-कोई बीचो-बीच से अर्थात् चोटी के इधर सामने की ओर कपाल पर चूल्हे के अनुरूप मुंड़ाते थे। अधिकांश यमुना-पार के गाँवों में आधा सिर सामने की ओर मुड़ाने का रवाज था।

अब धीरे-धीरे इन वेशों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। लोग सिर के पीछे छोटे और आगे बड़े बड़े बाल रखते हैं और उन में या तो बीचोबीच से या बाईं ओर से

माँग निकालते हैं। परंतु शहर में एक नया फ़ैशन यह निकला है कि आगे के बालों को तेल या पानी लगा कर कंघी या बुरुश से पीछे की ओर फेर देते हैं और इस लिए उन में कोई माँग नहीं निकलती। दूसरा फ़ैशन यह भी चला है कि कुछ लोग सिर पर बड़े-बड़े बाल कंधों के नीचे तक रखने लगे हैं।

पहले बहुधा क्षत्रिय और कायस्थ बड़ी-बड़ी दाढ़ियां रखते थे, और कुछ लोग ऊपर चढ़ाते थे। क्षत्रियों और पुराने चाल के ईसाइयों में यह भी रवाज था कि बीच में ठुड्ढी के ऊपर से थोड़ी सी दाढ़ी मुँड़ा दिया करते थे। फिर पीछे अंग्रेजी फ़ैशन के लोग नोकदार दाढ़ी रखने लगे, जिस को फ्रेंच-कट कहते थे। परंतु अब एक प्रकार से दाढ़ियां बिल्कुल बिदा हो गई हैं, यहां तक कि मुसलमान भी जो कम से कम ख़सख़सी अर्थात् छोटी-छोटी दाढ़ियां रखते थे, अब बहुत कम दाढ़ी रखते हैं।

पहले जो लोग दाढ़ी मुँड़ाते थे, वे कानों के नीचे कुछ दूर तक छोटे-छोटे बाल जो ऊपर कम और नीचे कुछ चौड़े होते थे छोड़ देते थे, जिस को 'क़लम' कहते थे। अब इस का भी रवाज जाता रहा, परंतु थोड़े दिनों से कुछ नए फ़ैशनवालों ने फिर इस को आरंभ किया है।

मूँछें भी पहले बड़ी-बड़ी रक्खी जाती थीं और बहुधा लोग उन के दोनों सिरों को ऐंठ कर नोकदार कर दिया करते थे। फिर विशेष कर अंग्रेजी पढ़े-लिखों ने इतना अधिक मूँछें मुँड़ाना आरंभ किया [1] कि महाकवि 'अकबर' को कहना पड़ा था :—

कटै न कहीं नाक फ़ैशन के पीछे। मुँड़ी जिस तरह मूँछ कर्ज़न के पीछे॥

अब भी मूँछों के मुँड़ाने की चाल है, परंतु थोड़े दिनों से कुछ लोग ऐसी मूँछें रखने लगे हैं कि नथनों के नीचे थोड़ा-सा बाल छोड़कर दोनों सिरे मुँड़ा देते हैं। इस का नाम 'बटरल्फ़ाई' है।

पहले शौक़ीन मर्द भी आँखों में सुर्मा और कुछ लोग दाँतों में मिस्सी लगाते थे, परंतु अब इस का रवाज जाता रहा, यहां तक कि स्त्रियों में भी ये चीज़ें कम हो रही हैं।

तीन त्योहारों अथवा मंगल कार्य्यों के अवसर पर और कभी-कभी बीच-बीच में भी, यह रवाज है कि भले घरों में नायनें आकर प्रायः सधवा स्त्रियों और कुमारियों के पाँवों को लाल रंग की रेखाओं से रँगती हैं, जिस को महावर कहते हैं। इस का रवाज अब भी है, परंतु शहर में स्त्रियां जब चाहती हैं अपने पाँव को बाज़ार के मामूली लाल रंग से भी रंग लिया करती हैं।

शहर में प्रायः नीची जाति की और गाँवों में कुछ ऊँची जाति की भी स्त्रियां शोभा के लिए शरीर (विशेषतः कलाई) में गहरे नीले रंग का गोदना गोदाती हैं; अब नए फ़ैशन के कुछ पुरुष भी कलाई और भुजा में विविध रंग के गोदने गोदाने लगे हैं।

---

[1] हिंदुओं में पिता के जीवन-काल में पुत्र का मूँछें मुँडाना अशुभ समझा जाता है, परंतु अब फ़ैशन ने इस विचार को बहुत कुछ शिथिल कर दिया है।

कुमारी लड़कियाँ मत्थे पर सिंदूर लगा सकती हैं, परंतु जब तक ब्याह न हो माँग सादी रखती हैं। काश्मीरी कुमारियां और सधवा स्त्रियां माथे पर सिंदूर लगाना बहुत आवश्यक समझती हैं। माथे पर टिकली चिपकाने का रवाज कुछ कम हो रहा है। फिर भी बहुधा स्त्रियां शृंगार के समय इस को भी लगा लेती हैं। भले घरों की स्त्रियां बहुत छोटी टिकली लगाती हैं। नीची जातिवालों में अनेक प्रकार की बड़ी-बड़ी लंबी और गोली टिकलियां लगाई जाती हैं। मुसलमानों में सिंदूर और टिकली का रवाज नहीं है, परंतु गांवों में बहुधा मुसलमान धोबिनें सिंदूर लगाती हैं।

(७) घर-गृहस्थी की आंतरिक मर्यादा

स्त्रियां अपने पति का नाम कभी नहीं लेतीं, परंतु अब कुछ नई रोशनी के लोग अपनी स्त्रियों से स्वयं अपना नाम लिवाने लगे है। प्राय: स्त्रियां अपने ससुर, जेठ, देवर यहां तक कि अपने बड़े लड़के का भी नाम नहीं लेतीं, परंतु इन के नाम लेने में इतना कठोर बंधन नहीं है, जितना कि पति के नाम लेने के लिए है। आरंभ में बहुएं बहुत दिनों तक ससुर और जेठ से नहीं बोलतीं; फिर धीरे-धीरे यह नियम कुछ ढीला हो जाता है। जेठ से तो यहां तक सावधानी की जाती है कि एक दूसरे को छू भी नहीं सकते। जेठ का पहना हुआ वस्त्र भायाहू नहीं पहन सकती, और न सिवाय रेल के, एक सवारी पर दोनों एक साथ बैठ सकते हैं। परंतु अब इस नियम का पालन प्राय: देहात के भले घरों में होता है। ससुर, जेठ या पति के सामने बहुएं भोजन भी नहीं कर सकतीं।

स्त्रियों के सिर पर माँग का सिंदूर और हाथों की चूड़ियां सोहाग के मुख्य चिह्न माने जाते हैं। इस लिए पति की मृत्यु के पश्चात् उस की विधवा माँग में सिंदूर नहीं भर सकती। इस नियम का पालन अनिवार्य रूप से सभी विधवा स्त्रियां करती हैं, परंतु गाँवों में प्राय: ब्राह्मणों में इस के अतिरिक्त यह भी प्रथा है कि विधवाएं हाथों में काँच की चूड़ियां, तथा पाँवों में कड़े और बिछुए भी नहीं पहनतीं, न रंगीन वस्त्र धारण करती हैं, और न दाँतों में मिस्सी लगाती हैं। भले घरों की मुसलमान विधवाएं भी पायजामे पर रंगीन ओढ़नी नहीं ओढ़तीं और न हाथों में काँच की चूड़ियां पहिनती हैं।

इस में कोई संदेह नहीं है कि स्त्री-शिक्षा के प्रचार से हिंदुओं में परदे का बंधन कुछ ढीला हो रहा है, पर उन में सब से अधिक अग्रसर नव-शिक्षित काश्मीरी मंडली है।

पहले लड़के बड़ों के सामने हुक्का नहीं पीते थे। परंतु शहर में यह मर्यादा बहुत भंग हो गई है, जहां हुक्के की जगह अब सिगरेट और बीड़ी पीने का अधिक रवाज है। शहर में नीची जाति की कुछ स्त्रियां तमाकू पीती हैं, परंतु भले घरों की देवियां अभी इस दोष से बची हुई हैं। अलबत्ता गाँवों में सभी जाति की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां बहुधा तमाकू खाती हैं।

(८) खेल तथा व्यायाम

गोली, गुल्ली, कबड्डी और अधिकांश लड़के खेलते हैं। पतंग भी उड़ाते हैं। बड़े लोगों में कुछ शतरंज, ताश, चौपड़ (चौसर) और पच्चीसी इत्यादि खेली जाती है; और जिन को लत पड़ जाती है वे कबूतर उड़ाते हैं और मेंढा या तीतर लड़ाते हैं।

मेलों के अवसर पर कुछ युवक गतका-फरी, बाँक और छुरी, तलवार इत्यादि का संचालन फुर्ती के साथ दिखाते हैं। कुछ लोगों को कुश्ती और पहलवानी का शौक़ होता है। गाँवों में प्रायः बरसात में लोग शरीर में मिट्टी लगा कर निकलते हैं, जिस को पहलवानी का चिह्न समझा जाता है, परंतु शिक्षित समुदाय ने इन की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। वे अधिकांश क्रीकेट और टेनिस इत्यादि अंग्रेज़ी खेल पसंद करते हैं। ताश और शतरंज भी अंग्रेज़ी ढंग से खेलते हैं। जिन को कसरत का शौक़ होता है, वे डंड-मुगदर की अपेक्षा डम्बेल के व्यायाम को अधिक सभ्य तथा उपयोगी समझते हैं।

आगरा प्रभृति नगरों में तैराकी के मेले पहले से होते आ रहे हैं, परंतु यहां ऐसी प्रथा न थी। अब थोड़े दिनों से यहां भी, विशेष कर बंगाली युवकों ने, इस ओर ध्यान दिया है, और कुछ संदेह नहीं कि उन्हों ने इस कला में बड़ी उन्नति कर दिखाई है। अब ८-६ वर्ष से ओरियंटल क्लब की ओर से यहां भी हर साल तैराकी की रेस (दौड़) हुआ करती है। आज कल राय साहब लालमोहन बनर्जी, उपनाम मिट्ठू बाबू तथा श्री रोबीन चटर्जी यहां के सर्व-श्रेष्ठ तैराकों में समझे जाते हैं।

(६) वाद्य तथा संगीत इत्यादि

ढोल, ताशा, तुरुही-डफला और शहनाई-रौशन चौकी यहां के पुराने बाजे हैं। फिर अंग्रेज़ी बैंड का रवाज हुआ। अब कुछ दिनों से एक और बाजा निकला है, जिस को मशक-बीन कहते हैं। यह भी बैंड के सदृश कई बाजों का समूह है, जिस को खड़े हो कर मुँह से बजाते हैं और उस के साथ ताल के लिए ढोलक होता है।

यहां पर यह बता देना असंगत न होगा कि इन बाजों के बजानेवाले अधिकांश मुसलमान ही हैं, सिवाय तुरुही के जिस को हिंदू मेहतर बजाते हैं। कहीं-कहीं ढोल, ताशा और शहनाई भी मेहतर बजाते हैं।

इस से इन्कार नहीं किया जा सकता कि औरों की अपेक्षा बंगालियों में संगीत का प्रचार अधिक है, परंतु उन्हों ने कुछ देशी बाजों के साथ अनेक मुँह तथा हाथ से बजनेवाले विदेशी बाजों को भी अपना लिया है, जिन में बेला और हारमोनियम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। हारमोनियम ने तो क्या बंगालियों क्या हिंदुस्तानियों सभी समाजों में इतना घर कर लिया है कि अब सारंगी अथवा सितार बजानेवाले विरले मिलते हैं। कारण स्पष्ट है। एक तो इन बाजों का अभ्यास कुछ कठिन है, दूसरे इन में स्वर मिलाने का खटराग रहता है; और यह सभी जानते हैं कि हम लोग सुगमता की ओर ही अधिक झुकते हैं। इस समय यहां के सर्व-श्रेष्ठ गायनाचार्य श्री प्रोफ़ेसर रघुनाथराव एकनाथ पंडित तथा वादनाचार्यों में हारमोनियम बजाने में श्री किरणकुमार मुकर्जी उपनाम नीलू बाबू, बेला में श्री गगनचंद्र चटर्जी, सितार में श्री अमिलिया दीन और तबला में पं० शंकर तिवारी प्रवीण समझे जाते हैं।

बरसाती गानों में यहां पहले सावन और कुछ पूर्वी गानों का रवाज था। परंतु थोड़े दिनों से उस की जगह कुछ लोग मिर्ज़ापुरी ढंग की कजली गाने लगे हैं। इन्हीं दिनों बहुधा गाँवों में आल्हा ढोलक और मजीरे पर बड़े जोश के साथ गाया जाता है।

अन्य प्रकार के संगीत के साथ ढोलक और मजीरे का रवाज अब अधिकांश गाँवों में रह गया है। सब से छोटा बाजा ख़ंजड़ी है, जिस में किनारे-किनारे घुँघुरू या छोटी-छोटी झाँझें सी लगी रहती हैं। इस को इस ज़िले में अधिकांश साधु लोग भजन गाते समय बजाते हैं।

पहले कुछ शौक़ीन लोग बाँसुरी बजाते थे। पीछे इस की एक मंडली सी स्थापित हुई, जिस में ढोलक भी साथ रहा करता था। उन के संयुक्त स्वर से एक प्रकार की लय उत्पन्न होती थी। उसी के साथ कुछ लोग एक या सवा फ़ुट की रंगीन डंडियां दोनों हाथों में लेकर, घेरा बनाकर खड़े हो जाते थे और एक आदमी उन के बीच में उसी तरह की डंडियां लेकर खड़ा होता था, जो बड़ी फ़ुर्ती से घूम-घूम कर अपने इर्द-गिर्दवालों की डंडियों पर अपनी डंडी क्रमशः मार-मार कर, ताल के साथ बजाता था। इस के बजाने में बड़े अभ्यास की आवश्यकता थी, कि ताल के ऊपर कोई हाथ ख़ाली न जाने पावे। उन सब के वस्त्र भी प्रायः एक ही रंग के हुआ करते थे। ऐसी मंडलियां विशेष कर दसहरे के मेले के साथ निकलती थीं जो, खेद है, कि दसहरा बंद होने से अब लुप्त हो गई हैं।

कुछ दिनों से ग्रामोफ़ोन का भी रवाज, ज्यों-ज्यों सस्ता हो रहा है, अधिक बढ़ता जाता है।

'रहसधारी' और 'इंद्रसभा' यहां के पुराने नाटक हैं। इन्हीं में 'कठपुतली' के नाच को भी सम्मिलित कर देना चाहिए। रहस अब भी जन्माष्टमी इत्यादि के अवसर पर हो जाया करते हैं। कहीं-कहीं कठपुतली के तमाशेवाले भी देख पड़ते हैं। परंतु इंद्रसभा का खेल अब बिल्कुल बंद हो गया है। हम ने अपने बचपन में स्वयं इस को देखा था; और यह भी याद है कि किस उत्कंठा के साथ लोग इस को देखने के लिए उत्सुक रहा करते थे। फिर थियेटरों का ज़माना आया और उन की ख़ूब भरमार हुई। अब उन पर भी ओस-सी पड़ रही है, और सिनेमा की इतनी कसरत हो गई है कि उस का देखना एक प्रकार का फ़ैशन-सा बन गया है। कुछ पढ़े-लिखे लोगों और विद्यार्थियों में थोड़े दिनों से ड्रामा का रवाज अधिक हो गया है। कुछ दिनों से गाँवों और शहरों में नीची श्रेणी के लोगों में 'नौटंकी' का नाच बहुधा होता है। इस में नगाड़े पर गाने के साथ एक स्वाँग पूरनमल का होता है। यह एक बहुत ही भद्दा और अश्लील खेल है।

अब वेश्याओं के नाच की कुछ चर्चा की जाती है। इस में भी बड़ा परिवर्तन हुआ है। पहले यहां शहर में नाच की दो प्रकार की मंडलियां थीं। एक सस्ती ग़रीबों के लिए जिस में नर्तकी, जहां तक मुझे याद है, धोती के ऊपर रंगीन चादर ओढ़ कर नाचती थी और उस के साथ ढोलक और मजीरा बजता था। इस नाच को यहां लोग 'मिर्ज़ापुरिन' कहते थे। अब यह बिल्कुल बंद हो गया है। इस के स्थान में शहर में कुछ छोकरों के नाच की मंडलियां बन गई हैं, जिन में कुछ मुसलमान और कुछ हिंदू कथक हैं। गाँवों में भी नाच की कहीं-कहीं सस्ती मंडलियां हैं। इन में से कुछ मुसलमान हैं। जो हिंदू हैं उन को 'बेड़िनें' या 'रामजनी' कहते हैं। उन की अपनी बिरादरी होती है। उन के साथ भी

नाच में सारंगी और तबला-मजीरा बजता है। ये देहाती रंडियां प्रायः घोड़ों पर चढ़ कर नाचने जाती हैं।

दूसरा तायफ़ा रंडियों का है। पहले प्रत्येक भले आदमी के यहां ख़ुशी के अवसर पर इन का नाच कराना बहुत ही आवश्यक समझा जाता था। यहां तक कि ब्याह के मंडप की भूमि बिना उन के पदार्पण के पवित्र नहीं होती थी। कुछ मनचले लोग यों भी दिल बहलाव के लिए उन को बिठाल कर गाना सुनते थे; जिस को 'मुजरा' कहते हैं। परंतु कुछ दिनों से प्रयाग में हिंदू और मुसलमान दोनों में नाच मुजरे का रवाज बिल्कुल बंद-सा हो रहा है। रंडियों के वेष में भी कुछ परिवर्तन हो गया है। वे अब नाच के समय कलाई पर घड़ी बाँधती हैं। साड़ी के ढंग की सादी पेशवाज़ धारण करती हैं और पाँवों में मोज़े पहनती हैं। कुछ समय पूर्व यहां की रंडियों में सब से मशहूर गानेवाली जानकीबाई समझी जाती थी जिस के बहुत से गाने ग्रामोफ़ौन के रिकार्डों में भरे हुए हैं।

रुपएवालों के यहां रंडियों के जलसे के साथ भाड़ों का भी स्वाँग और नाच हुआ करता था। इन की भी पूरी मंडली होती थी। परंतु अब इन के नाच का रवाज यहां बिल्कुल उठ गया है। हमारे बचपन में यहां सब से नामी और मशहूर भाँड करारी के निकट रक्सवारे का पीरू था, जिस का बुलावा दूर-दूर से आया करता था।

शादी-ब्याह के अवसर पर नीची जातियों में विशेष ढंग का मर्दाना नाच-गाना हुआ करता है। जैसे अहीरों में कुछ लोग खारुये का कुछ ऊँचा लंहगा के ढंग का कपड़ा पहन कर, नगाड़े पर, जिस को बघेली कहते हैं, गाते और उछल-कूद कर एक प्रकार का तांडव नृत्य करते हैं। ये लोग अनेक प्रकार की कसरत दिखाते हैं। इन का गाना विशेष प्रकार का होता है, जिस को 'बिरहा' कहते हैं।

कहार भी अपने शादी-ब्याह में स्वयं नाचते-गाते हैं। इन का एक विशेष लंबा बाजा अर्ध-पखावज के रूप का होता है, जिस को 'हुडुक' कहते हैं। यह एक ही ओर चमड़े से मढ़ा रहता है और उसी ओर से बजाया जाता है। ये लोग भी रंगीन वस्त्र और घुँघुरू पहनकर नाचते हैं और सिर पर बड़े-बड़े बाल रखते हैं।

सब से सुव्यवस्थित मंडली चमारों की होती है। इस में मुख्य बाजा एक फूल या काँसे का चपटा कटोरा-सा होता है, जिस को एक हाथ में टाँग कर दूसरे से लकड़ी द्वारा बजाते हैं। इस का नाम 'कसावर' है। इसी से लय पैदा होती है। इस के साथ ताल के लिए मृदंग बजाते हैं। नाचनेवाले मूँछें मुँडाये रहते हैं, सिर पर लंबे-लंबे बाल रखते हैं; और उस पर कभी-कभी टोपी भी पहन कर नाचते हैं। ये लोग पाँवों में घुँघुरू बाँधते हैं और एक लंबा रंगीन वस्त्र लहँगा के समान पहनते हैं। इन की मंडली में एक विदूषक भी होता है, जो बीच-बीच में नक़लें कर के लोगों को हँसाता रहता है।

धोबी भी एक प्रकार का बिरहा कसावर और मृदंग पर गाते हैं। गाँवों में नीची जातिवालों के सिर पर जब देवता आते हैं या विशूचिका अथवा शीतला आदि के प्रकोप

में जब ग्राम-देवियों या देवताओं की पूजा की जाती है तो बहुधा कसावर और ढोलक का प्रयोग किया जाता है। ऐसे अवसर पर कभी-कभी नगड़िया भी बजती है।

डफ़ालियों का बाजा सब से निराला है, जो छलनी के आकार का एक ओर चमड़े से मढ़ा हुआ होता है; और उस के घेरे में छोटे-छोटे झाँझ लगे रहते हैं। इस को 'रबाना' कहते हैं। ये लोग ग़ाज़ी मियां के गीत गाते हैं, जिस को 'पचरा' कहते हैं।

स्त्रियों के संगीत में सामान्य दृष्टि से इतना परिवर्तन हुआ है कि पुराने गीतों के साथ-साथ वे कुछ ग़ज़ल और राष्ट्रीय गीतें गाने लगी हैं। इन का पुराना बाजा ढोलक मजीरा है, परंतु कुछ शिक्षित स्त्रियां अब बहुधा हारमोनियम भी बजाने लगी हैं। यहां पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि शिक्षित स्त्रियों में अब खुले तौर से नृत्य का भी रवाज होता जाता है।

यदि इन के गीतों के विषय पर दृष्टि डाली जाय तो उन में पुरुषों के गीतों की अपेक्षा दूषित शृंगार-रस की मात्रा कम होती है। वे अधिकांश अपने पति के प्रति 'पिया' 'सैयां' 'राजा' तथा 'बालम' इत्यादि नामों से, अपने हृदय के विशुद्ध प्रेम का उद्‌गार प्रकट करती हैं। यह अवश्य है कि उन के गीत प्रायः मूर्ख-स्त्रियों के बनाए हुए हैं। उन में कुछ तो बहुत ही भावपूर्ण होते हैं, जिन में गार्हस्थ्य जीवन का सच्चा चित्र झलकता है, पर बहुत से निरर्थक होते हैं और उन में अधिकांश तुकबंदी ही होती है।

इस से इन्कार नहीं हो सकता कि ब्याह के अवसर पर बरात को जिमाते समय बड़े-बड़े भले घरों की स्त्रियां निर्लज्ज हो कर अश्लील गालियां गाती हैं, जिस का कारण सिवाय रवाज के और क्या कहा जा सकता है? परंतु स्त्री-शिक्षा के प्रचार से इस में भी अब कमी हो रही है।

(१०) जनता के भ्रम-मूलक विश्वास

प्रायः नीची जाति के लोग टोना, नज़र और भूत-प्रेत पर बहुधा विश्वास रखते हैं और बीमारी की दशा में दवा की अपेक्षा झाड़-फूँक तथा ओझाई इत्यादि को अधिक उपयोगी समझते हैं। प्रायः स्त्रियों और कुछ पुरुषों के सिर पर देवी-देवता आते हैं और वे बड़े वेग के साथ सिर हिलाने लगते हैं, जिस को 'अभुआना' कहते हैं। इस के साथ कसावर और ढोलक या नगड़िया का बजना आवश्यक है। जब गाँवों में विशूचिका आदि संक्रामक रोग फैलते हैं तो उस समय देवियों की पूजा बड़े ज़ोर के साथ होती है। स्त्रियां किसी निश्चित स्थान पर एक-एक लोटा जल ले जाती हैं और देवियों के पंडे या पुजारी के आदेशानुसार उस जल को पृथ्वी पर गिराती हैं, जिस को 'धार-तपौना' कहते हैं। विशेष अवसर पर फल-फूल के बड़े-बड़े ढोकरे चौराहों पर रक्खे जाते हैं। कभी-कभी देवी की तृप्ति के लिए कुछ मदिरा और सूअर के बच्चों का बलि चढ़ाया जाता है, जिस को 'जिवाध' कहते हैं।

अंतर्वेद में पश्चिम की ओर 'दुल्हा' और 'गोरय्या' और कहीं कहीं 'हनुमान जी' भी पूजे जाते हैं। गंगापार में उत्तर की ओर 'बलराजा' और यमुना-पार में पूर्व की ओर

'हरदिहा देव' अधिक पूजे जाते हैं। देवियों की पूजा लगभग सभी जगह होती है, जिन के मुख्य-मुख्य नाम 'दक्खनी' 'मसुरिया,' 'आनंदी', 'काली', तथा 'फूलमती' इत्यादि हैं।

पहले बहुधा हिंदू मुहर्रम के ताज़िये को भी मानते थे, परंतु अब कुछ नीची जाति-वालों के सिवाय और लोगों ने इस को बहुत कुछ छोड़ दिया है। कुछ नीची जाति के लोग और बहुधा कलवार ग़ाज़ी मियां को मानते हैं। इन में कुछ लोग जो मुसलमानों के रोज़े के दिनों में ५ दिन व्रत रखते हैं, 'पचपिरिहा' कहलाते हैं।

(११) तीज-त्योहार

इस प्रसंग में हम केवल उन त्योहारों की चर्चा करना चाहते हैं, जो इस ज़िले के किसी भाग में तो ख़ूब मनाए जाते हैं, परंतु किसी ओर या तो बिल्कुल नहीं मनाए जाते या बहुत ही साधारण रीति से माने जाते हैं। इन की सूची यह है।

(१) ढिढ़िया--यह आश्विन शुक्ल १४ की रात को अंतर्वेद में प्रयाग नगर तक ख़ूब मनाया जाता है, परंतु गंगा और यमुनापार में कोई इस का नाम तक नहीं जानता। यह त्योहार विशेष कर लड़कियों और स्त्रियों का है। कुम्हार छोटी-छोटी हाँड़ियाँ बनाकर, जब वह कुछ गीली रहती हैं, उन के घेरे में चारों ओर नुकीले लोहे से बेल-बूटे से कतर कर एक प्रकार की मानों कंदील बना देते हैं। इसी का नाम 'ढिढ़िया' है। स्त्रियां शामको इस में दिया जला कर रखती हैं और अपने भाइयों तथा पिता और चचा इत्यादि के सिर पर आरती के समान उतारती हैं; और उन से अपना कुछ नेग (हक़) लेती हैं। प्रायः नीची जातियों में जो लड़कियां कोस-दो-कोस पर ब्याही होती हैं, वे उस दिन ढिढ़िया उतारने अपने नैहर अवश्य जाती हैं। ढिढ़िया उतारने के बाद रास्ते में पटक कर फोड़ दी जाती है और दो एक घर में शोभा के लिए कुछ दिन रक्खी रहती हैं। उस दिन लाई चयोड़ा और रेवड़ियों की बिक्री ख़ूब होती है और इस अवसर पर कई दिन पहले से एक विशेष प्रकार का गाना होता है। उन गीतों का नाम भी 'ढिढ़िया' है।

(२) कजली—यह भी स्त्रियों का त्योहार है जो भादों बदी तीज को गंगा और यमुना-पार में ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर जाइए अधिक समारोह के साथ मनाया जाता है। लड़कियां कई दिन पहले से जौ बो देती हैं और उस को कजली के दिन उखाड़ कर कुछ तालावों में बहा देती हैं; और कुछ अपने भाइयों और बड़ों के कानों में खोस कर नेग लेती हैं। इस अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं, वे अंतर्वेद के ढिढ़ियावाली गीतों से कुछ मिलते-जुलते होते हैं।

(३) नागपंचमी—यह त्योहार ज़िले भर में सावन के शुक्लपक्ष में मनाया जाता है। भेद इतना है कि अंतर्वेद में उस दिन लड़कियां छोटी-छोटी गुड़ियां बनाकर तालाब में फेंकती हैं और लड़के उन को प्रायः नीम की हरी-हरी छड़ियों से पीटते हैं। परंतु गंगा और यमुना-पार में दक्षिण और पूर्व की ओर उस दिन केवल नाग देवता का पूजन होता है।

(४) गंगौर—यह त्योहार चैत्र शुक्ल ३ को स्त्रियां और लड़कियां मनाती हैं। परंतु गंगा और यमुना-पार की अपेक्षा अंतर्वेद में यह बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। वहां गाँव के बाहर बाग़ों में इस का मेला लगता है, जहां लड़कियां और स्त्रियां नगाड़े पर गाती-बजाती और कुछ नाचती भी हैं।

(१२) सामान्य जनता की नैतिक अवस्था

परगना अथरबन को छोड़ कर शेष दोआब के लोग ज़िले भर में अधिक पढ़े-लिखे और चतुर हैं, जिस में परगना चायल सब से आगे है। चायल और अथरबन के लोग सब से अधिक लड़ाके समझे जाते हैं। यही दशा परगना बारा के मझियारी नामक गाँव की है।

शिक्षा की दृष्टि से दोआब के पश्चात् गंगा-पार और तहसील करछना के परगना अरैल का नंबर है। तहसील मेजा के उत्तरी भाग अर्थात् सिरसा और उस के निकट-वर्ती स्थानों को भी इसी में सम्मिलित समझना चाहिए।

ज़िले के शेष भाग अर्थात् मेजा और बारा के दक्षिणी खंड के लोग अधिक अपढ़ और कुछ सीधे-सादे हैं, परंतु वे भी अब पहले से कुछ अधिक चतुर होते जाते हैं।

मेजा के दक्षिणीय भाग में मुसहरों की एक जाति है। ये लोग बड़े असभ्य और अत्यंत दरिद्र हैं। परंतु ये कभी चोरी नहीं करते और बहुत ही विश्वास-पात्र होते हैं। जंगल के पत्ते सूखी लकड़ी शहद और जड़ी-बूटियां बेच कर अपना निर्वाह करते हैं। कभी-कभी पालकी उठाने का भी काम करते हैं।

परंतु जो मुसहरे गंगा-पार में आकर बसे हैं उन का रंग-ढंग बदल गया है और उन में भी वही दोष आने लगे हैं; जो निम्न श्रेणी की अन्य जातियों में पाए जाते हैं।

ज़िले भर में चमार सब से निर्बल और ग़रीब जाति हैं। इन का मुख्य उद्यम मज़दूरी करना है। देहात में अधिकांश हलवाही का काम यही लोग करते हैं। शहरों में साईसी, साहब लोगों की ख़िदमतगारी, मिलों तथा कारख़ानों में और अन्य प्रकार की फुटकर मज़दूरी और छोटी-मोटी नौकरी करते हैं।

पासी, डोम, कोल और नट इस ज़िले में बदमाश जातियां समझी जाती हैं, जिन में पासी सब से अधिक चोरी के लिए बदनाम हैं।

इस ज़िले में पिछले १० वर्ष के भीतर मुख्य-मुख्य अपराधों में कितने लोगों को अदालत द्वारा दंड दिया गया, इस का एक ब्यौरा पाठकों की जानकारी के लिए दिया जाता है।

(आगे के पृष्ठ पर)

सन्	वध तथा आत्मघात के लिए उद्योग	संगीन मारपीट	बलात् व्यभिचार	चोरी	डकैती अर्थात् बलात् अपहरण	जिन लोगों से नेक-चलनी के लिए ज़मानत ली गई	जिन लोगों से शांति भंग न करने के लिए ज़मानत ली गई	जिन लोगों को शराब बनाने और बिना आज्ञा अफ़ीम बेंचने में दंड दिया गया
१९१९	१५	४९	...	४६९	१०	७१	५६	१९७
१९२०	१४	७६	२	३४८	४	११८	११३	१५५
१९२१	१३	७८	...	३६१	९	९१	१७५	२३९
१९२२	१२	३४२	१	२७३	६	२६८	१७०	४६२
१९२३	१३	३४६	६	२७५	३	१९०	२४	४००
१९२४	२१	४०७	२	३५३	३	१६०	१८०	४४४
१९२५	१५	३५२	५	३१३	१६	१३३	१९०	३५१
१९२६	२०	३४०	२	२९३	८	१०५	११५	३४७
१९२७	२४	४२१	३	३०९	६	१२४	१७	३१४
१९२८	३०	४३१	४	३६०	५	१७४	१२६	४५६

नीची जातिवालों में विवाहिता स्त्रियों के भगा ले जाने के मुक़दमे अधिक होते हैं।

ऊपर के अंकों पर टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। पाठक स्वयम् देख सकते हैं कि सिवाय चोरी और बलात् अपहरण के सभी अपराधों में दंडित पुरुषों की संख्या पहले से अधिक बढ़ रही है, जो प्रयाग के ज़िले के निवासियों के लिए अत्यंत लज्जास्पद है।

इधर १०-१५ वर्ष से शहर में कोकेन की गुप्त-रूप से बिक्री की शिकायत अधिक बढ़ती जाती है। उधर देहात में जब से शराब मँहगी हुई पासी लोग छिप कर शराब बनाते और बेचते हैं।

नीचे के अंकों से पता लगेगा कि इस ज़िले की जनता में मादक पदार्थों का कितना व्यय है।

सन्	व्यय १०० की आबादी पर		
	शराब	अफ़ीम	गाँजा-भंग
	गैलन	सेर	सेर
१९२३ – २४	१·६२	·०८	·७२
१९२४ — २५	०·९८	·०६	·५०
१९२५ — २६	१·२६	·०७	·६६
१९२६ — २७	१·२७	·०३	·६५
१९२७ — २८	१·३०	·०६	·७४

(१३) वर्ण-संबंधी जागृति

पढ़े-लिखे भाट अपने को 'ब्रह्मभट्ट' कहने लगे हैं और वे अपने को ब्राह्मण कहते हैं। इसी प्रकार जो जाति पहले यहां 'धूसड़ वैश्य' कहलाती थी, अब उस जाति के लोग अपने को 'भार्गव-ब्राह्मण' कहते हैं। अंतर्वेद के मध्य के ज़मींदार कुर्मी बहुत दिनों से ठाकुर कहलाते हैं और उन के नाम के पीछे 'सिंह' रहता है परंतु अब वे जनेऊ भी पहनने लगे हैं। गंगा-पार के कुछ अहीर भी अपने को 'आभीर क्षत्री' कहते हैं और यज्ञोपवीत भी धारण करने लगे हैं। इसी प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि शहर के अहीरों ने कुछ दिनों से पंचायत करके चौका-बर्तन साफ़ करने की नौकरी छोड़ दी है और तहसील मेजा के दक्षिणीय भाग के चमार घोड़े की लीद नहीं उठाते।

(१४) विवाह और मृत्यु-संबंधी रीति-रवाज

प्रत्येक जाति के रीति-रवाज भिन्न-भिन्न हैं। इस लिए यह विषय बड़े विस्तार का है। अतएव इस ज़िले में ऊँची-नीची जातियों में विवाह और मृत्यु के अवसर पर जो मुख्य-मुख्य रस्में प्रचलित हैं, केवल उन्हीं का उल्लेख संक्षेप से यहां किया गया है।

यहां के ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ तथा वैश्यों में जो ऊँची जाति में गिने जाते हैं, राशि-वर्ण आदि के मिलान के पश्चात् विवाह का सूत्र-पात 'वरिच्छा' या 'फलदान' के रस्म से होता है, जिस में किसी शुभ दिन कन्या की ओर से वर को थोड़ा-सा द्रव्य दिया जाता है। उस के पश्चात् कुछ अधिक द्रव्य और वस्त्र फिर भेजा जाता है, जो कुछ पूजा-पाठ के

साथ वर को भेंट किया जाता है। इस को 'तिलक चढ़ना' कहते हैं। फिर पंडितों के आदेशानुसार जब लग्न पड़ती है, तो उस दिन से वर-कन्या दोनों को अपने-अपने घर में तेल उबटन लगाया जाता है और उस का स्नान बंद कर दिया जाता है। इस संस्कार को 'तेल-चढ़ना' कहते हैं। फिर उभय पक्षवाले अपने-अपने घर के आँगन में बाँस के चार खंभों पर एक चौकोर फूस का मँडवा (मंडप) बनाते हैं, और उस के नीचे लकड़ी का एक कुछ छोटा खंभ गाड़ते हैं। गाँवों में प्रायः खेत का पटेला गाड़ा जाता है, परंतु शहर में मामूली लकड़ी के टुकड़े से काम चलाते हैं। मँडवे के नीचे कलस और गौरी-गणेश की स्थापना होती है और उस दिन से उन की तथा नवग्रहों की पूजा होने लगती है। बरात से दो दिन पहले का नाम 'सिल' और उस के दूसरे दिन का नाम 'मायन' है। तीसरे दिन बरात लगने से कुछ पहले मेवा-मिष्ठान्न इत्यादि जो लड़के-वाले लाते हैं, वह लड़की के यहां बाजे के साथ सजा कर भेजते हैं। इस को 'सुहगी' कहते हैं। फिर शाम को जब बरात सज कर बधू के द्वारे पर जाती है जिस में वर पालकी या मियाने और शहर में कोई-कोई मोटर पर जाता है, तो वहां कुछ पूजा-पाठ के साथ वर तथा उस के पिता का स्वागत कुछ द्रव्य तथा एक-आध वस्त्राभूषण के साथ किया जाता है। इस को 'द्वारपूजा' या 'दुआर चार' कहते हैं। बहुधा उसी रात्रि में विवाह-संस्कार हो जाता है, जिस के पहले दो-तीन मुख्य रस्में और होती हैं। अर्थात् द्वारपूजा के पश्चात् जनवास पहुँच कर कन्या की ओर से बरात को भोजन दिया जाता है। इस को 'भाजी खिलाना' कहते हैं। गाँवों में प्रायः यह दस्तूर है कि द्वार-पूजा के पहले बरात को कुछ भोजन नहीं देते, परंतु शहर में ऐसा नहीं है। फिर वर की ओर से वस्त्र और आभूषण कन्या के लिए भेजा जाता है। इस को 'चढाव चढ़ाना' कहते हैं। इस के पश्चात् लड़की को 'सुहाग' दिया जाता है, अर्थात् एक धोबिन अपनी माँग का सिंदूर लड़की की माँग में सात बार लगाती है। इस के बाद लड़की नहलाई जाती है। उस को वस्त्राभूषण, जो ससुराल से आता है, पहनाया जाता है और नाइन उस का नख काट कर पाँव को महावर से रँगती है। इस को 'नहछू' कहते है। याद रहे कि इसी प्रकार वर का भी बरात के दिन अपने घर में 'नहछू' होता है। कन्या के नहछू के पश्चात् विवाह-संस्कार अर्थात् कन्या-दान और भाँवर इत्यादि होती हैं। विवाह के समय वर-कन्या दोनों एक-एक हल्दी में रंगी हुई पीली धोती पहन कर बैठते हैं, जिस को 'पियरी' कहते हैं। इसी समय एक और रस्म 'पँवपुजी' की होती है; जिस में कन्या के संबंधी तथा जिस से व्यवहार होता है वर-कन्या दोनों के पाँव पूज कर कुछ द्रव्य अथवा कोई आभूषण भेंट करते हैं। वर दूसरे दिन 'खिचड़ी' और तीसरे दिन 'कलेवा' खाने ससुराल जाता है, जहां उस का खाना तो नाममात्र का होता है वास्तव में उस अवसर पर स्त्रियां वर को देख कर कुछ उस को भेंट करती हैं। वधू के घर पर दूसरे दिन रात को कच्चा और तीसरे दिन पक्का भोजन बरात को खिलाया जाता है, जिस को क्रमशः 'भात' और 'बड़हार' कहते हैं। इस में भात के समय दूल्हा, समधी तथा अन्य निकट संबंधियों को कुछ द्रव्य भेंट करने का रवाज है। इसी प्रकार चौथे दिन बरात विदा होते समय भी बरातियों को 'मिलना' के नाम से कुछ द्रव्य भेंट किया जाता है। शहर के कायस्थों में अब कुछ दिनों से यह रवाज हो चला है कि भात बड़हार एक ही

दिन पक्के भोजन का होता है, और इस लिए खिचड़ी और कलेवा खाने की दोनों रस्में भी उसी दिन हो जाती हैं। तीसरे दिन सवेरे बरात चली जाती है। ब्राह्मणों में कम और क्षत्रियों तथा कायस्थों में दहेज का रवाज बहुत ज़्यादा है। ब्राह्मणों तथा केसरवानी वैश्यों में बाल-विवाह का दस्तूर अधिक है। केसरवानियों के यहां यदि कन्या के माता-पिता असमर्थ होते हैं, तो लड़की को वर के यहां ले जाकर ब्याह लाते हैं। इस को 'डोला' वा 'पँवपुजी' कहते हैं। ब्राह्मणों और बनियों में बाल-विवाह के कारण लड़की उस समय विदा नहीं होती, बल्कि तीसरे से ले कर सातवें वर्ष तक में 'गौना' और उस के कुछ दिन बाद 'थौना' होता है। केसरवानियों के यहां विवाह के पीछे यदि कोई स्त्री विधवा हो जाती है, तो वह दूसरा पति कर सकती है, जिस पर वे दोनों उस समय बिरादरी से अलग हो जाते हैं, परंतु पीछे फिर भोज देकर बिरादरी में मिल जाते हैं। उन से जो संतान पैदा होती है उस का वही अधिकार होता है जो विवाहिता स्त्री के लड़कें का होता है। इसी प्रकार भाटों के यहां भी, जो 'ब्रह्मभट्ट' भी कहलाते हैं, विधवाएं दूसरा पति कर सकती हैं, परंतु अब इस जाति के कुछ शिक्षित लोग जो ब्राह्मण होने का दावा करते हैं, इस प्रथा का निषेध करने लगे हैं। अन्य मध्यम श्रेणी की जातियों में कुछ थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ब्याह-शादी के प्रायः वही रस्म-रवाज हैं, जो हम ने ऊपर लिखे हैं। हां चमार, पासी, मेहतर, खटिक, आरख, मुसहरे तथा कोल इत्यादि अंत्यज जातियों के संबंध में यह विशेषतया उल्लेखनीय है कि ब्राह्मण कुछ दक्षिणा लेकर उन को साइत-सुदिन तो बता देते हैं, परंतु संस्कार कराने के लिए उन के यहां नहीं जाते। और इस लिए वे बेचारे स्वयं किसी तरह यह काम कर लेते हैं, जिस में अग्नि के गिर्द वर-वधू का फेरे फिरना मुख्य है। उन के यहां यह काम कोई उन का मान्य अर्थात् सगा या दूर का दामाद, बहनोई या फूफा आदि कराता है और वही पुरोहित का नेग लेता है। अलबत्ता ब्राह्मण उन को सत्यनारायण की कथा गाँव से बाहर किसी तालाब के किनारे या आम के वृक्ष के नीचे दूर से सुना देते हैं।

मृत्यु-संबंधी रवाजों में यह उल्लेखनीय है कि प्रायः बनिए, कलवार आदि अर्थी सजा-कर मृतक शरीर को बाजे-गाजे के साथ पैसा-कौड़ी लुटाते हुए श्मशान भूमि में ले जाते हैं। शहर में चमारों का एक समुदाय 'संत' कहलाता है। ये लोग मांस-मदिरा से घृणा करते हैं। इन के यहां जब कोई मर जाता है तो उस के शव की अर्थी सजाकर आगे-आगे खँजड़ी और झाँझ पर भजन गाते हुए ले जाते हैं, परंतु उस को जलाते या जल-प्रवाह नहीं करते, बल्कि पृथ्वी में गाड़ देते हैं।

यहां तक हम ने उन लोगों के रस्म-रवाजों का वर्णन किया है, जो यहां के निवासी समझे जाते हैं। इसी प्रसंग में हम थोड़ा-सा उन जातियों के रस्म-रवाज का भी उल्लेख करना चाहते हैं, जो किसी समय बाहर से आकर यहां बस गई हैं और अब उन की संख्या पर्याप्त हो गई है।

काश्मीरी पंडितों के यहां जब विवाह की बात पक्की हो जाती है, तो पहले 'ताक' की रस्म होती है। इस को अपने यहां का 'फलदान' और तिलक समझना चाहिए, जिस में

कन्या के यहां से कुछ रुपया आता है। वर-पक्ष वाले उस की मिठाई लेकर बिरादरी और इष्ट-मित्रों को बाँट देते हैं अथवा एक भोज दे देते हैं। फिर वर के यहां से कन्या के यहां गुड़ियां भेजी जाती हैं, जिन में कुछ चाँदी के खिलौनों का होना आवश्यक है। लड़कीवाले कुछ और उस में मिलाकर गुड़ियां लौटा देते हैं। विवाह के पहले ऐसा भी होता है कि कभी वर और कभी कन्या दो चार दिन के लिए अपनी-अपनी ससुराल में बुला लिए जाते हैं, परंतु वे एक दूसरे से पृथक् रहते हैं। वर के साथ कुछ और लड़के और कन्या के साथ कुछ और स्त्रियां भी जाती हैं। विवाह के दो-चार दिन पहले वर को मेंहदी लगाई जाती है। इस का भी एक भोज होता है। वर के यहां से कन्या के लिए एक सुहागपिटारी जाती है। बरात के साथ स्त्रियां भी जाती हैं, जो जनवासे में रहती हैं। बरात चढ़ने पर द्वार पर कोई पूजा नहीं होती। योंही बरात का आगत-स्वागत किया जाता है। विवाह का कोई मंडप नहीं बनाया जाता। रात्रि को आँगन में वा किसी कमरे में संस्कार हो जाता है। विवाह के पश्चात् बहुधा वधू का नाम बदल दिया जाता है। कुछ लोग वही पहला ही नाम रख लेते हैं। विवाह हो जाने पर जो स्त्रियां बरात में जाती हैं वे वधू को जनवासे में बुला लेती हैं और उस को वस्त्रा-भूषण पहना कर मायके भेज देती हैं। फिर जब बरात बिदा होती है तब उस के साथ बहू ससुराल जाती है।

बंगालियों के यहां तिलक-फलदान के स्थान में पहले 'आशीर्वाद' की रस्म होती है। इस में लड़कीवाले कुछ द्रव्य वा आभूषण वर के यहां किसी शुभ मुहूर्त में भेजते हैं। फिर वर के यहां से कन्या के लिए एक सुहाग-पिटारी भेजी जाती है, जिस में अन्य चीजों के अतिरिक्त कुछ वस्त्र और हल्दी होती है। यही तेल के साथ कन्या के शरीर में लगाई जाती है। इस को 'गात्रहरिद्रा' कहते हैं। बरात लगने के पश्चात् संस्कार होता है, जिस के विषय में कोई विशेष बात उल्लेखनीय नहीं है।

यहां के ऊँची जातिवालों के सदृश बंगाली भी विवाह के पश्चात् लड़की की ससु-राल का अन्न-जल नहीं ग्रहण करते। परंतु जब उस के पुत्र उत्पन्न हो जाता है तब यह नियम भंग हो जाता है।

महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों में सब से पहले कन्या के यहां से लड़के के यहां नारियल, वर के लिए कपड़ा और एक रुपया नक़द जाता है। इस रस्म को 'बचन-सुपारी' कहते हैं। इस के साथ एक भोज भी होता है। यही मानो इन के यहां का तिलक-फलदान है।

इस के पश्चात् वर-पक्ष के लोग स्त्रियों के साथ एक टोली-सी बना कर अपने निकट संबंधियों तथा इष्ट-मित्रों के यहां निमंत्रण देने जाते हैं। यह रस्म अक्षत कहलाती है। ये लोग जिन के यहां जाते हैं, वे स्त्रियों को नारियल, गेहूँ, सुपारी और 'खन' (चोली का वस्त्र) भेंट करते हैं। इसको 'कोटी' कहते हैं।

इस के अनंतर 'श्रीमंती पूजन' होता है अर्थात् वर सज कर देवता के मंदिर में पूजन के लिए जाता है। उस के पहनने के वस्त्र पहले ही ससुराल से आ जाते हैं। वही पहन कर

वह घोड़े हाथी अथवा आजकल मोटर पर चढ़ कर मंदिर को जाता है। वहां ससुरालवाले भी पहले से मौजूद रहते हैं। वे लड़के का पाँव पूजते हैं। वर की ओर से हल्दी और कुमकुम (रोली) तथा सुपारी और नारियल इत्यादि दिया जाता है। उस दिन कन्या के यहां से भोजन वर के घर जाता है।

फिर ब्याह के ३–४ दिन पहले 'साघर पुड़ा' की रस्म होती है, अर्थात् एक कागज़ के तख़्ते पर प्याले से बने होते हैं। उस पर वर की ओर से वधू को कपड़े रख कर भेजे जाते हैं।

इस के बाद ब्याह के दिन वर घोड़े पर वधू के घर पर जाता है। उस के सिर पर एक बड़ा छाता लगाते हैं। वर के साथ उस के घर की स्त्रियां भी जाती हैं। वहां पहले सास दूल्हे पर कुछ चीजें न्योछावर करती है' फिर कन्यावाले वर को अपना वस्त्र पहनाते हैं और जो कुछ दायज (दहेज़) पहले से ठहरा होता है, उसी समय वर को भेंट करते हैं। उन के यहां इस को 'हुंडा' कहते हैं।

जहां पर विवाह का संस्कार होता है वहां पर मिट्टी का एक सीढ़ीदार ऊँचा छोटा-सा चौकोर चबूतरा बनाया जाता है। इस को 'बोहोल' कहते हैं, जिस के चारो कोनों पर चोब खड़े कर के ऊपर कपड़े को छत लगा देते हैं। इस पर वर वधू को गोद में ले कर जाता है। तत्पश्चात् उसी वेदी पर हवन होता है और वर वधू को गोद में लेकर किसी के यहां पाँच और किसी के यहां सात फेरे फिरता है। इस के पश्चात् वर-पक्षवालों को कच्चे खाने का अर्थात् दाल-भात इत्यादि का भोज दिया जाता है। दाल अरहर की होती है। रोटी केवल इतनी होती है कि उसको तोड़ कर एक-एक टुकड़ा पत्तल पर डाल देते हैं। भोजन की जगह को चौक पूर कर सजा देते है। फिर बिदाई होती है। उस समय कन्या की ओर से वर के निकट संबंधियों को वस्त्र तथा आभूषण भेंट किए जाते है। इस के अनंतर जब वर वधू को ले कर अपने घर चलता है, तब इस को बरात कहते हैं, जो बड़े समारोह और धूमधाम के साथ घर पहुँचती है। फिर इस के पश्चात् उभय पक्षवाले अपने-अपने यहां एक बहुत बड़ा भोज देते हैं जिस को 'मांडवपरतनि' कहते हैं।

खत्री प्रयाग में अधिकांश 'बारह घरवाले' रहते हैं, जिन को 'पुर्बिये खत्री' भी कहते हैं। उन के नाम ये हैं:-मेहरोत्रा, खन्ना, टंडन, कपूर, कक्कड़, चोपड़ा, सेठ, धवन, तालवार सेठ, भल्ला, सूर और सहगल। इन में से पहले तीन 'ढाई घर' कहलाते हैं। हम इन्हीं पुर्बिये खत्रियों के रस्म-रवाज का यहां उल्लेख करते हैं।

सब से पहले कन्या का पिता या कोई अन्य घर का अगुआ आ कर लड़के को किसी देव-मंदिर अथवा अन्य किसी शुभ स्थान में बुला कर पान-मिठाई और दो रुपया भेंट करता है। इस को 'बोल देना' कहते हैं। इस के बाद लड़के की मां या अन्य कोई निकट संबंधवाली स्त्री आकर कन्या के घर के निकट कहीं ठहर कर उस को बुलाती है और कुछ वस्त्र-आभूषण तथा मिठाई उस को देती है। इस रस्म को 'ज़ेवर चढ़ाना' कहते हैं। इस के पश्चात् लड़की के यहां से तिलक ब्याह के साथ और किसी के यहां उस के पहले भेजा जाता है। इस

में लड़के के लिए सिला हुआ तथा उस के घर के और लोगों और नाई इत्यादि परजों के लिए बिला सिले हुए कपड़े, मेवे, फल और दो रुपए से ढाई सौ रुपए तक नक़द होते हैं। पहले बरात में स्त्रियां भी जाती थीं, परंतु अब ८-१० वर्ष से प्रयाग में यह प्रथा बंद-सी हो गई है।

जनवासे में पहुँच कर पहले लड़की की ओर से शरबत पिलाने की रस्म होती है। फिर लड़कीवाला एक घोड़ी लाता है, जिस पर लड़का सवार होता है। लड़की के द्वार पर पहुँच कर 'मिलनी' की रस्म होती, अर्थात् उभय पक्षवाले एक दूसरे के गले मिलते हैं और कन्या की ओर से उन को कुछ नक़द दिया जाता है, जिस को 'पुच्छ' कहते हैं। उस के बाद दूल्हा घोड़ी से उतरता है तो उस की सास टीका करती है। फिर उस के पश्चात् विवाह होता है। इस के अनंतर 'बरी' की रस्म होती है अर्थात् एक पलँग पर वर-बधू दोनों को बिठला कर जो-जो चीज़ें देनी होती हैं उस पर वे सब रख दी जाती हैं। वहां फिर 'पुच्छ' की रस्म होती है। उस के पीछे लड़की जनवासे जाती है। वहां वर के संबंधी उस को 'मुंह-दिखाई' देते हैं। रात को बड़हार का जो भोज दिया जाता है उस को 'जंड' कहते हैं। उस अवसर पर भी वर के निकट संबंधियों को कुछ नक़दी देने का रवाज है।

जैनियों के यहां विवाह के लिए न तो ब्राह्मण की आवश्यकता होती है न गौरीगणेश की पूजा होती है और न वेद-मंत्रों अथवा गृह्यसूत्रों का उच्चारण होता है, वरन् जैन-शास्त्रीय पद्धति के अनुसार संस्कार होता है। अलबत्ता देहात के जायसवाल तथा खंडेलवाल श्रावक ब्राह्मणों द्वारा हिंदुओं की मामूली रस्म के अनुसार सब संस्कार कराते हैं। अस्तु जैनियों की मुख्य-मुख्य रस्में नीचे लिखी जाती हैं।

१---टीका---सब से पहले कुछ नक़दी और एक-आध ज़ेवर और कपड़े कन्या की ओर से वर को दिया जाता है। उस दिन लड़की-लड़का दोनों जैन मंदिर में जा कर पूजन करते हैं।

२---यंत्र-पूजन---एक ताँबे के पत्र पर चक्र के रूप में गोलाकार यंत्र खुदा रहता है, जिस के बीच में 'ओम्' होता है और किनारे-किनारे दूसरे शास्त्रीय यंत्र खुदे रहते हैं। यह यंत्र प्रत्येक जैन मंदिर में रक्खा रहता है। इसी की पूजा वर-कन्या दोनों अपने-अपने यहां करते हैं।

३---कंकन-विधि---ब्याह के ३ दिन पहले वर-कन्या दोनों को कंकन पहनाए जाते हैं।

४---अरही---जब बरात कन्या के द्वार पर जाती है तो उस की ओर से वर को वस्त्र-आभूषण और कुछ नक़द दिया जाता है। उसी को 'अरही' कहते हैं।

५---विवाह-संस्कार के लिए कपड़े के मंडप के नीचे एक चौकोर वेदी बनाई जाती है, और उस से लगी हुई तीन सीढ़ियां बनी रहती हैं, जिन को 'कटनी' कहते हैं। इस में पहली सीढ़ी पर वही यंत्र रक्खा जाता है, जिस को 'सिद्ध यंत्र' कहते हैं, दूसरी पर शास्त्र जी और तीसरे पर 'अष्टमंगल दिव्य' रक्खे जाते हैं, जिन का विवरण इस प्रकार है :---

(१) झारी (गिडुवा), (२) पंखा, (३) कलस, (४) ध्वजा, (५) चामर, (६) स्थापन-यंत्र, (७) छत्र, और (८) दर्पण।

यदि ये वस्तुएं नहीं मिलतीं तो इन का नाम ही केसर से कटनी पर लिख दिया जाता है। वर-कन्या मंडप में खड़े हो कर एक दूसरे का मुँह देखते और फूलों की माला पहनाते हैं। फिर दोनों अपनी-अपनी वंशावली वर्णन करते हैं। उस के अनंतर प्रतिज्ञा-मंत्र पढ़ते हैं और तब कन्यादान होता है। फिर वर-कन्या हवन-कुंड के गिर्द सात फेरे फिरते हैं। अंत में उन को आशीर्वाद दिया जाता है।

बहुतेरे जैनी यहां यज्ञोपवीत नहीं पहनते, यद्यपि जैन-संस्कार-पद्धति में अन्य संस्कारों के साथ 'उपनयन' का भी पूरा विधान है।

मृत्यु के अवसर पर न तो पिंड-दान होता है और न महापात्र को कुछ दिया जाता है, किंतु जैन पुरोहित को दान मिलता है।

अग्रवालों के यहां ब्याह की मुख्य-मुख्य रस्में इस प्रकार हैं :—

१—टीका—विवाह निश्चित हो जाने पर कन्या के यहां से वर के यहां एक थाल में एक थान कपड़ा, कुछ गहना और कम से कम ११) नक़द भेजा जाता है। इसी से विवाह का कार्य आरंभ होता है।

२—तेल चढ़ाना—बरात से एक-दो दिन पहले यह रस्म होती है, जिस में अपने-अपने यहां वर-कन्या को तेल लगाया जाता है और विवाह का मंडप बनाया जाता है।

३—घोड़ी—बरात चलने के समय दूल्हा घोड़ी पर चढ़ कर खड़ा होता है। घर के सब लोग उस को तिलक लगा कर नारियल और रुपया देते हैं। इसी प्रकार ससुराल में जाकर जब वह कन्या के द्वार पर पहुँचता है तो वहां भी उधर के लोग उस का तिलक करते हैं और उसी समय वर के पिता तथा अन्य निकट-संबंधियों से कन्या के पिता इत्यादि गले मिलते हैं और कुछ उन को भेंट करते हैं। वर का जब तक ससुराल में तिलक नहीं होता, अर्थात् जब तक बरात नहीं लगती तब तक वह जनवासे नहीं जा सकता। यदि बरात कुछ पहले पहुँच जाती है तो और सब लोग तो जनवासे में ठहरते हैं, परंतु वर तिलक होने तक किसी दूसरे स्थान में ठहरा दिया जाता है।

४—बटेहरी—बरात लगने के पश्चात्, जब वर जनवासे में पहुंच जाता है तो कन्या की ओर से वस्त्र-आभूषण और कुछ द्रव्य उस को भेंट किया जाता है, जो टीकावाली रस्म के बराबर या उस से कुछ अधिक होता है। इस रस्म को बटेहरी कहते हैं।

५—सुहगी—इस के पश्चात् वर की ओर से कन्या के लिए वस्त्र-आभूषण तथा मेवा-मिष्ठान्न इत्यादि बाजे-गाजे के साथ भेजा जाता है।

इस के अनंतर विवाह होता है और तत्पश्चात् बिदाई के समय बरातियों का तिलक हो कर फिर कुछ उन को भेंट किया जाता है।

भार्गवों के यहां विवाह के अवसर पर निम्न-लिखित रस्में होती हैं :—

१—मँगनी या सगाई—यह विवाह की प्रारंभिक रस्म है, जिस में साढ़े आठ आने भर की एक सोने की अँगूठी कन्या के यहां से वर के लिए आती है।

२—हलधातवृद्ध—यह रस्म यहां सिल-मायन के समान है, जो बरात से कई दिन पहले जब साइत बनती है, होती है।

३—तेल ताई—यह रस्म वर और कन्या के तेल चढ़ाने का नाम है।

४—बरात—दूल्हा घोड़ी पर कन्या के द्वार पर जाता है। उस समय वहां और कोई रस्म नहीं होती।

५—संप्रदाय—वर को लड़कीवाले अपने निकट किसी अन्य स्थान में बिठाल कर कुछ द्रव्य भेंट करते हैं। इसे 'संप्रदाय' कहते हैं।

६—बरी—यह चढ़ावे की रस्म है। अर्थात् वस्त्र-आभूषण इत्यादि जो लड़केवाला ले जाता है वह कन्या के यहां भेजा जाता है। तत्पश्चात् विवाह का संस्कार होता है और फिर वर-कन्या की 'पलंग बैठावनी' अर्थात् दोनों को एक पलंग पर बिठाल कर धान बोआने की रस्म होती है, जिस में उस पलंग के चारों ओर घूम कर लोग कुछ द्रव्य उन को देते हैं।

याद रहे कि इन जातियों की वही रस्में हम ने लिखी हैं जो प्रयाग में उन के यहां प्रचलित हैं। अन्य स्थानों में कुछ रवाज इन से भिन्न हैं, जिन का उल्लेख इस पुस्तक की परिधि के बाहर है।

मेले

ज़िले भर के कुल मेलों की संख्या १०० के लगभग है, जिन में सब से बड़ा माघ मेला है। इस में हर साल ३—४ लाख यात्री त्रिवेणी-स्नान के लिए बाहर से आते हैं। परंतु हर छठे साल अर्ध-कुंभी के अवसर पर १०–१५ लाख और बारहवें वर्ष जब कुंभ लगता है तब यात्रियों की संख्या का ३०–३५ लाख अनुमान किया जाता है। यह मेला मकर की संक्रांति से लेकर लगभग एक महीना माघ की पूर्णिमा तक रहता है। यों तो इस मेले में भारत के हर कोने से यात्री आते हैं, परंतु इन में पंजाब के लोग अधिक होते हैं, जिन में काबुल तक के हिंदू देखने में आते हैं। बड़े-बड़े मठ तथा अखाड़ों के हज़ारों साधुओं का जमघटा होता है। मुख्य-मुख्य पर्व के दिन साधुओं के अखाड़े बड़ी धूम-धाम से निकलते हैं, जिन का क्रम यह है—सब से पहले 'निर्वाणी', फिर 'निरंजनी', फिर 'जूना', फिर 'बैरागी' फिर 'दिगंबर' तब 'निर्मोही' उन के पीछे 'उदासी' और अंत में 'निर्मला' साधुओं की सवारी निकलती है। संक्रांति तथा अमावस्या स्नान की मुख्य तिथियां हैं।

यह मेला प्राचीन काल से होता आया है, क्योंकि पुराणों में माघ में त्रिवेणी-स्नान तथा माधव की पूजा का फल बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इस का विस्तृत उल्लेख हम पूर्वार्ध के पहले अध्याय में कर आए हैं। यहां प्रसंग-वश कुछ कुंभ के विषय में लिखते हैं।

कुंभ का अर्थ घड़ा है, तथा एक राशि का भी नाम है। पुराणों में एक कथा है, जब समुद्र मथा गया और उस में से अन्य वस्तुओं के साथ अमृत का एक कुंभ भी निकला, तो देवतागण उस को ले कर भागे और दानवों ने उन का पीछा किया। बारह दिन तथा बारह रात्रि तक निरंतर यह दौड़ होती रही और इसी में वह कुंभ चार स्थानों में पृथ्वी पर गिर पड़ा अर्थात् हरिद्वार, प्रयाग नासिक और उज्जैन में। 'बृहस्पति', 'चंद्रमा', सूर्य' तथा 'शनि' ने उस कुंभ की रक्षा की थी। उसी घटना के स्मारक रूप इन चारों स्थानों में बारी-बारी से प्रति बारहवें वर्ष कुंभ लगता है।

यह तो हुई 'कुंभ' के नामकरण की कथा। यहां कुंभ कब माना जाता है, सो सुनिए। लिखा है कि जब बृहस्पति मेष राशि में और चंद्रमा तथा सूर्य मकर में होते हैं, तो ऐसा योग प्रयाग में 'कुंभ' कहलाता है[१]।

माघ के महीने में तो चंद्रमा और सूर्य प्रतिवर्ष मकर की राशि में होते हैं, परंतु बृहस्पति का एक चक्र बारह वर्ष में पूरा होता है; इसलिए वह प्रति बारहवें वर्ष मेष में आता है। उसी अवसर पर यहां कुंभ माना जाता है।

इतिहास में कुंभ के मेले का सब से पुराना उल्लेख महाराज हर्ष के समय का मिलता है, जिस को चीन के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु ह्वेन सांग ने ईसा की सातवीं शताब्दी में अपनी आँखों देख कर लिखा था, उस का विस्तृत वर्णन हम पूर्वार्द्ध के दूसरे अध्याय में कर आए हैं, यहां भी उस के विषय में कुछ और लिखा जाता है।

बौद्ध भिक्षुओं में एक पुरानी प्रथा यह प्रचलित थी कि प्रत्येक शुक्ल-पक्ष की द्वितीया तथा पूर्णिमा को वे एकत्र हो कर प्रायश्चित्त के रूप में उस अवधि में किए हुए अपने-अपने पापों या दोषों को स्पष्टतया स्वीकार करते थे। कालांतर में यह रवाज गृहस्थों में भी फैल गया, जो ऐसे अवसर पर यथाशक्ति दान-पुण्य भी करने लगे।

महाराज हर्ष के समय में यह प्रायश्चित्त हर छठे वर्ष हुआ करता था, जिस को लोग 'आनन्द की खेती' कहते थे। यह अवसर अर्ध-कुंभी तथा कुंभ का होता था। महाराज हर्ष ने छठी बार इस का अनुष्ठान ह्वेन सांग के सामने किया था, जिस का कुछ वर्णन पीछे हो चुका है। पाठकों के मनोरंजनार्थ टालबायेज़ ह्वीलर के इतिहास से थोड़ा-सा यहाँ भी लिखा जाता है।

"इस अवसर पर पुरानी शैली के अनुसार तैयारी हुई थी। कोई १२०० वर्ग गज़ चौकोर एक बड़ी विस्तृत भूमि सुंदर फूले हुए गुलाब के पौधों से घेरी गई। उस के भीतर (छप्परों से) बड़े-बड़े भवन बनाए गए। जिन में सोना, चाँदी, सूती और रेशमी वस्त्र तथा अन्य प्रकार के अनेक बहुमूल्य पदार्थ भरे गए। उसी के निकट १०० भोजनालय थे, जो एक पंक्ति में बाज़ार की दूकानों के रूप में बनाए गए थे। प्रत्येक भवन में एक हज़ार

---

[१] मकरे च दिवानाथे ह्यजगे च बृहस्पतौ।
कुंभयोगो भवेत्तत्र प्रयागे ह्यतिदुर्लभः॥
(विष्णुयागे)

तथा मेषराशिगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावस्या तथा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥
(रेवातंत्रे)

माघे मेषगते जीवे, मकरे चन्द्रभास्करौ,
अमावस्या तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥
(कुंभपर्वव्यवस्थायां विष्णुयागे)

मनुष्य एक साथ बैठकर भोजन कर सकते थे। इस पर्व के कुछ पहले से दूर-दूर के श्रमण ब्राह्मण, दीन-दुखिया तथा अनाथ प्रयाग में निमंत्रित किए गए थे। महाराज हर्ष अपने मंत्रियों तथा अधीन राजाओं के साथ प्रयाग में पधारे, जिन में वल्लभी के राजा 'ध्रुवपतु' तथा कामरूप के राजा 'कुमार' भी थे। इन सब की सेना का पड़ाव चारों ओर पड़ा हुआ था। बड़े समारोह के साथ कार्य आरंभ हुआ, और बड़ी उदारता का परिचय दिया गया। यह त्यौहार गौतम बुद्ध के उपलक्ष में मनाया गया था, परंतु उन का भी उचित आदर सत्कार किया गया, जो देवताओं के पूजक थे। पहले दिन भगवान् बुद्ध की मूर्ति एक पगोदा में स्थापित की गई। उस दिन बहुमूल्य वस्तुएं बाँटी गईं और भोजनालय में उत्तम-उत्तम व्यंजन खिलाए गए। फूलों की वर्षा की गई और मनोरंजक बाजे बजवाए गए। दूसरे दिन सूर्य और विष्णु तथा तीसरे दिन शिव की मूर्ति स्थापित की गई। इन दोनों दिनों में पहले दिन से आधी वस्तुएं बाँटी गईं। चौथे दिन से केवल दान पुण्य होने लगा। २० दिन श्रमण और ब्राह्मणों को दान दिया गया १० दिन विधर्मियों को, १० दिन नागों और ३० दिन दीन-दुखियों तथा अनाथों को। इस प्रकार यह मेला कोई ७५ दिन में समाप्त हुआ।"[1]

लगभग एक सौ वर्ष पहले इस मेले का क्या रूप था और इस का प्रबंध कैसा होता था, इस का थोड़ा सा वर्णन हम एक अंगरेज़ के सन् १८३८ के रोज़नामचे से उद्धृत करते हैं। वह लिखता है—

"मैं बंद पार करके रेती में मेले की छावनी में पहुँचा, जिस में छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बाँस, चटाई और घास-फूस की बनी हुई थीं। बीच-बीच में चारों ओर ईंधन के ढेर लगे हुए थे, जो बहुत मँहगे बिकते थे। झोपड़ियाँ चौड़े रास्ते के किनारे लगी हुई थीं और उन के बीच में जहाँ-तहाँ छप्पर पड़े हुए थे। यह सिलसिला कोई आधे मील तक चला गया था और एक घाट पर जाकर समाप्त होता था, जहां दो बड़े-बड़े फाटक थे, जिन के निकट एक देशी पल्टन का रक्षक दल था। यह मेले का बाज़ार था, जिस में मिट्टी के चबूतरों पर खारुए के कपड़े से छाई हुई दूकानें बनी थीं। उन में इधर-उधर की मामूली चीज़ें जमा थीं, परंतु थीं हर प्रकार की। जैसे कंघे, छोटे-छोटे आईने, सरौते, खरहरे, विविध रंग के मोटे-मोटे धागे, खिलौने, ताले, भद्दे चाकू, किश्तीदार टोपियाँ, कैंची, तवे, चश्मे, काँच की मालाएं, ताँबे और पीतल के कटोरे, हुक्के, बटन और थोड़ी सी पालकियां भी थीं। सरकार प्रत्येक दूकानदार से टैक्स लेती थी। इस बाज़ार के दाहिने-बाएं पतली-पतली गलियां थीं, जो यात्रियों की कुरियों तक चली गई थीं। नदी के किनारे नाइयों की भीड़ थी। वे यात्रियों को ख़ूब मूँड़ रहे थे और उन से ख़ासी रक़म ऐंठते थे। सड़क के दोनों किनारे बालों से काले देख पड़ते थे। संगम के ऊपर बड़ी भीड़ थी। लोग बलपूर्वक

[1] टालबायज़ ह्वीलर, 'हिस्ट्री अव् इंडिया', जि० १, पृ० २७६

अपना रास्ता ढूँढ़ते थे। बड़े घर की स्त्रियां परदा और चादर के साथ आई थीं, जिस के भीतर वे साधारण जनता से आड़ में नहाती थीं। अनेक प्रकार के साधु-संत उपस्थित थे, जिन का दृश्य विचित्र था, कोई हाथ उठाए हुए था जो सूख गया था। किसी की छः-छः फ़ुट की लंबी जटाएं थीं और वे उस को पगड़ी की तरह सिर में लपेटे हुए थे। कोई नंगा चित लेटा हुआ था। इन सब के सामने नाना प्रकार के अनाज के ढेर लगे हुए थे, जिस को यात्रियों ने चढ़ाया था। कहीं भजन गाए जाते थे और कहीं रामायण की कथा होती थी, जिस को श्रोता-गण बड़े ध्यान से सुनते थे। इस मेले में कभी-कभी जल और ओलों की भी वर्षा हो जाती है, जिस से यात्रियों को बड़ा कष्ट होता है। पिछले वर्ष एक ऐसा ही तूफ़ान आया था, जिस से बचने के लिए सैकड़ों यात्रियों ने क़िले के अफ़सरों के बारिकों में शरण ली थी।'[1]

इस से उतर कर आषाढ़ के कृष्ण-पक्ष की अष्टमी को कड़ा (त० सिराथू) की सीतला देवी के तथा लच्छागिरि (त० हँडिया) के सोमवती अमावस्या और वारुणी के अवसर पर गंगा-स्नान के मेले होते हैं। इन के पश्चात् पँडिला (त० सोराम) के महादेव और ककरा (त० फूलपुर) के दुर्वासा के मेले हैं, जो शिवरात्रि पर होते हैं।

जेठ के महीने में सिकंदरा (त० फूलपुर) में ग़ाज़ी मियां और आषाढ़ में परगना बारा में अमिलिया देवी के मेले में भी हज़ारों आदमियों की भीड़ हो जाती है।

शेष मामूली मेले हैं, जिन के उल्लेख की आवश्यकता नहीं है।

यह तो हुई उन मेलों की चर्चा जो अब तक बराबर होते हैं, परंतु नगर के एक और बड़े मेले के उल्लेख की आवश्यकता मालूम होती है जो अब बंद हो गया है। वह दसहरे का मेला था, जो प्रयाग में बड़े समारोह के साथ होता था। परंतु सन् १९२४ से हिंदू-मुसलिम दंगे तथा मुसलमानों-द्वारा मसजिदों के सामने बाजे का प्रश्न उठाने पर यह मेला स्थगित हो गया है।

यहां इस मेले के चार केंद्र थे। दो नगर में, एक दारागंज, और एक कटरे में। खेद है कि यहां की रामलीला के पुराने वृत्तांत जानने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। फिर भी पुराने आदमियों से पूछ-ताछ करने पर जो कुछ मालूम हुआ है, वह यहां लिखते हैं।

शहर में एक दल 'हाथीराम' और दूसरा 'बेनीराम' का कहलाता था। बाबा हाथीराम एक वैष्णव साधु थे, जो शाहगंज में राय बिंदाप्रसाद की गली में रहते थे। वह वहीं दसहरे में रामलीला कराते थे और बाज़ार में हनुमान-दल के साथ रामचंद्र की सवारी निकालते थे। ककरहे घाट पर जाकर लंका-दहन की लीला समाप्त होती थी। रात को चौक में मशाल और गेंदे की रोशनी हुआ करती थी। धीरे-धीरे लीला में बहुत जमाव होने लगा,

---

[1] सी० जे० सी० डेविडसन, 'डायरी अव् ए ट्रैवेल इन अपर इंडिया', १८४३ ई०, पृ० २०७-२७

जिस के लिए शाहगंज की पतली गली काफ़ी नहीं होती थी, इस लिए शहर के बाहर सदिया-पुर के पज़ावे के मैदान में रामलीला होने लगी। हाथीराम के पश्चात् इस मेले का प्रबंध खत्रियों ने अपने हाथ में लिया। इस लिए यह खत्रियों का दल कहलाने लगा।

दूसरे दल का इतिहास यह है कि बाबू बेनीप्रसाद कड़े के एक कायस्थ थे, जो इलाहाबाद में वकालत करते थे। उन को दसहरा और मोहर्रम दोनों के करने का बड़ा शौक़ था और वह इन मेलों में बहुत रुपया ख़र्च किया करते थे। पीछे लोग उन्हीं को 'बेनीराम' कहने लगे। दसहरे में उन की रामलीला मलाका के निकट पथरचट्टी के मैदान में हुआ करती थी। हाथीराम का दल नवमी को भी शाम को चौक में निकलता था, परंतु बेनीराम का केवल दसहरे के दिन मुट्ठीगंज के चौराहे की ओर से भारती-भवन होता हुआ हाथीराम के दल के पीछे, शाम को चौक में पहुँचता था; और फिर ककरहे घाट पर जा कर समाप्त होता था। रात को दोनों ओर से चौक में रोशनी होती थी। दसहरे के पीछे दोनों के भरत-मिलाप भी रात को चौक ही में होते थे।

बाबू बेनीप्रसाद के पश्चात् अधिकांश अग्रवालों ने उन के काम को अपने हाथ में लिया, जिस के अगुवा बाबू दत्तीलाल वकील थे। उन के समय में इस दल में बड़ी उन्नति हुई। उन्हों ने धन एकत्र कर के पत्थरचट्टीवाला मैदान इस काम के लिए ख़रीद लिया और उस में चारदीवारी खिंचवा दी। तब से उस का नाम 'रामबाग़' होगया है।

धीरे-धीरे इन दोनों दलों ने एक दूसरे की लाग-डाट में बड़ी उन्नति की। हर साल बीसों नई-नई चौकियां बढ़ती थीं जिन में कुछ अद्भुत बातों के दिखलाने का भी उद्योग किया जाता था। दसहरे के पहले प्रति-दिन रात को चौक में कुछ थोड़े से झाड़-फ़ानूस की रोशनी के साथ दोनों दल के रामचंद्र, सीता और लक्ष्मण का अनेक प्रकार शृंगार होता था, जैसे कभी मोतियों का, किसी दिन फूलों का किसी दिन जड़ाऊ काम का इत्यादि, इत्यादि। दसहरे के दिन यह रोशनी गुड़ की मंडी से ले कर खलीफ़ा की मंडी तक पहुंच जाती थी, और इतनी विख्यात हो गई थी कि उस के देखने के लिए अन्य नगरों से भी लोग आया करते थे। पहले झाड़-फ़ानूस में मोमबत्तियां लगाई जाती थीं, जिन को लोग कहीं ढाई-तीन बजे रात तक जला पाते थे। फिर पीछे बिजली की रोशनी होने लगी थी।

दारागंज में केवल सप्तमी को दल निकलता था, जिस का प्रबंध वहां के प्रागवालों और बड़ी कोठीवालों के हाथ में था।

कटरे की रामलीला पहले फ़ौज के सिपाही किया करते थे, जो उस के निकट 'चाथम लाइन्स' में रहते थे। पीछे जब उन की पल्टन नई छावनी में चली गई तो मेले का प्रबंध भरद्वाज के एक जोगी ने अपने हाथ में ले लिया। फिर उस के पीछे कटरे के अन्य लोग करने लगे। यहां भी दल केवल एक दिन अष्टमी को निकलता था और उसी दिन रात को चौराहे पर रोशनी होती थी। लीला मुसलिम बोर्डिंग हाउस के पीछे हुआ करती थी। भरत-मिलाप दीवाली के पश्चात् अक्षय-नवमी को कर्नलगंज के चौराहे पर होता था, जहां रात को रोशनी होती थी तथा आतशबाज़ी छूटती थी।

खोज से इस मेले के दो पुराने वृत्तांत मिले हैं, जिन का सार हम नीचे लिखते हैं। इन से पता लगेगा कि उस समय यहां कैसी राम लीला होती थी।

बिशप हेबर ने सन् १८२४ में यहां की रामलीला का वृत्तांत इस प्रकार लिखा है :—

"राम लक्ष्मण और सीता बारह-बारह वर्ष के लड़के बने हुए थे, जो सिपाहियों की लाइन में एक चौड़े रास्ते में शामियाने के नीचे बैठे थे। कुछ लोग उन को पंखा झल रहे थे, कुछ लोग शंख घड़ियाल और ढोल बजाते थे और शेष जयजयकार करते थे। ये लड़के बड़े सुदंर थे और अपना काम बड़ी चतुराई से करते थे। उन के बांये हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में तीर थे। ये हर प्रकार के आभूषण तथा गोटा-किनारी का चमकीला वस्त्र पहने थे। उन के सिर पर चमकदार मुकुट और माथे पर उज्ज्वल और लाल रोली के तिलक थे। बेचारी सीता भड़कीले वस्त्र पहने, कुछ घूँघट निकाले, सिर झुकाए बैठी थी। बांस के घेरे पर काग़ज़ लपेट कर लंका बनाई गई थी, जिस के द्वार और खिड़कियां रंगी हुई थीं। उस में कोई १५ फुट ऊँचा एक भयानक रूप का रावण बनाया गया था, जिस के पास तलवार, धनुष, फरसा तथा बल्लम इत्यादि दस बारह अस्त्र-शस्त्र थे। राम लक्ष्मण एक सुंदर चमकती हुई पालकी में बैठ कर अपनी सेना को पीछे हटा रहे थे, जिस के सेनापति हनूमान लंबी पूंछ लगाए और दो बड़े रंगीन डंडे लिए सब से आगे थे। फिर हनूमान-दल निकला। उन के भी वैसी ही पूंछ थी। सब लोग स्वांग के चेहरे मुँह पर लगाए थे। उन के शरीर नील से रंगे हुए थे और उन के हाथों में डंडे थे।"[१]

दूसरा वर्णन सन् १८२६ का है और एक अंग्रेज़ महिला फ़ैनी पार्क्स ने इस प्रकार किया है—

"एक बड़ा रावण हवाचक्की के समान मोटा परेड की भूमि में बनाया गया था, जिस के भीतर आतशबाज़ी भरी हुई थी। अंत में राम ने उस को विध्वंस किया। सिपाही लोग परेड पर हर प्रकार के खेल-तमाशे कर रहे थे। नक़ली लड़ाइयां लड़ी जाती थीं तथा कुश्ती होती थी। अंत में आतशबाज़ी छूटती थी। १०-१२ वर्ष के लड़के राम-लक्ष्मण बने थे। बहुत से लोग लंबी पूंछ लगाए बंदरों की सेना का रूप धारण किए थे, जिन के अगुआ हनूमान थे। प्रत्येक देशी रेजिमेंट के सिपाही अपना-अपना झंडा निकालते थे और मिठाई, फूल, चावल तथा पान से उस की पूजा करते थे।"[२]

हम पीछे बता आए हैं कि यहां की रामलीला अब बंद हो गई है। अतः उस की सब बातें स्वप्न-सी हो रही हैं, और ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता है विस्मृत होती जाती है। इसी लिए हम ने इस का वर्णन कुछ अधिक विस्तार के साथ लिखा है।

---

[१] 'ट्रैवेल्स अव् बिशप हेबर', जिल्द १, अ० १२

[२] 'वांडरिंग्ज़ अव् ए पिलग्रिम इन सर्च अव् दि पिक्चरेस्क', अध्याय १२

बोली

डाक्टर ग्रियर्सन ने विविध स्थानों की बोलियों का जो वर्गीकरण किया है उस के अनुसार प्रयाग के ज़िले में 'पूर्वी हिंदी' बोली जाती है, जो पुरानी 'अर्ध-मागधी' प्राकृत के स्थान में उत्पन्न हुई है। इस के बोल-चाल का आधुनिक नाम 'अवधी' है। यही बोली सामान्यतया ज़िले भर में बोली जाती है, परंतु इस का विशुद्ध रूप परगना चायल के पूर्वीय भाग तथा परगना झूँसी में अधिक पाया जाता है। शहर में कुछ-कुछ खड़ी बोली भी मिली हुई है। अन्य स्थानों में कुछ-कुछ स्थानिक भेद अवश्य हो गए हैं, जैसे परगना बारा और खैरागढ़ के दक्षिणीय भाग की बोली में कुछ 'बघेली' और कुछ 'छत्तीसगढ़ी' मिली हुई है। परगना अरैल, खैरागढ़ के टप्पा चौरासी में जो सिरसा के निकट है, तथा उस के समीप गंगा के उत्तर परगना किवाई और मह की बोली के मध्य ज़िले की बोली से कुछ भेद हैं। अर्थात् इन परगनों में ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर बढ़िये कुछ-कुछ 'पश्चिमीय भोजपुरी' की झलक पाई जाती है। इसी प्रकार उत्तर और पश्चिम गंगापार में प्रतापगढ़ की सरहद पर परगना सिकंदरा, मिर्ज़ापुर चौहारी, सोरांव, नवाबगंज और पश्चिमीय अंतर्वेद के परगना कड़ा, करारी तथा अथरबन की बोली में भी कुछ-कुछ भेद है। इन तीनों परगनों की बोली 'पश्चिमीय अवधी' से मिलती-जुलती है, जिस को 'बैसवाड़ी' भी कहते हैं।

अब हम यहां की बोली में जो विशेषताएं हैं तथा एक ओर की बोली से दूसरी ओर की बोली में जो मोटे-मोटे भेद हैं उन की कुछ विवेचना करते हैं।

नगर की बोली

शहर में प्रायः अशिक्षित और अर्धशिक्षित लोगों में एक विचित्र खिचड़ी बोली बोली जाती है, जिस को न तो खड़ी बोली कह सकते हैं और न ठेठ बोली; जैसे :—

१—उन ने कहा हैगा कि हमरा काम जरकौ (ज़रा भी—तनिकौ) न बिगड़ै नहीं तो अच्छा न होइहै।

२—लाला ने चार ठो रुपया हम को दिहिन था और एक उन के सिपाही ने दिहिस था।

३—कल तुमरा माल आईगा कि नैं (=नहीं) ?

४—पहले इस जगह एक कुंवा बना भया था।

५—वह आप को बुलाते हैंगे।

६—हम कुछ नहीं जनते।

इन पदों और वाक्यों में जिन-जिन शब्दों के नीचे रेखा खींच दी गई है उन को ध्यान से देखिए।

गाँवों की ठेठ बोली

प्रयाग का ज़िला तीन प्राकृतिक भागों में विभक्त है, जिन की सीमा गंगा और यमुना जैसी चौड़ी-चौड़ी नदियां हैं। इस लिए जैसे ही इन को पार कीजिए बोली में कुछ-कुछ परिवर्तन स्पष्टतया अनुभव होने लगता है, विशेष कर मध्यम पुरुष के सर्वनाम तथा साधारण अपूर्ण क्रिया के रूप में; जैसे

'तुम' के स्थान में 'तू', तथा 'है' की जगह 'अहै' और 'बा' इत्यादि, जिस का विस्तृत वर्णन आगे आयेगा। एक और विशेषता यह है कि गंगा और यमुनापार के लोग प्रायः 'नहीं' को कुछ खींच कर 'नाहीं' कहते हैं, तथा 'ह' का उच्चारण 'स' के अनुरूप करते हैं जैसे 'बस्ती' के स्थान में 'बहती' इत्यादि। अब हम सुगमता के लिए इस प्रकार की बोली के भेदों तथा विशेषताओं को निम्नरूप में श्रेणीबद्ध करते हैं :—

संज्ञा

यह विचित्र बात है कि किसी-किसी अवसर पर 'लड़का' लड़की को भी कहते हैं। जैसे 'सयान लड़का है जल्दी ब्याह हो जाना चाहिए'। अर्थात् लड़की सयानी अथवा युवा है·······। इसी प्रकार 'गदेला' लड़का और लड़की दोनों को कहते हैं। यह बात नहीं है कि जैसे छोटे-छोटे लड़के और लड़कियों को 'बच्चा' कहते हैं, किंतु यहां सयाने लड़के और लड़कियों को भी 'गदेला' कहते हैं।

संज्ञा के उच्चारण के भेद

परगना चायल की पश्चिमीय सीमा पर और कुछ उस से आगे तक 'दाल' को 'दार' बोलते हैं। और कहीं ज़िले भर में इस शब्द का ऐसा उच्चारण नहीं पाया जाता।

परगना अथरबन में 'मनई' (आदमी) को 'मँड़ई', घोड़ा को 'घोड़' और बरदा (बैल) को 'बरद' बोलते हैं। अर्थात् पीछे के दोनों शब्दों में अंत का दीर्घ 'अ' उड़ा देते हैं, परंतु इस के विपरीत गंगा और यमुनापार में पूर्व की ओर संज्ञा के अंत में बहुधा एक अतिरिक्त "अ बढ़ा देते हैं जैसे :—'कल्हिया' (= कल) सँझवा बैरिया के पेड़वा पर चढ़ि के बँदरवा रोटिया खात रहा।"

इन स्थानों में कुछ संज्ञाओं के अंत में 'ए' की मात्रा लगा कर उच्चारण करते हैं। जैसे, "हम 'घरे' गए रहे"। "दुई मने का बिगहा (बीघा) पैदावार भई रही।" "हम जंघए (= जंघई) के टेसन (स्टीशन) से आवत रहे।" इत्यादि किन्हीं-किन्हीं शब्दों को जिन का उच्चारण दो बार एक साथ करना पड़ता है उन के पहले अक्षर के दीर्घ स्वर को गिरा कर बोलते हैं। जैसे 'चार-चार' 'पाँच-पाँच' किसी वाक्य में लाना होता है तो इन का उच्चारण इस प्रकार करते हैं। 'बजरिया (बाज़ार) मां चर-चर पँच-पँच रुपैया का एक-एक थान बढ़िया गाढ़ा का बिचात (= बिकात-बिकता) रहा' इत्यादि।

सर्वनाम

अंतर्वेद में कहीं भी संज्ञा का उच्चारण इस प्रकार से नहीं पाया जाता। अंतर्वेद से, गंगा और यमुनापार में सिवा मध्यम-पुरुष के और किसी सर्वनाम में विशेष भेद नहीं पाया जाता। अलबत्ता उस के साथ जो समूह-सूचक शब्द कहते है उन के रूप कुछ अवश्य बदल जाते हैं जैसे :—

नगर में और उस के निकट	अंतर्वेद के गाँवों में	गंगा तथा यमुनापार में
हम लोग	हम पच--हम पचन हम पंचन	हम पचे--हम पांच
तुम लोग	तुम पंच	तू पचे--तू लोग

परगना बारा और खैरागढ़ के दक्षिण और पूर्व की सीमा पर मध्यम पुरुष को 'आप' और 'अपना' भी कहते हैं, परंतु पिछले शब्द के साथ क्रिया का रूप भी कुछ बदल जाता है। उदाहरण के लिए "जैसा आप कहें" के स्थान में "जैसन आप (अपना) कही" बोलते हैं।

अव्यय

इस के कुछ उदाहरण जो विशेष भागों में बोले जाते हैं, नीचे दिए जाते हैं :—

यदा-कदा (=कभी-कभी)	गंगा और यमुनापार में
किथा……(=किस ?)	,, ,,
तौ (=हां)	,, ,,
कहिया (=कब)	,, ,,
जहिया, तहिया (=जब-तब)	,, ,,
कतिक (कितना)	,, ,,
पुन (=फिर)	जमुनापार विशेष कर परगना बारा में
फुन (,,)	गंगापार उत्तर की ओर
एन्धै (=यहां, इधर)	परगना अथरबन में
ओन्धै (=वहां-उधर)	,,
एहर-ओहर (=इधर-उधर)	गंगा और यमुनापार

कारक

कर्ता, करण और अपादान में खड़ी बोली से कोई विशेष भेद नहीं है। अन्य कारकों के विभिन्न रूप नीचे लिखे जाते हैं :—

कर्म—मोंका, हम का	अंतरवेद में
महिका	परगना कड़ा और अथरबन की पश्चिमी सीमा पर
हमा	यमुनापार में
हमके, तोहके	,, तथा गंगापार में
संप्रदाय—खातिर	परगना चायल के पूर्वीय भाग में
बरे	लगभग ज़िले भर में
संबंध—मोर, हमार	,,
हमरा, तुमरा	केवल नगर में
तोहार	गंगा और यमुनापार में
बहिके	ज़िले के उत्तर और पश्चिम सीमा पर
अधिकरण—मां	लगभग ज़िले भर में
मंहनी	विशेष कर परगना चायल के मध्य में
संबोधन—हिंदौ	अंतरवेद के मध्य में
हल्या	गंगापार में पूर्व की ओर

क्रिया क्रियाओं के जितने रूप ज़िले भर में बोले जाते हैं, उन का बड़ा विस्तार है। इसलिए हम उन को छोड़ कर केवल मुख्य-मुख्य बातें यहां लिखते हैं :—

खड़ी अथवा नगर और उस के निकट की बोली	गाँवों की ठेठ बोली	विशेष भूभाग जिस ओर बोली जाती है
(अपूर्ण क्रिया) है	अहै	गंगा और यमुनापार में
	बा	”
	बाटै	”
	आटै	गंगापार में पूर्व और उत्तर की ओर
(पूर्ण क्रिया) उखाड़ना	उपारना	गंगा और यमुनापार में
	उचारना	
उठना	उचना	परगना चायल में
चलना	रेंगना	यमुनापार में
चिल्लाना	चिचियाना	अंतरवेद में
	नरियाना	यमुनापार में
	पुपुई लगाना	गंगापार में
(कपड़ा) धोना	पछारना	अंतरवेद में
	कचारना	गंगा और यमुनापार में
निकालना	निसारना	”
(जल) पीना	जलखाना	अंतरवेद में
	जल अंचौना	
फेंकना	पवारना	गंगापार में
	मिचिकना	अंतरवेद में
	बहाना	गंगापार में
बिकना	विचाना	गंगा और जमुनापार में
लेटना	ओलरना	जमुना पार में
(भूत क्रिया) किया	कीना	परगना चायल में
दिया	दीना	”
लिया	लीना	”
(भविष्यत्) लेंगे	लेब	गंगापार में
	लेबै	परगना कड़ा और करारी में
	लेबै	शहर और उस के निकट पश्चिमीय भाग में
बताएंगे	बताउब	गंगापार में
	बतईबे	परगना कड़ा और करारी में
	बतउबै	अंतरवेद में

सहायक क्रिया इस में केवल एक शब्द 'धै' उल्लेखनीय है, जैसे यमुनापार में बोलते हैं 'मारब धै'। अर्थात् मार देंगे।

यहां की साधारण जनता की बोली के इन नियमों अथवा उन के विविध रूपों के लिखने के पश्चात्, अब हम इस ज़िले की ठेठ बोली के कुछ बड़े-बड़े नमूने लिखते हैं। पाठक इन की क्रियाओं और महावरों पर विशेष ध्यान दें।

(१)

अन्तरवेद के मध्य की एक कहानी।

अइसे अइसे एक राजा बेन रहें। ऊ अपने परजा से कुछ नहीं लेत रहें। एसे बहुत गरीबी से उनकर गुजर होत रहा। उन के रानी के गहना गुरिया कुछौ नहीं रहा; न कोउ नोकर चाकर रहा। अपने हाथेन से घर के सब काम काज करैं। उन कर रानी रोज सबेरे माटी के कच्चा घड़ा कच्चे सूत मां टांग के तलाब के पानी भरइ जात रहीं। हुआं पुरइन[१] के पत्ता पर गोंड़ धइके गगरी बोर लियावें। उन कर परजा बहुत सुखी औ तालेबर[२] रही।

एक दिन रानी देखिन कि नगर की मेहररुअन सुंदर लहर पटोर औ अच्छे-अच्छे जड़ाऊ गहना पहिर रेसम की डोरी औ सोने के कलस लइ लइ के पानी भरइ आईं। रानी फाट पुरान कपड़ा पहिरे रहैं। बहुत सरमानी। अपने मन मां सोचेन कि राजा जौ एक-एक कउड़ी सब पर लगा मासूल लगाय देंय तो, कोंहू का न अखरी औ हमरेउ गत के कपड़ा-लत्ता औ गहना गुरिया होइ जाई। घर आय के राजा से कहेन कि परजा पर एक एक कउड़ी मेजा[३] लगावो। ओसे हमंहु का कपड़ा लत्ता औ गहना-गुरिया बनवाय देव। सब के आगू नंगी-बूंची होइ के पानी भरइ जाइत है। सरम लागत है। राजा कहेन अच्छा। नगर मां डुगी पिटवाय दिहेन कि सब कोउ एक-एक कउड़ी लियावें। जब ढेर से कउड़ी जमा होइगै तो राजा वही से रानी के बरे अच्छा-अच्छा कपड़ा लत्ता औ गहना-गुरिया बनवाय दिहेन। रानी ओका पहिर के तलरी पर पनी भरइ गइं। जो पुरइन के पत्ता पर गोड़ धइ के कच्चा घड़ा कच्चा सूत से लटकाय के पानी मां बोरेन, चभ्भ से गोड़ कांदौ[४] मां बूड़गा। रानी खिसियाय गइं। रोवत रोवत घर आइं। राजा से कहेन कि एका बेंच के सब के कउड़ी लउटाओ। हम बाजि आएन एहि तरह के गहना-गुरिया पहिरबे से। तब राजा हँस के सब का मेजा लउटाय दिहेन, औ रानी पहिले के तरह फिर पुरइन के पत्ता पर गोड़ धइके कच्चा सूत औ कच्चा घड़ा से पनी भरइ लागीं। जस राजा की नियत होत है, वैसइ बरकत होत है।

(२)

गंगापार के उत्तर की एक कहानी जिस को स्त्रियां भादों में हर छठ की पूजा पर कहती हैं।

अइसे अइसे एक राजा रहैं। त उ तलाब खनायन[५]। त ओह मां पानी न होय। त सब पंडितन का बोलायन। कहेन कि कहिजाः हमरे तलौना मां पानी नाहीं होत अहै। त सब

---

[१] कमल का पत्ता। [२] भाग्यवान, धनाढ्य। [३] चंदा। [४] कीचड़। [५] खोदवाया।

पंडिते बांचेन[१] कि तू अगले हरे का बरदा[२] औ जेठ बेटवा के लरिका का बोलाय के वही मां बल ध्ये। त छट्ठी का दिन परा। राजा कहेन कि हे पतोहू तू अपने नइहरे जा। तोहार महतारि तोहके बोलायस है। पतोहिया कहेस बाबा हम के काहे पठवत अहा। आज छठ है। राजा एकौ न सुनेन। चारठे कहार मियाना चेरिया लौंडी संघे कइ दिहेन। कहारे मियाना उठायन। जब उ चली गईं। त राजा उन के बेटवा का औ अगले हरे के बरदा का तारा[३] मां बल दिहेन। त ओहमां पानी मार के अगम लाग। पतोह नइहरे गईं। महतारी कहेस कि बिटिया तू आज का करइ का इहां आई हौ। उ कहेन कि हम का राजा पठएन हैं कि आज तोहार महतारी तोहके बोलाए बा। उ कहेन कि हम त तोहके नाहीं बोलावा। जा तू अपने घरे। राजा अपने घरे काजनी[४] का करत होंय। फुन[५] वही डांडी डोला रानी लौटीं। रस्ते मां कहारेन से कहेन कि हमरे बाबू जउन सगरा खनाये रहेन रचि[६] हमके देखाय देया। रानी तलाब मां गईं। देखेन पानी भरा रहै औ पुरइन का पात लहरत रहै। ओही पर ओनकर बेटवा लोट के खेलत रहै औ हरे के बरदा पंवरत[७] रहैं। घरे मां सास ससुर केंवार बंद कइके मुंह मूँदे ओलरा[८] रहैं कि अब पतोहिया का कइसे मुंह देखाउब। रानी पहुंचीं। बेटवा लिहें रहीं। बरदा हांक के आवत रहैं त राजा से कहेन केंवार खोलौ। छट्ठी माता हम का बेटवा दिहेन हैं।

(३)

गंगापार से उत्तर और पूर्व की एक स्त्री का बयान जो उस ने एक मुक़दमे में कचहरी में दिया था।

आपुस मां कजिया[९] भा। घरे के मनई[१०] हमके निसार[११] दिहेन। हम अपने परानी[१२] के साथ बम्बए[१३] जाइके[१४] जंघई के टीसन[१५] का चले। कुछ दुरिया हम पचे[१६] गए त लम्बे[१७] से एक तारा[१८] देख परा। ओह मां हम नहाने औ किनारे बइठ के दाना बिया[१९] करइ लागे। इतने मां उ लोग आए औ हमरे मनसेधू[२०] से पुंछेन कि तू कहिया[२१] घरे से चल्या ? फुन[२२] दका[२३] दका कहि के ओन से पदोरी[२४] करइ लागेन। ओन हरकेन[२५] कि कस[२६] भैय्या कची पकी[२७] बोलत अहा। तब और फूहर[२८] पातर बकई लागेन। हम मुड़ियाय[२९] के डगरा[३०] धरई के किहा। ओन दवर[३१] के हमरे मनई के पनही[३२] से मारइ लागेन औ हमार गोड़हरा[३३] ढरकउवा[३४] औ नथिया छीन छोर लिहेन। हम पचे पुपुई[३५] लगावा, औ गांव देस कइ दोहाई देय लागेन। तब ओन गोड़ैते[३६] बोलाइ के हमरे मनई के धराय दिहेन।

---

[१] विचार के कहा। [२] बैल। [३] तालाब। [४] क्या जानें। [५] फिर। [६] तनिक=ज़रा। [७] तैरते रहे। [८] लेटे रहें। [९] झगड़ा। [१०] आदमी। [११] निकाल। [१२] प्राणी, यहां पति से तात्पर्य है। [१३] बंबई। [१४] जाने को। [१५] स्टेशन। [१६] हम लोग। [१७] दूर। [१८] तालाब। [१९] कच्चा या भुना अन्न चबाने लगे। [२०] मर्द। [२१] कब। [२२] फिर। [२३] न जाने क्या क्या। [२४] दिल्लगी। [२५] मना किया। [२६] क्यों। [२७] बुरा भला गाली गुफ्ता। [२८] अश्लील। [२९] सिर नीचा कर के। [३०] रास्ता पकड़ने का इरादा किया। [३१] दौड़। [३२] जूता। [३३] पांव का कड़ा। [३४] हाथ का कड़ा। [३५] चिल्लाये। [३६] चौकीदार।

(४)

जमुनापार परगना खैरागढ़ के मध्य की एक कहानी।

एक राजा रहें। ओ एक सुग्गा पाले रहें। ओकर नांव रहा हीरामनि। एक दिना हीरामनि राजा से कहेन कि हे राजा! जउ हम के छुट्टी देत्यो त हम जाइत कतहूँ घूमि आइत। राजा कहेन तूँ पंछी क जात अह्या कतँउ उड़ि जाव्यो त न अउव्यो। सुग्गाराम बोलेन कि हम चला आउब। हमके जाइ देया। राजा कहेन कि अच्छा जा। हीरामनि उड़ते उड़ते बहुत दुरिया निकसि गए। जब कुछ दिना के पीछे लउटइ लागें त सोचेन कि कउनो एइसन चीज राजा के लइ चली कि जउने राजा खुस्स होइ जांइ। ढूंढ़त ढूढ़त एक फल अइसन पाएन कि जउ ओके बुढ़वा आदमी खाइ त जवान होइ जाय। जब घरे पहुँचे त उ फल राजा के दिहेन अउ ओकर गुन बताइ क पिंजड़ा मां घुसुरि गयें। राजा सोचेन कि जउ हम एके खाइ लेइथ, त एकइ बेरी[1] के होये। एइसन करी की एके बोइ देइ जउने हमेसा बरे[2] होइ जाइ। एइसन सोचि क ओके बोइ दिहेन। जब पेड़ बाढ़ा त एक दिना एक फर[3] पाकि क गिरा। ओके कीरा[4] फूँकि दिहेस। जब भिनसार[5] भ, त माली ओ के लइके राजा के दिहेस। राजा सोचेन कि पहिल फर हम का खाई? केहू बम्हने के दइ देई। ई सोचि के उपरोहित के दइ दिहेन। बम्हनउ अपने लड़िका के दइ दिहेस कि इ गदेला[6] अहइ, खाइ लेइ। हम का करब? ओकर गुन त जनतइ न रहें। लड़िकवा जब खायेस त तुरंतइ मरिगा, काहे कि ओका कीरा सूँघे रहा। अउ केउ जानत नाहीं रहा। उ बाम्हन गा राजा के आगे। रोवइ लाग अउ सब हाल कहेस। राजा झट से उठें अउ हीरामनि के पकड़ि के पटकि दिहेन। हीरामनि बिचारे मरि गयें।

ओही गांव मां एक ठे धोबी धुबइन बहुत बढ़ापा रहत रहें। ओन कर बेटवा पतोहू रोजइ कजिया करइं। धोबिया कहेस कि चलु रे राजा के बगइचवा मां ओही फरवा खाइ लेई मरि जाई छुट्टी पाई। दुनउ जन गयें। ओके खायेन झट से जवान होइ गयें। अब बेटवा पतोहू खूब मानइ लागें। धोबी राजा के इहां कपड़ा आनइगा। त राजा पूंछेन कि करे तंइ जवान कइसे होइ गए? त उ बोला कि राजा तोहार इहइ फरवा बिनि के खाइ लिहा, जवान होइ गए। तब राजा हाइ हीरामनि हीरामनि कइ के मरि गए। जुइसन सुने रहे तइसन कहा। न कहवइया के दोष, न सुनवइआ के दोष, जे किहिनी उपराजे ते के दोष।

(५)

प्रयाग के दक्षिण शंकरगढ़ की ओर की एक कहानी।

अइसे एक ठे कोरी रहा। त उनकर मिहरारू बिनइ लागीं। तउ बिन चुकी त कोरी राम से कहेस कि तू बेच आवा। टका घाट टका बाढ़ त उ बजार मां आए। त कउनों महाजन के हाथ एक थान एक टका मां बेचिन। त बजार मां देखिन कि उ पान खाए रहा। त उ कहिन कि का तुम्हरेन पास पइसा है? जाइत है हमहूँ पान खाय। त उ आएन

[1] बार। [2] के लिए। [3] फल। [4] कीड़ा=साँप। [5] सबेरा। [6] लड़का।

बरइन के हियां। पान खाएन औ बजार मां घूमइ लागेन। त घूमत रहें त एक चिकवा गोस बनाए रहा। त ओसे कहिन कि एक पाई का हमैं गोस देया। त उ कहेस कि इ सार कहां का उल्लू आय कि एक पाई का गोस मांगत है। कहूँ एक पायू का गोस मिलत है ? त इ कहेन नाहीं भाय दइ द्यो एक पाई का। त उ दइ दिहिस। त चील मिड़रात रहै। त उ ओसे कहेन कि गोस लइ जा। हमरे घरे दइ दिहे। हमरे मिहरारू से कहि दिहें बनै रखिहे। त चील का दइ दिहिन। त चील लइ के आपन खाय लिहिस। त बजार से आपन चलें। त रात होइ गइ उन का। तब एक खेत मिला। ओहमां कांस खूब फुलान रहा। ता उन की जान नदिया आय बाढ़ी है। तउ जेकर खेत रहा कहेन ओसे कि हम का पार कइ देया। आधा टका देब। तउ ओन का पाटा पर से लागेन घसलावै। त ओनकर देह सगल चीर गइ ओहसे कांस कै छिरोरा लागत लागत त कोरी राम ओनका आधा टका दिहेन उतराई और चले घरे का। त घर मां गए। त ओनकर मिहरारू पूंछेस कि कहा गजी बेंच आया। त कहेन कि हां गजी बेंच आएन टका घाट। तउन सउदा लइके पठइ दीन चील के हाथ गोस। ओनकर मिहरारू कहेस कि भला चील कहूं सउदा लइ आए। उ अपुवै खाय लिहिस होई।

तीसरा अध्याय

(क) शिक्षा

ऐतिहासिक वर्णन

अंग्रेज़ी राज्य के आरंभ में सरकार की ओर से कुछ पाठशालाएं तथा मकतब खुले थे, जिन में साधारण व्यावहारिक और कुछ धार्मिक शिक्षा दी जाती थी।

पहले-पहल सन् १८३६ में एक सरकारी ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल खोला गया, जो सन् १८४६ में अमेरिकन मिशन को दे दिया गया। मिशनवालों ने इस काम में बड़ी उन्नति दिखाई। उन्हों ने २ वर्ष के भीतर शहर में ७ बाज़ार-स्कूल और एक कन्या-पाठशाला खोली। इन के अतिरिक्त अन्य शिक्षा-संस्थाओं को कुछ सरकारी सहायता दी जाती थी, जिन की संख्या सन् १८४८ में ४४६ थी और उन में ३७१६ विद्यार्थी पढ़ते थे।

सन् १८५६ में देहातों में हल्क़ाबंदी (प्राइमरी) और तहसीली (मिडिल) स्कूल खोले गए। परंतु पीछे ग़दर हो जाने के कारण कुछ दिनों तक बंद रहे। शांति हो जाने पर सन् १८५८ में तहसीली स्कूल फिर खोले गए और उस के एक वर्ष पीछे हल्क़ाबंदी स्कूल खुले। पहले जिस ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर-स्कूल की चर्चा आ चुकी है, वह ज़िले का हाई स्कूल बना दिया गया और उस समय कुछ दिनों तक वह चौक की चुंगीवाली कोठी में रहा। फिर वहां से उठ कर मलाका के पास वर्तमान स्थान में चला गया।

ग़दर के कुछ दिन पीछे सर विलियम म्योर इस प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त हुए। वह बड़े विद्वान् और शिक्षा-प्रेमी थे। उस समय गाँवों में लोग अपने लड़कों को सरकारी मदरसों में भेजने में बहुत संकोच करते थे। उन के प्रोत्साहन के लिए उक्त लाट साहब देहात में पैदल दौरा किया करते थे। किसी एक केंद्र में पड़ाव डाल कर आस-पास के स्कूलों के हज़ारों लड़के सड़क के किनारे मीलों तक बिठाए जाते थे। वह स्वयम् बीच में चलकर लड़कों से इतना सरल प्रश्न करते थे कि उन को उस के उत्तर देने में तनिक भी कठिनाई न हो।

जैसे किसी से पूछते "क्यों जी ! इलाहाबाद में कौन दो बड़ी नदियां मिलती हैं ?" वह उत्तर देता, "गंगा और यमुना ।" इस पर आप ख़ुश हो कर कहते, "शाबाश तुम बड़े होशियार लड़के हो ।" राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद उस समय वहां के स्कूलों के इंस्पेक्टर थे । वह साथ-साथ रहते थे । उन को आज्ञा होती थी कि ऐसे लड़कों का नाम इनाम पानेवालों में तुरंत लिख लिया जाय । इस के अतिरिक्त बड़े दिन की छुट्टियों में थोड़े-थोड़े लड़के ज़िले भर के स्कूलों में बुलाकर "ख़ुसरो-बाग़" में इकट्ठे किए जाते थे और उन को मिठाई बाँटी जाती थी ।

सन् १८७७ में इस ज़िले में १०० में केवल १½ अथवा २०० में केवल ३ आदमी पढ़े-लिखे थे । इन में आधे से अधिक दोआब में थे, जिन में दो तिहाई परगना चायल में शेष आधे में दो तिहाई गंगा पार और एक तिहाई यमुना पार में थे ।[1]

---

[1] सन् १९३१ की मनुष्य गणना के अनुसार प्रयाग में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या इस प्रकार है :—

		कुल	पुरुष	स्त्री
ज़िले भर में	पढ़े-लिखे	९०,३०९	७८,११५	१२,१९४
	अँग्रेज़ी जाननेवाले	२२,७२७	१९,१३३	३५९४
नगर में	पढ़े-लिखे	४६,७३४	३६,१६५	१०,५६९
	अँग्रेज़ी जाननेवाले	२०,९६९	१७,४८४	३४८५

पिछली मनुष्य गणना के अंकों को देखते हुए ज़िले भर के पढ़े-लिखे की तुलनात्मक संख्या प्रति १० हज़ार इस प्रकार है :—

	पुरुष	स्त्री	अंतर पुरुष	अंतर स्त्री
१९२१	८१	१४	३७	१६
१९३१	११८	२०		

इसी प्रकार अंग्रेज़ी जाननेवालों की संख्या नीचे दी जाती है :—

	पुरुष	स्त्री
१९२१	१८०	५५
१९३१	२९०	५९

पहले सिरसा इत्यादि कुछ स्थानों में अँगरेज़ी स्कूल खुले थे, परंतु कुछ दिनों पीछे बंद हो गए।

वर्तमान अवस्था

इस समय प्रयाग में १ यूनीवर्सिटी, ३ कालेज, ६ इंटरमीडियट कालेज, ८ हाई स्कूल, ६ वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, ५ गर्ल्स हाई स्कूल, ८ अन्य प्रकार की कन्या-पाठशालाएं, १५ संस्कृत और अरबी-फ़ारसी के विद्यालय और १२ विविध प्रकार की उद्योग-धंधे सिखाने वाली संस्थाएं हैं। इन के अतिरिक्त म्यूनीसिपल बोर्ड की ओर से ५३ स्कूल लड़कों और १३ लड़कियों के लिए तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ६०३ स्कूल हैं और २४६ को सहायता दी जाती है।

१० वर्ष (१९१८-२८) की छात्रों की संख्या

सन्	लड़के	लड़कियां	कुल	प्रति सैकड़ा पढ़ने वाले लड़के पुरुषों की आबादी पर	प्रति सैकड़ा पढ़ने वाली लड़कियां स्त्रियों की आबादी पर	कुल प्रति सैकड़ा दोनों की आबादी पर	विशेष सूचना
१९१८—१९	३३,८५२	२,७९४	३६,६४६	४·५५	·३७	२·५०	
१९१९—२०	३८,०६१	३,४४८	४१,५०९	५·११	·४८	२·८३	
१९२०—२१	३९,१०२	३,७८४	४२,८८६	५·४१	·५५	३·०५	
१९२१—२२	३८,१५०	४,२०५	४२,३५५	५·२०	·६१	३·०१	
१९२२—२३	३८,५१०	४,४९५	४३,००५	५·३३	·६५	३·०६	
१९२३—२४	३९,४६८	४,६४१	४४,१०९	५·४६	·६८	३·१४	
१९२४—२५	४६,५२३	४,९३१	५१,४५४	६·४४	·७२	३·६६	
१९२५—२६	४५,८५८	४,९६५	५०,८२३	६·३५	·७३	३·६६	
१९२६—२७	४१,६३२	४,२७४	४५,९०६	५·७६	·६२	३·२७	
१९२७—२८	५१,९६३	५,२३६	५६,८९९	७·१५	·७६	४·०५	

प्रयाग के म्यूनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के १० वर्ष (१९१९-१९२९) के शिक्षा-संबंधी सूचनाओं के अंक

सन्	म्यूनिसिपल बोर्ड						डिस्ट्रिक्ट बोर्ड								विशेष टिप्पणी
	लड़कों के लिए		लड़कियों के लिए		पढ़नेवाले लड़के प्रति सैकड़ा पुरुषों की आबादी पर	पढ़ने वाली लड़कियाँ प्रति सैकड़ा स्त्रियों की आबादी पर	जिन का प्रबंध बोर्ड द्वारा होता है				जिन को सहायता दी जाती है			कुल छात्रों की संख्या	
	स्कूलों की संख्या	पढ़ने वालों की संख्या	स्कूलों की संख्या	पढ़ने वालों की संख्या			स्कूलों की संख्या	छात्रों की संख्या: हाई तथा मिडिल स्कूलों में	छात्रों की संख्या: प्राइमरी क्लासों में	छात्रों की संख्या: लोअर प्राइमरी क्लासों में	स्कूलों की संख्या	छात्रों की संख्या: प्राइमरी क्लासों में	छात्रों की संख्या: लोअर प्राइमरी क्लासों में		
१९१९—२०	३७	३,४४६	७	५७१	३·८	·८	३००	८०७	२,५१४	१५,४०२	२३९	१७	७,५९३	२९,३१०	
१९२०—२१	४०	३,५५५	७	५५८	४	·८	३५९	९७५	२,७५६	९,०८७	१७७	५५	५,७०९	२८,५८२	
१९२१—२२	४६	३,८२५	१६	१३१६	४·३	१·९	३७५	१०३८	२,५६६	१८,२४४	१७९	६५	५,०३४	२८,९४७	
१९२२—२३	५०	३,७५६	१६	१२६२	४·२	१·९	४६४	११०६	२,५६२	२०,१८१	१६१	४२	४,३२१	२८,२१२	
१९२३—२४	३८	३,३०६	१३	९३९	३·७	१·४	४७६	११५६	२,७६४	२०,९६८	१५५	८	४,१९३	२९,०८९	
१९२४—२५	३८	३,२३२	१३	७९५	३·६	१·३	४७८	११३७	३,१४८	२०,८४६	२३१	४२	६,१८९	३१,३६२	
१९२५—२६	३८	३,२१७	१३	८९१	३·६	१·४	५०१	१४०५	३,६००	२२,४८३	२३८	१७	६,५५२	३३,९४७	
१९२६—२७	३८	३,३६४	१३	९३४	३·७	१·४	५१८	१४६९	४,१८२	२२,८९८	२१९	२९	६,१७३	३४,७५१	
१९२७—२८	४९	४,७७३	१३	९७१	५·३	१·४	५७५	१७६२	४,५१३	२४,५६७	२५८	४१	७,०३९	३७,९२२	
१९२८—२९	५३	५,४२७	१३	११९३	६·१	१·७	६०३	१८३०	४,८६५	२९,९४५	२४६	५२	६,८८४	४३,५७६	

यूनिवर्सिटी

पहले यहां की शिक्षा-संस्थाओं का संबंध कलकत्ता-यूनीवर्सिटी से था। १६ नवंबर सन् १८८७ से इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्थापित हुई। सर अल्फ्रेड लायल उस समय इस प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे। वह बड़े विद्वान् और शिक्षा-प्रेमी थे। उन्हीं की प्रेरणा से यहां यूनीवर्सिटी की स्थापना हुई थी और वही इस के पहले चांसलर हुए थे।

पहले यह केवल परीक्षक यूनीवर्सिटी थी और इस का विस्तार इस प्रांत के अतिरिक्त मध्य-प्रदेश, मध्य-भारत तथा राजपूताने तक था। अब सन् १९२२ से (एक्ट ३ सन् १९२१ के अनुसार) यह पूर्णतया शिक्षक यूनीवर्सिटी हो गई है और इस का अधिकार केवल १० मील के घेरे में रह गया है।

कुछ विद्यार्थियों को जिन की इच्छा होती है, फ़ौजी ढंग से क़वायद सिखाई जाती है। इस जत्थे का नाम 'यूनीवर्सिटी ट्रेनिंग कोर' है, जो सन् १९२२ से स्थापित हुआ है।

इस समय इस विद्यालय में १०० के लगभग अध्यापक हैं, जिन में से कुछ स्त्रियां भी हैं। १५०० से ऊपर विद्यार्थी हैं, जिन की शिक्षा का स्थायी व्यय लगभग ११ लाख रुपया वार्षिक है।

सन् १९१२ में यूनीवर्सिटी का विशाल भवन सेनेट हाल के नाम से ५,८५,५०० रुपए की लागत से बन कर तैयार हुआ। इस का नक़शा जयपुर के इंजिनियर सर स्वीन्टन जेकब ने बनाया था। इस की घड़ी का मीनार १०० फ़ुट ऊँचा है और बीच का हाल (बड़ा कमरा) १३० × ६० फ़ुट है। इसी के साथ-साथ बग़ल में दो और बड़ी इमारतें यूनीवर्सिटी स्कूल आव् लॉ और लायब्रेरी के नाम से क्रमशः २,७५,००० और २,४४,७०० रुपए की लागत से बनी है।

यूनीवर्सिटी का पुस्तकालय प्रयाग में सब से बड़ा है। इस समय इस में लगभग ७५०० पुस्तकें हैं।

नवीन संगठन के अनुसार अब सन् १९२२ से यह रेज़ीडेंशल यूनीवर्सिटी कहलाती है, जिस में छात्रों का अपने अध्यापकों के संपर्क में रहना अनिवार्य है, परंतु अभी इतने छात्रालय नहीं बने जिन में सब विद्यार्थी रह सकें। इस लिए कुछ अपने घरों में और कुछ निज के प्रबंध से जहां जगह पाते हैं, रहते हैं। इस समय केवल ८ होस्टल हैं, जिन में १००० के लगभग लड़के रहते हैं। इन का कुछ विवरण नीचे लिखा जाता है :—

(१) मुसलिम-होस्टेल—यह सब से पुराना होस्टेल है, जो सर सैयद अहमद ख़ाँ के उद्योग से सन् १८९२ में बना था। इस में १०० के लगभग लड़के रहते हैं।

(२) हॉलैंड-हाल—पहले इस का नाम 'आक्सफ़ोर्ड ऐंड केंब्रिज होस्टेल' था, जिस को सन् १९००में 'चर्च मिशनरी सोसायटी' ने खोला था। परंतु अब यह अमेरिकन-प्रेस्बेटीरियन मिशन के प्रबंध में है। पहले इस में ८२ लड़कों के रहने के लिए जगह थी। पीछे सन् १९०९ में पूरब की ओर और इमारतें बन गईं, जिस से अब १०० से ऊपर लड़के

रहते हैं। पादरी डबल्यू० ई० एस हालैंड इस होस्टेल के पहले वार्डन थे। अतः उन के चले जाने पर इस का पुराना नाम बदल कर उन के स्मारक में 'हालैंड-हाल' रक्खा गया है।

(३) मेकडानल यूनीवर्सिटी हिंदू बोर्डिंग हाउस—इस का विशाल भवन सन् १६०१ में विशेषतया पंडित मदनमोहन मालवीय जी के उद्योग और अध्यवसाय से बना है। पीछे सन् १६१७ में इस के दो बाज़ू बने। अब इस में २१० लड़कों के रहने के लिए जगह है। सर एंटनी मेकडानल इस प्रांत के एक प्रसिद्ध लेफ्टिनेंट-गवर्नर थे। उन्हीं से इस की आधार शिला रखवाई गई थी। इस के भवन-निर्माण में ३ लाख रुपए से ऊपर व्यय हो चुका है।

(४) म्योर होस्टेल—इस का नाम पहले गवर्नमेंट-होस्टेल था। सन् १६२३ से जब 'म्योर कालेज' का नाम बदल कर 'यूनीवर्सिटी-कालेज' रक्खा गया, तब सर विलियम म्योर का नाम स्थिर रखने के लिए उन का नाम इस होस्टेल के साथ जोड़ दिया गया। पहले यह कालेज के हाते में एक मामूली बँगले में था। इस का वर्तमान भवन सन् १६१२ में लगभग ६८ हज़ार रुपये की लागत से बना है। पहले इस में ५५ लड़कों के रहने के लिए जगह थी, परंतु सन् १६३० में इस के दो बाज़ू और बन गए हैं, जिस से अब इस में ८४ लड़के रह सकते हैं। यह यूनीवर्सिटी का होस्टेल है।

(५) सर सुंदर लाल तथा सर प्रमदाचरण बनर्जी होस्टेल—ये भी यूनीवर्सिटी के होस्टेल हैं। पहले इन दोनों का नाम ला-होस्टेल था, जो सन् १६१६ में १½ लाख रुपए की लागत से बना था। सर सुंदर लाल जी ने वायस चांसलर के रूप में बहुत दिनों तक यूनीवर्सिटी की अवैतनिक सेवा की थी। अतः पीछे उन के नाम के स्मरणार्थ उन का नाम इस होस्टेल के साथ जोड़ दिया गया। थोड़े दिन हुए (१६३० में) उस के पश्चिमवाले भाग का नाम सर प्रमदाचरण बनर्जी होस्टेल रख दिया गया है। आप भी यूनीवर्सिटी के कुछ दिनों वायस चांसलर रहे थे। इन दोनों होस्टेलों में २०० से ऊपर लड़कों के रहने की जगह है।

(६) सुमेरचंद-दिगंबर जैन होस्टेल—लाला सुमेरचंद जी प्रयाग के एक बड़े धनाढ्य जैनी थे। उन के कोई पुत्र न था। अतः उन की विधवा श्रीमती झमोला कुंवरि ने अपने पति के स्मारक में यह होस्टेल सन् १६११ में खोला था, जिस का वर्तमान भवन २ वर्ष पीछे खरीदा गया है। इस में २० के लगभग लड़कों के रहने के लिए जगह है।

(७) कायस्थ पाठशाला होस्टेल—सन् १६२२ से कायस्थ-पाठशाला-कालेज के बी० ए० की कक्षा यूनीवर्सिटी में सम्मिलित हो गई है। अतः उस के छात्रों के रहने के लिए पाठशाला के अधिकारियों ने अपना अलग होस्टेल ६० हज़ार रुपए की लागत से बनवाया है। इस में ८० के लगभग लड़के रहते हैं।

(८) न्यू-होस्टेल—यह भी यूनीवर्सिटी का छात्रालय है, जो सन् १६२८ में सवा दो लाख रुपये की लागत से बना है। इस में १५८ विद्यार्थियों के रहने की जगह है। अब इस का नाम 'गंगा नाथ झा होस्टेल' हो गया है।

शिक्षा-संस्थाएं

यूनिवर्सिटी कालेज

प्रयाग में उच्च श्रेणी की शिक्षा का इतिहास वास्तव में सन् १८४३ से आरंभ होता है, जब कि ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार ने यहां कालेज की शिक्षा का प्रबंध अमेरिकन प्रेस्बेटीरियन मिशन के सुपुर्द किया था। सन् १८५३ में, जब सिविल स्टेशन यमुना किनारे से उठ कर इधर आ गया, तो उक्त मिशन ने वहां की कचहरी की इमारत ख़रीद ली; और उसी में एक कालेजिएट स्कूल खोला, परंतु कुछ दिनों के पश्चात् किन्हीं कारणों से कालेज की कक्षाओं को तोड़ दिया और 'जमना मिशन' के नाम से केवल एक हाई स्कूल रह गया।

उस के पश्चात् बहुत दिनों तक यहां कोई ऐसी संस्था न रही। अतः सन् १८६८ में इस प्रांत के तत्कालीन लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर सर विलियम म्योर ने अपने दरबार के अवसर पर यहां एक उच्च कोटि के कालेज की स्थापना का विचार प्रकट किया। तदनुसार सन् १८७२ में म्योर महोदय के नाम से कालेज खुल गया और जब तक उस का अपना भवन बन कर तैयार नहीं हुआ, वह दरभंगा कैसल में रहा। इस के विशाल भवन की आधार-शिला सन् १८७३ में तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थब्रुक ने रक्खी थी, जो सन् १८८५ में बन कर तैयार हुआ और अप्रैल सन् १८८६ में लार्ड डफ़रिन ने इस का उद्‌घाटन-संस्कार किया। इस की पहले की कुल इमारत पत्थर की है, जिस पर उस समय ८ लाख रुपया व्यय हुआ था। इस का भव्य मीनार २०० फ़ुट ऊंचा है। पीछे ज्यों-ज्यों आवश्यकता होती गई, बहुत सी ईंट की इमारतें बढ़ती गईं, जिन पर मिलान के लिए पत्थर के सदृश प्लास्टर कर दिया गया है।

पहले इस कालेज का संबंध कलकत्ता यूनीवर्सिटी से था। सन् १८८७ में जब इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्थापित हुई तब यह उस के अंतर्गत हो गया, परंतु सन् १८८९ तक इस की परीक्षाएं कलकत्ता यूनीवर्सिटी ही लेती रही। पीछे इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के नवीन संगठन के अनुसार सन् १८२२ से यह कालेज अब यूनिवर्सिटी में सम्मिलित हो गया है, जिस का विस्तृत वृत्तांत अन्यत्र लिखा गया है।

यूनीवर्सिटी के नए विधान के अनुसार यहां के तीन कालेज उस के अंतर्गत माने जाते हैं, जिन के अधिकारियों ने अपने छात्रों को, यूनीवर्सिटी की पढ़ाई के समय के अतिरिक्त, अपने-अपने होस्टलों में भी कुछ शिक्षा देने का प्रबंध कर रक्खा है। उन के नाम ये हैं—

(१) कायस्थ पाठशाला यूनीवर्सिटी कालेज
(२) ईविंग क्रिश्चियन कालेज
(३) क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज

इन संस्थाओं का इतिहास इसी पुस्तक में अन्यत्र वर्णन किया गया है।

इंटरमीडियट कालेज

सन् १९२१ से यूनीवर्सिटी के नए क़ानून के अनुसार एफ़०, ए०, की कक्षाएं कालेजों

से निकाल कर हाई स्कूलों में मिला दी गई हैं और इस लिए उस समय से म्योर कालेज के सिवाय और जो कालेज यहां थे, वे सब टूट कर इंटरमीडियट कालेज हो गए हैं, तथा कुछ नए हाई स्कूल भी इंटरमीडियट कालेज बन गए हैं। उन का संक्षिप्त ब्योरा, नीचे दिया जाता है।

(१) गवर्नमेंट इंटरमीडियट कालेज—यह सब से पुरानी संस्था है। इस का इतिहास पीछे लिखा गया है। सन् १८३६ में यह हाई स्कूल के रूप में स्थापित हुआ था।

(२) कायस्थ पाठशाला कालेज—यह संस्था इसी ज़िले के क़स्बा शहज़ादपुर (त० सिराथू) के रईस मुंशी कालीप्रसाद जी कुलभास्कर ने विशेषकर कायस्थ बालकों की शिक्षा के लिए सन् १८७३ में स्थापित की थी, और उस के व्यय के लिए १० हज़ार रुपए नक़द जमा कर दिए थे, जिस का सूद ६०० रुपए सालाना होता था।

आरंभ में इस में केवल संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। सन् १८७४ से फ़ारसी की भी शिक्षा दी जाने लगी। सन् १८७८ से मिडिल और १८८२ से इंट्रेंस क्लास खोला गया। उस समय पाठशाला का कोई अपना भवन न था इस लिए चित्रगुप्त जी के मंदिर पर लड़के पढ़ते थे। सन् १८७४ तक यही प्रबंध रहा। फिर इस में कायस्थों के अतिरिक्त अन्य द्विजों के लड़के भी पढ़ने लगे, इस लिए वह स्थान काफ़ी न हुआ, और सन् १८७६ के अंत में व्यास जी के बाग़[1] में पाठशाला को ले जाना पड़ा। परंतु कुछ दिनों के पश्चात् वहां भी जगह की तंगी हुई तब बहादुरगंज में एक मकान लिया गया। वहां अप्रैल सन् १८८० तक पाठशाला रही। उसी वर्ष मई के महीने में सूर्यकुंड पर वर्तमान कोठी ख़रीदी गई और तब से पाठशाला उसी में है। पीछे १६११ में सिटी रोड पर उसी से मिली हुई दूसरी कोठी भी ले ली गई। सन् १८६५ से एफ़० ए० और १६१४ से बी० ए० की क्लासें खोली गई। अब फिर जगह की कमी हुई, जिस के लिए सन् १६२० में गवर्नमेंट स्कूल (अब इंटरमीडियट कालेज) के सामने एक बड़ी जगह सरकार ने अपने व्यय से ले कर दे दी। अब इसी में पाठशाला का नवीन विशाल भवन बना है।

सन् १६२१ से यूनिवर्सिटी के नए क़ानून के अनुसार पाठशाला के बी० ए० क्लास के लड़के यूनीवर्सिटी कालेज में पढ़ते हैं और तब से यह केवल इंटरमीडियट कालेज रह गया है।

मुंशी कालीप्रसाद जी लखनऊ में वकालत करते थे। उन के कोई संतान न थी। उन्हों ने सन् १८८६ में एक वसीअतनामा द्वारा अपनी कुल चल और अचल संपत्ति, जिस की मालियत उस समय ६ लाख रुपए के लगभग थी, पाठशाला को अर्पण कर दी और उस के प्रबंध के लिए एक ट्रस्ट बना गए। उसी वर्ष (६ नवंबर को) ४६ साल की अवस्था में उन का देहांत हो गया।

---

[1] यह बाग़ अतरसुइया से आगे ककरहा घाट के रास्ते में है।

पीछे कालेज हो जाने के कारण पाठशाला को धन की अधिक आवश्यकता हुई, जिस के भवन-निर्माण के लिए यहां के सुविख्यात रईस स्वर्गीय चौधरी महादेवप्रसाद जी ने १ लाख रुपया दान दिया।

इस के पश्चात् सन् १६०४ में उक्त चौधरी साहब की बहन श्रीमती रामकली कुंवरि ने जो विसवां ज़िला सीतापुर की तालुक़दारिया थीं, अपनी १½ लाख के मालियत की संपत्ति का बड़ा भाग एक दानपत्र के द्वारा पाठशाला को इस निमित्त दे दिया कि उस की आमदनी से उन के स्वर्गवासी पति ठाकुर विश्वेश्वर वख़्श सिंह जी के नाम से ग़रीब कायस्थ छात्रों के लिए एक 'कायस्थ-स्कालरशिप-ट्रस्ट' स्थापित किया जाय।

इस के बाद चौधरी महादेवप्रसाद जी ने अप्रैल सन् १६१४ में अपनी १७ लाख की संपत्ति की लगभग आधी आमदनी, जो सालाना ४० हज़ार रुपए के निकट होती थी सदैव के लिए पाठशाला को दी थी और शेष आधी जायदाद अपने उत्तराधिकारियों और निकट संबंधियों के निर्वाह के लिए दे गए थे, और यदि किसी समय उन का भी कोई वारिस न रहता तो उन के हिस्से पर भी पाठशाला का अधिकार होता। पर चौधरी साहब की मृत्यु के पश्चात् उन के नातियों ने उन के इस वसीअतनामा के रद्द होने के लिए अदालत दीवानी में मुक़दमा दायर कर दिया, जिस में पहले तो वे हार गए थे, परंतु फिर अपील में हाई कोर्ट से उन की डिग्री हो गई, जिस का परिणाम यह हुआ कि पाठशाला उक्त संपत्ति से बंचित रह गई।

(३) ईविंग क्रिश्चियन कालेज—इस कालेज को अमेरिकन-प्रेस्बेटीरियन-मिशन ने सन् १६०२ में स्थापित किया था। डाक्टर ईविंग इस के बड़े उत्साही प्रिंसिपल थे। उन के समय में इस कालेज ने बड़ी उन्नति की। सन् १६१२ में उन का देहांत हो गया। तब से कालेज के अधिकारियों ने उन की सेवा का आदर कर के इस संस्था के साथ उन का भी नाम जोड़ दिया है। सन् १६२१ से कायस्थ पाठशाला के समान इस की भी ऊपर की कक्षाएँ टूट गई हैं और यह केवल इंटरमीडियट कालेज रह गया है।

(४) ऐंग्लो बंगाली इंटरमीडियट कालेज—प्रयाग में बंगालियों की पर्याप्त संख्या है। इस लिए उन्हों ने अपने बच्चों को बंग-भाषा द्वारा शिक्षा देने के लिए सन १८७५ में इस संस्था की नींव डाली थी। इस के मुख्य संस्थापक एक साधारण बंगाली सज्जन थे, जिन का नाम बाबू मधुसूदन मैत्र था। वह बोर्ड आफ़ रेवेन्यू के दफ़्तर में क्लर्क थे।

आरंभ में केवल ५ लड़कों और १ अध्यापक के साथ नगर के एक मकान में यह पाठशाला खुली थी। १८८६ में इस में पौने दो सौ से ऊपर लड़के हो गए और हाई स्कूल तक शिक्षा होने लगी। उस समय कलकत्ता यूनीवर्सिटी से इस का संबंध था। सन् १८८६ से यह इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के अंतर्गत हुआ। सन् १८६४ में इस के वर्तमान भवन की आधार-शिला रक्खी गई, जो ५ वर्ष में तैयार हुई। सन् १६२५ से अब यह इंटरमीडियट कालेज हो गया है।

(५) **बायज़ इंटरमीडियट कालेज**—यह स्कूल भी बहुत पुराना है। सन् १८६१ में यूरोपियन और ऐंग्लोइंडियन लड़कों के पढ़ने के लिए खोला गया था। यहां सीनियर केंब्रिज क्लास तक शिक्षा दी जाती है जो यहां के एफ़० ए० के समान समझी जाती है। इस में हिंदुस्तानी लड़के भी पढ़ सकते हैं।

(६) **सेंट जोज़ेफ़ कालेजियट स्कूल**—यह रोमन कैथोलिक ईसाइयों की संस्था है, जो सन् १८८४ में खुली थी। इस का संबंध आक्सफ़ोर्ड यूनीवर्सिटी से है। लार्ड विशप इस के मुख्य अधिष्ठाता हैं।

हाई स्कूल

वर्तमान हाई स्कूलों में गवर्नमेंट स्कूल को छोड़ कर, जिस की चर्चा पीछे हो चुकी है, सब से पुराना जमुना मिशन स्कूल है, जो अमेरिकन प्रेस्बेटीरियन मिशन के प्रबंध में है। इस का इतिहास यह है कि सन् १८४६ में सरकार ने प्रयाग में कालेज की शिक्षा का प्रबंध ए० पी० मिशन को दे दिया था, जिस ने सन् १८५३ में एक कालेजियट स्कूल खोला। परंतु कुछ वर्षों के पीछे संभवतः ग़दर के लगभग कालेज की कक्षाएँ तोड़ दी गईं और तब से इस संस्था का नाम 'जमुना मिशन स्कूल' हो गया।

(२) इस के पश्चात् सी० ए० वी० स्कूल का सूत्रपात सन् १८६६ ई० में हुआ। इस का पूरा नाम सिटी-ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर-हाई स्कूल है। उन दिनों यहां एक शिक्षा-संबंधी संस्था इलाहाबाद इंस्टीच्यूट के नाम से थी, जिस के प्रधान तत्कालीन लेफ़्टिनेंट गवर्नर सर विलियम म्योर थे। उसी के संरक्षण में पंडित शिवराखन शुक्ल तथा बाबू खन्नूलाल कक्कड़ ने पहले इस संस्था को एक संस्कृत पाठशाला के रूप में, जान्स्टनगंज में एक किराए के मकान में खोला था। कुछ दिनों के पश्चात् मिडिल और फिर हाई स्कूल की क्लासें खुलीं। सन् १८७७ से इस का संबंध कलकत्ता यूनीवर्सिटी से हुआ। फिर पीछे जब इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्थापित हुई तब यह उस के अंतर्गत हो गया। सन् १८९९ में इलाहाबाद-एजूकेशन सोसाइटी के नाम से एक संस्था स्थापित हो कर नियमानुसार उस की रजिस्ट्री हुई। तब से यह स्कूल उसी के प्रबंध में चल रहा है।

पं० शिवराखन शुक्ल रायबरेली ज़िले के चिताखेरानाथ गाँव के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, और यहां बोर्ड आव् रेवेन्यू के दफ़्तर में नौकर थे। उन्होंने इस संस्था का उस के बाल्यकाल में बड़े परिश्रम से पालन-पोषण किया था, इस लिए इस के साथ उन का भी नाम अमर हो गया है। अर्थात् यहां की जनता आम तौर से इस को शिवराखन पाठशाला अथवा शिवराखन स्कूल कहती है। खेद है कि इस के संचालकों ने इस का ऐसा समुचित और सार्थक नाम छोड़ कर एक इतना लंबा नाम रक्खा है कि लोग विवश होकर उस के प्रत्येक शब्द के आदि अक्षरों का ही उच्चारण करते हैं।

सन् १९१२ में स्वर्गीय सर सुंदरलाल जी की कृपा से ८५,००० रुपए की लागत से इस का वर्तमान भवन कैनिंग रोड पर बना है; और तब से यह स्कूल शहर के मकान से

उठ कर इस में आ गया है। सर सुंदरलाल जी की इस स्कूल पर बड़ी कृपा थी। कहते हैं वह इस को कालेज बनाना चाहते थे, परंतु दुर्भाग्यवश आकस्मिक मृत्यु ने उन को इस का अवसर न दिया।

(३) सन् १८८६ में दारागंज हाई स्कूल की नींव पड़ी। यह सभी जानते हैं कि यहां के पंडों और प्रागवालों में शिक्षा का कितना अभाव है। परंतु पाठक यह सुनकर चकित होंगे कि इस स्कूल के संस्थापक एक प्रागवाल ही थे, जिन का शुभनाम पंडित भगवान दास था। वह स्वयम् शिक्षित न थे, परंतु उन को इस संस्था के चलाने की धुन थी। निस्संदेह वह अपने उद्देश्य में सफल मनोरथ हुए; अर्थात् जो पौधा उन्हों ने छोटी अवस्था में लगाया था, वह आज पल्लवित होकर ख़ूब लहलहा रहा है। सन् १९१६ से यह हाई स्कूल हुआ। इस समय यहां के स्कूलों में इस की ख़ासी ख्याति है, जिस का श्रेय विशेषतया इस के भूतपूर्व हेड मास्टर पंडित हरीराम झा तथा इस की प्रबंध-कारिणी सभा के प्रधान राय बहादुर के० के० गोरे को है। क्या अच्छा होता यदि इस संस्था का नाम इस के संस्थापक के स्मारक में भगवानदास हाई स्कूल रक्खा जाता।

(४) सन् १९०६ में स्वर्गीय डाक्टर जयकृष्ण व्यास ने 'विद्यामंदिर' स्कूल की स्थापना की थी। पहले इस में केवल हिंदी और महाजनी पढ़ाई जाती थी। फिर सन् १९१० में यह मिडिल और सन् १९१६ में हाई स्कूल हो गया। सन् १९२१ से यह स्थानीय सेवा समिति के प्रबंध में चल रहा है।

(५) सन् १९१३ में डाक्टर जे० जे० घोष ने माडर्न हाई स्कूल खोला। डाक्टर साहब पहले जमना मिशन स्कूल के हेडमास्टर थे। वहां के अधिकारियों से कुछ अनबन हो जाने के कारण उसे छोड़ कर चले आए और अपना अलग स्कूल खोल लिया। इस स्कूल ने बहुत जल्दी उन्नति की। खुलते ही इतने लड़के आ गए कि उन के बैठने के लिए स्थान का प्रबंध करना कठिन हो गया। जिन बार-बार के फ़ेल हुए लड़कों को कोई स्कूल न लेता था, उन को माडर्न स्कूल सहर्ष भरती करता था। परंतु असहयोग आंदोलन के समय में डाक्टर घोष और छात्रों में घोर विरोध तथा उन में कुछ भयंकर झगड़ा हो जाने के कारण, इस स्कूल के प्रति यहां की जनता में बहुत असंतोष फैल गया था।

डाक्टर घोष की पत्नी एक यूरोपियन महिला थीं। वह भी बड़ी विदुषी और शिक्षा-प्रेमी थीं। अतः अध्यापन-कार्य में अपने पति के साथ पूरा योग देती थीं। थोड़े दिन हुए उन का देहांत हो गया है।

(६) सन् १९१४ में स्थानीय आर्य-कुमार-सभा के कुछ उत्साही सभासदों ने दयानंद-एंग्लो-वैदिक स्कूल के नाम से एक संस्था खोली, जिस में स्वर्गीय बाबू जंगबहादुर लाल जी का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। यह युवक महाशय ग़ाज़ीपुर के रहनेवाले थे। उन के भाई यहां नौकर थे। उन्हीं के पास वह पढ़ने के लिए यहां रहते थे। उन को इस स्कूल के खोलने की इतनी धुन थी, कि वह अपना आगे का पढ़ना-लिखना भी छोड़ कर इस के चलाने के पीछे पड़ गए और आरंभ में केवल ११ विद्यार्थियों को लेकर

बादशाही मंडी में एक छोटे से किराए के मकान में जा बैठे। उस समय कोई प्रबंध न था। न कोई संरक्षक अथवा सहायक था और न कुछ कोष में धन था। परंतु उन का अटल विश्वास था कि यह स्कूल अवश्य चलेगा। परमात्मा ने उन की शुभ कामनाओं की पूर्ति की। पहले ही वर्ष के भीतर लगभग १०० लड़के आ गए; और मिडिल तक शिक्षा होने लगी। परंतु सरकारी शिक्षा-विभाग से इस का संबंध सन् १९१६ में हुआ, जब कि इस का वर्तमान भवन बन कर तैयार हुआ। इस के लिए बाबू रमाकांत बी० ए० एल-एल, बी० रईस, अहियापुर, की माता ने कृपया अपने बाग़ में स्थान दिया था। इस के बाद ही मिडिल से ऊपर की कक्षाएं खुल गईं और सन् १९१९ में इस के लड़के पहली बार हाई स्कूल की अंतिम परीक्षा में सम्मिलित हुए। खेद है कि उसी वर्ष अक्तूबर के महीने में महाशय जंगबहादुर लाल जी का केवल २५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गारोहण हो गया।

इस स्कूल में साधारण शिक्षा के साथ-साथ प्रत्येक छात्र के लिए कुछ धार्मिक शिक्षा भी अनिवार्य है। बाबू रमाकांत जी तथा इस के सुयोग्य हेडमास्टर महाशय गंगा-प्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० इस संस्था के प्राण-स्वरूप हैं।

(७) दो और मिडिल स्कूल सन् १९३० से हाई स्कूल हुए हैं। एक मजीदिया इस्लामिया स्कूल है जो, सन् १९१७ में यहां के रईस नवाब अब्दुल मजीद साहब की विशेष आर्थिक सहायता से खुला था।

(८) दूसरा अगरवाल विद्यालय है, जो सन् १९१० में खुला था। इस के मुख्य संस्थापक हैं यहां के सुप्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी बाबू संगमलाल जी एम० ए० एल-एल० बी०, तथा स्वर्गीय बाबू काशीनाथ जी। इस संस्था का उद्देश्य बच्चों को अंग्रेज़ी के साथ व्यापारिक तथा महाजनी की शिक्षा देना है। अतः इस विषय की पढ़ाई का इस स्कूल में विशेष प्रबंध है।

(९) सन् १९३२ से कर्नलगंज स्कूल भी हाई स्कूल हो गया है। यह पुराना स्कूल है जिस को स्थानीय बंगालियों ने स्थापित किया था।

मिडिल-स्कूल

अंग्रेज़ी मिडिल स्कूलों में सब से पुराने कटरा के ए० पी० ब्वाएज़ मिशन स्कूल[1] तथा कर्नलगंज स्कूल थे, जिन में पिछला अभी १९३३ से हाई स्कूल हुआ है। सन् १८८४ ई० के लगभग गुड़िया-तालाब के निकट मास्टर दौलत हुसैन ने एक इस्लामिया स्कूल खोला था, जिस में अब मिडिल क्लास तक पढ़ाई होती है। इस के पश्चात् शहर में खत्रियों की ३ पाठशालाएं खुलीं, जिन में सब से पुरानी ४० वर्ष पहले अर्थात् सन् १८९० ई० के लगभग की बतलाई जाती है। परंतु प्रबंध की शिथिलता से इन की दशा संतोष-जनक न थी, इस लिए सन् १९२२ में लाला सदनलाल तथा साँवलदास खन्ना के उद्योग

---

[1] यह स्कूल सन् १९३३ से बंद हो गया है।

से उक्त तीनों पाठशालाएं एक कर दी गईं और उस का नाम सारस्वत-खत्री पाठशाला रक्खा गया है।

इस के पीछे सन् १६०५ में बहादुरगंज के लाला हनुमानप्रसाद के उद्योग से मुट्ठी-गंज में कलवार पाठशाला खुली। अब इस का नाम बदल कर हैहय क्षत्री पाठशाला रक्खा गया है।

सन् १६१२ में केसरवानी वैश्य पाठशाला खुली। इस के संबंध में कोई बात विशेष-तया उल्लेखनीय नहीं है। नवंबर सन् १६२६ में थियासोफ़िकल स्कूल खुला। उन दिनों मिस्टर पियर्स कायस्थ पाठशाला के हेडमास्टर थे। उन्हीं के उद्योग से यह संस्था यहां खुली थी। इस में यह विशेषता है कि ३ से ५ वर्ष तक के बालक भरती किए जाते हैं। और उन को पहले मान्टेसोरी डिपार्टमेंट में खेल-कूद तथा विविध प्रकार की वस्तुओं के निरीक्षण-द्वारा शिक्षा दी जाती है और उन के मस्तिष्क की शक्तियां विकसित की जाती हैं। जब वे कुछ बड़े हो जाते हैं, या जो लड़के ६-७ वर्ष के वहां जाते हैं, उन को साधारण स्कूली-शिक्षा दी जाती है। इस संस्था में अधिकांश शिक्षक स्त्रियां हैं। इस समय पांचवीं श्रेणी तक शिक्षा दी जाती है। स्कूल का भवन एक एकांत तथा सुरम्य स्थान में प्रयाग स्टेशन के निकट है, जिस का नाम कृष्णाश्रम रक्खा गया है। इस के संचालकों का कहना है कि इस संस्था के संस्थापन से उन का उद्देश्य जनता के सम्मुख एक आदर्श शिक्षा-प्रणाली का उपस्थित करना है। अब इस का नाम 'मिसेज़ एनी बेसेंट स्कूल' है।

अमेरिकन प्रेसबेटीरियन मिशन के प्रबंध में रेलवे स्टेशन के निकट एक कालविन फ़्री स्कूल है, जिस में केवल ग़रीब ईसाइयों के लड़कों को जूनियर केंब्रिज तक की शिक्षा दी जाती है।

स्त्री-शिक्षा-संस्थाएं

(१) कालेज

प्रयाग में स्त्री-शिक्षा की सब से बड़ी संस्था क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज है, जिस में दूर-दूर से लड़कियां पढ़ने के लिए आ कर रहती हैं। इस का संक्षिप्त इतिहास यह है कि मार्च सन् १८६४ ई० में मुरादाबाद के सुप्रसिद्ध रईस राजा जयकृष्णदास और लखनऊ के मुंशी राहत अली ख़ां ने भारतीय महिलाओं की उच्च शिक्षा के निमित्त धन के लिए जनता में एक अपील प्रकाशित की थी। फिर उसी साल अप्रैल के महीने में इस उद्देश्य के लिए लखनऊ में एक सभा हुई, जिस के सभापति इस प्रांत के तत्कालीन लेफ़्टिनेंट-गवर्नर सर चार्ल्स क्रास्थवेट हुए थे। एक वर्ष के भीतर जब सवा लाख के लगभग रुपया जमा हो गया तब २५ फ़रवरी सन् १८६५ ई० को वहीं कोठी दिलाराम में यह संस्था स्कूल के रूप में उक्त क्रास्थवेट महोदय के नाम से खोली गई, परंतु लखनऊ मुसल्मानी नगर है। वहां पर्दे का प्रतिबंध अधिक होने से यह स्कूल न चल सका। अतः सन् १८६८ में इलाहाबाद

लाया गया और यहां महाजनी टोले में एक किराए के मकान में कई वर्षों तक रहा। पीछे सन् १६०६ में इस का वर्तमान भवन बाई के बाग के निकट ३५ हजार रुपए में लिया गया। तब से यह उसी में है। पीछे धीरे-धीरे इस संस्था ने बड़ी उन्नति की। सन् १६१८ से हाई स्कूल सन् १६२० से एफ़० ए० और १६२२ से बी० ए० की पढ़ाई होने लगी।

इस समय इस में ३५० से ऊपर लड़कियां हैं। एक ट्रेनिंग डिपार्टमेंट है जिस में कन्याओं को अध्यापन का काम सिखाया जाता है तथा संगीत की शिक्षा का भी समुचित प्रबंध है।

(२) हाई स्कूल

इस श्रेणी में ईसाइयों की ३ ऐसी संस्थाएं हैं, जिन में सीनियर कैंब्रिज तक की शिक्षा दी जाती है। इन में सब से पुराना गर्ल्स हाई स्कूल है जो सन् १८६१ में खोला गया था। इस समय इस का भवन एलगिन रोड पर है। इस में अधिकांश ऐंग्लो-इंडियन लड़कियां पढ़ती हैं।

दूसरा रोमन कैथोलिक ईसाइयों का सेंट मेरीज़ कनवेंट स्कूल है जो सन् १८६६ में पहले फाफामऊ में खोला गया था। अब इस का भवन एडमान्सटन रोड पर है। इस में संगीत की भी शिक्षा दी जाती है। इस का संचालन ननों[1] द्वारा होता है।

तीसरे का नाम सेंट सिसिलियाज़ हाई स्कूल है। यह किसी मिशन के अधीन नहीं है, किंतु एक स्वतंत्र संस्था है, जो थोड़े दिनों से खुली है। यह भी इस समय एलगिन रोड पर है।

अब उन हाई स्कूलों की चर्चा की जाती है जिन का संबंध यहां के शिक्षा विभाग से है। इन में सब से पुराना ए० पी० मिशन का मेरी वानमेकर गर्ल्स हाई स्कूल है, जो सन् १८८५ में मेरी इविलेन लूकस-द्वारा स्थापित हुआ था। इस का वर्तमान भवन सन् १६०३ में कलेक्टरी कचहरी के निकट मिशन रोड पर बना है। इस में इस समय १० वीं श्रेणी तक शिक्षा दी जाती है।

दूसरा जगत तारण गर्ल्स हाई स्कूल है, जो ६ अक्टूबर सन् १६१६ ई० को खोला गया था। इस के नामकरण का इतिहास यह है कि श्रीमती जगतमोहनी देवी स्वर्गीय मेजर वामनदास बसु की बहन थीं और श्री तारणचंद्रदास उन के बहनोई थे। इस दंपति के कोई संतान न थी। अतः उन्हीं के स्मारक में उक्त बसु महाशय ने यह संस्था खोली थी। सन् १६२३ से इस में हाई स्कूल तक शिक्षा दी जाती है।

(३) अन्य निम्न-श्रेणी की पाठशालाएं

इन में भी पुरानी संस्थाएं ईसाइयों की हैं, जिन में से दो पाठशालाएं रोमन कैथोलिक चर्च की हैं। एक का नाम सेंट एनेज़ मिडिल स्कूल है। इस में जूनियर कैंब्रिज तक

---

[1] रोमन कैथोलिक संप्रदाय के ईसाइयों में कुछ स्त्रियां आजन्म अविवाहिता रह कर अपना शरीर चर्च को अर्पण कर देती हैं। उन्हीं को 'नन' कहते हैं।

की शिक्षा दी जाती है। दूसरी सेन्ट माइकल ऐंग्लो-वर्नाक्युलर स्कूल है। इस में ग़रीब देशी ईसाइयों की लड़कियां तथा छोटे लड़के पढ़ते हैं।

प्रोटस्टेंट ईसाइयों की कन्या-पाठशालाओं में सब से पुरानी संस्था सेन्ट्रेल गर्ल्स हाई स्कूल है, जो अमेरिका के वीमेन्स यूनियन मिशन के प्रबंध में है। इस की स्थापना सन् १८७० में विशेष कर बंगाली लड़कियों की शिक्षा के लिए हुई थी। यह ऐंग्लो-वर्नाक्युलर स्कूल है, जिस में मिडिल क्लास तक पढ़ाई होती है और अंगरेज़ी के साथ-साथ हिंदी, उर्दू तथा बँगला की भी शिक्षा दी जाती है।

चर्च अव् इंगलैंड के प्रबंध में एक कन्या-पाठशाला रेलवे स्टेशन के निकट विशप जानसन गर्ल्स स्कूल के नाम से है। यह संस्था विशेषकर ऐंग्लो-इंडियन लड़कियों के लिए है। इस में जूनियर-कंब्रिज तक की शिक्षा दी जाती है।

हिंदुस्तानी ईसाइयों को प्रचार का काम सिखाने के लिए एक विशेष संस्था है, जिस का पूरा नाम है दी लेडी म्योर मिमोरियल ट्रेनिंग स्कूल। इस को सन् १६०२ में इस प्रांत के भूतपूर्व लेफ़्टिनेन्ट-गवर्नर सर विलियम म्योर ने अपनी पत्नी के स्मारक में खोला था, जिस का विशाल भवन बेली के निकट सिविल अस्पताल के सामने है। इस का संचालन चर्च मिशनरी सोसाइटी द्वारा होता है।

ईसाइयों के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक पाठशालाओं में सब से पुरानी इंडियन गर्ल्स-फ़्री स्कूल है, जिस को सन् १८८८ ई० में स्वर्गीय श्री श्रीशचंद्र बसु विद्यार्णव ने खोला था। उन के कनिष्ठ भ्राता मेजर वामनदास बसु ने इस का इतिहास इस प्रकार बतलाया था, कि उन दिनों यहां सिवाय ईसाइयों की और कोई कन्यापाठशाला न थी। एक दिन उन की पूज्य माता अपने पुत्रों के साथ गंगास्नान के लिए जा रही थीं। रास्ते में उन्हों ने सुना कि सेंट्रल गर्ल्स स्कूल की पढ़नेवाली कुछ हिंदू लड़कियां अपने देवताओं की खुल्लम-खुल्ला निंदा कर रही हैं। यह सुन कर उन को बड़ा दुःख हुआ और उसी समय उन्हों ने अपने ज्येष्ठ पुत्र से कहा कि ईसाइयों के स्कूलों में हिंदू कन्याओं के पढ़ने का यह परिणाम है। क्या ऐसी कोई अपनी पाठशाला नहीं खुल सकती? उसी अनुरोध के फल-स्वरूप यह संस्था है। इस में बंगाली लड़कियां अधिक पढ़ती हैं, जिन को मिडिल तक शिक्षा दी जाती है। अब इस का अपना भवन हीवेटरोड पर है।

इस के पीछे सन् १६०३ में आर्य-समाज चौक के कार्य-कर्ताओं ने आर्य कन्या पाठशाला पहले जानस्टन गंज में एक किराए के मकान में खोली। उन दिनों दिल्ली-निवासी लाला किशुनचंद जी माथुर यहां के ट्रेनिग कालेज में प्रोफ़ेसर थे। विशेषतया उन्हीं के अनु-रोध से यह पाठशाला खुली थी। सन् १६१२ में इस का वर्तमान भवन २० हज़ार रुपए में ख़रीदा गया, जिस की आधी रक़म शिक्षा-विभाग ने दी थी। सन् १६२५ तक हिंदी मिडिल तक शिक्षा होती रही। उस के पश्चात् अंग्रेज़ी की क्लासें खोली गईं, जिन में अभी मिडिल तक पढ़ाई होती है। इस के अतिरिक्त कन्याओं को संगीत, शिल्प और आघातों की

प्रारंभिक सावधानी सिखाई जाती है तथा वैदिक धर्म के अनुसार कन्याओं को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

सन् १६०४ में गौरी पाठशाला की स्थापना हुई। इस का यह नाम स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट के प्रस्ताव पर रक्खा गया था। इस के मुख्य संस्थापक बाबू चंद्रकांत बोस थे। परंतु आरंभ में पंडित महादेव भट्ट तथा बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने इस संस्था की बड़ी सेवा की थी। यह पाठशाला पहले-पहल एक छोटे से घर में केवल एक अध्यापिका और दो-चार लड़कियों से आरंभ की गई थी। अब इस का अपना भवन है, जिस में २०० के लगभग कन्याएं पढ़ती हैं और उन को हिंदी मिडिल तक शिक्षा दी जाती है।

आर्यसमाज रानी मंडी के प्रबंध में एक आदर्श कन्यापाठशाला है, जिस में स्कूली शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

सन् १६३० से एक लीलावती कन्यापाठशाला भारती-भवन के निकट खुली है, जिस में कन्याओं को साधारण शिक्षा दी जाती है।

सन् १६३१ से कटरा में एक और अंगरेज़ी की कन्यापाठशाला ऐंग्लो-वर्नाक्युलर गर्ल्स स्कूल के नाम से विशेषतया बाबू बेनीप्रसाद अग्रवाल एम० ए०, एल-एल० बी० के उद्योग से खुली है।

प्रयाग-महिला विद्यापीठ

यह स्त्री-शिक्षा की एक परीक्षक संस्था है, जो सरकारी शिक्षा-विभाग से स्वतंत्र है[१] अलबत्ता स्थानीय म्यूनिसिपल बोर्ड से इस का इतना संबंध अवश्य है कि इस की कार्य-कारिणी सभा में ५ सदस्य बोर्ड के चुने हुए होते हैं। इस का इतिहास इस प्रकार है कि जापान इत्यादिक अन्य देशों की स्त्री-शिक्षा प्रणाली पर विचार कर के पूना में प्रोफ़ेसर डी० के० करवे ने एक इंडियन वीमेंस यूनीवर्सिटी खोल रक्खी है। उसी के आधार पर यहां के सुप्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी बाबू संगमलाल जी ने जो म्यूनिसिपल बोर्ड के शिक्षा-विभाग के चेयरमैन थे, इस संस्था के स्थापित होने के लिए एक प्रस्ताव बोर्ड में उपस्थित किया। उस समय बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन बोर्ड के चेयरमैन थे। उन्हों ने इस विचार को बहुत पसंद किया। फलतः २ फ़रवरी सन् १६२२ को यह संस्था नियमानुसार स्थापित हो गई।

इस विद्यापीठ द्वारा तीन प्रकार की परीक्षाएं होती हैं, जिन में उत्तीर्ण होने से 'विद्या-विनोदिनी', 'विदुषी' और 'सरस्वती' की उपाधियां दी जाती हैं। पहली परीक्षा मेट्रिक्यूलेशन दूसरी बी० ए० और तीसरी एम० ए० के समान समझी जाती है।

'विद्याविनोदिनी' की परीक्षा के लिए (१) हिंदी, उर्दू अथवा कोई अन्य भारतीय भाषा (२) इतिहास और भूगोल तथा (३) गार्हस्थ्य-विज्ञान, स्वास्थ्य-रक्षा, सीना-पिरोना, भोजन बनाना, कातना और आघातों की प्रारंभिक चिकित्सा अनिवार्य है। और (४) कोई एक प्राचीन भाषा (५) अंगरेज़ी (६) गणित (७) चित्रकारी (८) संगीत (६) भौतिक

[१] अब इस में नियमानुसार शिक्षा भी दी जाती है।

विज्ञान तथा रसायन (१०) बनस्पति-विद्या (११) धर्म-शास्त्र (१२) कोई अन्य भारतीय भाषा तथा (१३) शरीर-विज्ञान में से कोई विषय लेने पड़ते हैं।

'विदुषी' की परीक्षा के लिए हिंदी अनिवार्य है। बाकी इतिहास, भूगोल, अर्थ-शास्त्र, दर्शन, धर्मशास्त्र, वैद्यक, गणित, भौतिक-विज्ञान, रसायन, शरीर-विज्ञान, संगीत, चित्रकला, कोई एक प्राचीन भाषा, अंगरेज़ी, अन्य भारतीय भाषा, गार्हस्थ्य-विज्ञान तथा स्वास्थ्यरक्षा में से कोई दो विषय लेने आवश्यक हैं। 'सरस्वती' की परीक्षा के लिए केवल एक विषय 'हिंदी साहित्य' का रक्खा गया है। वर्ष में दो बार परीक्षाएं होती हैं और परीक्षा के समय यदि सब विषय तैयार न हों तो एक बैठक में केवल एक ही विषय में परीक्षा दी जा सकती है। इस संस्था के अंतर्गत अब एक 'महिला-सेवासदन' खुला है, जिस में स्त्रियों को विद्यापीठ की परीक्षा, छोटे बच्चों के पढ़ाने और सामाजिक सेवा के लिए तैयार किया जाता है तथा उन को सुई इत्यादि का काम भी सिखाया जाता है, जिस से वे स्वयं अपना निर्वाह कर सकें।

अन्य स्फुट पाठशालाएं

(१) संस्कृत पाठशालाओं में सब से पुरानी अहियापुर की धर्मज्ञानोपदेश-पाठशाला है, जिस को श्री हरिदेव ब्रह्मचारी ने सन् १८५८ के लगभग स्थापित किया था। पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने बचपन में इसी पाठशाला में शिक्षा पाई थी। इस में वेद तथा व्याकरण आदि पढ़ाया जाता है और लड़के काशी की परीक्षा में भेजे जाते हैं। छोटे लड़कों को हिंदी भी पढ़ाई जाती है। इस समय इस में १४० के लगभग लड़के पढ़ते हैं, जिन में से आधे संस्कृत के छात्र हैं। ३००) साल के लगभग इस का आय-व्यय है। इस में आधा सरकार और आधा म्यूनिसिपल बोर्ड से सहायता के रूप में मिलता है। २१ विद्यार्थियों को पाठशाला से भोजन दिया जाता है।

(२) इस के पश्चात् ४० वर्ष से कुछ ऊपर हुए होंगे कि झूँसी के निकट छतनाग में संस्कृत-पाठशाला स्थापित हुई, इस के संस्थापक पंडित गुरुचरण उपाध्याय थे जो मिर्ज़ापुर के रहने वाले थे। अब तक उन के परिवार के लोग इस का ख़र्च देते हैं। इस पाठशाला में साधारण व्याकरण की शिक्षा होती है। इस समय (सन् १९३० ई० में) ११ विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिन में ६ भोजन पाते हैं।

(३) सन् १८९१ में पंडित मथुराप्रसाद त्रिपाठी इत्यादि के उद्योग से सरयूपारीण ब्राह्मण पाठशाला की स्थापना हुई। आरंभ में चंदे से इस का काम चलता रहा। फिर म्यूनीसिपैलिटी से कुछ सहायता मिलने लगी। सन् १९१६ में पाठशाला के सौभाग्य से श्रीमती इंद्रानी देवी, विधवा श्री हनुमानप्रसाद जी ने, जिन के कोई संतति न थी, अपनी ११ हज़ार से ऊपर की कुल संपत्ति पाठशाला को अर्पण कर दी। सन् १९२० में श्रीमती जी का देहांत हो गया। उस के पीछे उन के परिवारवालों ने उक्त संपत्ति के लिए बड़ी मुक़दमेबाज़ी की, परंतु अंत में वे हार गए। इस पाठशाला में व्याकरण, साहित्य तथा वेद इत्यादि की शिक्षा होती है और विद्यार्थी काशी की परीक्षा में भेजे जाते हैं। इस समय ५० विद्यार्थी

पढ़ते हैं, जिन में से ३० भोजन पाते हैं। पाठशाला का अपना कोई भवन नहीं है। किराए के मकान में महल्ले-महल्ले घूमती फिरती है।

(४) इसी पाठशाला के जन्म-काल के लगभग झूँसी के सुप्रसिद्ध रईस स्वर्गीय लाला किशोरीलाल जी ने भी एक पाठशाला खोली, जिस का अपना भवन बाई के बाग़ में है। इस की आर्थिक स्थिति अधिक सुदृढ़ है। इस में भी व्याकरण, ज्योतिष और वेद इत्यादि पढ़ाया जाता है और लड़के काशी की परीक्षा में सम्मिलित होते हैं। इस समय इस में १०० विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिन में से ४० भोजन पाते हैं।

(५) सन् १९१३ से स्वामी योगानंद जी ने झूँसी में एक संस्कृत पाठशाला खोल रक्खी है। इस का विशाल भवन गंगा के तट पर रेलवे पुल से मिला हुआ है। इस में युवक साधुओं तथा अन्य विद्यार्थियों को वेदांत और व्याकरण इत्यादि की शिक्षा दी जाती है। इस का पूरा नाम श्री तीर्थराज संन्यासी संस्कृत पाठशाला है।

(६) सन् १९२० से दारागंज में एक संस्था राष्ट्रीय गांधी विद्यालय के नाम से स्थापित है। इस के मुख्य संस्थापक हैं पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी, पं० राधारमण तिवारी, तथा पं० शिवराम अग्निहोत्री। इस में हिंदी द्वारा साधारण व्यावहारिक शिक्षा के अतिरिक्त सूत कातना और कपड़ा बुनना आदि भी सिखाया जाता है तथा अंगरेज़ी भी पढ़ाई जाती है। विशेषता यह है कि इस विद्यालय में अधिकांश राष्ट्रीय भावों की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। अतः यह संस्था सरकारी शिक्षा-विभाग से सर्वथा स्वतंत्र है। गत वर्ष की रिपोर्ट से विदित होता है कि इस में १०० के लगभग विद्यार्थी रहे। २ हज़ार रुपया वार्षिक व्यय है, जिस में ८६५ रुपया स्थानीय म्यूनीसिपल बोर्ड से सहायता के रूप में मिलता है।

(७) नवंबर सन् १९२४ में हिवेट रोड पर सौदामिनी संस्कृत विद्यालय की स्थापना हुई। इस को श्री स्वामी सच्चिदानंद जी परमहंस की प्रेरणा से उन के एक कलकत्ता निवासी शिष्य श्री संतोषचंद्र बंदोपाध्याय ने अपनी माता के नाम से खोला है। उन की जो कुछ संपत्ति थी वह सब उन्हों ने इस पाठशाला को अर्पण कर दी है, जिस की आय २०० रुपया मासिक है। इस में से ८० रुपया विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति में व्यय होता है। पाठशाला का अपना पक्का भवन है। प्रबंध एक समिति के अधीन है। इस समय इस में ३० विद्यार्थी हैं, जिन को वेद तथा अन्य प्रकार के संस्कृत साहित्य की शिक्षा दी जाती है और वे सरकारी-प्राच्य-विभाग की परीक्षाओं में भेजे जाते हैं।

(८) सन् १९२६ से दारागंज में एक संस्कृत पाठशाला खुली है, जिस को स्थानीय निर्वाणी अखाड़े के भूतपूर्व महंत स्वर्गीय बालकपुरी जी ने स्थापित किया था। इस में इस समय लगभग ४० विद्यार्थी पढ़ते हैं और सब को भोजन दिया जाता है।

(९) सन् १९२८ में तहसील सोरांव के सिंगरौर नामक स्थान में गंगा के तट पर एक विद्यालय खुला है, जिस का नाम श्रीगौरीशंकर-स्मारक संस्कृत पाठशाला शृंगवेरपुर है। इस को उसी के निकट आनापुर के रईस स्वर्गीय बाबू गौरीशंकरप्रसाद सिंह जी की

विधवा श्रीमती योधाकुंवरि जी ने अपने पति के नाम से खोला है। इस के व्यय के लिए ५ हज़ार रुपया वार्षिक आय की जायदाद लगी हुई है। इस में व्याकरण, कर्मकांड, ज्योतिष, वैद्यक और हिंदी की शिक्षा दी जाती है। इस समय इस में ५० विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिन में ३५ को भोजन मिलता है।

(१०) मूक-वधिर विद्यालय—यह अपने ढंग की एक ही संस्था है, जो पहले १६२६ में यहां खुली थी, पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण थोड़े दिनों में बंद हो गई थी। अब फिर सन् १६३१ में यहां खुली है। म्यूनीसिपैलिटी से कुछ सहायता मिलने लगी है। अभी इस में लगभग २० गूँगे बहरे संकेत द्वारा शिक्षा पाते हैं।

(११) अरबी मकतबों में सब से पुराना चौक की मसजिद का मदरसा है, जिस का नाम मदरसा सुभानिया है। इस की स्थापना इस के मुख्य अध्यापक मौलवी अब्दुलकाफ़ी ने अपने उस्ताद मौलाना अब्दुलसुभान साहब के नाम से सन् १३१६ हिजरी (१८६८ ई०) में की थी। इस संस्था को सब से बड़ी सहायता नीवां के रईस स्वर्गीय शेख़ अब्दुल समद की जायदाद से मिलती है। इस के अतिरिक्त हैदराबाद और भूपाल की रियासतें भी पर्याप्त आर्थिक सहायता देती हैं। इस में अरबी-फ़ारसी द्वारा केवल धार्मिक शिक्षा पुराने ढर्रे पर दी जाती है।

(१२) इसी के साथ अर्थात् उसी साल (सन् १८६८ में) इस्लामिया यतीमख़ाने का मदरसा खुला। इस में इस समय लगभग ५० अनाथ बालक पढ़ते हैं, जिन को साधारण व्यावहारिक और कुछ धार्मिक शिक्षा दी जाती है। इस को भी नीवां के शेख़ अब्दुल समद की जायदाद से उन के दानपत्र के अनुसार २४०० रुपए साल की सहायता मिलती है।

(१३) स्टेशन रोड पर मसजिद में एक मदरसा अरबी का अहयाउल उलूम के नाम से है। इस को महेवा के शेख़ अब्दुल्ला ने खोला था, जो रेलवे के एक प्रसिद्ध ठेकेदार थे। इस के व्यय के लिए वह पर्याप्त जायदाद लगा गए हैं।

(१४) सन् १६१७ ई० में मदरसा मिसबाहुलउलूम की स्थापना हुई, जिस को मौलाना मुहीउद्दीन ने खोला था। इस में ३०० से ऊपर लड़के पढ़ते हैं, जो अरबी-फ़ारसी में सरकारी विभाग की परीक्षा में भेजे जाते हैं। इस में यूनानी-तिब (चिकित्सा-शास्त्र) की शिक्षा का भी प्रबंध है, जिस में डाक्टरी ढंग पर चीर-फाड़ का काम भी सिखाया जाता है।

(१५) सन् १६२८ ई० में एक मदरसा महम्मदिया इम्दादिया के नाम से यहां के मुसलमानों के प्रमुख मौलाना विलायत हुसैन ने अपने पिता स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब के स्मारक-रूप में खोला है। इस में अरबी-फ़ारसी के साथ-साथ उर्दू, गणित और अंग्रेज़ी की शिक्षा की भी योजना की गई है।

इन के सिवाय यत्र-तत्र छोटे-मोटे और भी कई मदरसे और मकतब हैं, जो उल्लेखनीय नहीं हैं।

(१६) इन्हीं स्फुट पाठशालाओं में चर्च मिशनरी सोसायटी का सेंट पाल्स डिवीनिटी स्कूल भी उल्लेखनीय है, जिस की स्थापना पादरी कैनन हूपर ने सन् १८८१ ई० में की थी। इस में ईसाई मत के प्रचारक तैयार किए जाते हैं।

उद्योग-धंधा तथा कला-कौशल सिखाने वाली संस्थाएं

(१) ऐग्रीकल्चरल इन्स्टीच्यूट, नैनी

इस विद्यालय को सन् १९१२ में अमेरिकन प्रेस्बेटीरियन मिशन ने खोला था। इस में कृषि की शिक्षा क्रियात्मक रूप से दी जाती है जिस के दो विभाग हैं। एक में खेती की सामान्य शिक्षा नए-नए यंत्रों द्वारा तथा नवीन शैली के अनुसार दी जाती है। दूसरे में मक्खन और पनीर इत्यादि बनाना तथा पशु-पालन और उन की देख-रेख आदि सिखाया जाता है। इस विद्यालय में इस समय दो कक्षाएं हैं। एक में हाई स्कूल की पढ़ाई होती है और दूसरे में इंटर्मीजिएट की। इस के विद्यार्थी सरकारी कृषि-विभाग की परीक्षा में बैठते हैं, और उत्तीर्ण होने पर वहीं से उन को प्रमाण-पत्र मिलता है।

(२) गवर्नमेंट कारपेंटरी स्कूल

यह स्कूल पहले बरेली में था। सन् १९१९ से इलाहाबाद में आया है। इस में भी दो विभाग हैं। एक में लकड़ी का हर प्रकार का काम सिखाया जाता है और दूसरे में रंगाई, पालिश तथा कुर्सियों इत्यादि की बुनाई की शिक्षा दी जाती है।

(३) हिंदी विद्यापीठ

पहले सन् १९१८ में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से यह संस्था खुली थी, जिस का उद्देश्य हिंदी के द्वारा उच्च शिक्षा देनी थी। फिर कुछ दिनों के पश्चात् वह शिथिल पड़ गई। सन् १९२३ में फिर इस का पुनर्जन्म वर्तमान रूप में यमुना के उस पार हुआ है। इस में सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा की पढ़ाई के अतिरिक्त नए ढंग से कृषि की शिक्षा हिंदी के द्वारा दी जाती है। इस के लिए सरकारी कृषि-विभाग तथा स्थानीय डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड से सहायता मिलती है। विद्यालय का एकांत स्थान तथा उस की इमारतें लखनऊ ज़िले की सेसेंडी रियासत से मिली हैं। इस में विद्यार्थियों से कोई फ़ीस नहीं ली जाती। रहने का स्थान और नौकर मुफ़्त दिए जाते हैं। श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन इस के संस्थापक तथा प्रथम अध्यक्ष थे।

(४) लेदर स्कूल

यहां की म्यूनीसिपैलटी ने चमड़े का काम सिखाने के लिए एक स्कूल खोल रक्खा है, जिस में इस समय दिन में ३१ लड़के काम सीखते हैं। इन में २ ऊँची जाति के हिंदू, ८ चमार, १ ईसाई और शेष २० मुसल्मान हैं। चमारों को ५ रुपया मासिक छात्र-वृत्ति मिलती है। दिन के स्कूल का व्यय ८५८७ रुपया है। इस में आधा सरकार देती है। यह स्कूल रात को भी खुलता है, जिस में २६ चमार आते हैं, रात के स्कूल का व्यय १००० रुपए वार्षिक है, जो कुल बोर्ड देती है।

(५) कृषि-पाठशाला

तहसील मंझनपुर के सरसवां के मिडिल स्कूल में अक्तूबर १९२८ से कृषि की प्रारंभिक-शिक्षा के लिए एक कक्षा खोली गई है, जिस के लिए एक अनुभवी अध्यापक रक्खा गया है। यदि इस में सफलता हुई तो आशा की जाती है कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अन्य स्कूलों में भी इस की शिक्षा का उचित प्रबंध करेगी।

(६) बुनाई के स्कूल

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने दो बुनाई के भी स्कूल खोल रक्खे हैं। एक सन् १९२५ से कड़े में और दूसरा १९२६ से मऊ आयमा में है। इन में सूती कपड़े के सिवाय टसर और रेशम की भी बुनाई का काम होता है।

(७) संगीत-शालाएं

यहां बंगालियों में संगीत का प्रचार अधिक है और उन्हों ने कई एक संगीत और वाद्य-समितियां खोल रक्खी हैं। कुछ उन में से ऐसी हैं जो संगीत सिखाती भी हैं, परंतु अधिकांश मनोरंजन के लिए क्लब के रूप में हैं।

संगीत की नियमानुसार शिक्षा देनेवाली इस समय यहां दो संस्थाएं हैं। एक तो कटरा में शारदा गांधर्व विद्यालय, जो सन् १९२२ में स्थापित हुआ था[1], दूसरी नगर में प्रयाग संगीत-समिति है। यह सन् १९२५ में खुली थी। इस की आर्थिक अवस्था अधिक सुदृढ़ जान पड़ती है। इस समय इस का कार्यालय क्रास्थवेट रोड पर है, परंतु निज के भवन के लिए आयोजना हो रही है।

(८) यूनानी मेडिकल स्कूल

यह स्कूल शहर के प्रसिद्ध हकीम मौलवी अहमद हुसैन के उद्योग से, सन् १९२६ में खुला है। इस को सरकार से भी सहायता मिलती है। इस समय यह हिम्मतगंज में एक किराए के बाग़ में है, परंतु इस के अपने भवन के लिए प्रबंध हो रहा है। इस में ४ वर्ष की पढ़ाई का कोर्स है, जिस में आधुनिक शैली के अनुसार हर प्रकार की चिकित्सा संबंधी क्रियात्मक शिक्षा दी जाती है तथा शरीर के बाह्य उपचार अर्थात् चीर-फाड़ के सिखाने का भी प्रबंध हो रहा है। यह संस्था गवर्नमेंट से स्वीकृत है और इस की परीक्षा बोर्ड अव् इंडियन मेडीसन द्वारा ली जाती है।

(९) यू० पी० इन्स्टीच्यूट अव् कमर्स

यह संस्था सन् १९२५ से कटरा के निकट सिटी रोड पर खुली है। इस में टाइप-राइटिंग, शार्टहैंड, बुककीपिंग अर्थात् व्यापार-संबंधी हिसाब-किताब का रखना आदि विधि-पूर्वक सिखाया जाता है।

---

[1] खेद है कि अब यह बंद हो गया है।

नगर में यत्र-तत्र इस प्रकार की छोटी-मोटी संस्थाएं और भी हैं, जिन में सब से बड़ी यही जान पड़ती है।

(१०) अध्यापन-कला सिखानेवाली संस्थाएं

सन् १८८४ में नार्मल स्कूल बनारस से उठ कर यहां आया। इस में उर्दू-हिंदी के मिडिल स्कूलों के लिए अध्यापक तैयार किए जाते हैं। थोड़े दिनों से अध्यापिकाओं के लिए भी एक नार्मल स्कूल खुला है।

सन् १८६२ से अंग्रेजी स्कूलों के लिए एक ट्रेनिंग कालेज यहां स्थापित है। पीछे इस की एक शाखा लखनऊ चली गई है।

(ख) साहित्य

प्रयाग का साहित्यिक-इतिहास तथा उस की प्रगति

इस प्रसंग में पहले हम स्थायी साहित्य की चर्चा करते हैं; तत्पश्चात् सामयिक-साहित्य का वर्णन किया जायगा।

जितना अब तक पता लगा है, यहां के पुराने ग्रंथकारों में, सब से पहले वैष्णवमत के सुप्रसिद्ध आचार्य स्वामी रामानंद जी हुए थे। आप संस्कृत के प्रकांड पंडित थे और उसी भाषा में इन्हों ने ब्रह्मसूत्र पर 'आनंदभाष्य', 'श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य', 'वैष्णवमतांतर-भास्कर' तथा 'श्रीरामार्चनपद्धति' आदि कई ग्रंथ लिखे थे। यद्यपि इन पुस्तकों की रचना अधिकांश काशी में हुई थी, पर स्वामी जी का जन्म सन् १३०० ई० के लगभग प्रयाग ही में हुआ था, और यहीं से बहुत-कुछ शिक्षा प्राप्त कर के वह काशी गए थे।

इस के पश्चात् कड़े के बाबा मलूकदास का नाम आता है, जो सं० १६३१ अथवा सन् १५७४ ई० के लगभग हुए थे। यह हिंदी के संत-कवि थे, जिन के भजन अब तक साधु लोग खंजड़ी पर बड़े प्रेम के साथ गाया करते हैं। थोड़े दिन हुए उन के पद (जहां तक मिल सके) यहां के वेलवेडियर प्रेस ने अपनी 'संतबानीपुस्तकमाला' में प्रकाशित कर दिया है।

इस के अनंतर हिंदी के दो और पुराने कवियों का पता लगता है। उन में से एक तो श्रीधर उपनाम मुरलीधर थे, जो सं० १७३७ (१६८० ई०) में विद्यमान थे। इन्हों ने 'राग-रागिनी,' 'श्रीकृष्णचरित्र' 'चित्रकाव्य' तथा जहांदार और फ़र्रुख़सियर का युद्ध-विवरण 'जंगनामा' के नाम से बड़ी सरस कविता में लिखा है।

तत्पश्चात् सं० १७९१ (१७३४ ई०) में तोषनिधि कवि हुए हैं। यह परगना नवाबगंज में शृंगबेरपुर उपनाम सिंगरौर ग्राम के निवासी थे। इन्हों ने 'रसभेद', 'भावभेद', 'विनयशतक', तथा 'नखशिख' आदि ग्रंथ लिखे हैं।

सन् ईसवी की १८ वीं शताब्दी के मध्य और १९ वीं की आरंभ में मुंशी सदासुख-लाल दिल्ली के एक गौड़ कायस्थ प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हुए हैं, जो पहले चुनार में तहसील-

दार थे। फिर वह सन् १८११ के लगभग नौकरी से विश्राम लेकर प्रयाग में आ बसे और यहीं शेष जीवन भगवद्भजन में व्यतीत किया। इन की मृत्यु ८० वर्ष की अवस्था में सन् १८२४ ई० में हुई थी। उन्हों ने सब से पहले 'श्रीमद्भागवत' की कथा को बोलचाल के हिंदी-गद्य में 'सुखसागर' के नाम से लिखा था। अतः हिंदी की खड़ी बोली की गद्य-लेखन-प्रणाली में उन का वही स्थान माना जाता है, जो मँजी हुई उर्दू नसर के लिखने में मिर्ज़ा ग़ालिब का था। मुंशी जी ने 'निसार' उपनाम से उर्दू में बड़ी अच्छी शायरी भी की है तथा वह फ़ारसी के आलिम थे। उन्हों ने उस भाषा में एक बड़ा ग्रंथ 'मुंतख़बुत्तवारीख़' के नाम से 'फ़रिश्ता' के खंडन में लिखा था तथा इस के अतिरिक्त उर्दू-फ़ारसी में कई और किताबें लिखी थीं।

अरबी-फ़ारसी के पठन-पाठन तथा साहित्यिक रचनाओं के लिए दायरा शाह महम्मद-अजमल विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इस दायरे (आश्रम) के संस्थापक शेख़ महम्मद-अफ़ज़ल थे, जिन का देहांत सन् ११२४ हि० (१७१२ ई०) में हुआ था। वह स्वयं बड़े विद्वान और लेखक थे। फिर उन के परिवार में शाह ख़ूबू उल्लाह, अल्लामा फ़ाखिर तथा शाह महम्मद अजमल इत्यादि बड़े-बड़े आलिम-फ़ाज़िल और फ़ारसी-उर्दू के अच्छे कवि हुए हैं। वह कुछ अरबी में भी कविता करते थे। उन की अन्य रचनाएं विशेषतः धर्म-संबंधी हैं। शाह महम्मद अजमल के पश्चात् शाह अबुलमआली के समय में लखनऊ के प्रसिद्ध उर्दू कवि शेख़ इमामबख़्श 'नासिख़' वहां से आकर बारह वर्ष तक इसी दायरे में रहे थे। उन के समय में यहां शेरोसख़ुन की ख़ूब चर्चा रहा करती थी और बड़े-बड़े मशायरे होते थे, जिन में रेल न होने पर भी, लखनऊ तक के शायर सम्मिलित हुआ करते थे।

'नासिख़' के समकालीन ख़्वाजा हैदरअली 'आतिश' लखनवी के एक शिष्य यहां मिर्ज़ा आज़मअली बेग 'आज़म' थे। यह भी उर्दू के अच्छे शायर थे। हम ने उन का दीवान छपा हुआ देखा था, पर वह अब नहीं मिलता। यहां के प्रसिद्ध उर्दू कवि अकबर के उस्ताद मौलवी वहीदुद्दीन 'वहीद' का जन्म सन् १८२४ ई० में कड़े में हुआ था। यह मौलवी महम्मद बशीर के शागिर्द थे, जो ख़्वाजा 'आतिश' के शिष्य थे। वहीद साहब के शागिर्दों में मुंशी महम्मद जानख़ां 'हैरत' और मुंशी अमीनुद्दीन 'क़ैसर' मशहूर शायर हुए हैं। इन के अतिरिक्त मुंशी मुनीर, हकीम फ़ज़लहुसैन 'फ़रोग़' और हकीम ख़लीलुद्दीनखां भी यहां के प्रसिद्ध शायर थे।

सन् १८५७ के ग़दर से कुछ पहले यहां छापाख़ानों में केवल एक मिशन प्रेस खुला था, जिस से बाइबिल के अतिरिक्त ईसाई मत की हिंदी और उर्दू की कुछ छोटी-छोटी पुस्तकें और पर्चे जनता में प्रचार के लिए छप कर प्रकाशित हुआ करते थे। पीछे ग़दर हो जाने से उक्त प्रेस भी लुट लुटा गया। फिर शांति स्थापित होने पर सन् १८५८ में गवर्नमेंट प्रेस आगरे से उठ कर यहां आया। तदनंतर सन् १८६५ में पायोनियर प्रेस खुला और फिर उस के पीछे मिशन प्रेस पुनः स्थापित हुआ। यह वह समय

था जब यहां ईसाइयों की पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ सरकारी क़ानून के उर्दू तर्जुमे छपते थे और फिर स्कूलों के खुल जाने से शिक्षा-संबंधी पुस्तकें छपने लगीं, जिन में कुछ उस समय गवर्नमेंट प्रेस में भी छपती थीं।

इधर जहां तक हम जानते हैं सब से पहले यहां सिरसा के लाला काशीनाथ खत्री (१८५०-६१) ने आधुनिक-शैली पर हिंदी और कुछ उर्दू में भी छोटी-छोटी पुस्तकें विविध विषयों पर लिखी थीं। उन की कई पुस्तकों के अनेक संस्करण छपे थे, जिस से विदित होता है कि जनता ने उन का उचित आदर किया था। परंतु, काशीनाथ जी की रचनाएं मौलिक नहीं हैं। कुछ संकलित और कुछ अंग्रेज़ी से अनुवादित हैं, परंतु इस में संदेह नहीं कि उस समय के अनुकूल काफ़ी रोचक थीं।

सन् १८८३ ई० से राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० उपनाम 'भूप' की पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। आप अंग्रेज़ी के अतिरिक्त संस्कृत और फ़ारसी आदि कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता और ब्रजभाषा के कवि भी हैं। संस्कृत के क्लिष्ट काव्यों तथा दुरूह नाटकों से हिंदी-जगत को पहले-पहल आप ही ने परिचित कराया था। इन के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों पर भी आप की अनेक उत्तम रचनाएं हैं, जो प्रसिद्ध हैं। अब आप वृद्ध हो गए हैं तो भी हिंदी की बहुत कुछ सेवा किए जाते हैं। यहां के जीवित ग्रंथकारों में आप सब से ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ भी हैं।

सन् १८८६ ई० से खड़ी बोली के सुविख्यात कवि पंडित श्रीधर पाठक की पुस्तकें प्रकाशित होनी आरंभ हुईं। आप सन् १९१४ में साहित्य-सम्मेलन के लखनऊवाले अधिवेशन में सभापति रह चुके हैं। पाठक जी ने जिस समय कविता आरंभ की थी उस समय हिंदी के काव्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा का अखंड-राज्य था। इस लिए उस के पक्षवालों की ओर से खड़ी बोली की नवीन शैली की कविता पर बहुत दिनों तक नोक-झोंक होती रही। परंतु पाठक जी अपने धुन के पक्के थे। वह उस मार्ग से विचलित नहीं हुए और अंत में उन्हों ने खड़ी बोली की कविता में भी ऐसी सरसता उत्पन्न कर दी कि उस का प्रवाह बह निकला।

पंडित मदनमोहन मालवीय जी का भी हिंदी पर कुछ कम ऋण नहीं है। आप सन् १९१० में हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सब से पहले अधिवेशन में, जो काशी में हुआ था, सभापति हुए थे। आप ने हिंदी में कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं लिखी, परंतु उस की वह सेवा की है जो ग्रंथकार नहीं कर सके। आप ही के उद्योग से कचहरियों में हिंदी को इतना स्थान मिला है कि समन और नोटिस, जो वहां से जारी होते हैं, वे उर्दू के साथ नागरी में भी होते हैं तथा जनता को यह अधिकार है कि वह अदालतों में हिंदी में भी प्रार्थना-पत्र (अर्ज़ी) दे सकती है। आप ने कुछ दिनों तक हिंदी के सब से पहले दैनिक-पत्र 'हिंदोस्तान' का संपादन किया था, जिस को कालाकाँकर से तत्कालीन राजा सर रामपालसिंह जी ने निकाला था।

अंग्रेज़ी साहित्य में यहां सब से बड़ा काम स्वर्गीय मेजर वामनदास बसु का है। आप फ़ौज में सर्जन थे। सन् १६०७ में पेंशन ले कर डाक्टरी का काम एकदम छोड़ दिया और केवल सरस्वती की सेवा में लग गए। आप ने अंग्रेज़ी में धर्म, इतिहास, तथा चिकित्सा इत्यादि पर बहुत सी उत्तम-उत्तम पुस्तकें प्रकाशित की हैं, और कुछ दुर्लभ पुस्तकों को फिर से छपवाया है। आप ने हिंदुओं के पवित्र पुस्तकों की एक माला 'दि सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज़' के नाम से निकाली है, जिस में अनेक बड़े-बड़े धर्मग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। आप का सब से विशाल ग्रंथ भारत की जूड़ी बूटियों पर 'इंडियन मेडिसिनल प्लान्ट्स' है, जिस को आप ने बड़े खोज और परिश्रम के साथ लिख कर प्रचुर धन व्यय कर के छपवाया है।

आप की एक विराट योजना 'रिसर्च-इंस्टीच्यूट' नामक संस्था स्थापित करने की थी, जिन में सुयोग्य लेखकों को उत्तम-उत्तम ग्रंथ रचना के लिए हर प्रकार की सुविधा दी जाती। उस को आप अपनी कुछ भूमि तथा निजी पुस्तकों और अन्य पुरातत्व-संबंधी बहुमूल्य वस्तुओं का संग्रह प्रदान करने वाले थे। परंतु दुःख है कि काल कराल ने अचानक आ कर इस उपयोगी विचार को कार्यरूप में परिणत होने न दिया।

आप के ज्येष्ठ-भ्राता राय बहादुर श्री श्रीशचंद्र बसु विद्यार्णव भी एक धुरंधर विद्वान् तथा महारथी लेखक थे, जिन्हों ने अनेक पुस्तकें अंग्रेज़ी में लिखीं और अनुवाद की हैं। उन में अष्टाध्यायी का भाष्य सब से बड़ा ग्रंथ है। उन्हों ने सन् १८९१ से अपने यहां की पुस्तकों के प्रकाशनार्थ 'पाणिनि आफ़िस' के नाम से एक संस्था खोली है, जो उन के साहित्यिक प्रेम का एक उज्ज्वल स्मारक है।

महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा ने संस्कृत के कतिपय दार्शनिक तथा अन्य ग्रंथों के अनुवाद अंग्रेज़ी में किए हैं। आप अंग्रेज़ी के उद्भट लेखक हैं।

स्वर्गीय पं० मोहनलाल शांडल, एम० ए०, एल-एल० बी० भी अंग्रेज़ी के अच्छे लेखक थे। उन्हों ने भी संस्कृत के कई उत्तम ग्रंथों के अनुवाद किए हैं, जो 'पाणिनि-आफ़िस' से प्रकाशित हुए हैं।

इस युग के अंग्रेज़ी क़ानून के भाष्यकारों में भी डाक्टर मनमोहनलाल अगरवाला बार-एट-ला का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है।

उर्दू साहित्य-सेवियों में स्वर्गीय ख़ानबहादुर सैयद अकबरहुसैन का नाम चिर-स्मरणीय रहेगा। आप उर्दू के कवि ही नहीं, किंतु महाकवि थे, जिन्हों ने उर्दू कविता में एक नवीन शैली का आविष्कार किया था। आप की कविता प्रायः सामयिक विषयों पर व्यंग-पूर्ण, हास्य-रस-मिश्रित, सरस, सरल और ऐसी रोचक होती थी कि उधर आप ने रचना की, इधर गली-गली लोगों की ज़बान पर आ गई। आप पहले कवि थे, जिन्हों ने बहुत से प्रचलित अंग्रेज़ी शब्द उर्दू में ऐसी कुशलता से खपाए थे कि मानों अपना लिए थे।

सर तेजबहादुर सप्रू उर्दू-साहित्य के एक अच्छे मर्मज्ञ हैं। स्वर्गीय पंडित ब्रजनारायन चकबस्त की कविताओं के संग्रह पर आप ने एक बहुत ही विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है। आप हिंदुस्तानी एकेडेमी के पहले प्रधान हैं। कश्मीरी पंडितों में दीवान राधेनाथ कौल 'गुलशन' और पंडित जगमोहन नाथ रैना 'शौक़' पुराने मँजे हुए शायर हैं।

यह तो हुआ पुराने साहित्य-सेवियों का वर्णन। अब मध्यकालीन साहित्यिकों की कुछ चर्चा की जाती है। इस वर्ग में हमने पंडित इंद्र नारायण द्विवेदी 'ज्योतिष-भूषण', पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, पंडित कृष्णकांत मालवीय, स्वर्गीय पंडित हरिमंगल मिश्र, एम्० ए०, स्वर्गीय बा० गिरिजाकुमार घोष, पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, पंडित लक्ष्मीधर बाजपेयी, चतुर्वेदी पंडित द्वारिकाप्रसाद शर्मा, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पंडित जनार्दन भट्ट एम० ए०, श्री सुंदरलाल, स्वामी मंगलानंद पुरी और कवियों में पंडित माधव शुक्ल तथा मौलवी महम्मद नूह नारवी को रक्खा है।

द्विवेदी जी गणित-ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता हैं। आप ने इस विषय पर एक बड़ा ग्रंथ भी लिखा है, परंतु कई कारणों से अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। आप कई सामयिक पत्रों के संपादक भी रह चुके हैं। इस ज़िले में आप का निवास-स्थान सरायआक़िल नामक क़स्बा है। आप ने उस का भी अनुवाद कर के 'बुधपुरी' नाम रक्खा है।

त्रिवेदी जी एक वयोवृद्ध वैदिक-पंडित हैं। आप की अवस्था इस समय (सन् १६३६ में) ८६ वर्ष के लगभग है, परंतु आप की रचनाएं अभी थोड़े ही दिन हुए प्रकाशित हुई हैं। इस लिए हम ने आप को मध्यकालीन साहित्य-सेवियों में रक्खा है। आप सकसेने कायस्थ हैं; बड़ौदा की राजकीय-वैदिक-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर 'त्रिवेदी' की सार्थक पदवी प्राप्त की है। यद्यपि आप वृद्ध हैं तथापि आप का अदम्य उत्साह तथा प्रबल अध्यवसाय युवकों के समान है। आप ने बड़े परिश्रम से संपूर्ण 'अथर्ववेद' तथा 'गोपथब्राह्मण' के विस्तृत भाष्य संस्कृत और हिंदी में कर के प्रकाशित किए हैं।

टंडन जी राष्ट्रीय कार्यों में अब अधिक संलग्न रहते हैं। परंतु साहित्य से भी आप का नाता कुछ कम नहीं है। हिंदी साहित्य-सम्मेलन के शैशवकाल में आप ही ने उस का पालन-पोषण किया था। आप ही के उद्योग से प्रयाग में दो बार (सन् १६११ और १६१५ में) सम्मेलन के अधिवेशन हो चुके हैं। सन १६२३ में कानपुर में सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था उस के आप सभापति हुए थे। 'मर्यादा' नामक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका जब यहां से निकली थी तो आरंभ में कुछ दिनों तक आप ही ने उस का संपादन किया था।

पंडित कृष्णकांत मालवीय संपादक 'अभ्युदय' को कौन नहीं जानता ? आप हिंदी के स्थायी साहित्य-भंडार में भी अपनी बहुमूल्य रचनाओं से अच्छी वृद्धि कर रहे हैं। कुछ दिन हुए नवयुवकों में आप के 'सोहागरात' की ख़ूब धूम मची हुई थी। आप उर्दू की भी अच्छी कविता करते हैं।

पंडित हरिमंगल मिश्र एक अत्यंत सरल स्वभाव के चुपचाप काम करनेवाले विद्वान् थे। आप ने पुराणों के अथाह महासागर का मथन कर के, ऐतिहासिक तत्व-रूपी रत्न निकाल कर, 'प्राचीन भारत' के नाम से एक बहुत ही गवेषणा-पूर्ण इतिहास लिखा है, जिस को काशी के ज्ञान-मंडल ने प्रकाशित किया है। अभी सन् १९३१ में आप का देहावसान काशी में हुआ है।

गिरिजा बाबू का हिंदी प्रेम विशेषतः सराहनीय था। श्री अमृतलाल चक्रवर्ती के पश्चात् यदि किसी बंगाली सज्जन ने हिंदी की सेवा की है, तो वह गिरिजाकुमार ही थे। पहले आप 'सरस्वती' में लाला पार्वतीनंदन के नाम से, जो एक प्रकार से आप के नाम का रूपांतर था, कहानियां लिखा करते थे, फिर पीछे अपना वास्तविक नाम देने लगे थे। सन् १९२० में घोष महाशय का देहांत हो गया। आप की 'होमरगाथा' और कुछ चुनी हुई कहानियों का संग्रह 'गल्पलहरी' के नाम से प्रयाग के साहित्य-भवन लिमिटेड ने प्रकाशित किया है। परंतु हम जानते हैं कि उन की कई रचनाएं अप्रकाशित रह गईं।

पंडित गंगाप्रसाद जी हिंदी और अंग्रेज़ी के सुयोग्य लेखक हैं। आप ने शिक्षा-संबंधी तथा अन्य प्रकार की अनेक पुस्तकें हिंदी में लिखी हैं और पचासों आर्य-सामाजिक पुस्तिकाएं लिख कर प्रकाशित की हैं। कुछ ट्रैक्ट आप के अंग्रेज़ी में भी हैं। आप की रचनाओं में 'आस्तिकवाद', 'अद्वैतवाद', 'विधवा-विवाह-मीमांसा' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। आप आजकल 'शतपथब्राह्मण' का भाष्य कर रहे हैं तथा 'वेदोदय' और 'चमचम' नामक मासिक पत्रों के संपादक हैं। अभी हाल में आप को 'आस्तिकवाद' पर हिंदी साहित्य-सम्मेलन ने १२००) का मंगलाप्रसाद-पारितोषक भेंट किया है।

पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी, भूतपूर्व-संपादक 'हिंदी-चित्रमयजगत' कई वर्षों से प्रयाग से तरुण-भारत-ग्रंथावली' के नाम से उपयोगी पुस्तकों की एक माला निकाल रहे हैं। आप मराठी भाषा के भी ज्ञाता हैं। आप ने 'मेघदूत' का एक पद्यमय अनुवाद किया है, जो इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

पंडित द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी ने लगभग सभी विषयों पर हिंदी में पचासों पुस्तकें लिख कर ढेर लगा दिए हैं, जिन को यहां के सुप्रसिद्ध बुकसेलर लाला रामनरायन लाल ने प्रकाशित किया है। इन में महाभारत और रामायण के अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी गद्य-लेखक होने के अतिरिक्त एक अच्छे कवि भी हैं। अतः आप की रचनाएं तथा संग्रह अधिकांश काव्य-संबंधी हैं, जिन में 'कविताकौमुदी' विशेषतया उल्लेखनीय है। यह विविध भाषाओं की कविता की एक माला है, जिस के कई भाग प्रकाशित हो चुके हैं, और कई होने को हैं। इन में से एक में ग्रामीण गीतें हैं, जिन के संग्रह करने का प्रयत्न पहले पहल आप ही ने किया है।

पंडित जनार्दन जी स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट के सुयोग्य पुत्र हैं। आप की रचनाएं विशेषतः इतिहास तथा पुरातत्व-संबंधी हैं।

श्री सुंदरलाल जी कई सामायिक पत्रों के संपादक रह चुके हैं। स्थायी साहित्य के भी आप एक सिद्धहस्त लेखक हैं। थोड़े दिन हुए आप ने बड़े परिश्रम से एक विशाल ग्रंथ 'भारत में अंगरेज़ी राज्य' के नाम से लिखा था, जो प्रकाशित होते ही सरकार द्वारा ज़ब्त हो गया।

पंडित माधव शुक्ल संगीत-कला के एक अच्छे मर्मज्ञ हैं। जहां तक हम जानते हैं पहले-पहल आप ही ने हिंदी में महाभारत को नाटक के रूप में लिखा था। आप के राष्ट्रीय गीत तथा कविताएं बड़ी ओजस्विनी और भावपूर्ण होती हैं।

श्री मंगलानंद पुरी जी संस्कृत, अंग्रेज़ी और फ़ारसी के एक विद्वान संन्यासी हैं। आप ने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिन में 'अफ्रीका-यात्रा' बड़ी रोचक पुस्तक है। इसी वर्ग में प्रोफ़ेसर शिवाधार पांडे एम० ए०, पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, स्वर्गीय पंडित रामजीलाल शर्मा, पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी, पंडित मोहनलाल नेहरू, पंडित सुदर्शनाचार्य बी० ए० तथा उर्दू कविता में प्रोफ़ेसर सैयद ज़ामिन अली के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस समय के उर्दू शायरों में क़स्बा नारा (परगना कड़ा) के मौलवी महम्मद नूह का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है, जो स्वर्गीय 'दाग़' देहलवी के प्रतिष्ठित शिष्यों में हैं। इन की कविताओं के कई संग्रह छप चुके हैं। यह अधिकांश ऊँचे दर्जे की ग़ज़लें लिखते हैं, परंतु कभी-कभी सामयिक विषयों पर भी 'अकबर' के ढंग की व्यंग पूर्ण कविता बड़ी सफलता के साथ करते हैं। सारांश यह कि आप एक अच्छे मँजे हुए शायर हैं और इस लिए हर रंग में कविता करने की शक्ति रखते हैं। डाक्टर ताराचंद, जो 'हिंदुस्तानी एकेडेमी' के आरंभ से मंत्री हैं, उर्दू भाषा के विशेषज्ञ हैं।

हर्ष का विषय है कि इस मध्यकालीन युग में हम यहां की कुछ देवियों को भी साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण करते हुए पाते हैं, जिन में से कुछ के शुभ नाम ये हैं :— श्रीमती गोपालदेवी, रमादेवी, राजदेवी, रामेश्वरी नेहरू, तोरनदेवी शुक्ल 'लली', तथा सुभद्राकुमारी चौहान इत्यादि।

एक समय संयोगवश इन में से कई देवियां एक ही मुहल्ले निहालपुर में रहा करती थीं। इस पर स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी जी ने उस समय एक बड़ा रोचक लेख 'गृह-लक्ष्मी' में लिखा था। अस्तु इन की गणना ग्रंथकारों में तो नहीं की जा सकती, अलबत्ता इन की सरस रचनाओं से बहुधा सामयिक पत्र और पत्रिकाएं विभूषित होती रही हैं, जिन को लोग बड़े चाव से पढ़ते रहे हैं। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू में यह विशेषता है कि आप हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी तथा फ़ारसी-अरबी भी जानती हैं और उर्दू में तो बहुत ही सुंदर कविता करती हैं। इसी वर्ग में हम श्रीमती उमा नेहरू का नाम भी सम्मिलित करते हैं। आप ने एक बड़ी पुस्तक 'मदरइंडिया' के खंडन में लिखी है।

अब नवीन युग के साहित्य-सेवियों की चर्चा की जाती है। इस वर्ग में डाक्टर बेनीप्रसाद, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, डाक्टर गोरखप्रसाद, डाक्टर बाबूराम सकसेना, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, श्री सत्यजीवन वर्मा, प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, तथा प्रोफ़ेसर नगेंद्रनाथ घोष के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

श्री महेशप्रसाद जी 'मौलवी फ़ाज़िल' जो इस समय हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं, प्रयाग ही के हैं। आप लाहौर ओरिन्टल कालिज में विधिपूर्वक फ़ारसी और अरबी का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर के हिंदी-जगत् को उस के साहित्य का रसास्वादन करा रहे हैं। 'सुलैमान सौदागर' तथा 'अरबी-काव्य दर्शन' आप की इसी प्रकार की रचनाएं हैं, जो सीधे अरबी से अनुवादित हुई हैं। अभी आप ने 'मेरी ईरान-यात्रा' के नाम से एक बड़ी रोचक पुस्तक लिखी हैं।

गल्प-लेखकों में श्री राजेश्वरीप्रसाद सिंह जी का नाम उल्लेखनीय है, जिन की कहानियों में श्री प्रेमचंद जी की शैली की छटा पाई जाती है।

नवीन युग के इन साहित्य-सेवियों के अतिरिक्त प्रयाग आजकल कतिपय नए कवियों का ख़ासा केंद्र बना हुआ है, जिन में से कुछ के नाम ये हैं :—

पंडित रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०,[1] श्री आनंदीप्रसाद श्रीवास्तव, पंडित सुमित्रानंदन पंत, पंडित पद्मकांत मालवीय 'पद्म', पंडित कृष्णप्रसाद मालवीय 'मनोज', पंडित रामचंद्र मालवीय 'मधुप', पंडित रामचंद्र शुक्ल 'सरस', पंडित देवशरण शर्मा 'कंज', पंडित गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', श्री बल्देवप्रसाद खरे 'चकाचक', श्री रघुनाथसिंह 'किंकर', पंडित युगलकिशोर मिश्र 'युगलेश', पंडित ज्योतिप्रसाद निर्मल,[2] श्री बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक', श्री भगवतप्रसाद 'बनपति', प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० 'कुमार', ठाकुर श्रीनाथसिंह, डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस०-सी०, श्री बालकृष्ण राव तथा उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर ख़ां साहब सैयद माजिद अली, श्री सुखदेवप्रसाद सिनहा 'बिसमिल', और देवियों में श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए०, श्रीमती शांतिदेवी शुक्ल, श्रीमती केशवदेवी अगरवाल, श्रीमती चुन्नीदेवी विनोदिनी, श्रीमती मुन्नीदेवी भार्गव, श्रीमती पार्वतीदेवी शुक्ल, श्रीमती विमलादेवी शुक्ल, श्रीमती विद्यावतीदेवी 'कोकिल', श्रीमती ललितादेवी पाठक एम० ए०।

उर्दू गद्य-लेखकों में सैयद तालिब अली एक होनहार नवयुवक हैं।

---

[1]-[2] ये दोनों महाशय अच्छे गद्य-लेखक भी हैं। अभी थोड़े दिन हुए 'रसाल' जी ने अलंकार और साहित्य की अच्छी पुस्तकें लिखी हैं, जिन में हिंदी गद्य का आद्योपांत इतिहास बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसी प्रकार निर्मल जी की 'स्त्री कवि-कौमुदी' के नाम से एक बड़ी पुस्तक अभी प्रकाशित हुई है।

कौन जानता है कि यही छोटी-छोटी तारिकाएं किसी दिन साहित्य-गगन में सूर्य और चंद्र बन कर चमकेंगी। अस्तु हम इन नवयुवकों और नवयुवतियों के अदम्य उत्साह तथा महत्त्वाकांक्षा की सराहना करते हैं, और हृदय से चाहते हैं कि उन की प्रतिभा-रूपी लता कालांतर में विकसित और पल्लवित हो कर ख़ूब फूले-फले और अपनी कमनीयता तथा सौरभ से भारत के साहित्य-उद्यान को नंदन-कानन बना दे।

साहित्य-प्रेमियों में पंडित लक्ष्मीनारायण नागर, पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल तथा कुमारी चंद्रावती त्रिपाठी एम० ए० के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

अब यहां के स्थायी साहित्य की प्रगति पर कुछ विचार किया जाता है। संयुक्त प्रांत में प्रयाग, काशी और लखनऊ यही तीन ऐसे केंद्र हैं, जहां से पुस्तकों का अधिक प्रकाशन हुआ करता है। निस्संदेह प्रयाग की अपेक्षा काशी में संस्कृत और हिंदी की पुस्तकें अधिक छपती हैं, परंतु उन में अधिकांश पुराने ढर्रे के क़िस्से कहानियां, साधारण उपन्यास, मामूली गीत तथा स्तोत्र और माहात्म्य आदि होते हैं। इसी प्रकार उर्दू पुस्तकों के प्रकाशन में लखनऊ, प्रयाग से आगे बढ़ा हुआ है, पर वहां की पुस्तकों में भी सामान्य उपन्यासों तथा ग़ज़ल इत्यादि साधारण शृंगार-रस की कविता अधिक होती है।

पुराने अंक तो उपलब्ध नहीं हैं, परंतु ३० वर्ष पहले से १०-१० वर्ष के अंतर से जितनी पुस्तकें प्रयाग से प्रकाशित हुई हैं, उन का ब्यौरा इस प्रकार है :--

सन्	हिंदी	अँग्रेज़ी	उर्दू	कुल
१९००	११०	९९	६६	२७५
१९१०	१२५	१०७	३३	२६५
१९२०	२३०	१४५	७५	४५०
१९३०	४६२	१३४	१३७	७३३

सन् १९२९ में ६०० के लगभग पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। उस के पहले ३ वर्ष का औसत ४०० से कुछ ऊपर था। इधर दो वर्षों में शिक्षा तथा राष्ट्रीय कविता की पुस्तकें अधिक छपी हैं। अगले पृष्ठ पर गत ५ वर्ष में जितनी पुस्तकें यहां से प्रकाशित हुई हैं, उन का ब्यौरा कुछ विस्तार के साथ दिया जाता है।

इस प्रसंग में इस का भी उल्लेख करना असंगत न होगा कि यहां सब से अधिक पुस्तकें इंडियन-प्रेस, लाला रामनरायन लाल के नेशनल प्रेस तथा राय साहब लाला रामदयाल के, शांति प्रेस से प्रकाशित होती हैं, जिन में पिछले दो प्रेसों में अधिकांश स्कूली किताबें छपती हैं। ग्रंथ-प्रकाशन की अन्य उल्लेखनीय संस्थाओं में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन', 'साहित्य-भवन लिमिटेड', 'तरुण-भारत-ग्रंथावली' 'हिंदी-मंदिर' 'गांधी-पुस्तक-भंडार' 'चांद प्रेस लिमिटेड' 'विज्ञान-परिषद' तथा 'हिंदुस्तानी एकेडेमी' हैं। यद्यपि इन की (अलग-अलग) पुस्तकों की संख्या उक्त तीनों प्रेसों के सदृश अधिक नहीं है, तो भी अब तक इन्हों ने जितनी पुस्तकें प्रकाशित की हैं वे अधिक चुनी हुई और सुपाठ्य हैं।

प्रयाग से प्रकाशित सन् १९२६ से १९३० ई० तक की पुस्तकों का विवरण

भाषा जिन में पुस्तकें प्रकाशित हुईं	कला	जीवनी	नाटक	कहानी	इतिहास तथा भूगोल	भाषा	क़ानून	वैद्यक	स्फुट	कविता	राजनीति	दर्शन	धर्म	विज्ञानकोशगणित	यात्रा विवरण	कुल	विशेष सूचना
हिंदी	२५	८०	२७	१३९	१०३	३२२	९	३७	१७५	३३५	२७	१५	१५६	६३	८	१५२१	इन में थोड़ी-सी संस्कृत की भी पुस्तकें सम्मिलित हैं।
अंग्रेज़ी	३	८	६	२९	२१	२१९	७९	३	११२	१२	४७	५	१७	४२	१	६०४	
उर्दू	१०	११	७	२३	४४	१६३	२	३	४१	८७	२	१	१७	२५	...	४३६	इन में थोड़ी-सी फ़ारसी और अरबी की भी पुस्तकें मिली हुई हैं।
कुल	३८	९९	४०	१९१	१६८	७०४	९०	४३	३२८	४३४	७६	२१	१९०	१३०	९	२५६१	

सामयिक साहित्य

अब तक जो कुछ लिखा गया वह स्थायी-साहित्य के विषय में था। अब यहां के सामयिक-साहित्य का इतिहास लिखा जाता है। सब से पहले हम हिंदी के पत्रों को लेते हैं।

यह निर्विवाद है कि प्रयाग का सब से पहला मासिक पत्र 'हिंदी-प्रदीप' था, जिस को स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट ने विजयादशमी संवत् १९३४ वि० (सितम्बर सन् १८७७ ई०) से निकालना आरंभ किया था। भट्ट जी बड़े सिद्धहस्त लेखक थे और उन के लेखों में बहुधा हास्य-रस की भी पुट हुआ करती थी। इस लिए उन का पत्र बड़ा रोचक था। परंतु उन दिनों हिंदी के पत्रों का इतना आदर न था। अतः 'प्रदीप' के ग्राहक ढाई-तीन सौ से अधिक कभी नहीं बढ़े और भट्ट जी सदा घाटा उठाते रहते थे। परंतु याद रखना चाहिए कि वह पत्र के द्वारा धनोपार्जन के लिए इस संसार में नहीं आए थे, किंतु सामयिक साहित्य-क्षेत्र में अगुआ बन कर औरों को मार्ग दिखाने के लिए उन का जन्म हुआ था, इस लिए आर्थिक कठिनाइयों को बराबर सहन करते हुए भी उन्हों ने किसी तरह ३२ वर्ष तक उक्त पत्र का संचालन किया। अंत में सन् १९१० ई० में प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उस को बंद कर दिया।

साप्ताहिक पत्रों में सब से पहला पत्र यहां का 'प्रयाग समाचार' था, जिस को सन् १८८० में स्वर्गीय पंडित देवकीनंदन त्रिपाठी[1] ने निकाला था। उन्हीं दिनों के लगभग पंडित जगन्नाथ शर्मा राज्य-वैद्य ने भी एक साप्ताहिक पत्र 'प्रयाग-मित्र' तथा एक मासिक 'आरोग्य-दर्पण' निकाला। कुछ दिनों तक 'मित्र' और 'समाचार' दोनों साथ-साथ चलते रहे। परंतु उन में बहुधा एक दूसरे के प्रति बहुत-कुछ नोक-झोंक रहा करती थी। अंत में शायद सन् १८९० ई० में पंडित जगन्नाथ जी ने 'प्रयाग समाचार' को मोल ले लिया और तब से 'प्रयाग मित्र' बंद कर के केवल 'समाचार' ही निकालते रहे। सन् १९११ में उन का देहांत हो गया और उन के पश्चात् ही उन के पत्र की भी मृत्यु हो गई।

जनवरी सन् १९०० ई० से इंडियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय बाबू चिंतामणि घोष ने यहां की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' को निकाला। इस का सूत्रपात इस प्रकार हुआ था कि सन् १८९९ के अंत में काशी के स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास तथा बाबू (अब राय बहादुर) श्यामसुंदरदास किसी काम से प्रयाग पधारे। यहां इंडियन प्रेस से प्रकाशित बाबू रसिकलाल की 'खिलौना' नामक पुस्तक का हिंदी-संस्करण देख कर दोनों सज्जन मुग्ध हो गए। वे इंडियन प्रेस के स्वामी बाबू चिंतामणि घोष से मिले और उन से अनुरोध किया कि एक ऐसा ही सुंदर मासिक पत्र निकालें तो हिंदी का बड़ा उपकार हो। घोष बाबू बड़े महत्त्वाकांक्षी थे। उन्हों ने कहा कि हमारा भी विचार एक ऐसी उच्चकोटि की मासिक पत्रिका निकालने का

---

१ त्रिपाठी जी कुछ कविता भी करते थे। उन्हों ने वाल्मीकीय-रामायण के कुछ अंशों का अनुवाद दोहा-चौपाइयों में कर के प्रकाशित किया था। बहादुरगंज में रहते थे, सन् १९०४ में उन का देहांत हो गया।

है, जो बाबू रामानंद चटर्जी द्वारा संपादित बँगला-पत्र 'प्रदीप' के ढंग का हो। वह उस समय भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का पहला पत्र था। उस का नाम भट्ट जी के 'हिंदी प्रदीप' से लिया गया था। चिंतामणि बाबू की प्रस्तावित पत्रिका का 'साहित्य' नाम रखने का विचार किया गया, पर उन दिनों इस नाम का एक मासिक पत्र बँगला में निकलता था। अतः 'सरस्वती' नाम रक्खा गया। पहले इस का संपादन नागरी-प्रचारिणी सभा काशी के ५ सदस्यों द्वारा होता रहा, जिन के नाम ये हैं :—

१—बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए०

२—बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री

३—बाबू राधाकृष्ण दास

४—बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०

५—पंडित किशोरीलाल गोस्वामी

दो वर्ष तक यही प्रबंध रहा। फिर दो वर्ष तक केवल बाबू श्यामसुंदरदास इस के संपादक रहे। उस के पीछे सन् १९०४ से १९२० तक पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस पद को सुशोभित किया। द्विवेदी जी के विश्राम लेने पर कुछ दिनों तक उन की जगह श्री पदुमलाल-पुन्नालाल बख्शी बी० ए० ने काम किया। अब पंडित देवीदत्त शुक्ल तथा ठाकुर श्रीनाथ सिंह इस के संपादक हैं। पहले यह पत्रिका केवल साहित्यिक विषयों का प्रतिपादन किया करती थी, परंतु अब इस के संचालकों ने समय की नाड़ी देख कर इस में कुछ राजनीतिक पुट का भी समावेश आरंभ कर दिया है।

इस के पीछे सन् १९०५ में एक और छोटी-सी साहित्यिक पत्रिका 'कवींद्र-वाटिका' के नाम से निकली थी, जो थोड़े दिनों चलकर बंद हो गई। इस में प्रायः समस्या-पूर्ति रहा करती थी।

सन् १९०७ के बसंत-पंचमी से श्री पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने साप्ताहिक 'अभ्युदय' निकाला। पहले कुछ दिनों तक वह स्वयं इस के संपादक रहे थे। फिर पीछे बीच-बीच में थोड़े थोड़े दिनों तक पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी तथा पंडित सत्यानंद जोशी संपादक रहे। परंतु अब बहुत दिनों से पंडित कृष्णकांत मालवीय स्थायी रूप से इस का संपादन करते हैं। इस पत्र ने कई बार कुछ दिनों के लिए दैनिक रूप भी धारण किया, परंतु अंत में साप्ताहिक ही रहा। आज कल यह सचित्र बड़ी पुस्तक के आकार का निकल रहा है। पहले यह कुछ नर्मदल का पत्र समझा जाता था, परंतु अब इस की वही नीति है जो आज कल कांग्रेस के पक्ष के अन्य राष्ट्रीय पत्रों की है।

इस के पश्चात् हिंदी के अनेक छोटे-बड़े पत्र यहां से निकले और कुछ दिनों चल कर बंद हो गए। हम यहां प्रसंग-वश, उन में से कुछ मुख्य पत्रों की चर्चा करते हैं। दो पत्र श्री सुंदरलाल जी ने निकाले थे, जिन की उस समय जनता में बड़ी धूम थी, परंतु अपनी

उग्र नीति के कारण वे शीघ्र ही बंद हो गए। उन में से एक का नाम 'कर्मयोगी' था, जो सन् १६०६ में जन्माष्टमी के दिन से पहले पाक्षिक निकला, फिर उसी वर्ष बसंतपंचमी से साप्ताहिक हो कर अप्रैल सन् १६१० में ज़मानत न देने के कारण बंद हो गया।

उन का दूसरा पत्र 'भविष्य' था, जो सन् १६१६ में साप्ताहिक निकल कर ६ महीने पश्चात् ज़मानत के ज़ब्त हो जाने से बंद हो गया। फिर मई सन् १६२० में उसी नाम का पत्र दैनिक रूप में निकला, पर एक ही वर्ष चलकर संपादक के क़ैद हो जाने से पुनः बंद हो गया। कहते हैं कि इस पत्र के साप्ताहिक संस्करण की ग्राहक संख्या ६ हज़ार और दैनिक की दो हज़ार तक पहुँच गई थी।

इसी (भविष्य) नाम से बड़े आकार की पुस्तक के रूप में एक बहुत ही सुंदर, सचित्र साप्ताहिक पत्र अक्तूबर सन् १६३० से श्री रामरखसिंह सहगल ने निकालना आरंभ किया था, जो थोड़े समय तक चल कर बंद हो गया। यह एक राजनीतिक पत्र था, परंतु पाठकों के मनोरंजनार्थ इस में कुछ कविता की भी सामग्री रहा करती थी।[१]

नवंबर सन् १६१० से एक ऊंचे दर्जे की राजनीतिक मासिक पत्रिका अभ्युदय प्रेस से 'मर्यादा' के नाम से निकली थी, जिस का संपादन पहले कुछ दिनों तक बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने किया था। फिर पंडित कृष्णकांत मालवीय अंत तक उस के संपादक रहे। लगभग ११ वर्ष तक चल कर वह आश्विन सं० १६७१ (सन् १६२१) में काशी के ज्ञान-मंडल को दे दी गई और वहाँ कुछ दिनों पीछे बंद हो गई।

सन् १६१४ में एक संस्कृत की मासिक पत्रिका 'शारदा' के नाम से साहित्याचार्य पंडित चंद्रशेखर ओझा शास्त्री ने प्रयाग से निकाली थी। इस में सामयिक विषयों पर अच्छी टिप्पणियां हुआ करती थीं तथा लेख भी समयानुसार उपयोगी होते थे। परंतु खेद है कि वह तीन वर्ष से कुछ अधिक चलकर बंद हो गई।

नवंबर सन् १६२२ से श्रीरामरखसिंह सहगल ने एक सचित्र मासिक पत्र 'चाँद' के नाम से निकालना आरंभ किया है, जो अब तक बड़े सज-धज के साथ निकल रहा है। इस में एक विशेषता यह है कि इस के अनेक प्रकार के नए-नए ढंग के विशेषांक निकला करते हैं।

वर्तमान मासिक पत्रों में 'विज्ञान' और 'भूगोल' का सामयिक-साहित्य-क्षेत्र में विशेष स्थान है, जो अपने-अपने विषय का अच्छा प्रतिपादन करते हैं।

तिमाही केवल एक पत्रिका है, जो 'हिंदुस्तानी' के नाम से यहां की 'हिंदुस्तानी-एकेडेमी' ने जनवरी १६३१ से निकाली है। इस में साहित्य के विविध अंगों का सुंदर विवेचन रहता है। इस के संपादक श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम० ए०, एल्-एल० बी हैं।

३० अगस्त १६२८ से जो कि श्रावणी का दिन था, लीडर प्रेस से 'भारत' के नाम से एक साप्ताहिक पत्र और निकला। इस के पहले संपादक पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी

थे। इस पत्र के संचालकों का कहना है कि पहले-पहल केवल १२ स्थायी ग्राहकों पर इस का प्रकाशन आरंभ किया गया था। पर अब इस की ग्राहक-संख्या कई हज़ार है। ७ नवंबर १६३० से यह अर्ध-साप्ताहिक हुआ। और अब सन् १६३३ की दीवाली (अक्तूबर) से यह पत्र दैनिक हो गया है।

स्त्रियों के उपयोगी पत्रों में सब से पुराना श्रीमती यशोदादेवी का 'स्त्रीधर्म-शिक्षक' है, जो सन् १६०८ से निकल रहा है। उस के दूसरे वर्ष सन् १६०६ से दो और पत्र 'गृह-लक्ष्मी' और 'स्त्री-दर्पण' के नाम से निकले, जिन में से पहला कई वर्षों से बंद हो गया है। पिछला पत्र सन् १६२४ से कानपुर चला गया था, पर अब यह भी बंद है। इस की संपादिका यहां श्रीमती रामेश्वरी नेहरू थीं। यह बात भुलाई नहीं जा सकती कि यहां पहले-पहल इसी पत्र ने काशमीरी महिलाओं में हिंदी का प्रचार किया था। हम जानते हैं कि उन में से कितनी देवियों ने केवल इसी पत्र के पढ़ने के लिए नागरी की वर्णमाला सीखी थी।

इन पत्रों के कुछ दिनों के पश्चात् स्वर्गीय पंडित ओंकारनाथ वाजपेयी ने 'कन्या-मनोरंजन' के नाम से एक छोटी-सी पत्रिका 'ओंकार प्रेस' से निकाली थी, परंतु थोड़े दिनों चल कर वाजपेयी जी की असामयिक मृत्यु के पीछे उस की भी मृत्यु हो गई।

इधर सन् १६३० से 'सहेली' के नाम से एक सचित्र मासिक पत्रिका कुछ नव-शिक्षिता काशमीरी महिलाओं ने निकालना आरंभ किया है। तथा लगभग इसी के साथ एक पत्र श्रीमती यशोदा देवी 'कन्या-सर्वस्व' के नाम से निकालने लगी हैं।

बच्चों के पत्रों में सब से पुराना 'शिशु' है जो सन् १६१५ से निकलता है। इस के पश्चात् सन् १६१७ से इंडियन प्रेस से 'बालसखा', सन् १६२७ से हिंदी प्रेस से 'खिलौना' सन् १६३१ से कला प्रेस से 'चमचम', हिंदी मंदिर से 'बानर' के नाम से ऐसे पत्र निकल रहे हैं।

इस समय सब मिलकर ४० के लगभग हिंदी के पत्र यहां से निकलते हैं, जिन में से ३ साप्ताहिक, ३० से ऊपर मासिक और शेष अन्य प्रकार के हैं।

यह निर्विवाद है कि अंग्रेज़ी पत्रों में सब से पुराना 'पायोनियर' है जिस को सर जार्ज एलन[1] ने २ जनवरी सन् १८६५ से, पहले सप्ताह में ३ बार निकालना आरंभ किया

[1] इन्हीं के नाम से पायोनियर प्रेस के निकट 'एलनगंज' बसा हुआ है, जो विशेष कर प्रेस के नौकरों के लिए बसाया गया था। अब यह पत्र १ अगस्त १६३३ से लखनऊ चला गया है और १६३२ से इस को इस प्रांत के बड़े-बड़े लोगों ने ख़रीद लिया है, जिस में प्रमुख कानपुर के सर जे० पी० श्रीवास्तव हैं।

था। उस समय इस की एक प्रति का मूल्य एक रुपया होता था। पीछे सन् १८६८ से यह दैनिक हो गया और ४ आने का बिकने लगा, फिर सन् १६२७ से इस का दाम २ आना प्रति अंक हो गया। अब नवंबर सन् १८२८ से १ आने का बिकता है। आरंभ से यह पत्र सरकारी पक्ष का रहा, परंतु अक्तूबर सन् १६२७ से मिस्टर एफ़० डबल्यू० विलसन इस के संपादक हो कर विलायत से आए, तो उन्हों ने कुछ दिनों के पीछे इस की नीति में युगांतर उपस्थित कर दिया। इस का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि हिंदुस्तानी ग्राहकों की संख्या बढ़ गई, पर विलसन साहब को दो ही वर्ष के भीतर इस पद से अलग होना पड़ा। अब इस पत्र की वही नीति है जो पहले थी।

सन् १८७६ ई० में स्वर्गीय पंडित अयोध्यानाथ जी ने एक राष्ट्रीय दैनिक 'इंडियन हेराल्ड' के नाम से निकाला था और उस पर बहुत कुछ धन व्यय किया, परंतु वह ६ वर्ष से अधिक जीवित न रहा।

कायस्थ पाठशाला से पहले एक मासिक पत्र उर्दू में 'कायस्थ-समाचार' के नाम से निकलता था, जिस में विशेषकर पाठशाला-संबंधी लेख हुआ करते थे। जूलाई सन् १८६६ से पाठशाला के तत्कालीन प्रिंसपल बाबू रामानंद चटर्जी (वर्तमान संपादक 'मार्डन रिव्यू')[1] ने 'समाचार' का एक संस्करण अंगरेज़ी में भी निकालना आरंभ किया, जिस को जून सन् १६०० तक उन्हों ने चलाया। तत्पश्चात् बाबू साहब के पास अधिक काम होने से पाठशाला के ट्रस्टियों ने उस का संपादन मिस्टर सच्चिदानंद सिनहा के सिपुर्द कर दिया, जो उस समय यहां की हाई कोर्ट में बैरिस्टरी करते थे। सिनहा साहब ने इस पत्र को बहुत उन्नत किया। एक तो वह स्वयम् बड़े अच्छे लेखक थे; दूसरे उन के प्रभाव से डाक्टर (अब सर) तेजबहादुर सप्रू तथा स्वर्गीय डा० सतीशचंद्र बनर्जी प्रभृति प्रतिभाशाली विद्वानों के लेख उस में प्रकाशित होने लगे। फलतः बड़े-बड़े अंग्रेज़ी पत्रों ने 'कायस्थ-समाचार' की लेखन-शैली की भूरि-भूरि प्रशंसा की। शनैः-शनैः इस पत्र की नीति में भी पहले से अधिक परिवर्तन हो गया। अब इस में राजनीतिक लेख अधिक प्रकाशित होने लगे। अतः जनवरी सन् १६०३ से पाठशाला के ट्रस्टियों की स्वीकृति से इस का नाम 'हिंदुस्तान रिव्यू' रख दिया गया, परंतु आवरण-पृष्ठ पर 'कायस्थ-समाचार' का भी नाम लिखा रहता था और उस का एक भाग अलग पीछे लगा रहता था। एक वर्ष पश्चात् पाठशालावालों ने इस पत्र का अधिकार सिनहा साहब को दे दिया और तब से उस में से 'कायस्थ-समाचार' का नाम पृथक् हो गया। सन् १६२१ तक यह पत्र बड़ी धूम-धाम के साथ प्रयाग से निकलता रहा, उस के पश्चात् मिस्टर सिनहा बिहार और उड़ीसा गवर्नमेंट के इक्ज़ीक्यूटिव काउंसलर हो कर पटना चले गए। उस समय प्रयाग में कोई इस का भार लेने को तैयार न हुआ। अतः उन्हों ने इस

---

[1] 'मार्डन रिव्यू' तथा बंगला 'प्रवासी' का भी जन्म प्रयाग ही में हुआ था। कुछ दिनों तक यहां से प्रकाशित हो कर फिर इन दोनों पत्रों के दफ़्तर बाबू रामानंद जी के साथ कलकत्ते चले गये।

के संचालन का प्रबंध कलकत्ता के मिस्टर के० सी० महेंद्र बी० ए० के सिपुर्द कर दिया। महेंद्र महाशय ने किसी प्रकार एक वर्ष तक इस को मासिक के रूप में चलाया, परंतु तत्पश्चात् उन्हों ने अन्य कार्यों में अधिकतर रहने के कारण अक्तूबर १६२२ से इस पत्र को त्रैमासिक कर दिया और इसी रूप में जून १६२६ तक कलकत्ते से निकलता रहा। जुलाई से फिर इस का कार्यालय अपनी जन्मभूमि प्रयाग में आ गया था और तब से यह सिनहा महोदय के संपादन में फिर मासिक रूप में निकलने लगा था। सन् १६३१ के अंत में अब यह पटना से प्रकाशित होने लगा है। सर रेमज़े मेकडानल्ड प्रभृति व्यक्तियों तथा योरोप और अमरीका के अनेक पत्रों ने 'रिव्यू' की मुक्तकंठ से सराहना की है।

जनवरी १६०३ से उक्त मिस्टर सच्चिदानंद जी ने एक राजनीतिक पत्र 'इंडियन पीपुल' के नाम से पहले साप्ताहिक निकाला था, जो एक वर्ष के पश्चात् अर्द्ध-साप्ताहिक हो गया। फिर कुछ दिन पीछे उन से इस पत्र को डा० सतीशचंद्र बनर्जी ने ले लिया। इधर बहुत दिनों से प्रयाग के नेतागण, जिन में पंडित मदनमोहन मालवीय जी का नाम मुख्यतया उल्लेखनीय है एक दैनिक पत्र निकालने का विचार कर रहे थे। अतः इस उद्देश्य के लिए 'न्यूज़ पेपर्स लिमिटेड' के नाम से एक कंपनी स्थापित की गई, जिस के पहले चेयरमैन पंडित मोतीलाल नेहरू हुए थे, इस प्रबंध के पश्चात् २४ अक्तूबर सन् १६०६ से, जो विजयादशमी का शुभ दिन था, 'लीडर' के नाम से वर्तमान दैनिक पत्र जारी हुआ और उसी में उक्त इंडियन पीपुल' भी मिला दिया गया, जिस का नाम स्मारक के रूप में 'लीडर' के आवरण पृष्ठ पर अब भी रहा करता है। उस समय श्री नगेंद्रनाथ गुप्त इस के प्रधान संपादक तथा श्री सी० वाई० चिंतामणि सहायक-संपादक थे। पीछे गुप्ता महाशय 'ट्रिब्यून' में लाहौर चले गए और तब से श्री चिंतामणि जी इस के मुख्य संपादक हैं, सिवाय उन थोड़े दिनों के जब कि वह इस प्रांत की गवर्नमेंट के मिनिस्टर हो गए थे। उन दिनों पंडित कृष्णाराम मेहता ने प्रधान-संपादक का काम किया था, जो अब सहायक-संपादक हैं।

आरंभ में एक बार इस पत्र को घोर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, यहां तक भय हुआ था कि कहीं यह बंद ही न हो जाय। परंतु मालवीय जी इत्यादि ने इस के जीवित रखने के लिए बड़ी दौड़-धूप की और इस को किसी तरह से उस समय आर्थिक संकट से मुक्त किया, जिस का परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे इस की दशा सुधरने लगी। यहां तक कि सन् १६२६ में किराए के बँगले से उठ कर 'लीडर' ने अपने निजी भवन में प्रवेश किया। नई-नई इमारतें बनवाई गईं, जिन का २१ अक्तूबर सन् १६२६ को बड़े समारोह से विधि-पूर्वक उद्घाटन-संस्कार हुआ।

नीति की दृष्टि से वह पत्र उदार (लिबरल) दल का माना जाता है। कहा जाता है, सन् १६२०-२१ में 'इंडेपेंडेंट' के जारी होने से 'लीडर' को फिर कुछ आर्थिक धक्का लगा था, परतु वह थोड़े दिनों की लहर थी। अब इस की आर्थिक-दशा संतोष-जनक बताई जाती है और जनता में इस पत्र ने उचित स्थान प्राप्त कर लिया है।

उक्त 'इंडेपेंडेंट' नामक दैनिक पत्र ५ फ़रवरी सन् १६१७ से २० दिसंबर १६२१

तक बड़े समारोह के साथ निकलता रहा। पंडित मोतीलाल नेहरू इस के मुख्य व्यवस्थापकों में थे। इस की उग्र नीति थी और इस का मुख्य उद्देश्य असहयोग का प्रचार करना था। अंत में ज़मानत ज़ब्त हो गई और आर्थिक कठिनाइयों के कारण पत्र बंद हो गया। पीछे कुछ दिनों तक कभी-कभी एक दो पृष्ठ टाइप होकर 'इंडेपेंडेंट' के नाम से लुक-छिप कर बिकते रहे, जिन के विषय में कहा जाता है कि एक-एक रुपए तक में लोगों ने मोल लिया था।

बस, यही यहां के अंग्रेज़ी पत्रों का इतिहास है। यों तो अनेक छोटे-मोटे पत्र कभी-कभी यहां से निकले और कुछ अब भी निकलते रहते हैं, जिन की संख्या २० से ऊपर होगी, परंतु उन में कोई विशेष उल्लेखनीय नहीं है।

उर्दू का कोई महत्व-पूर्ण पत्र यहां से नहीं निकला। फिर भी पाठकों की जानकारी के लिए कुछ थोड़ा-सा इस विषय पर भी लिखा जाता है।

जहां तक खोज से पता लगा है सब से पहले सन् १८८५ ई० में क़स्बा कड़ा से वहां के सुप्रसिद्ध रईस ख़ान बहादुर मौलवी फ़रीदुद्दीन अहमद के संरक्षण में एक साप्ताहिक पत्र निकला था, जिस का नाम पहले 'रिफ़ाहे-आम कड़ा' था, फिर पीछे 'हामी-हिंद कड़ा' हो गया था। यह पत्र लगभग तीन वर्ष तक चला था। इस के संपादक शेख़ निहाल अहमद अलवी हमीदी थे। उन्हीं दिनों एक और साप्ताहिक पत्र 'कड़ा-पंच' के नाम से हाफ़िज़ हकीम महम्मद इसमाइल ने भी निकाला था। फिर उस के बहुत दिनों पीछे वहीं (कड़े) से दो और मासिक पत्र 'अल-एहसान' और 'हमदर्द' के नाम से निकले थे। कहते हैं, मऊ आयमा से शेख़ नसीरुद्दीन के लड़कों ने भी एक पत्र निकाला था, परंतु उस का कुछ ठीक पता नहीं लगा।

यह तो हुआ यहां के पुराने उर्दू पत्रों का इतिहास। इधर विशेष कर असहयोग-आंदोलन के समय से अनेक छोटे-मोटे पत्र निकले, परंतु उन की आयु बहुत कम रही। इन में सब से अधिक प्रसिद्ध 'स्वराज्य' था, जिस को सन् १६०७ के लगभग कुछ पंजाबियों ने यहां आ कर निकाला था। उस के कई संपादक जल्दी-जल्दी जेल गए। अंत में प्रेस ज़ब्त हो जाने से पत्र बंद हो गया। अब इस समय 'कश्शाफ़' और 'अल-अज़ीज़' के नाम से दो साप्ताहिक ३-४ वर्ष से निकल रहे हैं, जिन का उद्देश्य मुसलमानों के पक्ष का समर्थन करना है।

मासिक पत्रों में जो कुछ दिनों चल कर बंद हो गए 'अदीब' विशेषतया उल्लेखनीय है, जो सन् १६११ के लगभग बड़े सज-धज के साथ इंडियन प्रेस से निकला था। उस के बहुत पीछे यहां के सुप्रसिद्ध कवि सैयद अकबर हुसैन के स्मारक में एक छोटा सा पत्र 'अकबर' के नाम से निकला जो और भी जल्दी बंद हो गया।

अन्य पत्रों में 'चाँद' का उर्दू संस्करण पढ़ने योग्य था, जो १६३० में मुंशी कन्हैयालाल एम० ए० एल-एल बी० के संपादन में केवल साल भर निकल कर बंद हो गया। सन् १६३१ से इंडियन प्रेस ने उर्दू में एक पत्रिका 'बच्चों की दुनिया' के नाम से

निकालना आरंभ किया है। इसी साल से हिंदुस्तानी एकेडेमी का 'हिंदुस्तानी' नामक तिमाही रिसाला प्रकाशित होने लगा है। इस के संपादक उर्दू के प्रसिद्ध कवि मौलवी असग़र हुसैन 'असग़र' हैं।

इस समय सब मिल कर उर्दू के १०-१२ पत्र प्रयाग से निकलते हैं, जिन में से कुछ की चर्चा ऊपर की गई है। शेष इतने साधारण हैं कि उन के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

युक्त प्रांत में सामयिक पत्रों की संख्या की दृष्टि से प्रयाग का दूसरा नंबर है। लखनऊ में कुछ थोड़े से पत्र यहां की अपेक्षा अधिक निकलते हैं, परंतु यह निर्विवाद है कि प्रसिद्ध तथा उपयोगी पत्रों के प्रकाशन का मुख्य केंद्र प्रयाग ही है।

अब हम पाठकों की जानकारी के लिए यहां के १० वर्षों के पत्रों का संख्या-सूचक एक रेखा-चित्र अगले पृष्ठ पर दे कर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं।

इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि प्रयाग के कतिपय पत्रों के संचालन में इंडियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय बाबू चिंतामणि घोष का किसी न किसी रूप में विशेष हाथ रहा है। यह सभी जानते हैं कि सरस्वती का संचालन बिना कमला के सहयोग के कठिन है। घोष महाशय उच्चकोटि के साहित्य-प्रकाशन के बड़े अनुरागी थे। अतः साहित्यिकों के प्रोत्साहन के लिए, जहां तक आर्थिक सहायता का संबंध था, वह बड़ी उदारता का परिचय देते थे। अथवा मोटे हिसाब से यह समझ लीजिए कि लखनऊ में जो काम मुंशी नवल किशोर जी ने किया था, वही काम प्रयाग में चिंतामणि बाबू का था।

(२) साहित्यिक-संस्थाएं

(क) पुस्तकालय

यहां का सब से पुराना पुस्तकालय 'पब्लिक लायब्रेरी' है, जिस का वास्तविक नाम है 'थार्नहिल एंड माएन मेमोरियल'। थार्नहिल साहब यहां पहले कमिश्नर और फिर बोर्ड आफ़ रेवन्यू के मेंबर हो गए थे। माएन साहब पहले बांदा के कलेक्टर थे। सन् १८५७ के ग़दर में शांति स्थापित करने के लिए प्रयाग में नियुक्त हुए। फिर पीछे यहीं के कमिश्नर हो गए। इन से और थार्नहिल साहब से बड़ी मैत्री थी। इसीलिए इस संस्था को इन दोनों मित्रों का संयुक्त नाम दिया गया है।

इस पुस्तकालय का सूत्रपात सन् १८६४ में चाथम लाइन में तत्कालीन गवर्नमेंट प्रेस के भवन के एक कोने में हुआ था और उसी के साथ एक छोटा सा अजायबघर भी खोला गया था। उक्त प्रेस के सुप्रेंटेंडेंट ही उस के अध्यक्ष थे। सन् १८७० में यह पुस्तकालय यहां से उठ कर कर्नलगंज के थाने के पीछे गिरजे के सामने आया। सन् १८६४ में थार्नहिल साहब का देहांत हो गया। मिस्टर माएन उस समय कमिश्नर थे। उन्हों ने तत्कालीन लेफ़्टिनेंट-गवर्नर सर विलियम म्योर से वर्तमान भवन की आधार-शिला

रखवाई और धन संग्रह करने लगे। परंतु सन् १८७२ तक भवन तैयार नहीं हुआ था कि इतने में माएन साहब भी मर गए, फिर इस के लिए उद्योग होने लगा। अंत में १ लाख ६० हज़ार की लागत से वर्तमान भवन बन कर तैयार हुआ, जिस में सन् १८७८ में चर्च रोड से यह पुस्तकालय उठ कर आ गया। अजायबघर में कुछ उन्नति न हुई। इस लिए सन् १८६३ में वह बंद कर दिया गया और जो कुछ थोड़ी-बहुत वस्तुएं थीं, वे लखनऊ भेज दी गई। इस पुस्तकालय में इस समय लग भग ५० हज़ार के पुस्तकें हैं, तथा ४० के लगभग समाचार-पत्र आते हैं जिन में अधिकांश अंग्रेज़ी के हैं।

दूसरा उल्लेखनीय पुस्तकालय 'भारतीभवन' है, जिस को १५ दिसम्बर १८८६ को स्वर्गीय लाला ब्रजमोहन लाल जी ने खोला था। लाला जी बड़े विद्यानुरागी थे। उन को बचपन ही से हिंदी पुस्तकों के पढ़ने का व्यसन-सा था। इस लिए उन्हों ने अपने पढ़ने के लिए धीरे-धीरे बहुत सी पुस्तकें मोल ले कर जमा कर रक्खी थीं। उन के कोई संतान न थी। अंत में स्वयम् अपनी इच्छा तथा पंडित जयगोविंद मालवीय, पंडित मदनमोहन मालवीय, पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा रायबहादुर बाबू लालबिहारी इत्यादि की अनुमति से उन्हों ने यह पुस्तकालय सर्वसाधारण के लिए खोल दिया। उन्हों ने कुल अपनी पैतृक संपत्ति जिस की कुल मालियत ४०½ हज़ार रुपए से ऊपर थी, नियमानुसार दानपत्र लिख कर इस पुस्तकालय के निमित्त अर्पण कर दी फिर उन के अनेक इष्टमित्रों ने भी अपनी-अपनी निजी पुस्तकें इस पुस्तकालय के भेंट कर दीं, जिन में से पंडित जयगोविंद मालवीय की बहुत सी बहुमूल्य संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकें हैं। खेद है कि सन् १६०८ में लाला जी का केवल २६ वर्ष की अवस्था में शरीरांत हो गया, परंतु उन के यश और कीर्ति की ध्वजा अबतक लहरा रही है। पहले यह पुस्तकालय उन के निजी बैठक में था। सन् १६१२ में लगभग २२½ हज़ार रुपए की लागत से उस का वर्तमान भवन बन कर तैयार हुआ और तब यह संग्रह वहां से उठ कर इस में चला आया। इस समय इस में १२ हज़ार के लगभग पुस्तकें हैं, जिन में हिंदी की अधिक हैं और ७० के लगभग हिंदी, अंग्रेज़ी तथा उर्दू के सामयिक पत्र आते हैं।

तीसरा उल्लेखनीय पुस्तकालय 'विद्यामंडल' है, जिस का अपना भवन रामबाग़ में है। इस की स्थापना सन् १६१६ में कायस्थ पाठशाला के कुछ विद्यार्थियों ने की थी जिन में बाबू कामताप्रसाद जी का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। इस में ४ हज़ार के लगभग पुस्तकें होंगी, जिस में संपूर्ण यजुर्वेद की एक प्रति हस्त-लिखित है। कोई ३० समाचार-पत्र आते हैं। इस पुस्तकालय को विशेष सहायता राय बहादुर लाला सीताराम जी से मिली है।

इस संस्था के कार्यकर्ताओं ने सन् १६३४ से समस्त भार के समाचार-पत्रों की साल में एक प्रदर्शिनी आरंभ की है, जो अपने ढंग की एक नवीन वस्तु है।

इस मंडल की ओर से एक मासिक पत्रिका भी 'विद्या' के नाम से प्रकाशित होती है।

इन पुस्तकालयों के अतिरिक्त नगर के अनेक महल्लों में बहुत से छोटे-छोटे पुस्तकालय तथा वाचनालय खुल गए हैं, जिन की संख्या ३० के लगभग होगी।

(ख) अन्य संस्थाएं

(१) विज्ञान-परिषद्

यह संस्था सन् १९१४ में निम्न-लिखित सज्जनों के उद्योग से स्थापित हुई थी।

महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा
डाक्टर सर सुंदरलाल
प्रोफ़ेसर रामदास गौड़
,, शालिग्राम भार्गव
,, एस० सी० देव
,, डी० एन० पाल
श्री शिवप्रसाद जी सेक्रेटरी बोर्ड अव् रेवन्यू

इस का उद्देश्य देशी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन करना है। अब तक इस संस्था ने लगभग २५ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिन में से मुख्य-मुख्य ये हैं:—'समीकरण-मीमांसा', 'सूर्यसिद्धांत का वैज्ञानिक भाष्य,' 'मनोरंजक रसायन', 'मनुष्य का आहार' तथा 'विद्युत्-शास्त्र' इत्यादि। इस संस्था की ओर से अप्रैल १९१५ से एक मासिक पत्र 'विज्ञान' के नाम से प्रकाशित होता है। इस के सब से पहले सभापति डाक्टर सर सुंदरलाल जी हुए थे। कभी-कभी इस संस्था की ओर से वैज्ञानिक विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा देशी भाषा में व्याख्यान भी दिलाए जाते हैं।

(२) हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

यह संस्था सन् १९१० में हिंदी-साहित्य की उन्नति तथा उस के प्रचार के उद्देश्य से स्थापित हुई है। इस का पहला अधिवेशन काशी में पंडित मदनमोहन मालवीय जी के सभापतित्व में हुआ था। आरंभ से ही पुरुषोत्तम दास टंडन जी ने इस की बहुत सेवा की है।

सम्मेलन ने हिंदी की अनेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं और मद्रास, बंगाल, आसाम तथा पंजाब में वह हिंदी का प्रचार कर रहा है। सन् १९१८ में सम्मेलन ने एक विद्या-पीठ प्रयाग में खोला था, जिस का उद्देश्य हिंदी द्वारा विविध विद्याओं की शिक्षा देना था। परंतु कुछ दिनों चल कर वह संस्था बंद हो गई। अब सन् १९२३ से एक विद्यापीठ यमुना के उस पार रहा घाट के सामने फिर खोला गया है, जिस में कृषि-विद्या की क्रियात्मक-शिक्षा की आयोजना की गई है तथा प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की परीक्षा के लिए हिंदी द्वारा पढ़ाई होती है। मध्यमा और उत्तमा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को 'विशारद' और 'साहित्यरत्न' की भी क्रमशः उपाधियां दी जाती हैं। इस के अतिरिक्त मुनीमी और अरायज़ नवीसी की भी परीक्षाएं लेकर प्रमाण-पत्र दिए जाते हैं। प्रति वर्ष हिंदी में किसी निर्धारित विषय पर सर्वो-त्तम रचना के लिए 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' के नाम से लेखक को १२००) रु० सम्मेलन की ओर से भेंट किया जाता है। इस रुपए का मूल-धन कलकत्ता के रईस श्री गोकुलचंद जी ने दिया है। इस के अतिरिक्त कई प्रकार के पदक हैं, जो विशेष योग्यता से उत्तीर्ण विद्यार्थियों को दिए जाते हैं। सम्मेलन कई वर्षों से एक साहित्यिक संग्रहालय के स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है जो कार्य-रूप में शीघ्र ही परिणत होनेवाला है।

(३) हिंदुस्तानी एकेडेमी

यह एक सरकारी संस्था है, जो सन् १६२७ से प्रयाग में स्थापित हुई है। इस के खोलने का श्रेय तत्कालीन शिक्षा-सचिव श्री राय राजेश्वर बली महोदय को है। इस संस्था के उद्देश्य इस प्रकार दिए गए हैं।

'हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह (क) भिन्न-भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी। (ख) पारिश्रमिक देकर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी। (ग) विश्वविद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता देकर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी। (घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी। (ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी। (च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी। (छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी। (ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो-जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।'

इस संस्था की ओर से अब तक हिंदी-उर्दू के पचास के लगभग मूल्यवान् ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जो अधिकांश विशेषज्ञों के लिखे हुए हैं। प्रकाशन का यह क्रम जारी है। अब दोनों भाषाओं में सुलभ पुस्तकमालाओं के निकालने की भी आयोजना हो रही है।

(४) यूनीवर्सिटी की साहित्यिक संस्थाएं

यूनीवर्सिटी में साहित्यिक चर्चा के लिये 'ओरियंटल सोसाइटी', 'उर्दू एसोसीयेशन', 'हिंदी-परिषद्' इत्यादि नामों से प्रत्येक विभाग में एक संस्था स्थापित है, जिन में वहां के शिक्षक तथा विद्यार्थीगण समय-समय पर निबंध लिख कर सुनाया करते हैं।

(५) हिंदी लेखक-संघ

इस नाम की एक संस्था सन् १६३५ से श्री सत्यजीवन वर्मा एम० ए० के उद्योग से स्थापित हुई है, जिस का उद्देश्य है (१) वर्तमान तथा सामयिक साहित्य की श्रीवृद्धि तथा उस की प्रगति का संचालन, (२) हिंदी साहित्य-सेवियों तथा लेखकों के हित की रक्षा, उन का उचित सम्मान करना तथा उन्हें सहायता पहुँचाना (३) हिंदी साहित्य-सेवियों में भ्रातृभाव तथा परस्पर सहयोग का भाव उत्पन्न करना (४) हिंदी लेखकों को अपनी कला के सीखने तथा उन्हें अपने व्यवसाय में कुशलता और सफलता प्राप्त करने में सब प्रकार की सहायता पहुँचाना। (५) हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य, हिंदी पाठक तथा शिक्षित समुदाय के हित तथा देश और जाति की हित-कामना करते हुए, ऐसे प्रयत्न करना, जिन से उन्हें लेखन-कला द्वारा लाभ पहुँच सके। इस संस्था की ओर से 'लेखक' नाम से एक मासिक पत्र भी प्रकाशित होता है।

(६) अन्य स्फुट संस्थाएं

प्रयाग में इधर कोई १५-१६ वर्षों से मशायरों और ४-५ वर्षों से कवि-सम्मेलनों की नवयुवकों में बड़ी धूम रहती है। इस उद्देश्य के लिए यहां अनेक छोटी-छोटी संस्थाएं खुल गई हैं, जैसे 'रसिकमंडल' 'आनंदमंडल' 'साहित्यगोष्ठी' तथा 'सुकविसमाज' इत्यादि।

चौथा अध्याय

कृषि तथा भूमिकर आदि के संबंध में

(१) ज़मींदार

कहा जाता है कि इस ज़िले में जमुनापार और गंगापार में पहले भरों की ज़मींदारी थी। उन के एक बड़े क़िले का खंडहर परगना ख़ैरागढ़ के खारा गाँव में टोंस के पूर्वीय किनारे पर अब तक मौजूद है। कहते हैं, माँडा के राजा साहब के पूर्वजों ने इन्हीं लोगों से इस परगने की ज़मींदारी अपने अधीन की थी।

भरों के दो क़िलों के डीह गंगापार तहसील हँडिया में भी पाए जाते हैं। एक महटीकर और दूसरा साथर में है। इन क़िलों में कभी-कभी पुराने सिक्के भी मिलते हैं, परंतु जौनपुर के मुसलमान बादशाहों के समय से पहले के नहीं प्राप्त हुए हैं।

मिस्टर मांटगोमरी साहब ने सन् १८३६ में इस ज़िले का बंदोबस्त किया था। उस समय उन्हें यहां भरों के तीन पुराने घराने ख़ैरागढ़ में मिले थे, परंतु अब उन में से किसी का पता नहीं है। गहरवारों और दूसरे राजपूतों ने आकर यहां से भरों को निकाल दिया और अपनी ज़मींदारी स्थापित कर ली। उन के पीछे भूमिहारे आए और वे भी यहां जम गए।

अकबर के समय के ज़मींदारों का परगनेवार ब्यौरा पूर्वार्ध में दिया गया है। इस से विदित होता है कि उस समय केवल परगना नवाबगंज में मुसलमानों की कुछ ज़मींदारी थी, जिन के वंशज इस समय मिंडारा में रहते हैं। दूसरा घराना परगना सोराम में मऊआयमा में है, जो शेख़ नसीरुद्दीन के घराने के नाम से प्रसिद्ध है। पहले ये लोग तालुक़ा अब्दालपुर के बहुत बड़े ज़मींदार थे। ३२०००) सालाना मालगुज़ारी देते थे, परंतु अब बिक-बिका कर थोड़ी सी ज़मींदारी इन के पास रह गई है। नवाबगंजवाले और ये लोग बतलाते हैं कि जब तेरहवीं शताब्दी के अंत में कड़े में जलालुद्दीन ख़िलजी सूबेदार था

तब ये यहां आए थे। यही इस ज़िले के पुराने मुसलमान ज़मींदार मालूम होते हैं। पीछे शेखों और सैयदों ने परगना चायल से ब्राह्मणों को निकाल दिया। इसी प्रकार करारी और कड़ा से फ़र्रुखसियर के समय में जब अब्दुल्ला खां यहां का सूबेदार था, सैयदों द्वारा राजपूत ज़मींदार निकाले गए; और उन लोगों ने परगना अथरबन में अपनी ज़मींदारी क़ायम की। पठान सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यहां आकर दरियाबाद में बसे, जब शायस्ता खां यहां का नाज़िम था। उसी समय से परगना अरैल के ब्राह्मणों की ज़मींदारी इन के हाथ लगी।

सन् १८२१ में अँगरेज़ी सरकार ने एक स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किया, जिस ने जाँच के पश्चात् कुछ पुराने ज़मींदारों को उन की जायदाद पर फिर कब्ज़ा करा दिया।

पीछे सन् १९०३ में बुंदेलखंड की ज़मीदारी के लिए दो[1] क़ानून पास हुए, जिन में से एक के अनुसार कृषक जातियों[2] की जो जायदादें रेहन थीं, उन का ऋण चुकाने का सरकार ने बंदोबस्त कर के, उन की ज़मींदारी पर फिर उन को क़ब्ज़ा दिला दिया, और भविष्य की रक्षा के लिए दूसरे क़ानून से यह प्रतिबंध लगा दिया गया, कि कोई कृषक जातिवाला अपनी जायदाद को अकृषक जातिवाले के हाथ बिना कलक्टर की मंज़ूरी के न तो बेच सकता है और न रेहन रख सकता है।

इस ज़िले में जमुनापार के तीनों परगने बुंदेलखंड में गिने जाते हैं। इस लिए उन्हीं में ये क़ानून लागू हैं।

इस समय यहां निम्न प्रकार के ज़मींदार हैं।

(१) तालुक़ेदार
(२) ज़मींदार
(३) माफ़ीदार
(४) मालगुज़ारी के हक़दार
(५) संकल्पदार
(६) नानकारदार
(७) मालिकानादार
(८) स्थायी मालगुज़ारी के ज़मींदार

तालुक़ेदार उन बड़े ज़मींदारों को कहते हैं, जिन के वंश में जो सब से ज्येष्ठ होता है, केवल उसी के नाम रियासत होती है। बाक़ी इन के घराने के लोग गुज़ारा के लिए जागीर पाते हैं। इस प्रकार के तालुक़े इस ज़िले में माँडा, डैया और बारा हैं, जिन में सब से बड़ी माँडा की रियासत है। ज़मींदारों में सब से बड़ी रियासत फूलपूर की श्रीमती गोमती बीबी की है।

---

[1] एक्ट न० १ सन् १९०३ तथा एक्ट न० २ सन् १९०३

[2] क्षत्रिय, ब्राह्मण, कुर्मी, भूमिहार, अहीर, काछी, माली, मुराव, गड़रिया, लोध और मुसलमान-राजपूत, ये कृषक जातियां मानी गई हैं।

चौथे प्रकार के अधिकारी यहां केवल महाराजा जयपुर हैं, जिन को शहर में राजापुर और कटरा के निकट फ़तेहपुर-बिछुआ की मालगुज़ारी ज़मींदारों से मिलती है। यह अधिकार उन को औरंगज़ेब के समय से प्राप्त है।

संकल्पदार वे हैं, जिन को ज़मींदारों ने कुछ भूमि पुण्यार्थ दी थी। इन लोगों को अपनी भूमि पर वही अधिकार प्राप्त है, जो ज़मींदारों को है। ये संकल्प पहले केवल ब्राह्मणों को मिली थी और अब भी अधिकांश उन्हीं के पास हैं। परंतु उन में अब कुछ अन्य जाति-वालों के भी हाथ बिक गई है।

नानकारदार भी एक प्रकार के माफ़ीदार होते हैं।

सातवें मालिकानदार उन को कहते हैं, जिन की पहले किसी गाँव में ज़मींदारी थी, परंतु पीछे कुप्रबंध अथवा किसी अन्य कारण से वे सरकार को मालगुज़ारी नहीं दे सके। इसी लिए उन के गाँव का बंदोबस्त दूसरे लोगों के साथ कर दिया गया। फिर भी यह समझ कर कि वह उन की पैतृक संपत्ति थी, कुछ हक़ उन का भी नए ज़मींदारों से बँधवा दिया गया है। यही हक़ 'मालिकाना' कहलाता हैं, जो मालगुज़ारी के साथ नए ज़मीदारों से वसूल किया जाता है और फिर पीछे सरकार द्वारा पुराने ज़मींदारों को दोनों फ़स्ल में सरकारी ख़ज़ाने से नक़द मिल जाता है।

पहले इस का दर बंदोबस्त महकमे के अफ़सर मिस्टर मांटगोमरी ने मालगुज़ारी पर १८) सैकड़ा लगाया था, पर पीछे सन् १८७७ से वह घट कर १०) सैकड़ा रह गया है।

इस ज़िले में इस प्रकार के मालिकानादार केवल जमुनापार में अब माँडा और डैया के राजा हैं। पहले बारा के राजा भी थे, परंतु उन का मालिकाना बिक कर अब लाला मनो-हरदास के घराने में चला आया है।

आठवें प्रकार में केवल एक ही उदाहरण उल्लेखनीय है और वह परगना चायल का एक गाँव शेख़पुर-रसूलपुर है, जिस का बंदोबस्त एक हज़ार रुपया सालाना पर लाला दुर्गा-प्रसाद के साथ सन् १८६३ में सदैव के लिए क़रार दिया गया है। उन्हों ने ग़दर में सरकार को सहायता दी थी। उसी के उपलक्ष्य में यह विशेष रियायत उन के साथ की गई है, परंतु उन के असामियों को वह अधिकार नहीं प्राप्त है, जो स्थायी बंदोबस्त के अन्य ज़िलों में किसानों को है।

पाठकों की जानकारी के लिए एक अलग नक़्शे द्वारा ऐसा ब्यौरा दिया जाता है, जिस से यह विदित होगा कि इस ज़िले में किस-किस जाति के ज़मींदारों के पास कितनी भूमि पहले थी और कितनी अब है। इस में प्रत्येक खंड के कुल क्षेत्रफल पर सैकड़ा पीछे एकड़ में हिसाब निकाला गया है।

प्रयाग के ज़िले में विविध जातियों की ज़मींदारी का क्षेत्रफल एकड़ में प्रति सैकड़ा के हिसाब से

सन्	मुसलमान			ब्राह्मण			क्षत्री			वैश्य			कायस्थ			अन्य			सरकार		
	दोआब	गंगापार	जमुनापार	दोआब	गंगापार	जमुनापार	दोआब	गंगापार	जमुनापार	दोआब	गंगापार	जमुनापार	दोआब	गंगापार	जमुनापार	दोआब	गंगापार	जमुनापार	दोआब	गंगापार	जमुनापार
१८४० ई०	४८·०४	३३·६८	४·९७	१७·०२	१३·५२	२८·३२	१७·३३	३४·९३	५३·८१	४·०५	९·३९	१०·८५	८·४७	३·९७	१·२४	५·०९	४·५१	१०·३६	...	...	..
१८७६ ई०	४०·५५	३१·२५	८·१२	१८·९३	१७·१८	२६·५२	१२·९२	२३·७३	५३·८३	९·३०	१६·६०	२३·३७	७·६९	४·०२	१·६२	१०·६१	७·२२	४·५८	...	...	...
१९१२ ई०	३७·६८	२३·९८	...	१९·४५	१२·९७	...	१२·१४	२१·०८	...	६·७०	२१·२९	...	७·०६	३·५४	...	१४·३१	१२·९३	..	२·५८	४·१९	...

(१) जमुनापार के इधर ऐसे नक़्शे नहीं बने, इस लिए पिछले ही बंदोबस्त (१८७६ ई०) तक के अंक दिए गए हैं। जहां तक अनुमान किया जाता है वहां भी परगना अरैल में मुसलमानों और कुछ क्षत्रियों की जमींदारी वैश्यों के हाथ में गई है। शेष परगनों (बारा और खैरागढ़) में कोई ऐसा विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

(२) सन् १८४० और १८७६ के जो अंक ऊपर वैश्यों के दिए गए हैं उन में अगरवाले, केसरवानी, भार्गव और खत्री सम्मिलित हैं, परंतु सन् १९१२ के अंक में कलवार भी मिला दिए गए हैं, जो पहले बंदोबस्त में 'अन्य' कर के दिखाए गए थे।

(३) दोआब में सरकारी ज़मींदारी वह है जो ग़दर में शहर के पास बाग़ियों की ज़ब्त हुई थी और गंगापार में होलागढ़ और खरगापुर के भूमिहारों के इलाक़े हैं, जिन की चर्चा इसी प्रकरण में आगे आएगी। इसी लिए सन् १८७६ के पश्चात् गंगापार में लगभग उतनी ही ब्राह्मणों की ज़मींदारी कम हो गई है।

(४) जमुना पार में सन् १८४० के पश्चात् मुसलमानों की ज़मींदारी अधिक बढ़ गई है। इस का कारण यह है कि परगना खैरागढ़ में अवध का मुज़फ़्फ़र हुसैन खां नामक एक कंबोह राजा साहेब माँडा के इलाके में प्रबंध करता था। पीछे उस ने किसी चालबाज़ी से कुल परगने में थोड़ा-थोड़ा हिस्सा माँडा राज्य का अपने नाम ख़रीद लिया, परंतु अब उस के वंशजों के पास बहुत ही थोड़ा हिस्सा रह गया है जो सिरसा के पास उपरौंडा में है।

इस ज़िले में सरकार की भी पर्याप्त ज़मींदारी है। कुछ तो शहर से मिले हुए गाँव हैं, जो ग़दर में ज़ब्त हुए थे। इन में से कुछ म्यूनीसिपैलिटी को दे दिए गए हैं। बाक़ी में सरकार का सीधा प्रबंध है। सब से बड़ा इलाक़ा तहसील सोराम में है। वहां भूमिहारों के दो बड़े तालुके होलागढ़ और खरगापुर के नाम से थे। इन रियासतों की अंतिम ज़मींदार विधवा स्त्रियां थीं, जिन के कोई संतान न थी। होलागढ़ की रूपकुँवरि का सन् १८७८ में और खरगापुर की गेंदकुँवरि का सन् १८८७ में देहांत हो गया। तब से उन के इलाक़ों पर सरकारी क़ब्ज़ा है। पीछे कुछ लोगों ने वारिस बन कर दावा किया और सन् १८९२ के निकट हाईकोर्ट तक मुक़दमा लड़ा। अंत में वे लोग हार गए और तब से इन तालुक़ों पर स्थायी रूप से सरकार का ज़मींदाराना अधिकार हो गया है।

इसी प्रकरण में हम यह भी बता देना चाहते हैं कि सन् १२८२ फ़सली के बंदोबस्त से जिसको ५० वर्ष से ऊपर हुए, ज़मींदारी का दाम बहुत बढ़ गया है। पहले ज़मींदारी का मूल्य मालगुज़ारी का ८ गुना होता था, पर अब ३२ गुना तक पहुँच गया है। मामूली दर चार आना सैकड़ा है, अर्थात् चार आना महीना अथवा ३) साल जिस का मुनाफ़ा हो वह जायदाद १००) की समझी जाती है। दोआबा और गंगापार की ज़मीन सब से अधिक मँहगी है। शहर में दूसरा भाव है। ५००) से लेकर ७००) बीघे तक खेतों की ज़मीन बिकती है। परंतु अब आर्थिक संकट के कारण लगान न वसूल होने से ज़मींदारी का दर गिर रहा है। इस ज़िले में ज़मींदारी का विभाग आना पाई पर है, अर्थात् एक गाँव या महाल (उपगाँव) १६ आने का माना जाता है। यदि कोई आधे का हिस्सेदार है तो वह ८ आने का मालिक कहा जाता है। पाइयों की कसर हर तहसील में एक तरह की नहीं है, किंतु उन की संज्ञा और परिमाण में कुछ-कुछ भेद है, जिस का ब्यौरा नीचे दिया जाता है।

नाम तहसील	सिराथू मंझनपुर	फूलपुर-सोराम हँडिया (परगना) बारा	करछना (परगना अरैल)-चायल	मेजा
परिमाण	१२ टूंड़ = १ जौ	१२ टूंड़ = १ जौ	२० तिल = १ रवा	२० फैन = १ रैन
	१२ जौ = १ किरांत	८ जौ = १ किरांत	१२ रवा = १ टूंड़	२० रैन = १ कंत
	२० किरांत = १ पाई	२० किरांत = १ पाई	१२ टूंड़ = १ जौ	३ कंत = १ दंत
			८ जौ = १ किरांत	८ दंत = १ कौड़ी
			२० किरांत = १ पाई	६$\frac{3}{4}$ कौड़ी = १ पाई

(२) मालगुज़ारी

अकबर के समय में सरकार एलाहाबाद की मालगुज़ारी ७,२०,५४६ रुपए थी। जब अँगरेज़ों का अधिकार हुआ तो यहाँ के ५ वर्ष का माध्यम १५,५८,०७२ रुपया था। उस समय मालगुज़ारी वसूल करने के लिए मुस्ताजरी अर्थात् ठेके का रिवाज था। ठेकेदारों को उन के लिए पट्टे दिए जाते थे।

अँगरेज़ी राज्य में यहां का सब से पहला बंदोबस्त सन् १८०२ में नीलाम द्वारा हुआ। फ़तेहपुर के नवाब बाक़रअली, आनापुर के बाबू देवकीनंदन सिंह और बनारस के महाराजा ने ठेका ले कर तहसीलदारों की ज़मानत की। उस समय तहसीलदार इन्हीं मुस्ताजरों की मरज़ी से कलेक्टर के हुक्म से मुक़र्रर होते थे। इस प्रबंध से तीन वर्ष के भीतर पौने अट्ठाइस लाख साल के हिसाब से मालगुज़ारी वसूल हुई, परंतु बहुत से पुराने लोगों की ज़मींदारी बाक़ी पड़ जाने के कारण नीलाम हो गई, जिस को इन्हीं मुस्ताजरों ने ख़रीद लिया। इस प्रकार इस ज़िले की बहुत सी ज़मींदारी बनारस के महाराजा और आनापुर वालों के हाथ में चली गई, जो अब तक उन के अधिकार में है।

दूसरा बंदोबस्त सन् १८०५ में प्रायः उसी पुरानी जमा पर हुआ। फिर भी ज़िले का ⅓ मुस्ताजरों के हाथ में रहा। इस बंदोबस्त से मुस्ताजरों का संबंध तहसीलदारों से टूट गया और ज़मींदार सीधे कलेक्टर को मालगुज़ारी देने लगे। अब की जमा २४ लाख से कुछ ऊपर थी, परंतु सब वसूल नहीं हुई।

तीसरा बंदोबस्त सन् १८०८ में हुआ। उस समय से अब तक के अंक यहां दिए गए हैं।

नाम तहसील	१८०८ ई०	१८१२ ई०	१८३३ ई०	१८६७-७८ ई०	१९०६ ई०	१९११-१२ ई०	१९१५-१६ (पहले ५ वर्ष के लिए)	१९२१ से १९-४३ तक के लिए
इलाहाबाद	१,९९,४९७	१,७०,८७३	२,१३,९९१	३,१७,९५३	पहले के अनुसार	पहले के अनुसार	३,५५,६७५	३,७३,६८०
सिराथू	१,४०,३९७	१,५५,३१८	१,३८,२९९	२,०४,११०			२,२२,७४१	२,३१,११९
[illegible]	१,७६,४९१	१,८१,७४४	१,९६,३१०	२,३७,७४०			२,९७,२१५	२,७२,७९८
सोराम	१,९५,२४६	२,१३,५९५	२,३३,०३७	३,०२,०९५			३,२७,४२७	३,३०,५००
फूलपुर	२,४२,७२४	२,५३,५२८	२,३१,९१३	३,००,९९५			३,२१,४५१	३,३३,४३८
हँडिया	१,०७,८९२	२,२४,९१२	२,९२,२०३	३,२२,९१३			३,५९,५९३	३,९१,९९३
करछना	२,००,५६६	२,०७,७९०	२,३८,४३८	२,६५,२८५	२,३९,१४५	२,५१,०३३	पहले के अनुसार	पहले के अनुसार
बारा	१,०७,८५१	१,०७,८५१	१,८९,९७०	१,३०,५५०	१,०२,३३९	१,०२,१०१		
मेजा	३,१०,९१४	३,३३,६०४	३,२७,७५१	२,९७,९१७	२,४३,९१७	२,४५,८६४		
योग	१६,५१,२५१	१८,४९,२१५	२०,९१,६१२	२३,७८,७३८	२२,७०,०८७	२२,८३,९८४	२४,५३,०७८	२४,९८,३१८

सन् १८१२ ई० के पश्चात् यहां के अधिकारियों ने इस ज़िले में भी स्थायी बंदोबस्त करने का प्रस्ताव किया था, परंतु ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभुओं (बोर्ड अव् डाइरेक्टर्स) ने उन का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। बहुत दिनों तक यह मामला खटाई में पड़ा रहा और बीच में थोड़े-थोड़े दिनों के लिए बंदोबस्त होते रहे। अंत में रेगुलेशन ६ सन् १८३३ ई० बना और उस के अनुसार पहले-पहल ३० वर्ष के लिए सन् १८३६ में बंदोबस्त हुआ, जो सन् १२४६ फ़सली के बंदोबस्त के नाम से प्रसिद्ध है।

पिछला बंदोबस्त जो केवल छः तहसीलों का हुआ है, उस की मालगुज़ारी का अंश, निकासी अर्थात् लगान पर ४८-४३ सैकड़ा है, परंतु पीछे फ़स्ल की ख़राबी और अन्न के सस्ता हो जाने से ज़िले भर की मालगुज़ारी में कुछ काट-छाँट हुआ करती है, जो अभी स्थायी नहीं है।

(२) किसान

इस ज़िले में नए क़ानून (एक्ट न० ३ सन् १६२६) के अनुसार अब पाँच तरह के काश्तकार हैं :—

(क) मौरूसी या दख़ीलकार
(ख) साक़ितुल-मिल्कियत
(ग) क़ानूनी (हीनहयाती)
(घ) शिकमी
(ङ) *माफ़ीदार (बिना लगानी)*

दोआबा और गंगापार के प्रत्येक परगना में किस जाति के किसान अधिक हैं, और फिर उन से कौन कौन क्रमशः कम हैं, इस का ब्यौरा क्रमबद्ध नीचे लिखा जाता है।

चायल—मुसलमान, कुर्मी, ब्राह्मण, अहीर, पासी, काछी, गड़रिया, क्षत्री, चमार।
कड़ा—ब्राह्मण, मुसलमान, कुर्मी, अहीर, काछी, पासी, क्षत्री, लोध, गड़रिया, चमार।
करारी—ब्राह्मण, कुर्मी, अहीर, मुसलमान, पासी, लोध, क्षत्री, अन्य।
अथरबन—ब्राह्मण, क्षत्री, कुर्मी, अहीर, लोध, पासी।
सोराम—कुर्मी, ब्राह्मण, अहीर, मुसलमान, क्षत्री, पासी, काछी, चमार।
नवाबगंज—ब्राह्मण, कुर्मी, मुसलमान, अहीर, क्षत्री, काछी, पासी।
मिर्ज़ापुर चौहारी—ब्राह्मण, मुसलमान, कुर्मी, अहीर, काछी, चमार।
सिकंदरा—कुर्मी, ब्राह्मण, अहीर, क्षत्री, मुसलमान, पासी, काछी, केवट।
झूँसी—कुर्मी, ब्राह्मण, अहीर, क्षत्री, पासी, मुसलमान, काछी।
मह—ब्राह्मण, कुर्मी, अहीर, क्षत्री, पासी, मुसलमान, काछी।
किवाई—ब्राह्मण, क्षत्री, अहीर, केवट, काछी, पासी, चमार, कुर्मी, मुसलमान।

जमुनापार का ऐसा ब्यौरा तैयार नहीं हुआ। परंतु वहां भी ब्राह्मण सब से अधिक और मुसलमान सब से कम होंगे।

इस ज़िले में ब्राह्मण, क्षत्री और कायस्थ अपने हाथ से हल नहीं जोतते और खेती के सब काम करते हैं। इन की हलवाही का काम अधिकांश चमार करते हैं।

(४) लगान और नज़राना

सब से सस्ती ज़मीन जमनापार के पहाड़ी स्थानों में है, जहां का लगान चार आना प्रति बीघा तक है और सब से अधिक मँहगी गंगापार में, जहां लगान १२)-१३) प्रति बीघा तक है। शहर के खेतों का भाव दूसरा है। यहां का कछियाना ५०-५५ रुपया प्रति बीघा तक उठता है। लगान के अतिरिक्त अब नज़राना का भी रवाज बढ़ता जाता है, जो गंगापार में अधिक है। इस का कोई दर नहीं है। जिस असामी से जितना अधिक रुपया मिल सका नज़राने के नाम से ज़मींदार ले लेते हैं, परंतु नए क़ानून[1] के बन जाने से अब ज़मींदारों को खेतों का बंदोबस्त करने का अवसर बहुत कम मिलने लगा है।

पुराने और नए बंदोबस्त के समय के लगान के दर की तुलनात्मक संख्या नीचे दी जाती है; साथ ही सन् १९२९ का भी लगान लिखा गया है।

---

[1] एक्ट नं० ३ सन् १९२६ ई०।

नाम परगना	औसत दर एक एकड़ का								सन् १९२१ में			विशेष सूचना
	सन् १८७७ ई० में				सन् १९१२ ई० में							
	रु०	आ०	पा०		रु०	आ०	पा०		रु०	आ०	पा०	
चायल ...	४	१२	०		४	१४	०		७	१३	०	सब से अधिक
कड़ा ...	४	६	०		५	११	०		६	८	०	
करारी ...	४	०	०		५	५	०		६	५	०	
अथरबन ..	३	८	०		४	५	०		४	१४	०	
सोराम ..	५	१४	०		५	११	०		८	३	०	
नवाबगंज ...	५	१०	०		५	१५	०		६	१४	०	
मिर्ज़ापुर चौहारी	७	०	०		८	०	०		८	११	०	
सिकंदरा ...	५	६	०		५	१४	०		६	८	०	
झूंसी ...	५	५	०		५	१५	०		७	५	०	
किवाई ...	५	१०	०	(क)	५ ७	११ ७	० ०		७	८	०	
मह ...	५	२	०	(ख)	४ ६	१० २	० ०		६	६	०	
अरैल ...	४	११	०	(ग)	४	११	०		६	१	०	
बारा ...	३	५	०	(ग)	३	३	०		३	१	०	
खैरागढ़ टापा (चौरासी)	४	५	०	(ग)	४	१५	०					
खैरागढ़ टापा (छापर)	१	१२	०		२	०	०	}	२	६	०	सब से कम
खैरागढ़ टापा (पाल)	२	१४	०		३	१	०					

(क)(ख) ऊपर ऊँची जाति और नीचे नीची जातिवालों के लगान का दर दिया गया है।

(ग) ये अंक सन् १९०३ ई० के हैं, क्योंकि जमनापार का बंदोबस्त उस के पश्चात् अभी नहीं हुआ।

सन् १३१९ फ़सली के बंदोबस्त के समय विविध जातियों के लगान का दर एक एकड़ पर

नाम जाति	गंगापार	दोआब		गंगापार और दोआब दोनों का मिल कर औसत दर	विशेष सूचना
		देहात	शहर		
	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया	
ब्राह्मण ...	५·४५	४·५०	९·९१	८·८८	
क्षत्री ...	५·१८	४·१६	६·६४	८·३४	
कायस्थ ...	४·७२	४·३६	१०·१७	७·८५	सब से कम
अहीर ..	६·५६	५·६०	१३·७३	१०·७४	
काछी ..	८·६५	६·६७	१८·९९	११·२०	
केवट ...	६·६४	४·३७	११·४१	१०·८६	
कुर्मी ...	६·८२	५·४५	११·७८	९·६७	
गड़रिया ...	७·१०	५·६१	१०·४८	११·४९	सब से अधिक
लोध ..	...	६·०२	...	६·०२	
चमार ...	६·७३	५·९४	१४·८९	११·१९	
पासी ...	६·२०	५·६१	१२·८७	१०·२३	
अन्य ...	६·८३	५·७३	१३·४१	१०·८९	
मुसलमान ...	५·६४	५·२४	१२·०१	९·१२	

परगना केवाई और मह में सन् १८७७ ई० से ब्राह्मण, क्षत्रिय और कायस्थों के लगान में १५) से २५) सैकड़ा तक कमी कर दी गई है, इस लिए कि ये लोग खेती का कुल काम अपने हाथ से नहीं करते और इन की पैदावार का कुछ भाग मज़दूरी में निकल जाता है।

खेद है कि जमुनापार के ऐसे अंक उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए ऊपर नहीं दिए

गए। अलबत्ता सन् १८७७ ई० के बंदोबस्त की रिपोर्ट में जो ब्यौरा हम को मिला है, उस को पाठकों की जानकारी के लिए हम नीचे देते हैं—

नाम जाति	लगान की दर फ़ी एकड़								
	दोआब में			गंगापार में			जमुनापार में		
	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
ब्राह्मण	३	१४	०	४	१२	०	२	७	०
क्षत्री	३	११	०	४	६	०	१	१३	०
कुर्मी	५	०	०	६	८	०	२	१४	०
कायस्थ	३	६	०	४	०	०	२	१०	०
मुसलमान	४	४	०	४	१४	०	३	५	०
अन्य	४	६	०	५	११	०	३	०	०

इधर सन् १९३० से एकाएक अन्न सस्ता हो जाने के कारण लगान घटने के लिए किसानों की ओर से बहुत कुछ आंदोलन हो रहा है, जिस के कारण सरकार हर फ़स्ल पर कुछ छोड़ दिया करती है, परंतु अभी इस का स्थायी दर निश्चित नहीं हुआ है।

इस ज़िले में लगान अधिकांश नक़दी है। कहीं-कहीं अर्थात् परगना बारा, सिकंदरा और मह इत्यादि में बटाई का भी कुछ रवाज है।

(५) खेती

सन् १९१८ ई० से १० वर्ष का एक ब्यौरा अलग दिया जाता है, जिस से विदित होगा कि इस ज़िले में हर साल कितनी ज़मीन बोई गई थी[१]। इस के अतिरिक्त एक और नक़्शा जिसवार का दिया जाता है, जिस में यह दिखाया गया है कि कौन-कौन सी जिंस कितनी बोई जाती है और उस का मिलान सन् १२८२ फ़० के बंदोबस्त के समय से किया गया है। इन के अंकों के देखने से यह भी पता चलता है कि सन् १३२६ फ़० में सब से कम और सन् १३२९ फ़० में सब से अधिक भूमि बोई गई थी।

जिसवार में यह बात विचारणीय है कि इस ज़िले में नील और पोस्ते की खेती अब बिल्कुल बंद हो गई है। कपास भी पहले से बहुत कम बोई जाती है। ख़रीफ़ का रक़्बा पहले से बढ़ गया है। रबी की फ़स्ल में चना और ख़रीफ़ में धान अधिक बोया जाता है। पर चावल सब से अच्छा केवल परगना बारा के कुछ गांवों में होता है। सन और गन्ने की पैदावार गंगापार में अधिक है। यदि परगनावार देखा जाय तो सन सोराम और गन्ना परगना मह में अधिक होता है। गेहूँ चायल में सब जगह से अधिक बोया जाता है। अरहर अलग बहुत कम बोई जाती है। इस को अधिकांश जुआर, बाजरा, कपास और कहीं-कहीं ऊख के साथ बोते हैं। रेंडी सोराम, मिर्ज़ापुर चौहारी और सिकंदरा को छोड़ कर थोड़ी बहुत हर

१ इस का रेखा-चित्र वर्षा के चित्र के साथ पीछे देखो।

परगने में बोई जाती है, जिन में सब से अधिक चायल में जमुना किनारे होती है। कपास गंगापार छोड़ कर थोड़ी बहुत हर परगने में बोई जाती है। कड़ा, करारी और खैरागढ़ में इस की अधिक खेती होती है। कुछ न कुछ किराना (मेथी, मंगरैल, धनिया, सौंफ़) भी हर जगह बोया जाता है, जिन में से कड़ा और झूँसी में और परगनों से लोग कुछ अधिक बोते हैं।

मटियार ज़मीन में एक साल जुआर, बाजरा और दूसरे साल गेहूँ, जौ और उस के साथ अरहर और तेलहन मिला कर बोते हैं। धान कुछ कड़ी मिट्टी में, जिस को चाचर कहते हैं, बोया जाता है। दूसरे साल उस में चना, मटर, अलसी और कहीं उसी साल कुँआरी धान काटने के बाद, ये चीज़ें बो देते हैं। गंगा का कछार जमुना के कछार से अधिक उपजाऊ है।

एक हल और दो बैल से प्रायः ७—८ बीघा खेती होती है। किस के पास कितना खेत है, इस के बतलाने का गांवों में यही रवाज है, कि अमुक किसान के इतने हल चलते हैं या इतने हल की खेती होती है। कछार में १ हल से १०—१२ बीघे तक की खेती होती है।

इस ज़िले में सब से अधिक मौरूसी जोत किस परगने में है, और फिर क्रमशः किन किन परगनों में कम होती गई है इस का ब्यौरा नीचे दिया जाता है:—

खैरागढ़
चायल
कड़ा
मह
सिकंदरा
करारी
किवाई
अरैल
सोराम
अथरबन
झूँसी
नवाबगंज
बारा
मिर्ज़ापुर चौहारी

प्रयाग के ज़िले में १० वर्ष के खेतों के बोआई की दशा

वर्ष	क्षेत्रफल एकड़ में		अंतर (कमी) सैकड़ा पीछे
	कितना बोया गया	कितना बोया जाना चाहिए था	
१९१८—१९ (१३२६ फ़०)	९,७७,४२४	१०,४७,०००	—६·६
१९१९—२० (१३२७ फ़०)	१०,३४,५८४	,,	—१·२
१९२०—२१ (१३२८ फ़०)	१०,०५,७२२	,,	—३·९
१९२१—२२ (१३२९ फ़०	१०,३९,५७१	,,	—०·७
१९२२—२३ (१३३० फ़०)	१०,३२,१४५	,,	—१·४
१९२३—२४ (१३३१ फ़०)	१०,३४,१९२	,,	—१·२
१९२४—२५ (१३३२ फ़०	१०,२५,६५७	,,	—२·०
१९२५—२६ (१३३३ फ़०)	१०,३२,१४७	,,	—१·४
१९२६—२७ (१३३४ फ़०)	१०,३७,५९८	,,	—०·९
१९२७—२८ (१३३५ फ़०)	१०,३८,१५७	,,	—०·८

इस साल के जिंसवार का ब्यौरा अगले पृष्ठ पर देखो फ़स्लवार विवरण सैकड़ा पीछे इस प्रकार है :—

ख़रीफ़ (अगहनी)	रबी (चैती)
४८·४२%	६१·५६%
ज़ायद	दो फ़सला
·६७%	२०·६४%

फ़स्ल "ज़ायद" से मतलब साँवा, मँड़ुआ और ख़रबूज़ा, तरबूज़, इत्यादि से है।

"दो फ़स्ला" से तात्पर्य उन खेतों से है, जिन में एक फ़स्ल काट कर उसी साल दूसरी जिंस बो देते हैं।

प्रयाग के ज़िले के सन् १८७७ और १९२८ ई० का जिंसवार

नाम ज़िंस जो बोई गई थी	१०० एकड़ पीछे		विशेष सूचना
	१८७७ में	१९२८ में	
धान — कुँवारी	१५·०	१८·४२	चना के पश्चात् यह ज़िंस सब से अधिक बोई गई।
धान — अगहनी		५·३०	
गेहूं ...	७·७	६·८८	
जौ ...	१७·६	१७·१८	चना और धान को छोड़कर सब से अधिक बोया गया।
जुआर ...	४ ८	१०·४७	
बाजरा ...	७·४	६·०३	
मंडुआ ...	...	·५८	
कोदौं ...	...	·६५	
साँवा ...	..	·४६	
मका ...	०·७	·०७	
चना ...	१०·६	२४·५१	सब से अधिक बोया गया।
आलू ...	०·४	·४७	
अन्य फल तरकारियाँ		१·३२	
अन्य खाद्य पदार्थ...	...	६३·८५	
अलसी ...	२·०	२·३८	
तिल ...		·११	
सरसों-राई ...		·१७	
अन्य तेलहन बीज...		·१६	

नाम जिंस जो बोई गई थी	१०० एकड़ पीछे		विशेष सूचना
	१८७७ में	१९२८ में	
गन्ना ...	१'६	१'४३	
कपास ...	४'०	'४६	
सनई (सन) ...	'१	१'३४	
नील ...	०'६	केवल ४ एकड़	
पोस्ता (अफ़ीम) ...	०'३	...	
तमाकू ...	०'१	'११	
चारा (चरी) ...	...	१'२१	
अन्य फ़स्लें, जो खाने के काम में नहीं आतीं		'१६	
दाल (अरहर-उर्द-मूंग)	१०'७		अब जो सरकारी नक़्शे बनते हैं उन में ऐसा ब्यौरा नहीं दिया जाता। इन में से कुछ जिंसें अन्य खाद्य पदार्थों में मिली हुई हैं।
मकरा ...	२'४		
बेर्रा (चना—मटर—जौ)	६'१		
मटर ...	३'६		
मसूर ...	०'३		

(६) खेती के साधन

बैलों, भैंसे और हलों की संख्या पीछे दी गई है। प्रसंगवश यहां फिर लिखा जाता है। इस ज़िले में सन् १९३० की गणना के अनुसार ३,४३,६०३ बैल, २२,६९७ भैंसे और १,६७,४६८ हल थे। भैंसों की चर्चा यहां इस लिए की गई है कि इस ज़िले के पश्चिमीय भाग में भैंसे भी हल में लगाए जाते हैं।

इस सामग्री के अतिरिक्त सन् १९३५ ई० के अंकों के अनुसार २७,८५२ पक्के, और १४,३७६ कच्चे[1] कुँए और ४ जलाशय सिंचाई के लिए थे।

(७) पैदावार

पैदावार की समस्या बड़ी जटिल है। जितने आदमियों से पूछा जाय, उतनी बातें बतलाते हैं, जिन का एक दूसरे से मिलान नहीं होता।

मिस्टर पोर्टर ने १२८२ फ़सली (सन् १८७७ ईस्वी) के बंदोबस्त की रिपोर्ट में इस ज़िले की पैदावार का जो हिसाब दिया है, वह इस प्रकार है।

नाम जिंस	जोताई	बोने का समय	बीज फ़ी बीघा	सिंचाई	निराई	कटाई का समय	पैदावार फ़ी बीघा
जुआर ...	२-३ बार	आषाढ़	३ सेर से ४ सेर तक	...	१	कातिक-अगहन	१० मन
बाजरा ...	३-४ ,,	सावन	२ सेर	..	१	कुँआर-कातिक	६ ,,
धान (अगहनी)	५-६ ,,	आषाढ़	३४ सेर बेहन १ बिस्वा में २० सेर	३-४ बार	...	अगहन	६ ,,
(कुँआरी)	२-३ ,,	,,	१६	..	...	कुँआर	४½ ,,
गेहूँ ...	८-१० ,,	कातिक	३४	३	...	चैत	६ ,,
जौ ...	६-८ ,,	,,	१ मन ४ सेर	२	..	,,	६½ ,,
चना ...	६-८ ,,	कुँआर	२२ सेर	...	...	,,	६ ,,

[1] सन् १८७७ ई० में पक्का कुँआ ४००), केवल बँधा हुआ १००) और कच्चा १५) में बनता था।

सन् १६२३ में यहां के वणिज-व्यापार के संबंध में सरकार ने जो जाँच[१] कराई थी, उस में पैदावार का हिसाब एक बीघे का निम्नलिखित दिया गया है :—

गेहूँ	४½ मन	उर्द-मूँग	३ मन	मक्का	४½ मन	कपास	२ मन
जौ	६ ,,	जुआर	४½ ,,	अलसी	१½ ,,	सन	३ ,,
चना	५ ,,	बाजरा	४½ ,,	तिल	१ ,,	तमाकू	६ ,,
मटर	४ ,,	बीझड़	४ ,,	सरसों	१½ ,,	आलू	६ ,,
अरहर	५ ,,	गोजई	६ ,,				

हम ने स्वयं ज़िले भर की पैदावार की जो जाँच की है, उस के हिसाब से औसत इस प्रकार आता है:—

नाम जिंस	बीज प्रति बीघा	पैदावार प्रति बीघा
गेहूँ	१ मन	१० मन
जौ	१ ,,	१५ ,,
चना	२० सेर	१० ,,
मटर	१ मन	१५ ,,
जुआर	१ सेर	१२ ,,
बाजरा	१ ,,	१० ,,
धान	२० ,,	१२ ,,
ऊख	...	२५ ,, (गुड़)

(८) हरी-बेगारी तथा ज़मींदार और रिआया का परस्पर व्यवहार इत्यादि।

दुख के साथ लिखना पड़ता है कि गाँवों में ज़मींदारों और किसानों के बीच प्रायः वैमनस्य रहा करता है। इस का मुख्य कारण स्वार्थ है। प्रबल ज़मींदार अपनी ग़रीब प्रजा से बेगार में खेत जोताना तथा अन्य प्रकार के काम लेना अपना स्वत्व और अधिकार समझते हैं। इस ज़िले में चमार सब से ग़रीब और कमज़ोर जाति है। इस लिए बहुधा वही बेगार में पकड़े जाते हैं।

किसी प्रजा पर कोई संकट आ पड़े तो कोई ज़मींदार उस की सहायता करना अपना नैतिक कर्तव्य नहीं समझता।

यह सच है कुछ खेती के नए क़ानून ने भी किसानों पर ज़मींदारों का दबाव कम कर दिया है, परंतु अब भी कहीं कम कहीं अधिक बहुत कुछ बाक़ी है।

---

[१] 'इंडस्ट्रियल सर्वे रिपोर्ट अव् इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट'।

यह तो हुआ एक ओर का चित्र। अब तनिक इस के दूसरी ओर भी दृष्टि डालिए। जहां जमीदार निर्बल हैं, वहां के किसान भी उन को खूब तंग करते हैं। रुपया पास होते हुए भी समय पर लगान नहीं देते; और जब उन पर नालिशें होती हैं, तो वकीलों की सहायता से वे तरह-तरह के मीन-मेख निकालते हैं। अदालत से बेदखली होने पर भी खेत नहीं छोड़ते। ब्राह्मण, क्षत्रिय और मुसलमान काश्तकारों से कहीं-कहीं बड़े ज़मींदार भी लगान वसूल नहीं कर पाते।

नीची जातिवालों की यह दशा है, कि यदि उस दिन उन के पास खाने को है, तो ड्योढ़ी मजदूरी देने पर भी वे बिना दबाव के आप का कोई काम न करेंगे। सारांश यह कि मुरौवत, शील उन में और सहानुभूति नाम मात्र भी नहीं है।

प्रत्येक गाँव में दो दल अवश्य होते हैं। कहीं-कहीं इस से अधिक भी देखे गए हैं एक दूसरे के छिद्रान्वेषण तथा हानि पहुँचाने में सदैव तत्पर रहते हैं।

इन सब कारणों से गाँव अशांति, कलह, द्वेष और दलबंदी के केंद्र बने हुए हैं। एक-एक बिस्वा जमीन के लिए आपस में सिर-फुटौवल और मुक़दमे-बाज़ी हुआ करती है; और उन में जो लोग अधिक चालाक और चलते-पुर्ज़े होते हैं, वे किसी ओर पैरोकार बन कर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। हाँ, गांवों में वे लोग अवश्य सीधे होते हैं, जिन के पास खाने को नहीं है।

इस कटु वर्णन से हमारा तात्पर्य यह कदापि न समझा जाय कि गाँव के ज़मींदार और किसान सभी ऐसे होते हैं। कहीं-कहीं 'असुरों में देवता' और 'काँटों में फूल' भी हुआ करते हैं। यह पुरानी कहावत है। परंतु अधिकांश गाँवों की यही दशा है, जो हम ने स्वयं घूम-फिर कर अपनी आँखों देखी है; और जिस का छिपाना हम एक इतिहासकार के नाते से अपने कर्तव्य के विरुद्ध समझते हैं, यद्यपि इस के लिए हमें खेद अवश्य है।

पाँचवां अध्याय

बणिज-व्यापार

(१) व्यापार

प्रयाग में यदि कोई बड़ी कमी है तो यह है कि पड़ोस के कानपूर और काशी के सामने व्यापारिक दृष्टि से इस का कोई महत्त्व नहीं है। फिर भी इस संबंध में प्रयाग की जो कुछ अवस्था है, वह पाठकों की जानकारी के लिए नीचे लिखी जाती है।[1]

पहले यहां से अन्न, तेलहन और कपास नावों-द्वारा जल-मार्ग से देसावर को जाया करता था। सन् १८८१ के पहले इस प्रकार की लगभग ३००० नावें चला करती थीं, पर अब उन की संख्या घट कर ३०० के लगभग रह गई है।

सोना-चाँदी—१ लाख रुपए के लगभग हर महीने में कानपुर और बंबई से आ कर यहां बिकता है।

पत्थर—यों तो जमुनापार में यहां पत्थर की लगभग १० खानें हैं। परंतु इमारती पत्थरों के लिए केवल दो खानें प्रसिद्ध हैं। एक तो पुरानी खान परगना बारा में प्रतापपुर की है, और दूसरी शंकरगढ़ की, जहां का पत्थर 'शिवराजपुरी' कहलाता है। अन्य खानों के पत्थर अधिकतर गिट्टी के काम में आते हैं। यहां की खानों के अतिरिक्त मानिकपुर इत्यादि से भी पत्थर आकर यहां बिकता है।

घी—लगभग ५ हज़ार मन घी प्रति वर्ष सतना और इटावा आदि से आकर यहां बिकता है।

अन्न—प्रयाग नगर में, जसरा और राजापुर के बाज़ारों से चना, जारी, कौंटी और अभुआ से चावल, खागा की ओर से गेहूं, गंगापार से गुड़, मनौरी, भरवारी, करमा, शिव-

---

[1] यह अध्याय हम ने अधिकांश सन् १९२३ की 'इंडस्ट्रियल सर्वे' नामक सरकारी रिपोर्ट के आधार पर लिखा है। अलबत्ता जो बातें उस में छूट गई थीं, उन को हम ने अपनी निजी जाँच से जोड़ दिया है।

गढ़, इस्माइलगंज और फूलपुर से विविध प्रकार के अन्न आते हैं। शहर में ख़लीफ़ा की मंडी और मुट्ठीगंज की मंडी, और देहात में सिरसा और दारानगर अन्न की बहुत बड़ी मंडियां हैं, जहां लाखों रुपए का क्रय-विक्रय होता रहता है। यहां से चना, अरहर, मटर, गेहूँ और चावल देसावर को जाता है। जिस का ब्यौरा यह है:—

शहर से बंबई, पूना, नासिक, मद्रास, रंगून, कराँची, कलकत्ता और पंजाब को, सिरसा से हाथरस, अहमदाबाद, बीकानेर, काठियावार, गुजरात, बंबई और कलकत्ता को तथा दारानगर से ख़ुर्जा, कानपुर, अमृतसर, बंबई और कलकत्ता को सीधा चालान जाता है।

चीनी—लगभग दो हज़ार बोरियां प्रति मास बाहर से आती हैं, जिन में अधिकांश प्रतापपुर, भटनी और कुछ बक्सर की होती हैं। इन के अतिरिक्त यहां झूँसी और नैनी की भी चीनी बिकती है।

कपास—सिरसा और बलरामपुर के बाज़ार में दक्षिण की ओर से अधिक आती है। शहर में अधिकांश आगरे की ओर से आती है।

चमड़ा—प्रयाग में साल में लगभग डेढ़ लाख पशु रीवाँ, बाँदा, सोराम, फूलपूर और हँडिया की ओर से बध होने के लिए आते हैं। इन में लगभग डेढ़ हज़ार कलकत्ता और अन्य स्थानों को भेजे जाते हैं। हर महीने में लगभग ५५ हज़ार भेड़-बकरियों की और १२ हज़ार सींगदार बड़े पशुओं की खालें निकलती हैं, जो अधिकांश कानपूर भेजी जाती हैं। कच्चे चमड़े का व्यवसाय देहात में अधिकांश मऊआयमा, भरवारी, लालगंज-उजिहनी, मुंशीगंज (हँडिया) और करमा के बाज़ारों में होता है।

सिगरेट—यहां हर प्रकार के सिगरेट महीने में लगभग २१ हज़ार रुपए के आ कर खपते थे, जो अधिकांश कानपुर के इंपीरियल टुबैको कंपनी से आते थे। परंतु सन् १९३० के असहयोग आंदोलन से अब इस में बहुत कमी हो गई है, और बीड़ी का व्यापार बढ़ गया है। यहां इस का सब से बड़ा कारोबार लाल महम्मद का है, जिस के लिए तमाकू कलकत्ता, बंबई और गुजरात, पत्ते जबलपुर और बाँदा की ओर से आते हैं। बीड़ियां बन कर बनारस, फ़ैज़ाबाद और अल्मोड़ा इत्यादि स्थानों को जाती हैं।[1]

सन—इस ज़िले में बहुत पैदा होता है। जंदाई, शिवगढ़, इस्माइलगंज और नवाबगंज इस के विशेष केंद्र हैं, जहां साल में लगभग एक लाख रुपए के इस का व्यापार होता है। यहां से इस का अधिकांश बनारस और कलकत्ते भेजा जाता है। सन १९२९-३० में यहां नगर में जितना माल बाहर से आया उस का ब्यौरा नीचे दिया जाता है।

---

[1] अभी थोड़े दिन हुए यहां सिगरेट बनाने का एक कारख़ाना 'दि यूनाइटेड टुबैको कंपनी लिमिटेड' के नाम से खुला है।

वस्तु	परिमाण	
गेहूं और आटा	५४२,६२४	मन
चावल	२७६,१७१	,,
जौ और चना	२५३,५६८	,,
अन्य खाद्य अनाज	५०२,५२६	,,
चीनी	१२६,३०१	,,
गुड़	५१,०५६	,,
घी	२६,३६०	,,
मनुष्य और पशुओं के खाने-पीने की अन्य वस्तुएं	१,३१४,७४५ ,, तथा २७,८७,०४२) का	
पशु बध होने के लिए	१४०,६६६	मूड़
तेल	४१,१८२	मन
तेलहन-बीज	२६,१८४	,,

वस्तु	परिमाण
ईंधन तथा रोशनी और धोने की वस्तुएं	४१९,६३० मन तथा ५१३,३८२) का
इमारत का सामान	३३२,९६३ मन तथा ८३५,८९१) का
बनी हुई औषधियां और मसाला	६०८,३८१) का
गोंद	११७,६८) ,,
अन्य वस्तुएं	२५५,८८५) ,,
तमाकू	१२,८२८ मन तथा ४३३,०३४)
देशी कपड़े और उसकी बनी हुई चीज़ें	७९६,९४३)
अन्य कपड़े ,, ,, ,, ,,	२,८३७,५२०)
चमड़ा और चमड़े की चीज़ें	३५७,१५२)
अन्य वस्तुएं	५९७७०४)
धात और उस की चीज़ें	१,००३,५२५)

(२) कला-कौशल

(क) घरैलू

जड़ाऊ और मीनाकारी—कुछ दिन पहले दारानगर में ५० घर इस काम के करनेवाले थे, जिन को बनारस, लखनऊ और दिल्ली तक से काम मिलता था, परंतु अब यह कारीगरी केवल शहर में रह गई है।

ज़रदोज़ी—इस के कारीगर यहां बहुत कम है। जो कुछ हैं वे सलमा, कलाबत्तून और कामदानी का काम आर्डर देने पर करते हैं।

गोटा—कड़े में गोटा, पैमक और लचका इत्यादि पहले बहुत बनते थे। वहां लगभग १०० घर ऐसे कारीगरों के थे। परंतु अब बहुत कम हो गए हैं और जो हैं वे कच्चा गोटा बनाते हैं।

नमक—अधिकांश नमक शहज़ादपुर में बनता है। लगभग ११ हज़ार मन नमक तैयार हो कर बाहर जाता है। इस के अतिरिक्त थोड़ा बहुत तहसील मंझनपुर, हँडिया और फूलपुर के कुछ गाँवों में बनता है।

बर्तन—अधिकांश पीतल के बर्तन। शम्साबाद, सरायआकिल और कुछ इलाहाबाद में भी बनते हैं। सरायआकिल के कारीगर अब कम हो रहे हैं। वहां से कुछ इलाहाबाद चले आए और कुछ शम्साबाद और अन्य स्थानों को चले गए हैं।

अधिकांश बर्तन मिर्ज़ापुर को भेजे जाते हैं। सुलतानपुर, फ़तेहपुर, बाँदा, करुई और प्रतापगढ़ से व्यापारी शम्साबाद आकर बर्तन ख़रीद ले जाते हैं। मिर्ज़ापुर के व्यापारी पेशगी रुपया देकर यहां पीतल के बर्तन बनवाते हैं। इस ज़िले में साल में लगभग चार लाख रुपए के बर्तन बनते हैं और शहर में कोई ७ लाख रुपए का माल बाहर से आता है।

लोहे के मज़बूत ताले, तिपाई, मोंढ़े और किश्तियां फूलपुर में बनती हैं। तिपाई किश्तियों में रंग भी दिया जाता है, जिस से वे बड़े सुंदर मालूम होते हैं।

जूते—लगभग ३०० जोड़े प्रति दिन बनते हैं। सिविल लाइंस में चीनियों की दूकानें बढ़िया जूतों के लिए सब से प्रसिद्ध हैं। म्यूनिसिपैलिटी का लेदर-स्कूल भी जूते तथा चमड़े का अन्य सामान बनाता है।

बाँस और बेंत के मोंढ़े, कोंच, मेज़ और बक्स बनाने का काम लगभग १०० कारीगर यहां शहर में करते हैं। छोटे बाँस जबलपुर, बिलासपुर, रियासत रीवां और कटनी की ओर से, बड़े बाँस इसी ज़िले में गंगापार से आते हैं, और बेंत लखनऊ से आता है।

लाख की चूड़ियां भी यहां बहुत बनती हैं। लाख मिर्ज़ापुर से और पन्नी बंबई से आती है। रंग चपरा से बना लिया जाता है। यहां से चूड़ियां दारानगर, कड़ा, शहज़ादपुर, मानिकपुर, मैहर, सतना, मिर्ज़ापुर, बनारस, फ़तेहपुर, लखनऊ, बदायूँ और बरैली तक जाती हैं।

पत्थर की प्यालियां इत्यादि यहां बाँदा, हमीरपुर, बुंदेलखंड और चरखारी की रियासत से बन कर आती हैं; और साल में लगभग ४ हज़ार रुपए की बिकती हैं। सिल-बट्टा और चक्की इत्यादि शिवराजपुरी पत्थर से बनाया जाता है।

कंघी बनाने का काम यहां सन् १९२३ में लगभग १५० आदमी करते थे। एक-एक घर के लोग २५० कंघियां रोज़ बना लेते हैं। लकड़ी मैहर, सतना, जबलपुर, रीवां, कटनी और रियासत पन्ना के जंगलों से आती है। यहां से लगभग ३० हज़ार रुपए का माल हर साल अलीगढ़, लखनऊ, मेरठ, अजमेर, बुलंदशहर, कानपुर, बनारस, दिल्ली, हाथरस, भुसावल, आगरा, मथुरा, राजपूताना और मद्रास को भेजा जाता है।

लकड़ी के खिलौने, रंगीन खूँटियां और पलंग के पाये भी यहां काफ़ी बनते हैं। यद्यपि खिलौने बनारस जैसे सुंदर नहीं होते, फिर भी मामूली तौर से अच्छे होते हैं।

मिट्टी के खिलौने कीटगंज में पहले से अब बहुत अच्छे बनने लगे हैं। यदि इस कला में लोग उन्नति करते रहे तो कुछ दिनों में लखनऊ से मुक़ाबिला करना मुश्किल न होगा। साल दो साल से यहां के कारीगर कुछ नेताओं की मूर्तियां भी बनाने लगे हैं।

बीड़ी भी कुछ दिनों से यहां बहुत बनती है और बाहर भी भेजी जाती है। प्रतिदिन १०-१५ मन तमाकू इस काम में खर्च होता है। बीड़ियां यहां से पटना, फ़ैज़ाबाद और अल्मोड़ा इत्यादि भेजी जाती हैं।

बुनाई—मऊआयमा में कई तरह के सूती कपड़े बुने जाते हैं, जिन में खंडाला[1] सब से अधिक प्रसिद्ध है। यहां से लगभग २-३ लाख रुपए का कपड़ा हर साल बाहर जाता है। इस के अतिरिक्त कड़ा, फूलपुर, हँडिया और सिवइत की ओर स्वराज्य-आंदोलन के समय से गाढ़ा अधिक बुना जाने लगा है। हँडिया में एक प्रकार का डोरिया-गाढ़ा बनता है, जिस को लोग कोट-कमीज़ के लिए बहुत पसंद करते हैं। म्यूनिसिपैलिटी के स्कूलों में कुछ निवाड़ बुनना भी सिखाया जाता है।

काग़ज़—किसी समय कड़े में काग़ज़ बहुत बनता था। ५० वर्ष पहले वहां ५० घर काग़ज़ियों के थे, परंतु मशीनों के कारण अब यह कला बंद-सी हो गई है। यहां का काग़ज़ सफ़ेद, मोटा और चिकना बही के काग़ज़ के समान होता था।

बाध (बान) मूँज का अभुआ, भरवारी, अफ़ज़लपुर, सातों और लालगंज की ओर बहुत बनता है और कानपुर तक जाता है। इन स्थानों में कुछ लोग बहुत ही बारीक बाध बनाते हैं।

ताड़ के पत्ते के छोटे-बड़े पंखे और चटाइयां इत्यादि भी यहां ख़ूब बनती हैं।

कपड़े की रँगाई और छपाई का काम सब से अधिक भारतगंज, फूलपुर और शहज़ादपुर में होता है। पहले शहज़ादपुर में छीपों के पचासों घर थे, परंतु यहां इस रोज़गार के मंदा हो जाने के कारण बहुत से कारीगर बंबई चले गए हैं।

फूलपुर और शहज़ादपुर में रज़ाई, तोशक और जाज़िम इत्यादि मोटे कपड़े पर छापे जाते हैं। रंग का मसाला कानपुर, कटनी और बंबई से आता है, और ठप्पे मिर्ज़ापुर और लखनऊ इत्यादि से आते हैं।

भारतगंज में अधिकांश दोगे छपते हैं। हर साल लगभग एक लाख रुपए का माल तैयार हो कर मिर्ज़ापुर, पुरनिया और कृष्णगंज की ओर जाता है। जनवरी से अक्तूबर तक यहां यह काम ख़ूब होता है। फिर तीन महीने लोग उस को बाहर ले जा कर बेचते हैं। मिर्ज़ापुर के दूकानदार साल में लगभग २० हज़ार रुपए का कपड़ा दे कर यहां छपवाते हैं।

ख़ानेजहाँपुर (तहसील सोराम) में चुँदरी रँगी जाती है, जो अधिकांश विंध्याचल को जाती है। मिर्ज़ापुर के व्यापारी कपड़े देकर इसे छपवाते हैं। इस के अतिरिक्त बक्सर, फ़तेहपुर और भुसावल तक माल तैयार हो कर जाता है।

इधर शहर में कई छोटे कारख़ाने मोज़ा बनाने के खुले हैं जिन का अधिकांश माल यहीं खप जाता है।

ऊनी क़ालीन कुछ भारतगंज और उस से अधिक इमामगंज (तहसील हँडिया) में बनते हैं। अधिकांश विलायती व्यापारी आर्डर दे कर बनवाते हैं।

आज-कल सूती और ऊनी कपड़े की धुलाई और रंगाई की दूकानें कई जगह शहर में खुल गई हैं।

---

[1] एक प्रकार की चौड़े किनारे की साड़ी है, जो मद्रास की ओर अधिक पहनी जाती है।

(ख) कारख़ाने

स्टील ट्रंक अर्थात् लोहे की पतली चादरों के रंगीन संदूक़ यहां बहुत बनते हैं; और पटना, कलकत्ता, लखनऊ, कानपुर इत्यादि को जाते हैं। अनुमान किया जाता है कि दो-ढाई सौ बक्स यहां रोज़ बनते हैं। सब से बड़ा कारख़ाना मेसर्स आर० सी० ब्रदर्स और विक्रमसिंह का समझा जाता है। अब और नगरों में भी इस के कारख़ाने खुल रहे हैं, इस लिए इस काम में यहां कुछ कमी हो रही है। इस के लिए टीन कलकत्ता और रंग बंबई से आता है।

वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र का यहां एक बड़ा कराख़ाना है, जिस का नाम 'साइंटिफ़िक-इंस्ट्रूमेंट-कंपनी लिमिटेड है। साल में लगभग डेढ़-दो लाख रुपए का माल तैयार होकर विविध कॉलिजों में भेजा जाता है।

तेल का सब से बड़ा कारख़ाना यहां ईस्ट इंडियन रेलवे का मनौरी में था, जो १९३० में टूट गया। यहां रेंड़ी का तेल दस्ती कलों द्वारा निकाला जाता था। इस के अतिरिक्त कुछ निज के भी कारख़ाने मनौरी, सिरसा, सिवइत और लालगंज इत्यादि में हैं। इन में रेंड़ी के अतिरिक्त महुआ और नीम का भी तेल निकाला जाता है, जो अमृतसर, कलकत्ता, जबलपुर और कटनी इत्यादि को जाता है।

छापाख़ानों के लिए प्रयाग प्रसिद्ध ही है, जिन की संख्या इस समय लगभग २०० के है। इन में हज़ारों आदमी काम करते हैं। सब से बड़ा गवर्नमेन्ट प्रेस है। उस के बाद लीडर और इंडिइन प्रेस हैं। इन में इंडियन प्रेस, लॉ जर्नल प्रेस और चाँद प्रेस उत्तम छपाई और चित्रों के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। यहां के छापाख़ानों में सब से पुराना मिशन प्रेस है जो ग़दर से पहले का है।

टाइप की ढलाई के यहां १०-१२ छोटे-बड़े कारख़ाने हैं, जिनका कुछ माल यहां के प्रेसों में खपता है और बाक़ी बाहर जाता है।

लकड़ी का सामान (मेज़, कुर्सी और अल्मारियां इत्यादि) यहां लगभग ६–७ लाख रुपए का साल में बनता है और लखनऊ कानपुर तथा बनारस इत्यादि जाता है। बनी-बनाई कुर्सियां बरेली से यहां आती हैं। यहां जो माल बनता है उस के लिए साल की लकड़ी बर्मा और शीशम नेपाल की तराई से आता है। मेसर्स भूपतलाल और एन० बी० नेफ़्यू ऐंड को० के यहां प्रसिद्ध कारख़ाने हैं। कारपेंटरी स्कूल तथा नैनी जेल में भी माल तैयार होता है।

लकड़ी के फ़ीतेदार स्लीपर भी कुछ समय से यहां बहुत बनने लगे हैं; और यहां से सिंध, पंजाब, फ़ैज़ाबाद, गया, अलीगढ़, बलिया, कोटा और कराँची तक जाते हैं।

डिस्ट्रिक्ट जेल में दरी, सूती क़ालीन मूँज की चटाई, दोसुती, गाढ़ा; झाड़न, निवाड़, आसन, चिक और कड़ुआ तेल इत्यादि क़ैदियों द्वारा बनता है और बेचा जाता है। मूँज कासगंज, रंग कलकत्ता, बंबई और सूत हाथरस से ख़रीदा जाता है।

सेंट्रल जेल (नैनी) में रेंड़ी का तेल, लोहे के पेशाबख़ाने और पाख़ाने, लकड़ी की अल्मारियां, मेज़-कुरसी इत्यादि, मिट्टी के इलाहाबाद टाइल, दोसुती, गाढ़ा, निवाड़, दरी, रुपए की थैलियां और हाथ के करघे इत्यादि बनते हैं और बेचने के लिए बाहर भेजे जाते हैं।

ईंट, चूने और टाइल (बड़े खपरे) के लगभग १०० कारख़ाने हैं, जिन का माल अधिकांश शहर की इमारतों में खप जाता है।

आटे की यों तो गली-गली चक्कियां खुल गई हैं, परंतु सब से बड़ा कारख़ाना मिलिंग कंपनी का है, जो सन् १८०६ में स्थापित हुआ था। इस में लगभग ३००० मन आटा रोज़ तैयार होता है और बंबई, मद्रास तथा करांची तक जाता है।

बर्फ़ का सब से पुराना और बड़ा कारख़ाना जमुना आइस फैक्टरी और दूसरा भगवान आइस फ़ैक्टरी है। यहां से बर्फ़ कानपुर और बनारस तक जाता है। एक और नया कारख़ाना बड़े स्टेशन के निकट खुसरोबाग़ आइस फ़ैक्टरी के नाम से अभी हाल में खुला है।

चीनी का कारख़ाना सब से पहले नैनी में सन् १६०६ ई० में यहां के कुछ लोगों ने मिल कर खोला था, जिस के अगुआ पंडित राजनाथ साहब पेंशनर सबजज थे। परंतु कुछ दिनों पीछे ठीक तौर पर न चलने के कारण बंद-सा हो गया और फिर उसे कानपुर के मेसर्स बेग सदरलैंड ने मोल ले लिया। अंत में झूँसी के लाला किशोरीलाल ने इस कारख़ाने को लेकर बहुत उन्नत किया और तब से यह बड़ी सफलता से चल रहा है।

किशोरीलाल जी ने सन् १६२४ ई० में झूँसी में एक और कारख़ाना चीनी बनाने का खोला। इन दोनों में गुड़ को गला कर और अब गन्ने के रस से चीनी बनाई जाती है, गन्ना अधिकांश गोरखपुर की ओर से आता है। इन में से प्रत्येक कारख़ाने में लगभग ११० / ३८ बोरियां रोज़ चीनी तैयार होती है और सतना, कटनी तथा जबलपुर इत्यादि की ओर अधिक जाती है।

चीनी का एक छोटा-सा कारख़ाना जंघई में भी बहुत दिनों से है, जिस में पहले पुराने ढंग से कड़ाहों में शीरा पका कर साफ़ किया जाता था, परंतु अब हाथ की मशीनों से काम लिया जाता है। इस कारख़ाने में साल में केवल दो महीने माघ और फागुन में गुड़ से चीनी बनती है। इस में १०० मन गुड़ से २५ मन चीनी तैयार होती है।

काँच और शीशे का सब से बड़ा कारख़ाना नैनी का ग्लास वर्क्स है, जिस को सन् १६१३ में राय बहादुर जगमल राजा ने खोला था। पहले कुछ तो इस लिए कि अच्छे

काम करनेवाले न मिले और कुछ इस लिए कि विदेशी माल से मुक़ाबला था, इस कारख़ाने को सफलता न हुई। परंतु पीछे जब यूरोप का महायुद्ध छिड़ा तो सरकार और जनता की ओर से काँच की वस्तुओं की बड़ी माँग हुई। इस की पूर्ति के लिए आस्ट्रेलियन, जर्मन और जापानी जानकारों को रक्खा गया। सरकार ने भी चार अँगरेज़ जानकारों को दिया, जो हिंदुस्तानी कारीगरों को काम भी सिखाते थे। इस बीच में सरकार ने १५०००) रु० और दो आदमियों के सिखाने के लिए मंज़ूर किया। परंतु कारखाने के स्वामी ने उस से काम नहीं लिया, क्योंकि वह स्वयं १२०० से लेकर १५०० आदमियों तक को अपने व्यय से काम सिखाते थे। देश के बड़े-बड़े शीशे के कारख़ाने में मुख्य कार्यकर्ता प्रायः इसी कारख़ाने के सीखे हुए हैं।

जब युद्ध बंद हो गया तो विदेशी जानकारों ने काम छोड़ दिया, क्योंकि उन के देश में कारख़ाने फिर खुल गए और वहां से सस्ता माल आने लगा। परंतु इस प्रतिकूल दशा में भी यह कारख़ाना प्रचुर धन व्यय कर के अपना कारोबार बढ़ाता रहा। चार लाख रुपए के लगभग इस में काम करने के लिए पूँजी लगी हुई है। इस में अधिकांश बोतल और शीशियां बनती हैं और साल में लगभग दो लाख रुपए का माल कलकत्ता, बंबई, बनारस, लखनऊ, कानपुर, बरेली, पटना, दिल्ली और अमृतसर इत्यादि जाता है।

दूसरा कारख़ाना मेसर्स कामेश्वरप्रसाद और विष्णुदत्त का है। इस में लगभग ३३ हज़ार रुपए की पूँजी से काम होता है। साल में लगभग साढ़े १४ लाख शीशियां बन कर बाहर जाती हैं, जिन का मूल्य ५० हज़ार रुपए होता है। थोड़े दिन हुए एक और छोटा कारख़ाना त्रिवेनी ग्लास फ़ैक्ट्री के नाम से खुला है।

इधर कई उपयोगी कारख़ाने यहां खुले थे, परंतु कई कारणों से कुछ दिन चल कर बंद होगए। उन में से कुछ मुख्य नाम ये हैं:—

रोपसोल फ़ैक्टरी (सुतली के तल्ले के जूते का कारख़ाना)।

महालक्ष्मी वीविंग इंस्टीटयूट (रेशमी और सूती कपड़े की बुनाई का कारख़ाना)।

इलाहाबाद ब्रुश कंपनी लिमिटेड (ब्रुश बनाने का कारख़ाना)

३०—३५ वर्ष पहले यहां देहातों में एक बड़ा रोजगार नील का था, जो अब बिल्कुल बंद होगया है।

कानपुर के मुक़ाबिले में यहां मजदूरी सस्ती है। देहातों के बहुत से श्रमजीवी काम न मिलने के कारण कलकत्ता, बंबई और धनबाद इत्यादि की कोयले की खानों में काम करने के लिए जाते हैं। इन बातों को देखते हुए यदि यहां अथवा बाहर के पूँजीपति कारख़ाना खोलना चाहें तो प्रयाग उस के लिए एक उपयुक्त स्थान मालूम होता है।

थोड़े दिनों से एक मोजे का कारख़ाना इलाहाबाद होज़री के नाम से खुला है।

बाज़ार

ज़िले भर में छोटे-बड़े मिल कर सब कोई एक सौ बाज़ार होंगे, जिन में से कुछ मुख्य-मुख्य के नाम नीचे दिए जाते हैं:—

नगर में—(१) ख़लीफ़ा की मंडी (२) मुट्ठीगंज की मंडी (३) हनुमानप्रसाद की मंडी

अंतरवेद में—(४) सरायआकिल (५) भरवारी (६) मनौरी (७) दारानगर (८) शहज़ादपुर (९) कड़ा (१०) शमूसाबाद (११) अभुआ

गंगा पार में—(१२) लालगंज (१३) शिवगढ़ (१४) फूलपुर (१५) बलरामपुर (१६) इस्माइलगंज (१७) कौड़िहार (१८) मुंशीगंज (हँडिया) (१९) जँघई (२०) धोबहा (२१) बरौद (२२) सैदाबाद

जमुना पार में—(२३) सिरसा (२४) कोरॉंव (२५) भारतगंज (२६) बड़ोघर (२७ जसरा (२८ करमा (२९) जारी-कॉंटी

नगर के बाज़ारों में न० १ और २ में अन्न और ३ में गुड़ चीनी का क्रय-विक्रय अधिक होता है। मुट्ठीगंज में जमुना के पुल के पास एक बड़ी मंडी है। जिस में अन्न के सिवा दक्षिण से घी अधिक आता है।

देहात के बाज़ारों में नं० ४ और १० धातु के बर्तन; १९,२० और २१ गुड़; १३, १९ सन; १५, २० कपास ५, ७, ११, १३, २३ अन्न; १७, १८, २८ बैल तथा १८ और २८ कच्चे चमड़े के लिए विशेषतया प्रसिद्ध हैं।

बाज़ार दर

सन् ईस्वी	भाव फ़ी रुपया सेरों में						विशेष सूचना
	गेहूँ	जौ	चना	चावल	जुआर	बाजरा	
१९१३—१७ तक	३०	४२	३७	२२	४४	४०	
१८४०	२६	३६	३३	२२	४२	३९	सन् १८३७ ई० में अकाल पड़ा था।
१८५१—६०	१९	३०	३२	१५	३१	२९	
१८६१—७०	१७	२४	२१	१४	२१	१९	
१८७१—८०	१७	२४	२२	१५	२२	२१	
१८८१—८४ तथा ८६	१७	२७	२७	१६	२९	२८	
१८८५	२१	२९	२८	१५	३१	२८	इस साल सस्ती थी, इस लिए अलग दिखलाया गया है।
१८८७—९०	१४	१९	२१	१२	१९	१७	
१८९१ से १८९५ तथा १८९८—१८९९	१३	१९	२०	१२	२०	१८	
१८९६—९७	९	१२	११	९	१३	११	बहुत बड़ा अकाल पड़ा था।
१९००	११	१५	१३	१०	१७	१४	
१९०१—१०	१०	१६	१५	९	१७	१६	इन १० वर्षों में १९०४ में कुछ मँहगी और १९०८ में कुछ सस्ती थी।
१९११—१९२० तक	८	१२	११	७	१२	१०	सन् १९१८-१९ तथा २० में कुछ मँहगी रही, जिन में अन्य वर्षों की अपेक्षा सन् १९१९ में कुछ अधिक मँहगी रही।
१९२१—१९२९	७	११	१२	६	१२	९	
१९३०	१३	२१	१८	१२	३०	२५	
१९३१	१५	२४	२०	१२	३०	२५	
१९३२	१२	१८	१६	१०	२३	२०	

बैंक और कोठियां

सब से पुराना बैंक अव् बंगाल था, जिस की शाखा यहां सन् १८६३ में खुली थी। अब इस को सरकार ने ख़रीद लिया है और तब से इस का नाम इंपीरियल बैंक अव् इंडिया हो गया है।

सन् १८६५ में इलाहाबाद बैंक स्थापित हुआ। इस का भी कारबार बड़ी उन्नति पर है और कई नगरों में इस की शाखाएं खुली हुई हैं। सन् १९२३ में इस को 'पी० ऐंड ओ० बैंकिंग कारपोरेशन ने ख़रीद लिया है। तब से इस का केंद्र कलकत्ता में है।

सन् १९८३ में कर्नलगंज में एक छोटा-सा बैंक ट्रेडिंग कंपनी के नाम से खुला है, जिस में कुछ व्यापार भी होता है। इस का पूरा नाम है—इंडियन ट्रेडिंग ऐंड बैंकिंग कारपोरेशन लिमिटेड।

पीछे कई एक छोटे-मोटे बैंक अथवा उन की शाखाएं खुलीं, परंतु कुछ दिन चल कर टूट गईं। कुछ दिनों से पंजाब नेशनल बैंक और ज्वाला बैंक की शाखाएं चौक में खुली हैं और चल रही हैं।

सन् १९०१ में यहां कोआपरेटिव बैंक खुला। एक केंद्र इस का प्रयाग में और दूसरा सिरसा के निकट रामनगर में है। सन् १९३० की रिपोर्ट के अनुसार इस का कुछ ब्यौरा यह है।

नाम बैंक	सम्पत्ति	दायित्व	कारोबार की पूँजी	मुनाफ़ा	विशेष सूचना
इलाहाबाद	१,९८,७७५)	१,९७,२२०)	१,९१,३३२)	१,५५५)	
रामनगर	१,१०,१९३)	१,०३,९३०)	१,००,८७५)	६,२६३)	

इस के अतिरिक्त ज़िले में कुछ परिमित उत्तरदायित्व के सहकारी संघ (लिमिटिड लायबिलिटी कोआपरेटिव सोसाइटीज़) हैं जिन का विवरण इस प्रकार है:—

ब्यौरा	संख्या	कारोबार की पूँजी	मुनाफ़ा	विशेष सूचना
कृषि-संघ	१४३	२,४४,१९३)	९,२३७)	
अकृषि-संघ	३	२८,६७३)	४,१६८)	

निज के महाजनों की कोठियों में अग्रवालों में सब से पुरानी दारागंज की बड़ी कोठी समझी जाती है, जिस के अध्यक्ष अब राय अमरनाथ और उन के भाई हैं। दूसरी कोठी लाला हरविलास की है, जिस के मालिक अब बाबू हरीराम हैं।

भार्गवों में सब से प्रसिद्ध कोठी लाला दत्तीलाल और लाला बंशीधर की है। लाला दत्तीलाल के यहां अब उन की विधवा पौत्र-बधू श्रीमती रामजी बीबी और लाला बंशीधर की कोठी के मालिक उन के कई प्रपौत्र हैं, जो अभी बालक हैं। कीटगंज में एक कोठी लाला शंकरलाल की है।

खत्रियों में सब से प्रसिद्ध कोठी लाला मनोहरदास के घराने की है, जिस की एक शाखा के मालिक लाला मनमोहनदास उपनाम बच्चाजी और दूसरी के राय बहादुर लाला बिहारीलाल हैं।

जैनियों में सब से बड़ी कोठी लाला सुमेरचंद की समझी जाती है, जिस की मालिक अब उन की विधवा श्रीमती झमोला कुँवरि हैं।

कलवारों में लाला मेवालाल लक्ष्मीनारायण और बाबू राधेश्याम और तेलियों में पीपलगाँव के बाबू दक्खिनीदीन की कोठियां प्रसिद्ध हैं।

कीटगंज के पंचायती अखाड़े में भी लेन-देन का काम अधिक होता है।

ऊपर जिन कोठियों के नाम गिनाए गए हैं। उन में से कितनों में नक़दी लेन-देन का काम अब नाम मात्र ही रह गया है और किसी-किसी में तो बिल्कुल ही बंद हो गया है। अधिकांश में ज़मींदारी का काम होता है।

ब्याज

यहां हज़ार दो हज़ार के ऋण पर प्राय १) सैकड़ा महीना ब्याज लिया जाता है। इस से ऊपर कुछ कम हो जाता है। छोटे-मोटे ऋण पर प्रायः २) सैकड़ा लिया जाता है। दस-पंद्रह रुपए पर कहीं-कहीं लोग एक आना रुपया और गहनों के गिरवी रखने पर एक पैसा रुपया महीने में ब्याज लेते हैं। कहीं-कहीं 'नौ-दसी' का रवाज है। अर्थात् यदि कोई ९) उधार लेता है तो उस को दस महीने में १०) महाजन को देना पड़ता है।

देहातों में अन्न ड्योढ़ा-सवाई पर उठाया जाता है। अर्थात् यदि एक फ़सिल में महाजन को अन्न लौटा दिया जाय तो सवाया, नहीं तो उस का ड्योढ़ा देना पड़ता है।

मजदूरी

पहले-पहल सन् १८६८ ई० में सरकार द्वारा मजदूरी की दर की जांच कराई गई थी। उस से मालूम हुआ था कि इस ज़िले में सन् १८५८ के ग़दर के पहले शहर में एक आना और देहात में दो पैसा रोज़ था। उस के पीछे शहर में तीन आना और देहात में दो आना मज़दूरी हो गई थी।

सन् १९१६ में फिर जाँच कराने से मालूम हुआ कि दोआब और गंगापार में दो आना से ढाई आना तक और जमुना पार में डेढ़ आना तक दर हो गया है।

अब देहात में तीन-चार आने से कम मज़दूरी कहीं नहीं है और शहर में तीन आने से आठ आने तक हो गई है। राज और बढ़ई बारह आने से एक रुपया रोज़ तक लेते हैं।

हलवाहों की मज़दूरी दोआबा में तीन चार आने रोज़ नक़द दी जाती है। गंगापार में जो हलवाहे स्थायी नौकर हैं, वे सेर भर मोटा अन्न रोज़ पाते हैं और जो कभी-कभी बीच में लगाए जाते हैं वे सवा सेर से डेढ़ सेर तक लेते हैं।

नाप-तोल

प्रयाग नगर में ८० रुपए का सरकारी सेर चलता है, परंतु किराना और लाल शक्कर की तोल, थोक की बिक्री में १०६ रुपए के सेर से होती है। देहात के अधिकांश बाज़ारों में १०० रुपए का सेर चलता है, जिस को लोग बड़ा सेर कहते हैं। परंतु कहीं कहीं १०५, ११० और परगना बारा के दक्षिणीय भाग में ११२ रुपए तक के सेर का चलन है।

दोआबा में पाँच सेर को पंसेरी अथवा धरा कहते हैं और मन ४० सेर का माना जाता है, परंतु गंगापार और जमुनापार में दो सेर की पंसेरी और चार सेर का धरा होता है तथा मन केवल १६ सेर ही का माना जाता है। ८० रुपए के सरकारी सेर से तुलना करने पर इस का हिसाब इस प्रकार आता है:—

देहात का	१ सेर	=	शहर के	१ सेर ५ छटांक
,,	१ पंसेरी	=	,,	२ ,, १० ,,
,,	१ धरा	=	,,	५ ,, ४ ,,
,,	१ मन	=	,,	२० ,,

परगना खैरागढ़ के दक्षिणीय भाग में तोल के सिवा अनाज का लेना-देना नाप कर होता है, जिस के लिए लकड़ी के छोटे-बड़े पात्र बने होते है; उसी को भर कर नाप दिया जाता है। इस का ब्यौरा इस प्रकार है—

१ कुरुवा	= १ पाव पक्का अथवा	५ छटांक सरकारी सेर के हिसाब से	
१ पैला	= १ सेर ,, ,,	$1\frac{1}{4}$ सेर	,,
१ कुरुई	= ४ ,, ,, ,,	५ ,,	,,
१ खांडी	= ५ मन ,, ,,	$2\frac{1}{2}$ मन	,,

इन का पारस्परिक संबंध इस प्रकार है :—

१ कुरुआ	= १ पैला
४ पैला	= १ कुरुई
२० कुरुई	= १ खाँडी

गमनागमन के मार्ग

(१) नदी

प्रयाग दो बड़ी नदियों—गंगा और जमुना—के संगम पर स्थित है, इस लिए पुराने समय से आने-जाने के लिए यह एक बहुत ही सुभीते का स्थान रहा है।

ग़दर से पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में जब रेल नहीं चली थी तो कलकत्ते से यहां तक एक स्टीमर मेल अर्थात् जहाज़ी डाक चला करती थी, जिस का स्टेशन यहां कुछ टूटे-फूटे पक्के घाट के रूप में क़िले के पश्चिम मनकामेश्वर के समीप अब तक बना हुआ है। इस जल-मार्ग की लंबाई बरसात में भगरौटी नहर के द्वारा ८०८ मील और अन्य ऋतुओं में सुंदरबन हो कर ६८५ मील थी। गर्मी और जाड़े में स्टीमर कलकत्ते से २५ दिन में यहां पहुँचता था और १५ दिन में लौट जाता था, परंतु वर्षा में यहां से कलकत्ता पहुँचने में केवल ६ ही दिन लगते थे। पैदल रास्ता तीन महीने का था।

अब कई नहरों के निकल जाने से गंगा में जल बहुत कम हो गया है, परंतु जमुना के रास्ते से अब भी कुछ नावें झाऊ और बाजरा इत्यादि अन्न ले कर पूर्व की ओर जाया करती हैं; और उधर से चावल लाद कर लाती हैं। प्रतापपुर की खान से पत्थर भी नावों पर प्रयाग में आता है।

(२) सड़क

इस ज़िले में पक्की सड़कें २०० के लगभग देहात में और इन से अधिक शहर में हैं। कच्ची सड़कों की संख्या १०० से ऊपर है। इन में से कुछ मुख्य सड़कों का इतिहास नीचे लिखा जाता है।

सब से बड़ी पक्की सड़क ग्रैंड ट्रंक रोड है, जिस का पुराना नाम 'शेरशाही सड़क' है। शेरशाह का समय १५४० से १५४५ ई० तक रहा है। यह सड़क उसी समय की बनी हुई बतलाई जाती है, परंतु इधर मरम्मत न होने से वह बहुत ही बिगड़ गई थी। इस लिए अंग्रेज़ी राज्य होने पर सन् १८१८ तक प्रायः गंगा और जमुना के जल-मार्ग से ही लोग पश्चिम से काशी यात्रा किया करते थे। सन् १८२८ ई० में यह सड़क वर्तमान रूप में पूर्व से प्रयाग तक बनी और फिर तीन वर्ष पीछे कानपुर तक गई। परंतु पहले यह प्रयाग से पश्चिम गंगा के किनारे-किनारे हो कर गई थी, क्योंकि जल-मार्ग होने के कारण प्रायः बड़े-बड़े प्रसिद्ध स्थान गंगा के तट पर बसे हुए थे। अब कुछ थोड़ा-सा दक्षिण की ओर हट कर बनी है। इस ज़िले में इस सड़क की लंबाई पूर्व-पश्चिम ७५ मील है।

दूसरी पुरानी सड़क जौनपुर रोड है जो झूँसी से ग्रैंड ट्रंक रोड से निकल कर उत्तर और पूर्व को फूलपुर होती हुई चली गई है। पंद्रहवीं शताब्दी में जौनपुर में मुसलमानों का एक अलग राज्य स्थापित था। संभवतः उसी समय यह सड़क बनी होगी। इस की लंबाई इस ज़िले में २१ मील है।

तीसरी सड़क फ़ैज़ाबाद रोड है, जो ग़दर के लगभग पक्की हुई थी। इस ज़िले में इस की लंबाई २४ मील है, जो उत्तर से आकर गंगा के उस पार फाफामऊ घाट में मिल गई है।

चौथी पुरानी सड़क जबलपुर रोड है। यह जमुना के उस पार से पहले पुल से कुछ पश्चिम मुड़ कर दक्षिण की ओर सीधी चली गई है। यह सड़क इस ज़िले में रीवां राज्य की हद तक २७ मील लंबी है, जो प्रयाग से गौहानी तक ११ मील पक्की है।

(३) रेल

पहले-पहल ईस्ट-इंडियन रेलवे सन् १८५७ में कलकत्ते से इधर मिर्ज़ापुर तक चली थी। यहां केवल भरवारी स्टेशन तक लाइन बनाने के लिए सामान ले कर रेल आया-जाया करती थी और उस के आगे सड़क बन रही थी, कि इतने में ग़दर हो जाने से सारा काम बंद हो गया। फिर जब शांति स्थापित हुई तो ३ मार्च सन् १८५९ से प्रयाग से कानपुर तक रेल चलने लगी, परंतु जमुना में पुल न होने से केवल क़िले के स्टेशन तक गाड़ी आती-जाती थी।

पीछे टोंस का पुल तैयार हो जाने पर मिर्ज़ापुर से जमुना उस पार तक अप्रैल १८६४ से रेल चलने लगी। उस के पश्चात् १५ अगस्त सन् १८६५ को जमुना का पुल तैयार हो कर खुला। तब इधर प्रयाग के बड़े स्टेशन तक रेल आने लगी।

टोंसवाले पुल की लंबाई १२०६ फ़ीट है, जिस में ९ दर नीचे से ७६ फ़ीट ऊँचे हैं। इस के बनाने में १४,०८,४०२ रुपए व्यय हुए।

जमुना के पुल की लंबाई ३,२३५ फ़ीट है, जिस में १७ कोठियां पत्थर की हैं। यह पुल ४४,४६,३०० रुपए में बना था।

सन् १८६७ से नैनी से जबलपुर लाइन खुली और सन् १९०७ से बंबई मेल के लिए छिवोंकी वाली लाइन निकाली गई।

पहले जमुना का पुल एकहरा था। पीछे दुहरी लाइन होने के कारण पूर्व वाला भाग बनाया गया। कोठियां पहले से चौड़ी थीं। केवल लोहा रक्खा गया, जिस में १७,७३,९५२ रुपए व्यय हुए और १९ अगस्त सन् १९१५ से पुल का यह भाग खोला गया। इस के पश्चात् पश्चिमवाले पुराने भाग का लोहा २८ लाख रुपए के व्यय से बदला गया, और २१ अगस्त १९२९ को यह पुल जनता के लिए खोल दिया गया। इस प्रकार से आरंभ से अब तक ले कर इस दोहरे पुल में ९०½ लाख रुपए से ऊपर व्यय हो चुके हैं।

दूसरी लाइन सन् १९०५ में इलाहाबाद से फ़ैज़ाबाद तक निकली, जिस के लिए फाफामऊ के निकट गंगापार दूसरा पुल ३९,५८,८३६ रुपए के व्यय से बना। इस में १७ कोठियां हैं और कुल पुल की लंबाई ३२५० फ़ीट है। पहली जनवरी १९०५ को इस का उद्घाटन 'कर्ज़न ब्रिज' के नाम से हुआ था। पीछे फाफामऊ से दो लाइनें और निकलीं। एक १८ जून १९०६ को जौनपुर तक, दूसरी २ नवंबर १९११ को रायबरेली तक।

सन् १९१२ में बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे की छोटी लाइन प्रयाग से बनारस तक निकली और इस के लिए दारागंज में एक और पुल गंगा के ऊपर बनाया गया। यह

पुल यहां के सब पुलों से लंबा अर्थात् ६३८० फ़ीट अथवा १ मील से कुछ ऊपर है। इस में ४५ कोठियां पृथ्वी के धरातल से ६० फ़ीट की ऊँचाई तक बनी हुई हैं और नीचे ७५ फ़ीट तक गलाई गई हैं। इस के बनाने में ३० लाख रुपए से ऊपर व्यय हुए थे और ३१ अक्तूबर १९१२ को खुला था।

आइज़ेट साहब उस समय इस रेलवे के चीफ़-इंजीनियर थे, इस लिए उन्हीं के नाम से इस का नामकरण 'आइज़ेट ब्रिज' हुआ है।

इस पुल में एक बहुत बड़ी कमी यह है कि इस में सिवा रेल के आदमियों या गाड़ी-घोड़ा आदि के जाने के लिए मार्ग नहीं है, इस लिए वर्षा के दिनों में नावों और अन्य ऋतुओं में पीपे के पुल से लोगों को गंगा पार करना पड़ता है, यद्यपि कुछ महसूल नहीं देना पड़ता। बरसात में मोटर गाड़ी आदि के पार करने के लिए एक और नई सड़क फाफामऊ से घुमा कर हनुमानगंज के निकट ग्रैंड ट्रंक रोड में मिलाई गई है, जो पहले कच्ची थी, पर अब १९३० से पक्की हो गई है। इस की लम्बाई १० मील के लगभग है।

(४) वायुयान

सन् १९२९ से हवाई जहाज़ की डाक यहां आने लगी है, जिस का एक स्टेशन प्रयाग से पच्छिम बमरौली रेलवे स्टेशन के पास बना है।

छठवां अध्याय

प्रयाग की विविध संस्थाओं का वर्णन

(१) अर्ध-सरकारी संस्थाएं

(क) म्यूनीसिपल बोर्ड

यहां की म्यूनीसिपैलिटी में जितनी भूमि है वह ६ खंडों में विभक्त है। प्रत्येक को वार्ड कहते हैं। उन के नाम और क्षेत्रफल का विवरण इस प्रकार है।

वार्ड नं०	१	सिविल लाइन्स	४.४	वर्ग	मील
,,	२	कटरा	२.४	,,	,,
,,	३	उत्तर कोतवाली	१.३	,,	,,
,,	४	दक्षिण कोतवाली	४.२	,,	,,
,,	५	कीटगंज-मुट्ठीगंज	१.३	,,	,,
,,	६	दारागंज	२.४	,,	,,
			कुल =१६ वर्गमील		

म्यूनीसिपैलिटी में २०० के लगभग मुहल्ले हैं। सिविल लाइन्स में मुहल्लों के स्थान में सड़कें हैं, जिन की संख्या ४० के लगभग है।

बोर्ड में कुल ३८ मेंबर हैं, जिन में १ पदाधिकार से ('एक्स-आफ़िशिओ'), ७ मनोनीत ('नामिनेटेड') और ३० निर्वाचित ('एलेक्टेड') होते हैं।

सन् १६२६-३० की रिपोर्ट के अनुसार वार्षिक व्यय का कुछ ब्यौरा पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिया जाता है :—

शिक्षा में	१,५६,६७२	रु०
सफ़ाई, औषधि तथा सड़क इत्यादि में	११,६८,६३०	,,
जनता की रक्षा अर्थात रोशनी तथा आग बुझाने इत्यादि में	७६,६४५	,,
प्रबंध में	१,६३,२४१	,,
स्फुट	१,५६,६७१	,,

इस में केवल शिक्षा के विषय में हम कुछ अधिक विस्तार से लिखना चाहते हैं, आशा है पाठकों के लिए रुचिकर होगा। बोर्ड ने सन् १८८२ से शिक्षा का प्रबंध करना आरंभ किया था। उस साल केवल ७ स्कूल खुले थे और ६ को सहायता दी जाती थी। कुल १७६ लड़के पढ़ते थे और ७२० रुपए ख़र्चा था।

अब बोर्ड के प्रबंध में ५८ साधारण स्कूल और १ ट्रेनिंग स्कूल है। २८ स्कूलों और निजी पाठशालाओं तथा मकतबों को सहायता दी जाती है। स्कूल के लड़कों की संख्या ७००० के लगभग है।[1]

अगस्त सन् १९२७ से बोर्ड ने वार्ड न० ४ और ५ में लड़कों की प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य, कर दी है, परंतु अब तक किसी को दंड देने की नौबत नहीं आई। प्रत्येक स्कूल में चर्ख़ा कातना सिखाया जाता है। किन्हीं-किन्हीं में निवाड़ की बुनाई भी होती है। एक चमड़े के काम का स्कूल है, जिस में दिन को ३१ लड़के काम सीखते हैं। इन में मुसलमान अधिक हैं। इस का वार्षिक व्यय ८,५८७ रुपया है, जिस में आधा सरकार देती है।

बोर्ड की १२ रात्रि पाठशालाएं हैं, जिन में ३६० लड़के पढ़ते हैं, ३ महाजनी सिखानेवाली पाठशालाएं और २ अछूतों के स्कूल हैं।

म्यूनीसिपैलिटी द्वारा सन् १९०६ से कन्याओं की शिक्षा आरंभ हुई। उस साल केवल एक ही स्कूल खुला था, जिस में २० लड़कियां थीं। अब ऐसे १३ स्कूल हैं, जिन में १३२६ लड़कियां पढ़ती हैं। इस वर्ष से यह विचार हो रहा है कि कन्याओं की शिक्षा भी अनिवार्य कर दी जावे।

नगर के २८ वाचनालयों को बोर्ड ४,५६७ रुपया वार्षिक सहायता देती है। एक अजायबघर भी अभी खुला है और एक चिड़ियाघर के खोलने का विचार हो रहा है।

पहले किन किन कामों में कितना कितना व्यय होता था, और अब कितना होता है, इस के सूचक कुछ रेखाचित्र पाठकों की जानकारी के लिए इस के साथ लगाए जाते हैं।

---

[1] सन् १९३२-३३ ई० का ब्योरा इस प्रकार है :—

बोर्ड के प्रबंध में लड़कों के ६२ स्कूल थे और ५३ को सहायता दी जाती थी, इन सब के विद्यार्थियों की संख्या ८,८७७ थी।

कन्याओं के १४ स्कूल थे, १२ को सहायता मिलती थी। इन में कुल ३४२६ लड़कियां पढ़ती थीं।

बोर्ड की रात्रि-पाठशालाएँ १२ थीं और २५ को सहायता मिलती रही। इस साल ३५ वाचनालयों को बोर्ड सहायता देती रही, इन में अतरसुइया का एक 'महिला-पुस्तकालय' विशेषतया उल्लेखनीय है। अभी हाल में यह सहायता बंद कर दी गई है, जिस के खुलने के लिए आंदोलन हो रहा है।

(ख) कैंटोनमेंट बोर्ड

नगर के म्यूनिसिपल बोर्ड के सदृश छावनी में भी प्रबंध के लिए एक अलग संस्था है, जिस का नवीन संगठन एक्ट न० २ सन् १९२४ ई० के अनुसार इस प्रकार है कि इस में ८ मनोनीत और ६ निर्वाचित सदस्य, प्रेसीडेंट और वाइस-प्रेसीडेंट के अतिरिक्त होते हैं।

सन् १९२९-३० ई० में बोर्ड की आय लगभग १ लाख रुपए थी और व्यय सवा लाख रुपए से ऊपर हुआ था।

व्यय का मुख्य व्यौरा यह है:—

प्रबंध में	१०,३२२)
सड़क इत्यादि में	३४,७८१)
जनता की रक्षा में	१३,९८६)
औषधि और सफ़ाई इत्यादि में	४९,४००)
शिक्षा में	३,२५६)

छावनी भर में कुल ३ स्कूल हैं, जिन में से एक कन्या-पाठशाला है।

यहां की छावनी के ३ विभाग हैं, जिन के नाम क्षेत्रफल सहित नीचे दिए जाते हैं:—

नई छावनी (पश्चिम की ओर)	३.२ वर्ग मील
पुरानी छावनी (उत्तर की ओर जो चाथम लाइन्स के नाम से प्रसिद्ध है	१.९ ,,
किला	१.३ ,,
	कुल ६.४

(ग) डिस्ट्रिक्ट अर्थात् जिलाबोर्ड

इस ज़िले के बोर्ड में २ मनोनीत और ४० निर्वाचित सभासद हैं, जिन में ३१ हिंदू और ११ मुसलमान होते हैं। चेयरमैन अपने पद के अधिकार के कारण ('एक्स्-आफ़िशियो') सभासद होता है।

बोर्ड का वार्षिक आय-व्यय इस समय ६ लाख रुपए से कुछ ऊपर है।

सन् १९२९-३० की रिपोर्ट के अनुसार मुख्य-मुख्य व्ययों का कुछ व्यौरा इस प्रकार है :—

प्रबंध में	२५,५०४ रु०
चिकित्सा में	३४,२९२ "
स्वास्थ्य-रक्षा में	२६, १३६ "
पशुओं की चिकित्सा में	७,५०४ "
सड़क इत्यादि में	१,१५,११२ "
शिक्षा में	३८१,४४५ "

शिक्षा के व्यय का कुछ ब्यौरा यह है:—

प्रारंभिक शिक्षा में	१८४,६३४ रु०
अनिवार्य शिक्षा में	६७,५१३ "
स्त्री शिक्षा में	१६,७६६ "
अछूतों की शिक्षा में	७,४२५ "

५ मई सन् १८२८ से अभी केवल ८८ गाँवों में अनिवार्य शिक्षा का प्रबंध किया गया है।

इस समय बोर्ड के प्रबंध में ६ शफ़ाख़ाने, १५२ मवेशीख़ाने, ४ पशुओं के अस्पताल, १५ मिडिल स्कूल, ५३६ प्राइमरी स्कूल, १३७ एडेड (सहायता पानेवाले) स्कूल, ३८ मकतब, ४२ अछूतों के स्कूल, ४२ कन्या पाठशालाएं और ६ रात्रि-पाठशालाएं हैं।

इन के अतिरिक्त तहसील मंझनपुर में सरसवां के स्कूल में कृषि-शिक्षा का प्रबंध है। २ बुनाई के स्कूल हैं। एक सन् १९२५ से कड़ा में और दूसरा १९२६ से मऊआयमा में खुला था। इन में सूती कपड़े के सिवा कुछ टसर और रेशम की भी बुनाई का काम होता है।

सन् १९१८ से १०-१० वर्ष के अंतर में बोर्ड के मुख्य-मुख्य कामों के व्यय का ब्यौरा पाठकों की जानकारी के लिए अन्यत्र रेखाचित्रों के द्वारा दिखाया जाता है।

(२) धार्मिक संस्थाएं

(क) आर्यसमाज

धार्मिक संस्थाओं में चौक का आर्यसमाज सब से पुराना है, जो ज़िला गज़ेटियर के अनुसार सन् १८८० ई० में स्थापित हुआ था। परंतु समाज के क़ाग़ज़-पत्रों के देखने से पता चलता है कि उस के ३ वर्ष पहले समाज का सूत्रपात हो चुका था। सन् १९१३ में समाज ने वर्तमान भवन को मोल लिया और फिर पीछे समय-समय पर उस की इमारत में वृद्धि होती रही।

इस समाज के अधीन एक कन्या-पाठशाला है, जिस की स्थापना सन् १९०४ में हुई थी। इस का विस्तृत वृत्तांत शिक्षा-संस्थाओं में मिलेगा।

सन् १९१९ से समाज ने अछूत बालकों की शिक्षा के लिए 'कल्याणी पाठशाला' के नाम से एक संस्था खोली है, जिस में अब अपर प्राइमरी तक शिक्षा दी जाती है। इस के सिवा ऐसे बालकों के लिए कुछ रात्रि-पाठशालाएं भी हैं। समाज की ओर से देहातों में भी कुछ प्रचार होता है। फलतः मेज़ा, फूलपुर, और सिराथू में आर्यसमाज का सूत्रपात हुआ है परंतु अभी उनका अस्तित्व पक्का नहीं है।

दूसरा समाज सन् १८९६ के लगभग से कटरा में खुला है।

तीसरा समाज रानीमंडी में है, जो १९१० में स्थापित हुआ था, इस के अंतर्गत एक 'आदर्श-कन्या-पाठशाला' है।

सन् १९०२ से एक 'आर्य-कुमार-सभा' भी है, जिस का कार्यालय चौक समाज के मंदिर में है।

(ख) सनातन-धर्म-सभा

सनातन-धर्म सभाएं इस नगर में कई बार खुलीं और कुछ दिनों तक चल कर बंद हो गईं। अब सन् १९२४ से कटरा में एक ऐसी सभा खुली है, जिस ने कुछ भूमि ले कर अपना एक कमरा भी बनवा लिया है और उस में कुछ पुस्तकों का संग्रह है। इस सभा ने पहले दो-एक बार अपना वार्षिकोत्सव भी मनाया है, परंतु आजकल इस का काम शिथिल-सा जान पड़ता है।

शहर में भी एक सनातन-धर्म सभा है। परंतु सिवा माघमेले में प्रचार के उस का और कोइ कार्य प्रकट रूप में देखने में नहीं अता।

(ग) साधुओं के मठ[1] तथा अखाड़े[2]

(१) महानिर्वाणी

यह अखाड़ा दारागंज में है। इस का केंद्र हरिद्वार के निकट कनखल में है। इस की शाखा खँडवा में भी है। इन सब का सदर बड़ौदा में है। इस अखाड़े की आमदनी ५० हज़ार रुपए साल के लगभग है। ये लोग नागा शैव हैं। जटा रखते हैं।

(२) निरंजनी

इन का भी स्थान दारागंज में है। ये लोग भी शैव हैं। जटा रखते हैं। इन की एक शाखा इस ज़िले में माँडा में भी है।

(३) बाघंबरी

यह एक मठ है, जिस की सालाना अमदनी १४ हज़ार रुपए के लगभग है। इन का स्थान अलोपी बाग़ और दारागंज के बीच में है। ये लोग भी शैव हैं, परंतु जटा नहीं रखते।

(४) रामानुजी

यह वैष्णवों का अखाड़ा है। दारागंज में है।

(५) रामानंदी

इन का केंद्र कीटगंज में है। यह त्यागी वैष्णव अर्थात् गोस्वामी या गोसाईं है। इन के यहां ब्याह भी होता है।

---

[1] मठ उस को कहते हैं, जिस के महंत को यह अधिकार रहता है कि वह जिस को चाहे चेला बना कर अपना स्थानापन्न बना दे, तथा इसी प्रकार वह आय-व्यय के मामले में भी स्वतंत्र होता है।

[2] अखाड़े का सब काम पंचायत से होता है, जिस के ८ पंच होते हैं।

(६) बड़ा पंचायती

इस का स्थान कीटगंज में है। यह उदासी वा नानकशाही अखाड़ा है। इस की शाखाएं पंजाब, राजपूताना तथा हैदराबाद में हैं। यह बड़ा धनाढ्य अखाड़ा है। इस ज़िले में लेन-देन के अतिरिक्त १८–२० हज़ार रुपए साल की मालगुज़ारी का इलाक़ा इन के पास है। इस की कुल शाखाओं की आमदनी का अनुमान एक लाख रुपए साल से ऊपर किया जाता है।

(७) छोटा पंचायती

यह मुट्ठीगंज में है। यह भी उदासी अखाड़ा है।

(८) निर्मला

इस का स्थान कीटगंज में 'पीलीकोठी' के नाम से प्रसिद्ध है। ये लोग भी उदासी हैं।

(९) कच्ची संगत

(१०) पक्की संगत

ये भी नानकशाही साधुओं के छोटे-छोटे आश्रम हैं, जिन के स्थान अहियापुर में हैं।

इन के सिवा झूँसी में भी कुछ उदासियों, वैष्णवों और जूना के स्थान हैं तथा अरैल में वल्लभाचारियों का एक पुराना मठ है।

इन सब में 'महानिर्वाणी' और 'पंचायती' बड़े समृद्धिशाली अखाड़े हैं। परंतु कुंभ और अर्धकुंभ के अवसर पर जब उन के अखाड़े के लोग बाहर से आते हैं, उन को खिलाने-पिलाने के सिवा और किसी सार्वजनिक काम में ये लोग कोई आर्थिक सहायता नहीं देते। अलबत्ता महानिर्वाणी अखाड़े के भूतपूर्व महंत बालकपुरी जी ने एक संस्कृत पाठशाला सन् १९१६ से खोली है, जिस में ४० के लगभग विद्यार्थी पढ़ते हैं और वस्त्र-तथा भोजन पाते हैं।

खेद है कि यहां के अखाड़ों का इतिहास बहुत-कुछ उद्योग करने पर भी इस से अधिक हम को मालूम नहीं हुआ।

(च) थियासॉफिकल सोसाइटी

प्रयाग में पहले यह संस्था सन् १८८१ ई० में स्थापित हुई थी। परंतु इधर बहुत दिनों से उस का कुछ पता न था। सन् १९२५ में मिस्टर पियर्स कायस्थ पाठशाला के हेडमास्टर हो कर आए। उन के उद्योग से प्रयाग स्टेशन के निकट नाक्सरोड पर 'थियासॉफ़िकल लाज' एक बँगले में स्थायी रूप से स्थापित हुआ है, जिस का नाम 'कृष्णाश्रम' रक्खा गया है। इस में छोटे बालकों और बालिकाओं के लिए एक स्कूल भी है। इस के अतिरिक्त सन् १९३६ में लोदर रोड पर एक भवन 'एनी बेसेंट लायब्रेरी' के नाम से बना है।

(छ) ईसाइयों के मिशन

अन्य बड़े-बड़े नगरों के समान प्रयाग में भी ईसाइयों के कार्य-क्षेत्र का विस्तार अधिक है, जिस का संक्षिप्त ब्यौरा नीचे लिखा जाता है।

(१) अमेरिकन प्रेस्बिटेरियन मिशन—इस मिशन ने सन् १८३६ में अपना काम यहां आरंभ किया था। इस का वार्षिक व्यय ३० हज़ार रुपए से ऊपर है। इस के अंतर्गत ईविंग क्रिश्चियन कालेज, जमना मिशन हाई स्कूल, मेरी वानमेकर गर्ल्स हाई स्कूल, कालविन फ़्री स्कूल,[१] एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट (कृषि-विद्यालय) नैनी, वाई० एम० सी० ए० (ईसाई कुमारसभा) ख़ैराती दवाईख़ाना, कोढ़ीख़ाना तथा हालैंड हाल नामक होस्टेल है।

(२) चर्च मिशनरी सोसायटी—इस मिशन की शाखा सन् १८५६ में यहां खुली थी। ज़नाना बाइबिल तथा मेडिकल मिशन, अनाथालय लेडी म्यूर मिमोरियल ट्रेनिंग स्कूल तथा सेंट पाल्स डिवीनिटी स्कूल का यह मिशन संचालन करता है।

(३) मेथोडिस्ट इपिस्कोपल मिशन—यह मिशन यहां सन् १८७३ में स्थापित हुआ था। इस के अंतर्गत भी एक स्कूल है।

(४) चर्च अव् इंगलैंड—इस के प्रबंध में आल सेंट्स स्कूल और नैनी का अंधाख़ाना है।

(५) वीमेन्स यूनियन मिशन—इस मिशन का प्रबंध स्त्रियों के हाथ में है। इस के अंतर्गत एक प्राइमरी स्कूल तथा सेंट्रल गर्ल्स स्कूल है।

(६) मेट्रोपोलिटन चर्च एसोसीएशन बर्निंगबुश मिशन—इस मिशन का केंद्र तहसील सोराँव में सेवइत स्टेशन के पास है। ये लोग अधिकांश गाँवों में मौखिक प्रचार का काम करते हैं।

(७) सालवेशन आर्मी—इस मिशन का मुख्य केंद्र बरेली में है। यहां इस की एक शाखा फूलपुर में है, जहां इन लोगों ने चोरी-बदमाशी पेशावालों की लड़कियों के लिए एक स्कूल खोल रक्खा है। इस में मुख्यतया सुई का काम सिखाया जाता है।[२]

(८) चर्च अव् रोम—यह रोमन कैथोलिक संप्रदाय का मिशन है। इस के प्रबंध में सेंट जोज़ेफ़ कालेज तथा लड़कियों का सेंट मरे कन्वेंट स्कूल है।

इन के अतिरिक्त प्रयाग में ईसाइयों की दो और संस्थाएं हैं। एक का नाम 'ब्रिटिश ऐंड फ़ारिन बाइबिल सोसाइटी' और दूसरे का 'दि नार्थ-इंडिया क्रिश्चियन बुक ऐंड ट्रेक्ट सोसाइटी' है। इन दोनों में अधिकांश ईसाई-मत-संबंधी पुस्तकों तथा विविध प्रकार के संस्करण और अनेक भाषाओं में बाइबिल का विशाल संग्रह है। यहां ये सब किताबें बिकती हैं।

ईसाइयों की एक पुरानी संस्था 'इलाहाबाद चैरिटेबुल एसोसीएशन' के नाम से है, जिस के अधीन एक स्ट्रेंजर्स होम (अतिथालय) तथा एक पुअर होम (दीनालय) है।

प्रयाग में ईसाइयों के १३ गिरजे हैं, जिन में सब से पुराना स्वराज्य-भवन के निकट 'होली ट्रिनिटी चर्च' है, जो सन् १८३६ में बना था।

---

[१] अब यह स्कूल स्थानीय 'बाएल हाई स्कूल, में सम्मिलित हो रहा है।

[२] अब सालवेशन आर्मी की यह शाखा यहां से बाहर चली गई है।

(ज) मुसलमानों के दायरे

प्रयाग में 'चिश्तिया' संप्रदाय के सूफ़ियों के कई दायरे हैं। ये एक प्रकार के मठ हैं, जो मुसलमानी राज्य में विभिन्न समयों में स्थापित हुए थे। इन में से कुछ दायरों में उसी समय की कुछ माफ़ियां भी लगी हुई हैं; और कुछ भेंट-चढ़ावा में आता है। इन के महंत 'सज्जादा-नशीन' वा 'पीर' (गुरु) कहलाते हैं, जो लोगों को दीक्षा देकर 'मुरीद' (शिष्य या चेला) करते हैं। इन में से कुछ के नाम और स्थान ये हैं।

(१) दायरा शाह महम्मद अजमल—कोयलहन टोला में।
(२) " " ग़ुलाम अली उपनाम महमदी शाह - कोयलहन टोला में।
(३) " " मुहिब उल्लाह—बहादुरगंज में।
(४) " " रफ़ीउल ज़मां—अहियापुर में।
(५) " " मुनव्वर अली—हिम्मतगंज में।
(६) " " महम्मद अलीम—शहरारा बाग़ में।
(७) " " मिनहाजुद्दीन—शाहगंज में।
(८) " " मौलवी अहमद—

इन में से सब से पुराना दायरा शेख़ मुहिबउल्लाह का मालूम होता है, जिन का देहांत शाहजहां के समय में सन् १०५८ हिजरी (१६४८ ई०) में हुआ था। इस के बाद का दायरा शाह महम्मद अजमल का मालूम होता है, जिस के संस्थापक शाह महम्मद अजमल थे। उन का देहांत सन् ११२४ हि० (१७१२ ई०) में हुआ था। शेष दायरों के इतिहास का ठीक-ठीक पता नहीं लगा, क्योंकि उन के वर्तमान अध्यक्षों को स्वयं मालूम नहीं है।

(३) सार्वजनिक संस्थाएं

(क) भारत-सेवक-संघ

श्री गोखले जी की 'सरवेन्ट्स अव् इंडिया-सोसाइटी' की एक शाखा सन् १६०५ से प्रयाग में भी खुली है, जिस के अध्यक्ष इस समय पंडित हृदयनाथ कुंज़रू हैं।

(ख) सेवा-समिति

यह समिति सन् १६१४ से प्रयाग में स्थापित हुई, जिस के प्रधान इस समय पंडित मदनमोहन मालवीय जी हैं। इस समिति के अंतर्गत इस समय विविध स्थानों में और ४१ शाखाएं हैं। प्रयाग में इस के प्रबंध में एक हाई स्कूल (विद्या-मंदिर), और १३ रात्रि पाठशालाएं हैं। एक रात्रि पाठशाला अयोध्या में भी है। इन पाठशालाओं में १५० से ऊपर अछूत लड़के भी पढ़ते हैं। कोई १० वर्ष हुए समिति ने एक 'वनिता-आश्रम' प्रयाग में और दूसरा कानपुर में खोला है, जिस में विधवाएं और अनाथ बालिकाएं रहती हैं और उन को कुछ उपयोगी काम धंधे भी सिखाए जाते हैं। इन संस्थाओं के अतिरिक्त समिति के यहां एक-दो अस्पताल, ख़ैराती औषधालय और एक (भरद्वाज) वाचनालय है।

यह समिति मेलों के अवसर पर यात्रियों की सुविधा के लिए प्रशंसनीय प्रबंध करती है।

इस के अतिरिक्त प्रयाग में दो और सेवा-समितियां हैं, जो मेलों में यात्रियों की सहायता करती हैं। एक का नाम गुरु नानक सेवा-समिति है, जिस को सन् १९२३ में स्थानीय पक्की-संगत के महंत सोहनसिंह जी ने स्थापित किया था। दूसरी 'अगरवाल सेवा-समिति' है, जो सन् १९२४ में लाला रामचंद्र प्रसाद जी द्वारा संगठित हुई थी। इन समितियों के भी कार्य सराहनीय हैं। तथा सन् १९३६ से बंगाल के 'महानंद मिशन अव सर्विस' की एक शाखा यहां खुली है। यह भी एक प्रकार की सेवा-समिति है।

(ग) अनाथालय

सन् १८९६ ई० के अकाल में प्रयाग के हिंदुओं ने एक अनाथालय खोला, जिस की रजिस्ट्री सन् १९०२ में हुई। इस का अब अपना भवन है और प्रबंध एक सभा के अधीन है। इस समय इस में ७० से ऊपर अनाथ हैं, जिन में कुछ कन्याएं भी हैं। इस संस्था की राय बिंदाप्रसाद जी कोर्ट इंस्पेक्टर ने सन् १९०० ई० से पेंशन लेकर जीवन पर्यंत अथक सेवा की थी। उन्हों ने इस की आर्थिक अवस्था को बहुत उन्नत किया था। सन् १९२८ में ६५ वर्ष की अवस्था में राय साहब का देहांत हो गया।

(घ) विधवा-आश्रम[1]

सन् १९२६ से चौक आर्यसमाज के कुछ कार्यकर्ताओं ने एक विधवा-आश्रम खोल रक्खा है, जिस में हर प्रकार की विधवाओं को शरण दी जाती है और जिन की इच्छा होती है उन के विवाह का भी उचित प्रबंध कर दिया जाता है।

(ङ) गोशाला

सन् १८८३ ई० के लगभग इस गोशाला को स्वामी अलाराम सागर संन्यासी ने स्थापित किया था, जो इस समय कीटगंज में है। इस का पूरा नाम 'श्री मुख्य गोशाला' है। स्वामी जी ने ५,००० रुपए इकट्ठा कर के इस के कोष में जमा कर दिया है, जिस का ३०) महीना ब्याज आता है। इतने ही के लगभग मासिक चंदे से तथा फुटकर आय है। प्रायः १५-२० गौवें रहा करती हैं। अधिक होने पर गाँवों में सहृदय ज़मींदारों के यहां भेज दी जाती हैं। इस संस्था का प्रबंध एक सभा के हाथ में है। प्रयाग ज़िले भर में एक यही गोशाला है, जिस की वर्तमान दशा यहां की उदासीनता का द्योतक है।

(च) रामकृष्ण मिशन सेवा-आश्रम

इस नाम से मुट्ठीगंज में एक औषधालय है, जो सन् १९११ में स्थापित हुआ था। इस में लोगों को बिना मूल्य दवाई बाँटी जाती है।

नगर में व्यक्तिगत तथा अन्य संस्थाओं की ओर से ऐसे कई औषधालय हैं, जो खुलते बंद होते रहते हैं, इसी लिए उन के उल्लेख की आवश्यकता नहीं है।

---

[1] अब यह संस्था टूट गई है

(छ) अंधाखाना

यह संस्था 'चर्च अव् इंगलैंड' के प्रबंध में है, सन् १८५४ में खोली गई थी। इस में दीन अंधे रहते हैं। उन को भोजन-वस्त्र दिया जाता है और उन से जो कुछ वे कर सकते हैं, थोड़ा-बहुत काम भी लिया जाता है। पहले इस का भवन शहर में रामबाग़ में था। अब उठ कर नैनी की ओर चला गया है। इस में ३० से ५० तक अंधे रहते हैं, जिन का व्यय लगभग ५००० रु० वार्षिक है।

(ज) कोढ़ीख़ाना

यह संस्था भी अब नैनी के निकट है। इस का इतिहास यह है कि सन् १८३६ में कुछ अमेरिकन मिशनरियों ने, जहां अब बड़ा रेलवे स्टेशन है, उस के निकट डेरा डाला था। वे अपने डेरे में अंधों और कोढ़ियों को शरण देते थे। उन्हों ने स्थानीय चंदे से लगभग १० वर्ष तक इस काम को चलाया। फिर कोई ५० वर्ष तक चैरिटेबुल एसोसिएशन नामक संस्था यह काम करती रही। अब सन् १९०६ से यह मिशन टू लेपर्स को दे दिया गया है। सन् १९०४ तक इस के कच्चे घर थे। अब बहुत ही हवादार पक्के भवन बन गए हैं। बड़ी सावधानता से इन रोगियों की यहां चिकित्सा होती है। कुछ थोड़े से लोग अच्छे भी हो जाते हैं। कोढ़ियों के बाल बच्चे उन के संसर्ग से अलग रक्खे जाते हैं। पिछले वर्ष इस में कोई ५०० कोढ़ी थे, जिन का व्यय लगभग ६० हज़ार रुपए वार्षिक था। इस संस्था को सरकार भी कुछ आर्थिक सहायता देती है।

(४) अन्य संस्थाए

(क) प्रांतीय हिंदू सभा

यह संस्था संवत् १९८१ वि० (सन् १९२४ ई०) में काशी में स्थापित हुई थी। परंतु शीघ्र ही वहां से उठ कर प्रयाग चली आई। इस का मुख्य उद्देश्य हिंदू-संगठन है।

(ख) प्रांतीय ज़मींदार एसोसिएशन

यह संस्था सूबा आगरा के ज़मींदारों का एक मंडल है, जिस का जन्म सन् १९१४ में हुआ था। जो ज़मींदार साल में ५०००) या उस से अधिक मालगुज़ारी देते हैं, वे इस संस्था के सभासद हो सकते हैं, परंतु उन को अपनी मालगुज़ारी पर ४ आना सैकड़ा के हिसाब से वार्षिक चंदा देना पड़ता है, जिस का चतुर्थांश उन के बच्चों के शिक्षा-संबंधी कामों में व्यय किया जाता है। सन् १९२७ में इस मंडल के अनुरोध से एक क़ानून बन गया है, जिस के अनुसार बाक़ीदारों से चंदा मालगुज़ारी के साथ तहसीलदारों के द्वारा वसूल किया जा सकता है।

सन् १९२८ में जार्ज टाउन में इस के विशाल भवन का उद्घाटन इस प्रांत के तत्कालीन गवर्नर सर विलियम मेरिस के द्वारा हुआ था।

(ग) व्यापार-मंडल (ट्रेड एसोसिएशन)

इस मंडल की स्थापना ४० वर्ष पहले बतलाई जाती है। इस का लक्ष्य स्थानीय व्यापारियों के स्वत्वों की रक्षा करना है। इस मंडल को अपनी ओर से स्थानीय म्यूनिसिपल बोर्ड में एक सभासद भेजने का अधिकार है।

(घ) चिकित्सक-संघ मेडिकल एसोसिएशन

यह संघ १६२० से स्थापित हुआ है। इस का उद्देश्य इस के नाम ही से प्रकट है। यह संघ भी एक मेंबर म्यूनिसिपल बोर्ड में भेज सकता है।

(ङ) ज़िला कृषिसंघ

इस की स्थापना १६२८ में हुई है। इस का काम कृषि की उन्नति करना है। माघ मेले में इस की ओर से एक प्रदर्शिनी हुआ करती है तथा गाँवों में भी जा-जा कर किसानों को कृषि-संबंधी वस्तुओं के दिखाने और उन को समझाने का प्रबंध किया जाता है।

(च) सदाव्रत

इस ज़िले में केवल गंगापार में ३ ऐसे सदाव्रत हैं, जहां साधुओं और भिक्षुकों को भोजन अथवा उस की सामाग्री धर्मार्थ दी जाती है। एक फूलपुर के प्रसिद्ध रईस स्वर्गीय राय मानिकचंद का है, जिन की स्थानापन्न अब उन की पुत्र-वधू श्रीमती गोमती बीबी हैं।

दूसरा तहसील हँडिया में 'गोपाललाल ट्रस्ट' का सदाव्रत है। इस का प्रबंध सरकारी है, जो वहां के तहसीलदार की देख-रेख में होता है। यहां से कुछ परमित लोगों को भोजन की सामग्री मिलती है।

मुंशी गोपाललाल तहसील हँडिया में तहसीलदार थे, जो गया के रहने वाले थे। उन के कोई संतान न थी। उन्हों ने हँडिया के निकट ग्रैंड ट्रंक रोड के किनारे एक बड़ी भूमि मोल लेकर एक बाग़ लगाया और उस में ठाकुर-द्वारा स्थापित किया। तत्पश्चात् एक सराय बनवाई और एक बड़ा बाज़ार लगवाया, जिस का नाम उन्हों ने 'गोपालगंज' रक्खा था परंतु वह पीछे 'मुंशीगंज' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। सन् १८५६ में उन्हों ने एक ट्रस्ट बना कर प्रबंध के लिए यह कुल संपत्ति सरकार के हवाले कर दी। उसी की आय से यह सदाव्रत दिया जाता है। नगर के हिंदू अनाथालय को भी उस से कुछ सहायता मिलती है, तथा अन्य प्रकार के धर्मार्थ कामों में कुछ व्यय होता है।

फूलपुर और हँडिया के दोनों सदाव्रत पुराने हैं। तीसरा सदाव्रत झूँसी में स्वगीय लाला किशोरीलाल जी का था, जो लग भग २७ वर्ष चल कर सन् १६३४ ई० में बंद हो गया।

(छ) अजायब-घर

सन् १६३१ से स्थानीय आरकियालोजीकल सोसाइटी ने एक अजायब-घर खोला है, जो उस के योग्य सेक्रेटरी तथा म्यूनिसिपल बोर्ड के इक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर राय बहादुर पंडित ब्रजमोहन व्यास के विशेष उद्योग का फल है। अभी यह संग्रहालय बोर्ड ही के दफ़्तर के एक भाग में है। इस में पुरातत्व-संबंधी वस्तुओं तथा पाषाण-मूर्तियों का अच्छा संग्रह है।

सातवां अध्याय

प्रयाग नगर का विशेष वर्णन

(१) भौगोलिक स्थिति

इस अध्याय में वर्तमान नगर का वृत्तांत लिखने से पहले हम प्राचीन प्रयाग की स्थिति पर कुछ विचार करना चाहते हैं। यद्यपि हमारे पास इस की कोई लेखबद्ध सामग्री नहीं है, फिर भी प्रयाग के भूमि की अवस्था देख कर हम उस के विषय में बहुत कुछ आनुमानिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

यह स्पष्ट है कि प्रयाग प्राचीन समय में कोई नगर न था, किंतु एक तपोभूमि थी; कर्नलगंज के निकट भरद्वाज ऋषि का आश्रम था। यदि प्रयाग की कोई बस्ती उस समय रही होगी तो वह उसी के निकट रही होगी। भरद्वाज के आगे पूर्व की ओर दारागंज और क़िले तक की भूमि एक दम नीची होती चली गई है। इस के खेतों की मिट्टी में बालू का अंश अधिक पाया जाता है। इस से जान पड़ता है कि पहले भरद्वाज-आश्रम से झूँसी तक बराबर गंगा का क्षेत्र था। इतने बड़े मैदान में गंगा का जल सदैव नहीं फैल सकता था, परंतु वर्षा में अवश्य भर जाता रहा होगा। भरद्वाज-आश्रम से दक्षिण की भूमि भी दर्भंगा-कैसल के कुछ आगे तक लगभग उसी के बराबर ऊँची है। फिर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जावें इस ऊँची भूमि का किनारा पश्चिम की ओर बढ़ता चला गया है। यहां तक कि चौक से पूर्व थोड़े ही दूर से बहुत नीची भूमि मिलने लगती है। उधर बड़ी सड़क (ग्रैंड ट्रंक रोड) से दक्षिण ऊँचामंडी से आगे सभी महल्ले बहुत नीचे हैं। इस से पता चलता है कि वहां पहले यमुना का क्षेत्र रहा होगा। और इन दोनों नदियों का संगम चौक से पूर्व और दक्षिण अहियापुर में कहीं रहा होगा।

फिर धीरे-धीरे इन स्थानों के पूर्व दारागंज और क़िले तक रेत पड़ गया और गंगा उस से भी आगे झूँसी के नीचे चली गई। उधर जमुना के स्थान में भी कुछ परिवर्तन हुआ और वह दक्षिण की ओर कुछ बढ़ गई।

जहां अब बेनी बाँध है वहां की भूमि कुछ ऊँची रही होगी। इस लिए उस के उत्तरी कोने पर बासुकी और दक्षिण जहां किला है, अक्षयवट आदि स्थापित हुए और उसी के निकट प्रयाग की भी कुछ बस्ती हो गई।

हुएन-साँग ने सातवीं शताब्दी में प्रयाग का परिदर्शन यह लिखा है कि अक्षयवट और उस के निकट का देव-मंदिर नगर के भीतर था, यद्यपि वर्तमान बाँध अकबर के समय का बतलाया जाता है, परंतु उस के पहले भी वहां की भूमि कुछ ऊँची अवश्य रही होगी, जिस से वहां की बस्ती वर्षा के दिनों में भी गंगा की बाढ़ से बची रहती थी।

सोलहवीं शताब्दी में जब अकबर ने नया शहर ऊँची भूमि पर कुछ पश्चिम हटकर बसाया तो बहुत से पुराने प्रयाग के लोग उठ कर वहां जा बसे। किले से पश्चिम जमुना के पुल तक उसी समय के अब तक बहुत से पक्के घाटों के चिह्न पाए जाते हैं।

प्रयाग नगर में कई एक नाले पश्चिम से पूर्व की ओर ढलवान होते चले गए हैं। शहर के भीतर वे गहरे मालूम होते हैं, परंतु कुछ दूर पूर्व पहुँच कर, जहां से नीची भूमि आरंभ होती है, पृथ्वी के बराबर हो गए हैं। इस समय प्रयाग में सब से ऊँची भूमि वह है जहां पर म्योर सेंट्रल कालेज का मीनार है। उस के बाद ख़ुसरो बाग़ की भूमि शहर में सब से ऊँची मानी जाती है।

(२) नगरों के कुछ महल्लों का इतिहास

वर्तमान प्रयाग का बड़ा भाग अकबर के समय में बसा था, परंतु अतरसुइया बहुत पुराना महल्ला मालूम होता है, जिस का नाम अत्रि ऋषि और उन की स्त्री अनुसूया जी के नाम पर रक्खा गया है। इस महल्ले में एक जोगी के यहां पत्थर की शिला पर एक पद-चिह्न बना हुआ है जो अत्रि ऋषि का बतलाया जाता है। खुल्दाबाद जहाँगीर का बसाया हुआ है। शहर में जो महल्ला अब शहराराबाग़ कहलाता है वहां भी जहाँगीर ने एक बाग़ इसी नाम से बनवाया था, परंतु अब उस का कोई चिह्न नहीं रहा, दारागंज दारा-शिकोह के नाम पर बसा है।

कटरा औरंगज़ेब के समय में जयपुर के महाराज जयसिंह सवाई ने बसाया था। यह जगह और इस के निकटवर्ती स्थान उन को माफ़ी में मिले थे। कटरे की आबादी में अब तक ३५ एकड़ भूमि जयपुर-राज्य के क़ब्ज़े में है और उस के निकट के दो गाँव राजापुर और फ़तेहपुर बिछुआ की मालगुज़ारी उन को मिलती है।

कहते हैं मुसलमानी राज्य के समय यहां १२ दायरे (फ़क़ीरों के आश्रम) और १८ सराएं थीं। उन में से कुछ दायरे अब तक मौजूद हैं और इसी कारण कुछ लोग इस नगर को 'फ़क़ीराबाद' भी कहते थे।

महल्ला चक मुसलमानी राज्य के अंत में बसा है। कोई शाह अब्दुल जलील थे, जिन के विषय में कहा जाता है कि अरब से आए थे। उन्हीं को इस स्थान की भूमि माफ़ी
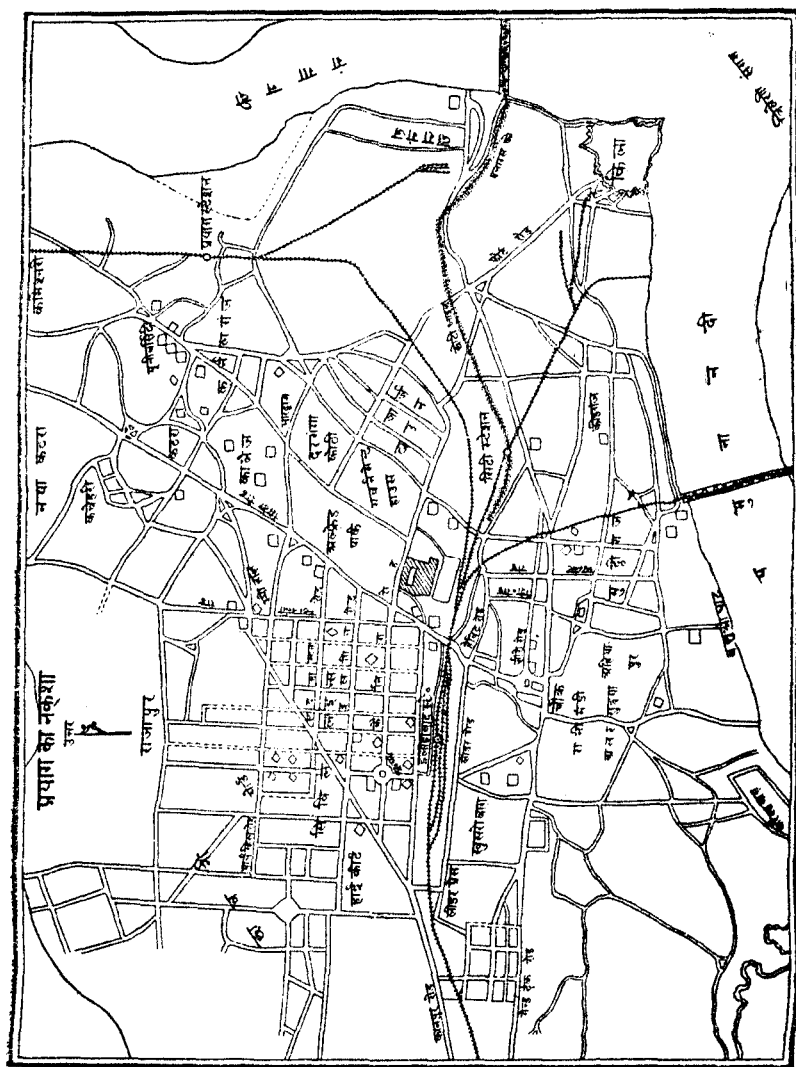
में मिली थी। सन् १७०२ ई० में उन का देहांत हुआ था। उन का पक्का मक़बरा इसी महल्ले में बना हुआ है।

मुट्ठीगंज और कीडगंज अंग्रेज़ी राज्य के आरंभ में बसे थे। मिस्टर आर० अहमुटी प्रयाग के पहले कलेक्टर थे, और जनरल कीड क़िले के कमांडेंट थे। इन्हीं के नाम पर इन महल्लों की बस्तियां बसी थीं।

(३) आधुनिक परिवर्तन

चौक का पुराना रूप यह था कि चारों ओर कच्चे घर थे। कोई-कोई मकान पक्के और कुछ बिना प्लास्टर के पक्की इंटों के थे। बीच में एक बड़ी गड़ही थी, जिस में इधर-उधर का गंदा पानी बह कर इकट्ठा होता था। लोग उस को 'लाल डिग्गी' कहते थे। उस के किनारे कुछ बिसाती, कुँजड़े और अन्य प्रकार के छोटे-मोटे दुकानदार चबूतरों पर बैठते थे।

जहां अब जान्स्टनगंज की चौड़ी सड़क है, वहां पहले घनी बस्ती थी। चौक से कटरे की ओर जाने का पुराना रास्ता ठठेरी बाज़ार से शाहगंज हो कर था, जो अब लीडर रोड में मिल गया है।

विलियम जान्स्टन प्रयाग के एक पुराने कलक्टर थे। उन्हीं ने सन् १८६४ में चौक से उत्तर के मकानों को खोदवा कर कटरा तक चौड़ी सड़क (सिटी रोड) बनवाई थी। शहर में इस सड़क के किनारे का महल्ला उन्हीं के नाम से 'जान्स्टनगंज' कहलाता है।

वर्तमान सब्ज़ी मंडी, चौकवाली गड़ही, पटवा कर सन् १८७३ में बाबू रामेश्वर राय चौधरी ने बनवाई थी। बाबू साहब कमसरियट के एक प्रसिद्ध गुमाश्ता थे। उन्हों ने यह बाज़ार बनवा कर म्यूनीसिपैलिटी को दे दिया था।

जहां अब कंपनीबाग़ (अल्फ्रे ड) पार्क है उस के दक्षिणीय भाग में सम्दाबाद के नाम से मेवातियों का एक गांव था। सन् १८५७ के ग़दर में उन लोगों ने बड़ा उपद्रव मचाया इस लिए उन का गांव उजाड़ दिया गया। गवर्नमेंट हाउस के पास भी एक गांव छीतपुर के नाम से था। वह भी कुछ गवर्नमेंट हाउस में और कुछ कंपनीबाग़ में आ गया।

सर विलियम म्योर को प्रयाग से वैसा ही स्नेह था जैसा सर हारकोर्ट बटलर को लखनऊ से था। अतः उन के समय में प्रयाग की बहुत शोभा बढ़ी। पुराने हाईकोर्ट इत्यादि के चारों विशाल भवन, गवर्नमेंट प्रेस, रोमन कैथोलिक चर्च, पत्थर का बड़ा गिरजा (आल् सेंट्स कैथीड्रल) इत्यादि बड़ी-बड़ी इमारतें सब उन्हीं के समय में यहां बनीं, परंतु उन का सब से महत्वपूर्ण स्मारक 'म्योर-सेंट्रल कालेज' है जो अब यूनीवर्सिटी कालेज कहलाता है।

सन् १६०६ में लूकरगंज बसा। पहले इस का नाम 'लाटूश गंज' होने वाला था परंतु सर जेम्स डिग्स लाटूश एक साधु स्वभाव के लेफ़्टनेंट गवर्नर थे। उन्हों ने गवर्नमेंट प्रेस के तत्कालीन सुप्रेन्टेन्डेंट मि० एफ़ लूकर के नाम पर इस का नामकरण कर दिया।

उधर पायोनियर के संस्थापक सर जार्ज एलन के नाम से एलनगंज और म्यूनी-सिपल बोर्ड के चेयरमैन मि० ममफ़ोर्ड के नाम से ममफ़ोर्डगंज बसा।

सन् १६०६ में हिंदुस्तानियों के लिए नया सिविल स्टेशन सोहबतिया बाग़ में बसा और उस का नाम जार्ज टाउन रक्खा गया।

सन् १६११ में घनी बस्ती के बीच से हीवेट रोड निकाली गई। और फिर पाँच वर्ष पीछे उसी सड़क से दो और सड़कें दक्षिण की ओर क्रास्थवेट रोड और शिवचरन लाल रोड के नाम से निकलीं। ये दोनों महाशय म्यूनीसिपल बोर्ड के चेयरमैन रहे थे।

सन् १६२३ में सराय मीरख़ाँ की सड़क चौड़ी हो कर उस के कोने पर चौक में इंप्रूवमेंट ट्रस्ट की ओर से तीन खंड की ऊंची दूकान बनाई गई। सन् १६२७ से नया कटरा आबाद हुआ और सन् १६२६ में ज़ीरो रोड निकाली गई, जिस का नाम १६३१ में म्यूनीसिपल बोर्ड के चेयरमैन के नाम से कामताप्रसाद कक्कड़ रोड रक्खा गया।

सन् १६३१ में चौक में अलाबंदे के फाटक में एक छोटा-सा पार्क बनाया गया और उस का नाम स्वर्गीय मौलाना महम्मद अली के नाम पर महम्मद अली पार्क रक्खा गया।

(४) सिविल स्टेशन

पहले अंग्रेज़ों की आबादी क़िले के पश्चिम जमुना के किनारे पर थी। फिर कुछ दिन पीछे कर्नलगंज के पूर्व और उत्तर सिविल स्टेशन बना। ग़दर के पीछे शहर के निकट विद्रोहियों के कई गांव ज़ब्त हुए। रेलवे स्टेशन से उत्तर विस्तृत स्थान में वर्तमान सिविल-लाइंस तत्कालीन कमिश्नर मि० थार्नहिल के प्रबंध से बनाया गया। इस का पूरा नाम उस समय के वायसराय के नाम पर कैनिंग-टाउन है जिस को लोग संक्षिप्त कर के कैनिंगटन कहते हैं। यह डेढ़ मील के लगभग लंबा और इतना ही चौड़ा है। प्रयाग में यह एक बहुत ही सुंदर बस्ती है, जिस की प्रशंसा अनेक यात्रियों ने की है। उन में से कुछ इसी पुस्तक में पूर्वार्ध के चौथे अध्याय में हम ने उद्धृत किए हैं।

(५) छावनी

यहां की पुरानी छावनी कटरा और कर्नलगंज के पास थी। कटरे के दक्षिण जहां अब दर्भंगा कैसल है, वहां से लेकर पश्चिम रोमन कैथोलिक गिरजे तक गोरों की बारिकें थीं। कटरे के उत्तर हिंदुस्तानी पल्टन थी। इधर कर्नलगंज सदर बाज़ार था और उधर कमिश्नरी के उत्तर और पूर्व तोपख़ाना बाज़ार था। उस से पश्चिम की ओर जहां अब घोड़-दौड़ का मैदान है विलिंगटन बैरिक थी। उस में तोपख़ाना रहता था। उस से उत्तर रिसाला था और सब से उत्तर गंगा किनारे मैगज़ीन था, जो अब तक बारूदख़ाना के नाम से प्रसिद्ध है। ग़दर के पश्चात् यहां से कुल छावनी सिवाय रिसाले के नए कंटोंमेंट में चली गई। फिर सन् १६२१ के पश्चात् रिसाला भी वहीं चला गया।

यह नया कंटोन्मेंट भी ख़ूब लंबा-चौड़ा है। इस में ग्रासफ़ार्म भी है। इस के अंदर मेकफ़र्सन पार्क तथा मेकफ़र्सन झील देखने योग्य है। इस की जन-संख्या सन् १६३१ में १००१६ थी।

(६) नगर की जन-संख्या तथा जनता

प्रयाग नगर की जन-संख्या जब से हमें अंक मिले हैं, इस प्रकार है:—

सन्	संख्या
१८५३	७२,०९३
१८६५	१,०५,९२६
१८७२	१,४३,६९३
१८८१	१,६०,११८
१९०१	१,७२,०३२
१९११	१,७१,६९७
१९२१	१,५७,२२०
१९३१	१,७३,८९५

पिछली सन् १९३१ की जन-संख्या का ब्यौरा मतमतांतरों के भेद से इस प्रकार है:- हिंदू १,१४,१५०; जैन ३०२; सिक्ख १०३; मुसलमान ५४,१८९; ईसाई ४,९९२; अन्य १५९।

प्रत्येक एकड़ में आबादी का औसत २६ होता है। आबादी की दृष्टि से इस प्रांत में प्रयाग का पाँचवां स्थान है। अर्थात् लखनऊ, कानपुर, बनारस और आगरे से प्रयाग की जन-संख्या कम है।

अन्य प्रांत के निवासियों में यहां बंगालियों की संख्या अधिक है और कर्नलगंज इन का केंद्र है। इन से कम काशमीरी तथा दक्षिणीय ब्राह्मण हैं। काशमीरियों का कोई विशेष स्थान नहीं है। अधिकांश महाराष्ट्रीय दारागंज में रहते हैं। पंडे या प्रागवाल दारागंज कीडगंज और अहियापुर में अधिक रहते हैं। खत्रियों का केंद्र गंगादास के चौक में, अग्रवालों का महाजनी टोले में, जैनियों का चंद के कुवां पर, भार्गवों का त्रिपौलिया और मीरगंज में और कायस्थों का बादशाही मंडी तथा अहियापुर में है। दरियाबाद, अटाला, कोइलहनटोला, बख़्शीबाज़ार, नईबस्ती, चक और बहादुरगंज मुसलमानों के महल्ले हैं। ईसाइयों की बस्ती म्योराबाद और मुट्ठीगंज में है।

(७) जन्म, मृत्यु तथा जनता का स्वास्थ्य

नवंबर से फ़रवरी तक लोगों का स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा रहता है। अप्रैल से जुलाई तक तथा अक्तूबर मामूली महीने हैं। अगस्त, सितंबर और मार्च में फ़सली बीमारियां अधिक होती हैं।

पाँच वर्ष के जन्म-मृत्यु सूचक अंक तथा एक रेखाचित्र पाठकों की जानकारी के लिए अगले पृष्ठ पर दिए जाते हैं। यह बात जानने योग्य है कि पड़ोस के अन्य बड़े नगरों की अपेक्षा प्रयाग की मृत्यु-संख्या कम है, जैसा कि निम्नलिखित तुलनात्मक अंकों से विदित होता है।

	प्रयाग	लखनऊ	कानपुर	काशी
१० हजार की आबादी पर सन् १९१७ से ३ वर्ष की मृत्यु-संख्या की औसत	३१·०३	४०·३६	४०·४८	५१·२७

सन् १९०९ में हिंदुस्तानियों के लिए नया सिविल स्टेशन सोहबतिया बाग़ में बसा और उस का नाम जार्ज टाउन रक्खा गया।

सन् १९११ में घनी बस्ती के बीच से हीवेट रोड निकाली गई। और फिर पाँच वर्ष पीछे उसी सड़क से दो और सड़कें दक्षिण की ओर क्रास्थवेट रोड और शिवचरन लाल रोड के नाम से निकलीं। ये दोनों महाशय म्यूनीसिपल बोर्ड के चेयरमैन रहे थे।

सन् १९२३ में सराय मीरख़ाँ की सड़क चौड़ी हो कर उस के कोने पर चौक में इंप्रूवमेंट ट्रस्ट की ओर से तीन खंड की ऊंची दूकान बनाई गई। सन् १९२७ से नया कटरा आबाद हुआ और सन् १९२९ में ज़ीरो रोड निकाली गई, जिस का नाम १९३१ में म्यूनीसिपल बोर्ड के चेयरमैन के नाम से कामताप्रसाद कक्कड़ रोड रक्खा गया।

सन् १९३१ में चौक में अलावंदे के फाटक में एक छोटा-सा पार्क बनाया गया और उस का नाम स्वर्गीय मौलाना महम्मद अली के नाम पर महम्मद अली पार्क रक्खा गया।

(४) सिविल स्टेशन

पहले अंग्रेज़ों की आबादी क़िले के पश्चिम जमुना के किनारे पर थी। फिर कुछ दिन पीछे कर्नलगंज के पूर्व और उत्तर सिविल स्टेशन बना। ग़दर के पीछे शहर के निकट विद्रोहियों के कई गांव ज़ब्त हुए। रेलवे स्टेशन से उत्तर विस्तृत स्थान में वर्तमान सिविल-लाइंस तत्कालीन कमिश्नर मि० थार्नहिल के प्रबंध से बनाया गया। इस का पूरा नाम उस समय के वायसराय के नाम पर कैनिंग-टाउन है जिस को लोग संक्षिप्त कर के कैनिंगटन कहते हैं। यह डेढ़ मील के लगभग लंबा और इतना ही चौड़ा है। प्रयाग में यह एक बहुत ही सुंदर बस्ती है, जिस की प्रशंसा अनेक यात्रियों ने की है। उन में से कुछ इसी पुस्तक में पूर्वार्ध के चौथे अध्याय में हम ने उद्धृत किए हैं।

(५) छावनी

यहां की पुरानी छावनी कटरा और कर्नलगंज के पास थी। कटरे के दक्षिण जहां अब दर्भंगा कैसल है, वहां से लेकर पश्चिम रोमन कैथोलिक गिरजे तक गोरों की बारिकें थीं। कटरे के उत्तर हिंदुस्तानी पल्टन थी। इधर कर्नलगंज सदर बाज़ार था और उधर कमिश्नरी के उत्तर और पूर्व तोपख़ाना बाज़ार था। उस से पश्चिम की ओर जहां अब घोड़-दौड़ का मैदान है बिलिंगटन बैरिक थी। उस में तोपख़ाना रहता था। उस से उत्तर रिसाला था और सब से उत्तर गंगा किनारे मैगज़ीन था, जो अब तक बारूदख़ाना के नाम से प्रसिद्ध है। ग़दर के पश्चात् यहां से कुल छावनी सिवाय रिसाले के नए कंटोंमेंट में चली गई। फिर सन् १९२१ के पश्चात् रिसाला भी वहीं चला गया।

यह नया कंटोन्मेंट भी ख़ूब लंबा-चौड़ा है। इस में ग्रासफ़ार्म भी है। इस के अंदर मेकफ़र्सन पार्क तथा मेकफ़र्सन झील देखने योग्य है। इस की जन-संख्या सन् १९३१ में १००१९ थी।

(६) नगर की जन-संख्या तथा जनता

प्रयाग नगर की जन-संख्या जब से हमें अंक मिले हैं, इस प्रकार है:—

सन्	संख्या
१८५३	७२,०९३
१८६५	१,०५,९२६
१८७२	१,४३,६९३
१८८१	१,६०,११८
१९०१	१,७२,०३२
१९११	१,७१,६९७
१९२१	१,५७,२२०
१९३१	१,७३,८९५

पिछली सन् १९३१ की जन-संख्या का ब्यौरा मतमतांतरों के भेद से इस प्रकार है:- हिंदू १,१४,१५०; जैन ३०२; सिक्ख १०३; मुसलमान ५४,१८९; ईसाई ४,९९२; अन्य १५९।

प्रत्येक एकड़ में आबादी का औसत २६ होता है। आबादी की दृष्टि से इस प्रांत में प्रयाग का पाँचवां स्थान है। अर्थात् लखनऊ, कानपुर, बनारस और आगरे से प्रयाग की जन-संख्या कम है।

अन्य प्रांत के निवासियों में यहां बंगालियों की संख्या अधिक है और कर्नलगंज इन का केंद्र है। इन से कम काशमीरी तथा दक्षिणीय ब्राह्मण हैं। काशमीरियों का कोई विशेष स्थान नहीं है। अधिकांश महाराष्ट्रीय दारागंज में रहते हैं। पंडे या प्रागवाल दारागंज कीडगंज और अहियापुर में अधिक रहते हैं। खत्रियों का केंद्र गंगादास के चौक में, अग्रवालों का महाजनी टोले में, जैनियों का चंद के कुवां पर, भार्गवों का त्रिपौलिया और मीरगंज में और कायस्थों का बादशाही मंडी तथा अहियापुर में है। दरियाबाद, अटाला, कोइलहनटोला, बख्शीबाज़ार, नईबस्ती, चक और बहादुरगंज मुसलमानों के महल्ले हैं। ईसाइयों की बस्ती म्योराबाद और मुट्ठीगंज में है।

(७) जन्म, मृत्यु तथा जनता का स्वास्थ्य

नवंबर से फ़रवरी तक लोगों का स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा रहता है। अप्रैल से जुलाई तक तथा अक्तूबर मामूली महीने हैं। अगस्त, सितंबर और मार्च में फ़सली बीमारियां अधिक होती हैं।

पाँच वर्ष के जन्म-मृत्यु सूचक अंक तथा एक रेखाचित्र पाठकों की जानकारी के लिए अगले पृष्ठ पर दिए जाते हैं। यह बात जानने योग्य है कि पड़ोस के अन्य बड़े नगरों की अपेक्षा प्रयाग की मृत्यु-संख्या कम है, जैसा कि निम्नलिखित तुलनात्मक अंकों से विदित होता है।

	प्रयाग	लखनऊ	कानपुर	काशी
१० हजार की आबादी पर सन् १९२७ से ३ वर्ष की मृत्यु-संख्या की औसत	३१·०३	४०·३६	४०·४८	५१·२७

प्रयाग नगर में ५ वर्ष की जन्म और मृत्यु की संख्या

सन्	जन-संख्या			१०० की आबादी पर जन्म-संख्या	मृत्यु निम्नलिखित कारणों से									१००० की आबादी पर मृत्यु संख्या			बच्चों की मृत्यु-संख्या	बच्चों की मृत्यु १००० की संख्या पर	मृत्यु १००० की आबादी पर	
	लड़के	लड़कियाँ	कुल		हैज़ा	चेचक	प्लेग	ज्वर	दस्त	साँस के रोग	आघात	अन्य कारण	कुल	हैज़ा	चेचक	प्लेग			साल के भीतर	गत ५ वर्ष की औसत
१९२३	३,४०८	३,११४	६,५२२	४४·७९	११	१६३	४	१६४४	२८३	१२११	३९	१७३६	५,०६६	·०७	१·१२	·०३	१८२६	२७१·९७	३५,००	४५·५८
१९२४	३,४०३	३,१७७	६,५८०	४५·११	५३	३६	२	१३९१	२७८	१०४७	२७	१७१५	४,५४९	·३६	·२५	·०१	१५७५	२३१·३९	३१·२४	३६·३९
१९२५	३,१३०	२,९९३	६,१२३	४२·०५	११	१५	१	११८१	१९२	१०५७	२९	१५३२	४,०१८	·०७	·१०	·०१	१४४६	२३६·१६	२७·५९	३४·५४
१९२६	३,३८५	३,०६०	६,४४५	४४·२६	१८	१०७	१३	१४१०	२७२	११६५	२६	१६४४	४,६५५	.१२	·७३	·०९	१५७३	२४४·०६	३१·९७	३२·३३
१९२७	३,५५८	३,२५२	६,८१०	४६·७७	७५	११९	...	१४७४	२४३	११५८	३१	१५४७	४,६४७	·५१	·८२	..	१५७०	२३०·५४	३१·९१	३०·७७
योग	१६८८४	१५५९६	३२४८०	२२३·०६	१६८	४४०	२०	७१०५	१२६८	५६३८	१५२	८१७४	२२९६५	१·१३	३·०२	·१४	७९९०	१२३०·६	१५७·७१	१७९·६१
पाँच वर्ष का औसत	३,३७७	३,११९	६,४९६	४४·६१	३४	९८	४	१४२१	२५४	११२७	३०	१६३५	४,५९३	·२३	·६०	·३	१५९८	२४६·२	३१·३४	३५·९२

(८) नगर के ऐतिहासिक स्मारक

(१) अशोक-स्तंभ

प्रयाग में सब से प्राचीन वस्तु जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व की है, वह सम्राट् अशोक का स्तंभ है। यह एक पत्थर का छिला हुआ गोला खंभा है, जिस का भार ४६३ मन और लंबाई ३५ फ़ीट है। नीचे का व्यास लगभग ३ फ़ीट है, परंतु ऊपर जा कर क्रमशः कम होते-होते २ फ़ीट २ इंच रह गया है। इस के ऊपर का सिर नहीं है। अनुमान किया जाता है कि अशोक के अन्य स्तंभों के सदृश वह घंटाकार था और उस पर सिंह का सिर रहा होगा।

इस के ऊपर जो अभिलेख अंकित है उन से मालूम होता है कि पहले यह स्तंभ सम्राट् अशोक की आज्ञा से कौशांबी में ईस्वी सन् से २३२ वर्ष पहले खड़ा किया गया था। अब यह प्रयाग के क़िले में है। यहां कौन उठा कर कब लाया ? इस का कुछ पता नहीं है। अनुमान किया जाता है कि फ़ीरोज़शाह कौशांबी से यहां लाया होगा, क्योंकि वह ऐसे कई स्तंभ दिल्ली ले गया था। फ़ीरोज़शाह का समय सन् १३५१ से १३८८ तक है। इसी बीच में किसी समय यह स्तंभ यहां लाया गया होगा।

इस पर सम्राट् अशोक, उन की साम्राज्ञी, समुद्रगुप्त और जहाँगीर के खुदवाए हुए अभिलेख हैं। तथा बीरवर का एक लेख हिंदी में भी है। इन के अतिरिक्त जब यह स्तंभ पृथ्वी पर पड़ा था, तब उस समय के बहुत से यात्रियों के नाम और सन्-संवत् इस पर अंकित हैं, जिन का ब्यौरा इस प्रकार है :—

७ लेख संवत् १२७६ से १३६८ तक के अर्थात् सन् १२४० से १३४० ई० तक के
५ ,, ,, १५०१ ,, १५८४ ,, ,, ,, १४४४ ,, १५२७ ,,
३ ,, ,, १६३२ ,, १६४० ,, ,, ,, १५७५ ,, १५८३ ,,
३ ,, ,, १८६४ के ,, १८०७ के

इतने लंबे समय में यह स्तंभ कई बार गिराया और खड़ा किया गया। अब यह वर्तमान अवस्था में सन् १८३८ में खड़ा किया गया है।

पहले यहां लोग इस को 'भीम की गदा' कहते थे। बहुत दिनों तक किसी को यह पता न था कि इस पर क्या लिखा है। सब से पहले जेम्स प्रिंसेप ने इस की स्थिति और अभिलेखों पर अपना विचार प्रकट किया था। फिर उस के पश्चात् कई विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और अंत में उन्हों ने बड़े परिश्रम से पंडित राधाकांत शर्मा की सहायता से इस के कुल लेखों को पढ़ डाला।

इस के मुख्य-मुख्य लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व के हैं। अतः उन की प्रतिलिपि शुद्ध अनुवाद सहित हम इस पुस्तक में देते हैं।

सब से पहले अशोक के लेख से हम आरंभ करते हैं। यह वास्तव में ६ आदेश

हैं, जो उस ने अपनी प्रजा के हित के लिए अंकित कराए थे। इस की भाषा प्राकृत अर्थात् यहां की तत्कालीन जनता के बोल-चाल की भाषा है और लिपि ब्राह्मी है।

इस के कुछ अंश मुसलमानों के समय में छीले और बिगाड़ दिए गए हैं, फिर भी विद्वानों ने अशोक के अन्य स्थानों के इसी प्रकार के स्तंभ-लेखों से मिला कर किसी प्रकार से इस की पूर्ति की है।

इस स्तंभ का चित्र और उस पर अशोक के समय की मूल लिपि की आकृति अन्यत्र देखिए।

प्रयाग के स्तंभ पर सम्राट् अशोक के अभिलेख

(मूल नागरी अक्षरों में)

(१)

(१) देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा [।] सडुवीसतिवसाभिसितेन म (मे) इयं धंमलिपि लिखापिता [।] हिदत पालते द (दु) संपटिपादा (द) ये

(२) अंनत अगाय धंमकामताय अगाय पलीखाय अग (गा) य सुसूसाया अगेन भयेन अगेन उसाहेन [।] एस चु खे (खो) मम अनुसथिना (या)

(३) धंमापेखा धंमकामत (ता) च सुवे सुवे वढिता वढिसति च (चे) वा [।] पुलिसा पि मे उकसा च गेवया च मझिमा च अनुविधीयंति संपटिपादयंति च

(४) अलं चपलं समादपयितवे [।] हेमेव अंतमहामाता पि [।] एसा हि विधि या इयं धंमेना (न) पालना धंमेन म (वि) ध (धा) ने धंमेनं (न) सुखीयना धंम (मे)न ग (गु) नि (ति) ते (ति) चि (च) [।]

हिंदी अनुवाद

(१)

देवताओं के प्यारे[1] प्रियदर्शी[2] राजा ने ऐसा कहा है[3], (ऐसा आदेश दिया है कि), अपने अभिषेक के २६ वर्ष पर मैंने यह धर्मलेख लिखवाया है। बिना उत्तम धर्म-कामना, बिना उत्तम परीक्षा, बिना उत्तम सेवा, बिना (पापों से) बड़े भय (और) बिना बड़े साहस के इस लोक और परलोक का काम बनना कठिन है। इस मेरे धर्म की शिक्षा से अपनी-अपनी जगह धर्म की आवश्यकता और धर्म की कामना बढ़ी और बढ़ेगी। मेरे अच्छे, बुरे और मध्यम (विचार के) पुरुष इस का अनुकरण और आचरण करते हैं, जिस से कि चंचल लोग भी धर्म पर चलें। इसी प्रकार मेरे बड़े अधिकारी भी करते हैं, क्योंकि धर्म से पालन, धर्म से न्याय, धर्म से सुख और धर्म से रक्षा की यही विधि है।

---

[1] देवानां प्रिय उस समय राजाओं की एक सम्मान-सूचक उपाधि थी। इस का भावार्थ हिंदी में महाराजाधिराज, समझना चाहिए।

[2] यह महाराज अशोक की विशेष पदवी थी।

[3] यह एक रूढ़ि शब्द 'रज्जुक' का अनुवाद है, जो उस समय बड़े-बड़े शासकों के पद (ओहदे) का नाम था।

मूल (नागरी अक्षरों में)

(२)

(५) देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा [।] धंमे साधु [।] कियं चु धंमे ति [।] अपासिनवे बहु कयाने दया द (दा) ने सचे सा (सो) चये [।] चखुदाने पि मु (मे)

(६) बहुविधे दिंने [।] दुपदं (द) चतुपदेसु पखिवालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे आ पानदखिनाये [।] अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि कटानि [।]

(७) एताये मे अठाये इयं धंमलिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजन्तु ची (चि) लठितीं (ती) का च होतू ति [।] येच हेवं संपटिपजिसति स (से) सुकटं कछतीति [।]

(३)

(८) देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा [।] कयानमेव देखवि (ति) इयं मे कयाने कटे ति [।] नो मिन पापकं देखति इयं मे पापके कटे ति इयं वा आसिनवे नामा ति [।]

(९)[1] [दुपाटि वेखे चु खो एसा [।] हेवं चु खो एस देखिये [।] इमानि आसिन वगामीनि नाम अथ चंडिये निठूलिये कोधे माने इस्या कालनेन व हकं मा पलिभसयिसं [।] एस बाढ़ं देखिये इयं मे हिदतिकाये इयं मन मे पालतिकाये]

---

[1] स्तंभ पर ८ वीं पंक्ति के आगे 'जहाँगीर' बादशाह ने छिलवाकर अपनी वंशावली फ़ारसी अक्षरों में खुदवाई है जो १५ वीं पंक्ति तक चली गई है। हम ने इस अभिप्राय से कि पाठक इस बहुमूल्य लेख के आशय से अनभिज्ञ न रहें इन सातों पंक्तियों की पूर्ति देहली सिवालिक के स्तंभ लेख से की है और उस को अलग जानने के लिए इस प्रकार [ ] के बड़े कोष्टक में लिखा है।

हिंदी अनुवाद

(२)

देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है (कि) धर्म श्रेष्ठ है। धर्म क्या है? बुराई से दूर रहना, भलाई, दया, दान, सत्य और पवित्रता। मैंने दो पायों, चौपायों, पक्षियों और जलचरों की ओर भी बहुत तरह से दृष्टि डाली है (ध्यान दिया है)। मैंने अनेक प्रकार से (उन पर) प्राण-दान तक की कृपा की है।[1] (उन के साथ) और कई तरह की भी भलाइयां की हैं।[2] इस लिए यह धर्मलेख लिखवाया गया है कि लोग ऐसा ही करें और यह लेख बहुत दिनों तक बना रहे। जो ऐसा (इस के अनुसार) करेगा वह भलाई का काम करेगा।

(३)

देवताओं के प्यारे प्रिदर्शी राजा ने ऐसा कहा है (कि) मनुष्य भलाई ही देखता है कि 'यह भलाई मैंने की है'। मनुष्य पाप नहीं देखता कि 'यह पाप मैंने किया' या 'यह दोष है'। यह देखना बड़ा कठिन है। (परंतु) इस (अर्थात् मनुष्य) को इस प्रकार भी देखना चाहिए (कि) ये 'बुराइयाँ हैं; जैसे:—कठोरता, निर्दयता, क्रोध, घमंड (और) ईर्ष्या (इत्यादि)'। (यह भी सोचना चाहिए कि कहीं) इन (बुराइयों) के कारण मैं दोषी न बनूँ। यह अच्छी तरह से देखना चाहिए कि यह (कर्म) मेरे इस लोक और यह (कर्म) परलोक के लिए (अच्छा) है।

---

[1] जैसा कि पाँचवें अभिलेख से विदित होगा।

[2] जैसे रोगी पशुओं की चिकित्सा आदि का प्रबंध। देखिए दूसरा अभिलेख।

मूल (नागरी अक्षरों में)

(४)

१०—[देवानं पिये पियदसिलाजा हेवं आहा [।] सडुवीसतिवसाभिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापिता [।]

११—लजूका मे बहूसु पानसतसहसेसु जन सि आयता तेसंये अभिहालेवा [।]

१२—दंडे वा अतपतिये मे कटे किंति लजूका अस्वथ अभीता कंमानि पवतयेवू जनस जानपदसा हितसुखं उपदहेवू अनुग-हिनेवु चा

१३—सुखीयन दुखीयनं जानिसंति धंम-युतेन च [।] वियोवदिसंति जनं जानपदं किंति [।] हिदतंच पालतं च आलाध-येवुति [।] लजूका पिलघंति पटिच-लिटवेमं

१४—पुलिसानिपि मे छंदानि पटिचलिसंति ते पि च कानि वियोवदिसंति येन मं लजूका चघंति आलाधयितवे अथाहि पजं वियताये धातिये निसिजितु

१५—अस्वथे होति वियत-धाति चघति मे पजं सुखंपलिहटवे [।] हेवं ममा लजूका कटा जानपदस हितसुखाय येन एते अभीता अस्वथ संतं अविमना कंमानि पवतये वूति (१)

१६—एतेन मे लजूका[नं] अभि[हा]ल (ले) व (वा) द (दं) डु (डे) व (वा) अत-पतिये अ (क) जि (टे) [।] च (इ) छ (छि) तव (वि) य (ये) ह (हि) ल (ए)

[1] यह बताना कठिन है कि मूल अभि-लेख में कौन पंक्ति कहाँ समाप्त हुई थी? हम ने अनुमान से इस अंश को इन पंक्तियों में वितरण किया है।

हिंदी अनुवाद

(४)

देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है (कि) अपने अभिषेक के २६वें वर्ष मैंने यह धर्म लेख लिखावाया है। मेरे बड़े अधिकारी बहुत से सैकड़ों हज़ारों (=लाखों) प्राणियों पर नियुक्त हैं। उन को न्याय[1] और दंड में मैंने स्वतंत्र कर रक्खा है, जिस से वे लोग बिना स्वार्थ और बिना (बदमाशों के) भय के काम करें; और देश में रहनेवाले लोगों (प्रजा) के हित और सुख का ध्यान रक्खें। तथा (उन पर) कृपा करें। सुख और दुःख को समझें और देशवासियों से धर्म युक्त व्यवहार करें, क्योंकि इस से वे लोग इस लोक और परलोक की आराधना करेंगे।[2] मेरे बड़े अधिकारी मेरी सेवा करना चाहते हैं। और लोग भी मेरी इच्छा के अनुसार काम करना चाहेंगे, वे भी अपने इर्द-गिर्द वालों के साथ उसी तरह व्यवहार करेंगे जिस तरह मेरे बड़े अधिकारी लोग श्रद्धा के मेरी आराधना (सेवा) की अभिलाषा करते हैं। जैसे (कोई अपनी) सन्तान को (किसी) जानी बूझी हुई धाय को सौंप कर संतुष्ट हो जाता है, कि यह (जानी बूझी हुई धाय) मेरे बच्चे को श्रद्धा के साथ सुख से पालेगी। इसी तरह मैंने देश वासियों (=प्रजा) के हित और सुख के लिए बड़े-बड़े अधिकारियों को नियत

[1] कुछ विद्वानों ने न्याय का अर्थ दीवानी और दंड का अर्थ फ़ौजदारी किया है।

[2] अर्थात् इस सुकार्य के द्वारा मानों अपने लोक और परलोक बनाने का यत्न करेंगे।

मूल (नागरी अक्षरों में)	हिंदी अनुवाद
सि (स) [।] कि (किं) (तुं ति) [।] चा (×)	किया है, जिस से वे लोग बिना भय और बिना स्वार्थ के प्रसन्नता के साथ अपना काम करें।
१७—विय (यो) हालसमना (ता) चा (च) सिया दंडसमता च [१]	इस लिए मैंने न्याय और दंड में उन को स्वतंत्र कर दिया है, क्योंकि ऐसा होना ही चाहिए। इस से (न्याय के) व्यवहार में समता रहेगी और दंड में भी समता रहेगी।
आव इते पि च म (मे) आव (तु) ति बंधनबधानं मुनिसानं तीलितदंडानं पतवधानं ति (तिं) नि दिवसि (सा) नि योते दिंने [।]	आज(से) यह भी मेरी आज्ञा है कि जिन क़ैदियों के लिए प्राण-दंड का निर्णय हो चुका है उन को तीन दिन की मुहलत दी जाय,
१८—नातिका वं (व) कानि निस (भ) पयिसंति ज (जी) विताये तानं नासंतं वा निझपयिता दानं दाहंति पालतिकं उपव (वा) सं वा कछ (छं) ति	जिस में उन के भाई-बंधु उन के जीवन के लिए याचना (अपील) कर सकें; अथवा उन का मरना निश्चित समझ कर उन के उद्धार के लिए दान-पुण्य करें, वा परलोक-संबंधी व्रत-उपवास करें।
१९—इछा हि मे हेवं निलुधसि पि कालसि पालतं आलाधय (ये) ठा (तु) [।] जनस च वढति विविध (धे) धंमचलने सयमे दाने (न) सविभागेति।	क्योंकि मेरी इच्छा है कि इस दंड की रुकावट के समय में वे लोग परलोक संबंधी आराधना (कृत्य) कर लें। इस तरह लोगों में कई प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान का प्रचार बढ़ता है। इति।

(५)	(५)
२०—देवानंपिये पियदसी लाजा हेवं आहा [।] सडुवीसा (स) तिवसाभिसितेन मे इमानि जातानि अवधियानि कटानि स (से) यथ सुके सालिका अलुने चकछा (वा) के	देवताओं के प्यारे 'प्रियदर्शी' राजा ने ऐसा कहा है (कि) अपने अभिषेक के २६वें वर्ष में मैंने इन जीवों को अवध्य कर दिया है। (ये जीव न मारे जायँ, ऐसा हुक्म दिया है) वे ये हैं :—तोता, मैना, लाल, चकवा, हंस,
२१—हंस (से) नंदि (दी) मुखे, गोलाटे, जि (ज) तूका, अंबाकी (कि) पिलिका, दुभी (डी), अनठिकमछे वेदव (वे) यक (के) गङ्गाप (पु) प (पु) टके, संकुजमछे, कप (फ)ट[सेय] क (के) प (पं) नससे, पि (सि) मले	नंदीमुख (नीलगाय) गेलाट, चमगादड़, रानी कीड़ी, पहाड़ी कछुआ, दंडी, बिना हड्डी की मछली, तीतर, गंगाकुक्कुट (पेरु), बाम मछली, साही, गिलहरी, बारहसिंघा, साँड, बंदर, धब्बेदार हिरन, सफ़ेद कबूतर और वे सब चौपाए जो न तो काम में आते हैं और न खाए जाते हैं;
२२—[संडके, ओकपिंडे, पलसते सेत] कपोव (ते) ग (गा) म कपोते, सव (वे) चत (तु) पद (दे) य (ये), पटिभोग (गं)	भेड़ी या सुअरनी जो गर्भिणी हो या दूध देती हो, अवध्य है और छः महीने के छोटे बच्चे भी अवध्य हैं। मुर्गों को बधिया

मूल (नागरी अक्षरों में)	हिंदी अनुवाद
[नो एति न च खादियति। अजका] ना [नि व] एडका च सूकली च गभिनी व पायमीना व]	नहीं करना चाहिए। जिस भूमि में जीव-जंतु उत्पन्न हो गए हों उन को नहीं जलाना चाहिए। एक जीव को मार कर उस से दूसरे जीव को (अपना) पेट नहीं पालना चाहिए।
२३—[अवधिय पोतके पि च कानि आसंमासिके [।] वधिकुक्कुटे नो कटविये तुसे] सजीवे नो [झापयितविये दावे अनठाये वा विहिसायेवा नो झापे] तावि ये (;) जीवेन जावे नो पुसिताविये]	
२४—तीसु चातुमासीसु तिसायं पुंनमासियं तिंनि दिवसानि [चावुदसं पंचदसं-पटिपदं धुवाये चा]	तीनों चौमासों (चार-चार महीने के जाड़ा, गर्मी और बरसात इन तीनों ऋतुओं) की पूर्णमासियों के दिन (जो फाल्गुन, आषाढ़ और कार्तिक के अंत में पड़ती थीं) तथा पुष्य नक्षत्र वाली (पौषकी) पूर्णमासी (और) चौदस, पंद्रस, (अमावस्या) तथा प्रतिपदा और व्रत उपवासों के दिन न तो मछली मारना चाहिए और न (उन को मुर्दा या ज़िंदा) बेचना चाहिए।
२५—अनुपोसथं मछे अवधिये नोपि विकेतविये [।]एतानि या (ये) व[दिवसानि नागवनसि केवटभोगसि यानि अंनानि पि जीवनिकायानि नो हंतवियानि अठमी पखाये चावुदसाये पंनडसाये तिसाये पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु]	इन्हीं दिनों में नागवन (कजरी बन, जहां हाथी रहते हैं) और कैवर्त-भोग (मछुओं के तालाब) में जो अन्य जीव हैं उन को भी नहीं मारना चाहिए।
२६—सुदिवसाये गोने नो नि(नी) ला (ल) खिता(त) विये अजका एडा [के सूकले एवापि अंने नीलखियति नो नीलखित विये] तिसाये पुनावसुने चातुंमासिये चातुंमासिपखाये अस्वसा गोनसा	दोनों पक्ष की अष्टमी चौदस और पंद्रस पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र[1] (और उपर्युक्त) तीनों चौमासों की पूर्णमासी के दिन और शुभ दिनों (त्योहारों) में साँड को बधिया नहीं करना चाहिए। (इसी प्रकार) बकरा, मेंढा, सूअर या जो दूसरे जानवर बधिया किए जाते हैं, वे नहीं किए जाने चाहिए। पुष्य, पुनर्वसु तथा चौमासे के दिनों और चौमासे के दिन और चौमासे के दोनों पक्ष में (अथवा दोनों पक्ष के दिनों अमावस्या और पूर्णमासी को) घोड़ों और बैलों को दागना नहीं चाहिए।
२७—लखने नो कटविये [।] याव सडुवीसे (स)तिव साभिसितेन मे एताये अंतलिका ये पंनवसीति बंधनमोखानि कटानि [।]	जब से मेरे अभिषेक को २६ वर्ष हुए तब से मैंने पच्चीस (बार) कैदी छुड़वाए हैं।

[1] ऐसा जान पड़ता है कि उस समय तक ग्रहों के नाम पर सात दिनों की वर्तमान प्रथा प्रचलित नहीं थी, किंतु तिथियों और नक्षत्रों के नाम से दिन माने जाते थे।

मूल (नागरी अक्षरों में)

(६)

(२८) देवानंपियें पियदसि (सी) लाज (जा) हेवं अ (आ) हा [।] [दुवाडसवसाभिसितेन में धंमलिपि लिखापिता लोकसा हितसुखाये से तं अपहटा तं तं धंमवढि पापो वा] हेवं लोकसा (स)

(२९) हितसुखे ति पटिवेखामि अथ [इयं ना] या (ति) पा (सु) [हेवं] पतियासंनेसु हेवं अपकठ (ठे) स (सु) किम (मं) कानि स (सु) खं अ (आ) वहामि (मी) ति तथ (था) च विदपो (हा मी मि) [।] हेवं मेव सडु (व) [नि] को (का) येसु पटिवेखामि [।]

(३०) सवपासंडा पि मे पूजिता विविधाय स(पू)का (जा) चा (या) [।] ए चु इयं अतना पा (प) चुपगमने से मे म (मु) ख्यमुते [।] सडुव (वी) सतिवसअभिसा (सि) तेन मे इय (यं) ध (धं) मलिपि लिखापिता ति [।]

हिंदी अनुवाद

(६)

देवताओं के प्यारे 'प्रियदर्शी' राजा ने ऐसा कहा है (कि) अपने अभिषेक के बारह वर्ष पर लोगों के हित और सुख के लिए (यह) धर्मलेख मैंने लिखवाया है। (जिस से लोग) ऐसी-वैसी (व्यर्थ) बातों को छोड़ कर धर्म को बढ़ावें। इस प्रकार लोगों का हित और सुख (इस) में है, यह मैं देखता हूँ। जिस प्रकार मैं (यह) देखता हूँ कि अपने जातिवालों (संबंधियों) में किस को क्या सुख पहुँचाऊँ ? उसी प्रकार (अपने से) निकट और दूरवालों में भी देखता हूँ[1] और वैसा ही (अनुष्ठान-कार्य) करता हूँ। इसी प्रकार सब संप्रदायवालों में भी देखता हूँ। मैंने सब संप्रदायवालों की अनेक प्रकार की पूजा से सत्कार किया है। परंतु उन में अपने (मंतव्य) का स्वागत करना (आदर करना) मैं सब से मुख्य समझता हूं। अपने अभिषेक के २६ वें वर्ष पर मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया है। इति।

---

[1] अर्थात् भलाई करने में अपने-पराए तथा निकट और दूरवालों में मैं कोई भेद-भाव नहीं रखता।

कौशांबी का लेख[1]

मूल (नागरी अक्षरों में)

१—देवानंपिये आनपयति [।] कोसंबियमहाम (मा) त

२—.........[स] मड(गे) [कटे] संघसि नि (नो) लहियो (ये)

३—.........[संघं भा] ठ (ख) ति भिति (खु) [वा] भं (भि) ति (खु) नि [बासे] चि (पि) [च]

४—ब (×) [ओदातानि दुसानि] पि (सं) नं (नि) घ(धा) पयित(तु) अ [ना] त (वा) सथ (सि) अं (आ) व (वा) सयि [ये]

हिंदी अनुवाद

देवताओं के प्यारे, 'प्रियदर्शी' (राजा) कौशांबी के बड़े अधिकारी (सूबेदार) को इस प्रकार आदेश देते हैं :—

संघ (बौद्धों के मठ) का नियम न उल्लंघन किया जाय। जो कोई संघ में फूट डालेगा, वह सफ़ेद (अर्थात् गृहस्थों के) कपड़े पहना कर उस स्थान से, जहां भिक्षु या भिक्षुनियां रहती हैं, निकाल दिया जायगा।

महारानी का लेख

१—द(दे)वानं पियस बचनेना सवत महामता

२—वतविया [।] ए हेत दुतीयाये देविये दाने

३—अंबावडिका वा आलमे व दान-ए (ग) हे वा ए त (वा) सि (पि) अंने

४—किछि गनीयति ताये देविये षे नानि [।] सहे व (वं) [विनति]

५—दुतियाये देविये ति तीवलमातु कालुवानि (कि) ये [।]

देवताओं के प्यारे (राजा) के वचन (आज्ञा) से सब बड़े अधिकारियों से कहो कि दूसरी रानी का जो दान है, आम की वाटिका या बगीचा या दानगृह या और भी जो कुछ हो, वह दूसरी रानी तीवर की माता कारुवाकी का है।

---

[1] यह लेख बहुत ही अपूर्ण है, इस लिए इस का मतलब समझ में नहीं आता था। परंतु पीछे काशी के निकट सारनाथ नामक स्थान में एक लेख लगभग इसी आशय का मिला। उसी के आधार पर यह हिंदी अनुवाद दिया गया है। (देखिए पंडित जनार्दन भट्ट एम्० ए० की पुस्तक)

समुद्रगुप्त का अभिलेख

इस स्तंभ पर अशोक के लेख के पश्चात् ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण लेख सम्राट् समुद्रगुप्त के विषय में है। यदि अशोक की प्रशस्तियों से उस का प्रजावात्सल्य उस की सच्चरित्रता, तथा उस के उत्तम शासन-प्रबंध आदि का ज्ञान हम को होता है, तो समुद्रगुप्त के लेख से उस के समकालीन भारत की अनेक जातियों, राजाओं तथा उन के देशों की नामावली हम को मिलती है, जो अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती।

गुप्त-वंशीय नरेशों में ईसा की चौथी शताब्दी के मध्य में समुद्रगुप्त बड़ा वीर, योद्धा, विद्वान्, कवि तथा संगीतज्ञ हुआ है। उस ने समस्त भारत में ओर से छोर तक दिग्विजय कर के उस समय की प्रथा के अनुसार एक बड़ा अश्वमेध यज्ञ किया था। योरप के इतिहासकारों ने उस को भारत का नेपोलियन माना है। इस लेख में उस के गुणों और विजय की कीर्ति उस के एक दरबारी कवि हरिषेण ने वर्णन की है।

यह लेख गुप्त-लिपि तथा संस्कृत भाषा में है। पहले आठ श्लोक हैं फिर गद्य है। इस में कुल ३३ पंक्तियां हैं, जिन में से पहली चार बहुत खंडित हैं और कुछ पंक्तियों के बीच के कुछ अंश मिट गए हैं।

मूल लेख का प्रायः शाब्दिक अनुवाद किया गया है। इस लिए कहीं-कहीं मुहावरेदार नहीं रहा है। पाठकों के सुभीते के लिए हम कुल लेख का सार निम्न शब्दों में वर्णन करते हैं। आशा है इस के पढ़ने से मूल लेख के समझने में बड़ी सुगमता होगी।

१ से ४ तक पंक्तियों का आशय अत्यंत खंडित होने से स्पष्ट नहीं है। ५ और ६ में समुद्रगुप्त की विद्वत्ता तथा ७ और ८ में पिता-द्वारा उस की योग्यता का वर्णन है। ६ से २४ तक में सम्राट् की वीरता और उस के दिग्विजय की चर्चा की गई है। इन में से १६वीं और २०वीं पंक्ति में तत्कालीन दक्षिण के बहुत से विजित राजाओं और उन के देशों के नाम हैं। इसी प्रकार २१ वीं पंक्ति में आर्यावर्त के राजाओं की नामावली है। २२ वीं पंक्ति में अनेक देशों तथा जातियों की सूची है। २३ वीं में लंका, गुजरात, तथा पश्चिमीय सीमाप्रांत के राजाओं की चर्चा है। २५, २६ तथा ३१ में समुद्रगुप्त के अन्य गुणों, जैसे दानशीलता, उदारता, और २७ में उस के काव्य तथा संगीत में निपुण होने का वर्णन है। २८ और २६ में वंशावली दी गई है। ३२ वीं पंक्ति में कवि ने आत्म-परिचय दिया है।

इतना बतलाने के बाद अब हम मूल लेख अनुवाद के साथ लिखते हैं।

मूल	हिंदी अनुवाद
(१) यः कुल्यैः स्वै आतस	(१) जो अपने संबंधियों सहित
(२) यस्य	(२) जिस का
(३) पुंव त्र	(३)

मूल	हिंदी अनुवाद
(४) स्फारद्व त्तः स्फुटोद्ध्वंसित प्रवितत्	(४)
(५) यस्य प्रज्ञानुषङ्गोचित सुखमनसः शास्त्रतत्वार्थभर्त्तुः [ ] स्तब्धो [ ] नि [ ] नोच्छ	(५) जिस का मन ज्ञानी पुरुषों के संग से सुख पाता है और जो शास्त्र के तत्वार्थ का पोषक है निश्चल
(६) सत्काव्यश्रीविरोधान् बुधगुणित गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा विद्वल्लोके वि [ ] स्फुट बहुकविता कीर्त्तिराज्यंभुनक्ति	(६) जो सत्काव्य के विरोधियों को बुद्धिमानों के गुणों के द्वारा परास्त कर के विद्वानों में स्पष्ट कविता-कीर्ति रूपी राज्य को भोगता है।
(७) आर्य्यो हीत्युपगुह्य भावपिशुनैरुत्कर्णितै रोमभिः सभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्यकुलजम्लानाननोद्वीक्षितः	(७) (जिस को पिता ने) यह कह कर गले लगा लिया कि यह ही राज्य के योग्य है। जब भावसूचक रोमांच पिता के शरीर पर खड़े हो गए, जब सभासद् हर्ष की श्वास ले रहे थे; और समान कुलोत्पन्न लोगों के मुख मलीन हो रहे थे और उसे देख रहे थे।
(८) स्नेहव्यालुळितेन बाष्पगुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा यः पित्राभिहितो निरीक्ष्य निखिलां पाह्येवमुर्व्वीमिति	(८) स्नेह से व्याकुल, आँसुओं से भरे तत्त्व को देखनेवाले नेत्रों द्वारा, पिता ने उसे देख कर कहा—'समस्त पृथ्वी को पालो'
(९) दृष्ट्वा कर्म्माण्यनेकान्यमनुजसदृशान्यद्भुतोद्भिन्नहर्षाभावैरास्वाद्य केचित्	(९) अनेक अमानुषी कामों को देख कर हर्ष से चखते थे कुछ लोग
(१०) वीर्य्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते प्रणामेप्यर्त्ते	(१०) जिस के पराक्रम से हराए जा कर कुछ लोग प्रणाम करते हुऐ जिस की शरण में आते थे।
(११) संग्रामेषु स्वभुजविजिता नित्यमुच्चापकाराः श्वः श्वो मानप्र........	(११) लड़ाई में उस की भुजाओं से जीते गए नित्य बुरा कर्म करनेवाले दिन-प्रति-दिन मान
(१२) तोषोत्तुङ्गैः स्फुटबहुरसस्नेह फुल्लैर्म्मनोभिः पश्चात्तापंव मंस्याद् बसंतम्	(१२) संतोष से भरे हुए और प्रकट प्रेम के रस से फूले हुए मनों से पश्चात्ताप को वसंत ऋतु को
(१३) उद्वेलोदितबाहुवीर्य्यरभसादेकेन *येन क्षणादुन्मूल्याच्युतनागसेन गु[ ]*	(१३) असीम ऊपर उठे हुए बाहुवीर्य *से जिस ने अकेले अच्युत और नागसेन को परास्त किया।*

मूल

(१४) दण्डैर् ग्राहयतैव कोटकुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता सूर्य्येने तट ...

(१५) धर्म्मप्राचीरबंधः शशिकरशुचयः कीर्त्तयः सप्रतना वैदुष्यं तत्वभेदिप्रशम उकु यु कु मुतु तारत्थमु

(१६) अद्ध्येयः सूक्तमार्ग्गाः कविमति विभवोत्सारणं चापि काव्यम् को नु स्याद् योऽस्य न स्यादगुणमतिविदुषाम् ध्यानपात्रम् य एकः

(१७) तस्य विविधसमरशतावतरणदक्षस्य स्वभुजबलपराक्रमैकबन्धोः प्राक्रमाङ्कस्य परशुशरशंकुशक्तिप्रासासितोमर

(१८) भिन्दुपालनाराचवैतस्तिकाद्यनेकप्रहरणविरूढ़ाकुलव्रणशताङ्कशोभासमुद्योपचितकान्ततरवर्ष्मणः

(१९) कौसलकमहेन्द्रमाहाकान्तारकव्याघ्रराज कौराळक मण्टराजपैष्टपुरक महेन्द्रगिरिकौट्टरकस्वामिदत्तऐरण्डपल्लक दमनकाञ्चेय कविष्णुगोपआवमुक्तक

हिंदी अनुवाद

(१४) जिस ने कोट नामक कुल में उत्पन्न हुए (राजा) को सेना के द्वारा पकड़ कर पुष्पा नाम के नगर में क्रीड़ा की। सूर्य से तट पर

(१५) धर्म के घेरा अथवा चारदीवारी चंद्रमा की किरणों के समान उज्जवल चारों ओर फैली हुई कीर्त्तियां तत्व में घुसनेवाली बुद्धि शांति

(१६) अध्ययन के योग्य सूक्तों का (मंत्रों में कहा हुआ) मार्ग कवियों की बुद्धि का विकास करने वाली कविता, (यह सब गुण उस में हैं) कोई गुण ऐसा नहीं जो उस में न हो। जो अकेला ही गुणों को जानने वाले विद्वान् लोगों के ध्यान का पात्र है।

(१७) जो अनेक प्रकार के सैकड़ों युद्धों में दक्ष है, जिस का बंधु केवल उस का भुजबल और पराक्रम है, जो पराक्रम के लिए प्रसिद्ध है, फरसा, तीर, भाला, कील, तरवार, बरछी

(१८) लोह तीरों को फेंकने वाले (अनेक प्रकार के) शस्त्र वैतस्तिक आदि की चोटों से उत्पन्न हुए सैकड़ों घावों से जिस के शरीर की शोभा बहुत बढ़ गई है।

(१९) कोसल[१] देश का महेंद्र, महाकांतार[२] का व्याघ्रराज, केरलदेश[३] का मंटराज, पिष्टपुर[४] का महेंद्र गिरि,

---

[१] दक्षिण-कोसल कलिंग के पश्चिम विंध्याचल की घाटी में था और महानदी पर उस की राजधानी श्रीपुर थी।

[२] वर्तमान बैतूल और छिंदवाड़ा ज़िले का भाग।

[३] मालाबार।

[४] मदरास प्रांत के गोदावरी ज़िले आजकल का पिट्ठपुरम्।

मूल	हिंदी अनुवाद
	कुट्टूर[१] का स्वामीदत्त, एरंडपल्ल[२] का दमन, कांची[३] का विष्णुगोप, अवमुक्त[४] का
(२०) नीलराजवैङ्गेयकहस्तिवर्म्मपालककोग्रसेनदैवराष्ट्रककुबेर कौस्थलपुरकधनञ्जयप्रभृतिसर्वदक्षिणापथराजग्रहणमोक्षानुग्रहजनितप्रतापोन्मिश्रमाहाभाग्यस्य	(२०) नीलराज, वेंगीदेश[५] का हस्तिवर्मा, पल्लक[६] देश का उग्रसेन, देवराष्ट्र[७] का कुबेर, कुस्थलपुर[८] का धनंजय आदि दक्षिण के राजाओं को पकड़ कर फिर छोड़ देने के अनुग्रह से उत्पन्न हुए प्रताप से बढ़ा हुआ है भाग्य जिस का
(२१) रुद्रदेवमतिलनागदत्तचन्द्रवर्म्मगणपतिनागसेनाच्युतनन्दिबलवर्म्माद्यने कार्य्यावर्त्तराजप्रसभोद्धरणोद्वृत्तप्रभाव महतः परिचारकीकृतसर्व्वाटविकराजस्य	(२१) रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मा, गणपति, नागसेन, अच्युत, नंदि, बलवर्मा, आदि अनेक आर्यावर्त के राजाओं को बल-पूर्वक दमन करने से बढ़ा है प्रभाव जिस का, और जिस ने समस्त बनबासी राजाओं को अपना नौकर बना लिया है।
(२२) समतटडवाककामरूपनेपाल कर्तृपुरादिप्रत्यन्तनृपतिभिर्म्मालवार्जुनायनयौधेयमाद्रकाभीरप्रार्जुनसनकानीक काकखरपरिकादिभिश्चसर्व्वकरदानाज्ञाकरणप्रणामागमन	(२२) समतट[९], डवाक[१०], कामरूप[११], नेपाल[१२], कर्तृपुर[१३] आदि प्रत्यंत देशों के राजाओं से तथा मालव, अर्जुनायन, यौधेय माद्रक, आभीर, अर्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक आदि वंशों से दिया गया है सब प्रकार का कर जिस को, मानी गई है आज्ञा, जिस की, और किया गया है प्रणाम जिस को

[१] इस स्थान का ठीक पता नहीं लगा शायद तंजोर या बेलगाँव के ज़िले में कोई स्थान रहा हो। [२] अज्ञात। [३] वर्तमान कांजीवरम। [४] अज्ञात।

[५] कृष्णा और गोदावरी के बीच में था। [६] अज्ञात। [७] अज्ञात। [८] अज्ञात। [९] पूर्वी बंगाल। [१०] अज्ञात। [११] आसाम। [१२] नैपाल। [१३] अज्ञात।

मूल

(२३) परितोषितप्रचण्डशासनस्यअनेक भ्रष्टराज्योत्सन्नराजवंशप्रतिष्ठापनोद्भूतनिखिलभुवनविचरणशान्तयशसः दैवपुत्रशाहिशाहानुशाहिशकमुरुण्डैः सैंहं-ळकादिभिश्च

(२४) सर्वद्वीपवासिभिरात्मनिवेदनकन्योपायनदानगरुत्मदङ्कस्वविषयभुक्तिशासनयाचनाद्युपायसेवाकृतबाहुवीर्य्यप्रसरधरणिबन्धस्य-पृथिव्यामप्रतिरथस्य

(२५) सुचरित शतालंकृतानेकगुणगणोत्सिक्तिभिश्चरणतलप्रमृष्टान्यनरपतिकीर्त्तेः सा-ध्वसाधूदयप्रलयहेतुपुरुषस्याचिन्त्यस्य भक्तयवनतिमात्रग्राह्यमृदुहृदय-स्यानुकम्पावतोनेकगोशतसहस्रप्रदायिनः

(२६) कृपणदीनानाथातुरजनोद्धरणसमन्त्रदीक्षाद्युपगतमनसः समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्यस्वभुजबलविजितानेकनरपतिविभवप्रत्यर्प्पणानित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य

हिंदी अनुवाद

(२३) जिस का प्रचंड शासन सब राजागण स्वीकार करते हैं, जिस ने कई नष्ट-भ्रष्ट और पतित राजाओं को फिर से स्थापित कर के समस्त संसार में अपना शांत यश फैलाया है, जिस के देवपुत्र, शाही, शाहानशाही, शक, मुरुंड, सिंहल के निवासी तथा

(२४) सब द्वीपों के रहने वालों से आत्मसमर्पण, कन्यादान गरुडचिह्नयुक्त (आत्मसमर्पण का चिह्न) अपने ही देश में राज करने की आज्ञा की प्रार्थना आदि उपायों द्वारा सेवा की गई है भुजबल की जिस के; और बँध गई है पृथ्वी जिस से संसार में, नहीं रहा है शत्रु जिस का

(२५) सैकड़ों सच्चरित्रों से अलंकृत किए हुए गुणों की बुद्धि से अपने चरणों के तलवें से मिटा दी है दूसरे राजाओं की कीर्ति जिस ने, जो अच्छी बातों के उदय और बुरी बातों के नाश का हेतु है, और जो अचिंत्य (गूढ़) है, जिस का हृदय इतना कोमल है कि भक्ति और प्रणाम से ही नम्र हो जाता है। जिस ने सैकड़ों हज़ारों गायें दान दी हैं।

(२६) कृपण, दीन, अनाथ, आतुर जनों के उद्धार करने में ही लगा हुआ है मन जिस का, जो लोगों के साथ अनुग्रह करने का अवतार मात्र है, जो धनद, बरुण, इंद्र, यम आदि देवों के समान है—अपने भुजबल से जीते हुए अनेक नरपतियों को फिर माल लौटा देने में लगे हुए हैं नौकर जिस के।

मूल

(२७) निशितविदग्धमतिगान्धर्व्वललितैर-व्रीडितत्रिदशपतिगुरुतुम्बुरुनारदादेर्विद्वज्जनोप-जीव्यानेककाव्यक्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराज-शब्दस्य सुचिरस्तोतव्यानेकाद्भुतोदारचरितस्य

(२८) लोकसमयक्रियानुविधानमात्रमानु-षस्य लोकधाम्नो देवस्य महाराजश्रीगुप्त-प्रपौत्रस्य महाराजश्रीघटोत्कचपौत्रस्य महा-राजाधिराजश्रीचंद्रगुप्तपुत्रस्य।

(२६) लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य सर्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनित-लां कीर्त्तिमितस् त्रिदशपति-

(३०) भवनगमनावाप्तललितसुखविचरण-माचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितःस्तम्भः यस्य प्रदानभुजविक्रमप्रशमशास्त्रवाक्योदयैरु-पर्युपरि सञ्चयोच्छ्रितमनेकमार्गयशः

(३१) पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटांत-र्गुहानिरोधपरिमोक्ष शीघ्रमिव पाण्डु गाङ्गं पयः एतच्च काव्यमेषामेव भट्टारकपादानां दासस्य समीपपरिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलितमतेः

हिंदी अनुवाद

(२७) तीक्ष्ण और विदग्ध बुद्धि युक्त गानविद्या के लालित्य आदि से लज्जित किया है इंद्र के गुरु तुंबुरु नारद आदि को जिस ने— विद्वानों के योग्य अनेक काव्य-क्रियाओं से प्रतिष्ठित किया है कविराज का शब्द अपने लिए जिस ने— अनेक अद्भुत उदार और बहुत दिनों तक प्रशंसा के योग्य है चरित्र जिस का

(२८) लोक और समय के अनुकूल जो क्रिया करने मात्र से मनुष्य है, और जो अन्य बातों में रहनेवाला देवता है, महा-राज श्रीगुप्त का प्रपौत्र और महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र और महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र।

(२६) लिच्छवि का दौहित्र, महादेवी कुमारदेवी के पेट से उत्पन्न हुए महाराजा-धिराज श्री समुद्रगुप्त की समस्त पृथ्वी की विजय से उत्पन्न हुई समस्त पृथ्वी में फैली हुई कीर्ति को, जो यहां से इंद्र की

(३०) पुरी (स्वर्ग) में जा कर सुख से विचर रही हैं, बतलानेवाला पृथ्वी के ऊँचे हाथ के सदृश यह खंभा है। जिस के दान, भुजविक्रम, शांति तथा शास्त्र-वाक्य के उदय से ऊँचा उठता हुआ अनेक मार्गों वाला यह यश

(३१) तीनों लोकों को उस प्रकार पवित्र करता है जिस प्रकार शिव जी के जटा-समूह के बंधन से छुटकारा पा कर शीघ्रगामी शुभ गंगाजल यह काव्य भट्टारक (स्वामी) के चरणों के दास और उस के समीप रहने की कृपा से विकसित हो गई है बुद्धि जिस की, उस

मूल	हिंदी अनुवाद
(३२) खाद्यटपाकिकस्य महादण्डनायक-ध्रुवभूतिपुत्रस्य सान्धिविग्रहिककुमारामात्य-महादण्डनायकहरिषेणस्य सर्वभूतहितसुखा-यास्तु	(३२) खाद्यटपाकिक का तथा महा-दंड नायक ध्रुवभूति के पुत्र संधि-विग्रहिक कुमारामात्य महादंड नामक हरिषेण का है। सब प्राणियों के लिए सुख कर हो
(३३) अनुष्ठितं च परमभट्टारक पादानुध्यातेन महादण्डनायकतिलभट्टकेन ।	(३३) यह कार्य संपादित किया गया है परमभट्टारक के चरणों में ध्यान लगानेवाले महादंड नामक तिलभट्टक द्वारा—

इस के बाद अकबर के सुप्रसिद्ध मुसाहब (मंत्री) बीरबर का लेख ३ पंक्तियों में इस प्रकार है।

संवत १६३२ साका १४९३[1] मार्गबदी पंचमी
सोमवार गंगादाससुत महाराज बीरबर श्री
तीर्थराज प्रयाग के यात्रा सफल लेखितम्।

जहाँगीर के लेख में कोई विशेष बात नहीं है, उस ने स्तंभ को एक जगह छिलवाकर फ़ारसी अक्षरों में अपनी वंशावली अंकित कराई है जो इस प्रकार है:—

الله اکبر نورالدین محمد جهانگیر بادشاه غازي – يا حافظ ابن اکبر بادشاه غازی – يا حفيظ ابن همايون بادشاه غازي – يا حي ابن بابر بادشاه غازي – يا قيوم ابن عمر شيخ مرزا – يا مقتدر ابن سلطان ابوالسعيد – يا نور ابن سلطان محمد مرزا – يا هادي ابن ميرانشاه – يا بديع ابن امير تيمور صاحب قران يا قادر – احد الهي شهر پور ماه موافق ربيع الثاني ١٠١٤ –

इस का नागरी अक्षरांतर यह है:—

"अल्लाह अकबर नूरुद्दीन महम्मद जहाँगीर बादशाह ग़ाज़ी, या हाफ़िज़इब्न अकबर बादशाह ग़ाज़ी, या हफ़ीज़ इब्न हुमायूं बादशाह ग़ाज़ी, या हैय इब्न बाबर बादशाह ग़ाज़ी, या क़यूम इब्न उमर शेखमिर्ज़ा, या मुक़्दर इब्न सुलतान अबू-सईद, या नूर इब्न सुलतान महम्मद मिर्ज़ा, या हादी इब्न मीराँ शाह, या बदीअ इब्न अमीर तैमूर साहब क़राँ या क़ादिर—अहद इलाही शहर पूर माह मुवाफ़िक़ रबीउस्सानी १०१४।"

यह लेख सन् १६०५ ई० का खुदा हुआ है जो जहाँगीर के राज्यकाल का पहला वर्ष था। इस में उस की वंशावली तैमूर तक लिखी हुई है जो उस का नवां मूल-पुरुष था।

---

[1] इस में ४ वर्ष का बल पड़ता है। अर्थात् स० १६३२ में शक-संवत १४९७ होना चाहिए। संभव है खोदने वालों ने भूल की हो।

प्रत्येक पीढ़ी के बीच-बीच में परमेश्वर के विविध नाम दिए हुए हैं। आरंभ 'अल्लाह अकबर' से हुआ है जो उस के पिता अकबर के समय में अभिवादन में प्रयुक्त होता था, और जिस का शाब्दिक अर्थ यह है कि 'परमेश्वर महान है'।

अन्य कोई अभिलेख उल्लेखनीय नहीं है। अंतिम लेख सन् १८०७ ई० का है।

(२) पातालपुरी का मंदिर

इस का इतिहास इसी पुस्तक के पूर्वार्ध के दूसरे अध्याय में लिखा गया है। यहां केवल उस की वर्तमान अवस्था का वर्णन किया जाता है। यह मंदिर क़िले के आँगन में पूर्व वाले फाटक की ओर पृथ्वी के नीचे तहख़ाने में है। इस की लंबाई पूर्व-पश्चिम ८४ फ़ुट और चौड़ाई उत्तर-दक्षिण ४९३/४ फ़ुट है। ऊपर पत्थर की छत ६१/२ फ़ुट ऊँचे खंभों के ऊपर ठहरी हुई है। बारह-बारह खंभों की ७ पंक्तियां हैं, परंतु बीचवाली पंक्ति में दोहरे खंभे हैं। कुल खंभों की संख्या १०० के लगभग है। पश्चिम की ओर मुख्य द्वार है, जिस में कुछ सीढ़ियों से नीचे उतरना पड़ता है। फिर कुछ दूर तक सीधा रास्ता पूर्व की ओर चला गया है, उस के आगे मंदिर का मुख्य भाग मिलता है। इस रास्ते में धर्मराज इत्यादि की बड़ी-बड़ी मूर्तियां दाहने हाथ बैठी हुई हैं। बनावट के ढंग से ये बहुत पुरानी नहीं मालूम होतीं। फिर भी यह पता नहीं है कि कब बनी थीं। इसी बनावट के भीतर और भी बहुत सी बड़ी-बड़ी मूर्तियां गणेश, गोरखनाथ तथा नरसिंह अवतार इत्यादि की हैं। बीच-बीच में कहीं-कहीं शिवलिंग भी स्थापित हैं। सब मिला कर कुल ४३ मूर्तियां हैं। उत्तरवाली दीवार में एक बड़ा ताक़ (आला)-सा बना हुआ है उसी में पुरानी लकड़ी का एक मोटा गोल टुकड़ा रक्खा हुआ है, जो कपड़े-लत्ते से सुसज्जित रहा करता है। यही अक्षयवट बतलाया जाता है। पहले इस तहख़ाने में बड़ा अंधकार रहता था। पंडे दीपक ले कर यात्रियों को दर्शन कराते थे। परंतु अब सन् १६०६ से प्रकाश और हवा के लिए मंदिर की छत में कई खिड़कियां खोल दी गई हैं और दर्शकों के बाहर निकलने के लिए दक्षिण की ओर एक नया द्वार बना दिया गया है। मंदिर की पश्चिमवाली दीवार में बेतिया के राजा रावगोपाल का सन् १८३२ का एक अभिलेख लगा हुआ है।

अनुमान यह है कि क़िले के बन जाने से अक्षयवट और उस के निकट के पुराने मंदिर पृथ्वी के धरातल से नीचे पड़ गए थे, जिन की मूर्तियों को अकबर ने इस तहख़ाने में सुरक्षित रखवा दिया होगा। फिर पीछे जहाँगीर ने किसी समय इस के द्वार को बंद करा दिया। उस के पश्चात् फिर इस का क्यों कर पता लगा और कब इस का द्वार खुला, इस के विषय में कुछ पता नहीं चलता।

(३) क़िला

प्रयाग के क़िले की नींव अकबर ने सन् १५८३ ई० में रक्खी थी। अबुलफ़ज़ल ने

---

[१] यदुनाथ सरकार-कृत 'इंडिया अव् औरंगज़ेब' (१६०१), पृष्ठ २७

'अकबरनामा' में लिखा है कि यह क़िला ठीक संगम पर चार खंडों में बनाया गया था। पहला स्वयं सम्राट् के रहने के लिए जिस में १२ आनंद-वाटिकाएँ थीं, दूसरा बेगमों और शहज़ादों, तीसरा अन्य बादशाही कुटुंबियों और चौथा सिपाहियों और नौकर-चाकरों के रहने के लिए था।

हम को खोज से एक हस्तलिखित[1] पुराना काग़ज़ मिला है, जिस में इस किले का ब्यौरा इस प्रकार लिखा है कि यह किला ३८ जरीब[2] लंबा और २६ जरीब चौड़ा है, क्षेत्र-फल ६८३ बीघा और घेरा १२८ जरीब[2] है। इस के बनाने में ६ करोड़ १७ लाख, २० हज़ार २ सौ १४ रुपए खर्च हुए थे और यह क़िला ४५ वर्ष ५ महीने और १० दिन में बना था। इस में २३ महल, ३ ख्वाबगाह (शयनागार) और झरोखे, २५ दरवाज़े, २३ बुर्ज, २७७ मकानात (भवन), १७६ कोठरियां, २ ख़ासोआम, ७७ तहखाने, १ दालान दर दालान, २० तवेले, १ बावली, ५ कुएं और १ यमुना की नहर थी, जिन का निर्माण शहज़ादा सलीम शेख़ू, राजा टोडरमल, भारथ दीवान, पयागदास मुशरिफ़, सईद ख़ां और मुख़लिस ख़ां के प्रबंध में हुआ था।

महलों के नाम ये थे :—

एमनावाद, अमरावती, आनंद-महल, दीनमहल, महासिंगार-महल, अलोल-महल, कलोल-महल, दिलशाद-महल, बशारत-महल, उर्दी बहिश्त-महल, हंस-महल, उम्मेद-महल और सुखनाम-महल।

३ ख्वाबगाहों का ब्यौरा यह है :—

ख्वाबगाह झरोखा	१
चिहल सितून	१
निशस्तगाह (बैठक) खासोआम	१

२५ दरवाज़ों का ब्यौरा[3] :—

हस्तिनापुर दरवाज़ा	१
गावघाट अंदर-बाहर	२
बग़ल दरवाज़ा	१

---

[1] इलाहाबाद की कलेक्टरी में एक पुरानी मिसिल सन् १८६७ ई० की परगना चायल के क़ानूनगो के तक़र्रुरी की है। उसी में यह क़ागज़ शामिल है। टामस विलियम बेल साहब ने 'मिफ़्ताहुल-तवारीख़' के दसवें मात (अध्याय) में इस लेख की ओर संकेत किया है, पर उन्हों ने इमारतों का इतना ब्यौरा नहीं लिखा।

[2] अकबरी जरीब ६० गज़ की होती थी।

[3] इन सब का जोड़ २३ ही आता है, ऐसा जान पड़ता है कि मूल कागज़ में २ दरवाज़े लिखने से छूट गए हैं।

ग़ुसुलख़ाना	१
अजमेरी दरवाज़ा	१
फ़सील दरवाज़ा	१
महल दरवाज़े	२
ख़ासोआम दरवाज़े	२
बेनी दरवाज़ा, अंदर-बाहर	२
बावली दरवाज़ा	१
मानिकचौक के दरवाज़े	४
तख़्त दरवाज़ा	१
दिहली दरवाज़ा	१
निहाल दरवाज़ा	१
बदररौ दरवाज़े	२

२३ बुर्जों का ब्यौरा :—

शाहबुर्ज से हस्तिनापुर दरवाज़े तक आबादी की ओर उत्तर तरफ़	७
बावली से शाहबुर्ज तक	५
गावघाट से अजमेरी दरवाज़े तक	२
हस्तिनापुर की दीवार से गावघाट तक	२
अजमेरी दरवाज़े की दीवार से गावघाट की दीवार तक	३
हस्तिनापुर के दरवाज़े के सामने दीवार की दोनों ओर	४

२७७ मकानों को लिखा है कि अजमेरी दरवाज़े से बावली तक थे।

ख़ासोआम के नाम से २ इमारतें थीं, १ बड़ी, १ छोटी

१७६ कोठरियां ख़ासोआम के दरवाज़ों की ओर। यमुना की नहर 'चिहल सितून' के निकट थी।

यह क़िला दिल्ली और आगरे के क़िले के सदृश लाल पत्थर का बना था। इस का विशाल सिंहद्वार और भीतर की इमारतें दर्शनीय थीं। इस के किनारे की दीवारें और बुर्ज बहुत ऊँचे थे।

यूरोपियन यात्रियों में इस क़िले का सब से पुराना वृत्तांत विलियम फ़िंच का हम को मिला है, जिन्हों ने सन् १६११ ई० में इस को देखा था। लिखते हैं—

'यह (क़िला) एक कोने पर स्थित है, जिस के दक्षिण यमुना बह कर गंगा में गिरती है। इस को बनते हुए चालीस वर्ष हो गए; अब तक पूरा नहीं हुआ, और न बहुत दिनों तक अभी पूरा होगा। अकबर के समय में कई वर्ष तक इस में बीस हज़ार आदमी लगे हुए थे, और अब भी कोई पाँच हज़ार हर प्रकार के कारीगर और मज़दूर काम करते हैं। यह

(पूर्ण होने पर) संसार के अति प्रसिद्ध भवनों में से एक होगा। शाह सलीम (जहाँगीर) अपने पिता से बाग़ी होकर इसी क़िले में रहा था। इस के बाहरी प्राचीर की ऊँचाई आश्चर्यजनक है जो आगरे के क़िले के समान लाल रंग के पत्थर के चौकोर टुकड़ों से बनी हुई है। इस के भीतर दो और दीवारें हैं, जो इतनी ऊँची नहीं है। (इस के आगे अशोकस्तंभ की चर्चा है, जिस को यात्री सिकंदर या किसी अन्य विजेता का स्मारक बतलाता है)। इस आँगन से थोड़ा आगे एक इस से बड़ा चौक है जहां ऊँचे स्थान पर बादशाह का झरोखा दर्शन है। वहां से वह हाथी तथा अन्य बन्य पशुओं की लड़ाई देखते हैं। (इस के आगे पाताल-पुरी के मंदिर का वर्णन है जिस की मूर्तियों को यात्री आदम-हौवा और नूह तथा उस की संतान की प्रतिमा बतलाता है)। इस के बाद दूसरा पत्थर का भवन है, जहां बादशाह दरबार करते हैं। इस के आगे फिर एक बड़ा महल मिलता है, जो सोलह बेगमों और उन की दासियों के रहने के लिए सोलह भागों में विभक्त है, इन के मध्य में बादशाह का अपना भवन तीन खंड ऊँचा है। प्रत्येक में सोलह-सोलह कमरे हैं, जिन की कुल संख्या अड़तालीस होती है। इन की दीवारें नीचे से ऊपर तक सुंदर प्लास्टर और हर प्रकार की रंगामेज़ी और चित्रकारी से सुशोभित हैं। सब से नीचे के खंड के मध्य में एक विलक्षण तालाब है। नदी (यमुना) की ओर महल में कई बड़े-बड़े दीवानखाने हैं, जहां बादशाह अपनी बेगमों के साथ बहुधा गंगा और यमुना का दृश्य देखने में अपना समय व्यतीत करते हैं। उस के और नदी के बीच में दीवार से नीचे मिली हुई एक सुंदर वाटिका लगी हुई है, जो सरो शमशाद के सघन वृक्षों और अनेक प्रकार के फलों और फूलों से सुसज्जित है, उस के मध्य में एक भोजन-शाला है और उसी के पास से नीचे जल में उतर कर नाव पर जाने के लिए सीढ़ियां चली गई हैं।''[1]

मिस्टर फ़ारेस्टर ने सन् १७८२ ई० में लिखा था—

'इस क़िले के भीतर बादशाही महल नामक भवन मुसलमानी ढंग की सर्वोत्तम इमारतों में है, जिन को कि अब तक मैंने देखा है। इस के ऊपर के खंड का भीतरी भाग, जो संगमरमर का बना हुआ है, विविध प्रकार के रंगों से विभूषित है और बड़ी सफ़ाई से उस की व्यवस्था की गई है।'

मिस्टर हमिल्टन ने ईस्ट इंडिया कंपनी के सन् १८१५ ई० के गज़ेटियर में इस क़िले के विषय में इस प्रकार लिखा है —

"यह एक बहुत ऊँचा विस्तृत और सुदृढ़ दुर्ग है, जिस के निकट दो नदियां बहती हैं। इस के बराबर भव्य भवन योरोप में बहुत कम होंगे। इस में तीन फाटक दो पूरे और आधा बुर्ज है। इस का द्वार यूनानी ढंग का बहुत ही सुंदर है। एक और चतुष्कोण महल है, जिस में शाहआलम का हरम (रनिवास) था। यह स्थान अब उत्तरीय प्रांतों में सेना-विभाग का एक बड़ा केंद्र है।"

---

[1] पर चाज़ हिज़ पिलग्रिम्स, (ग्लासगो) जिल्द ४, पृष्ठ ६७-६८

विशप हेबर ने सन् १८२४ ई० में इस क़िले को देख कर लिखा था :—

"इस क़िले में एक बहुत ही सुंदर महल है। वर्तमान अधिकारियों ने जब इस क़िले को मज़बूत बनाने के लिए उस में काट-छाँट कर के नए रूप में परिवर्तित किया तो उस के वाह्य रूप को बड़ी हानि पहुँची। उस के ऊँचे-ऊँचे धुरेरों को गिरा कर बुर्ज के रूप में बदल दिया गया और उस की दीवारों से लगा कर एक ढ़लवान मिट्टी का धुस्स बनाया गया। यह अब भी चिताकर्षक स्थान है। इस के मुख्य द्वार पर एक विशाल गुंबद है और उस के नीचे एक बहुत बड़ा दालान है, जिस के चारों ओर मिहराबदार छज्जों पर सादा परंतु बहुत ही बढ़िया रंग का काम किया हुआ है।"

जर्मनी के एक यात्री कप्तान ओनवर्ला ने सन् १८४५ में लिखा था—

"यह एक पचकोण दुर्ग है। इस की पुरानी, परंतु सुदृढ़ दीवारें अर्ध-गोलाकार बुर्जों के साथ दो नदियों की ओर से रक्षा करती हैं। भूमि की ओर भी इस की दीवार में एक आधा और दो पूरे बुर्ज बने हुए हैं।"

मिस्टर थार्नटन ने सन् १८५४ ई० के गज़ेटियर में इस प्रकार लिखा है—

"यह बहुत सुदृढ़ स्थान है जिस का घेरा लगभग २५०० गज़ के होगा। कहा जाता है इस के बनाने में कोई १ लाख ७२ हज़ार पाउंड खर्च हुए थे, यह बाहर की ओर इटैलियन ढंग का बना दिया गया है। परंतु भीतर अधिकांश पुराना रूप अब तक विद्यमान है जिस की निर्माण-शैली बहुत ही चिताकर्षक है।

"क़िले के भीतर एक अपूर्व महल 'चिहलसुतून' (चालीस खंभे वाला) के नाम से था, इस का यह नाम इस लिए पड़ा था कि इस के नीचेवाले खंड में ४० अठपहल खंभे चारों ओर दो पंक्तियों में खड़े हुए थे। इन खंभों की संख्या बाहर की पंक्ति में २४ और भीतर वाली में १६ थी। इस के भीतर के (१६ खंभोंवाली) दालान पर फिर एक खंड इतने खंभों का बना हुआ था और उन के ऊपर एक सुंदर कलसदार गुंबद था।"

मिस्टर डैनियल ने अपनी पुस्तक 'ओरियंटल सीनरी' में इस महल के विषय में लिखा है—

"इलाहाबाद के क़िले में एक महल 'चिहलसुतून' नामक ४० खंभों का था, जिस को भूरे रंग के पत्थर से अकबर ने बनवाया था। इस के ऊपर से गंगा और जमुना में बहती हुई नावों का दृश्य देख कर बड़ा आनंद आता था। यह इमारत मुसलमानी ढंग की भवन-निर्माण कला का एक उत्तम नमूना थी।"

खेद है कि इस महल का नाम और चित्र अब केवल पुस्तकों में रह गया है। इस के मसाले से क़िले की दीवारें मज़बूत की गई हैं।

दूसरी इमारत जो अब 'ज़नानामहल' के नाम से प्रसिद्ध है। किसी न किसी रूप में खड़ी हुई है। मिस्टर डैनियल ने लिखा है कि इस महल के बीचवाले खंड की चोटी पर एक बहुत ही विशाल और सुंदर संगमरमर का कलस था, जो सन् १७८६ ई० में नवाब वज़ीर

अवध (आसफ़ुद्दौला) के हुक्म से निकाल कर लखनऊ भेज दिया गया। वहां फिर से उस के बनाने की चेष्टा की गई, परंतु सफलता न हुई।

"यह इमारत भी दो खंड की चौकोर है। नीचे से पत्थर के ६४ खंभों पर खड़ी हुई है जो आठ पंक्तियों में विभाजित हैं। चारों कोनों पर चार-चार खंभों का समूह है। यह महल भी मिस्टर फ़र्गुसन के शब्दों में बहुत ही उत्तम नमूने का था। इस की शैली ऐसी दर्शनीय और नक्क़ाशी तथा चित्रकारी ऐसी उत्तम थी कि भारत में इस ढंग की कोई इमारत इस से बढ़ कर सुंदर न होगी।"

जब क़िला अंग्रेज़ों के अधिकार में आया तो इस महल के बीच-बीच में दीवारें खड़ी कर के शस्त्रागार बनाया गया। और उस के ऊपर और नीचे की दीवारों पर चूने का प्लास्टर कर के उस के असली रूप को छिपा दिया गया। परंतु पीछे लार्ड कर्ज़न की आज्ञा से यह इमारत खाली हो गई है; और इस की दीवारों को बड़ी सावधानी से छील-छाल कर तथा ऊपर एक छज्जा बना कर यथासंभव फिर उस को असली रूप में लाने का प्रयत्न किया गया है।

१८ वीं शताब्दी के अंत में जब यह क़िला ईस्ट इंडिया-कंपनी के हाथ में आया तो इस को अन्य जंगी क़िलों के समान सुदृढ़ बनाने के लिए बहुत कुछ परिवर्त्तन किया गया। ऊँची-ऊँची दीवारें, बुर्ज और फाटक गिरा कर नीचे कर दिए गए। भीतर की इमारतों में भी बहुत कुछ काट-छाँट हुई और कई नई बैरिकें बनाई गईं। इस हेर-फेर से क़िले का बाह्य सौंदर्य अवश्य ही नष्ट हो गया, परंतु वह पहले से अधिक मज़बूत हो गया। इस की यह मरम्मत सन् १८३८ में समाप्त हुई थी। अब इस में सेनाविभाग का शस्त्रागार तथा गुदाम है और बे तार के तार का स्टेशन है, जिस के ऊँचे-ऊँचे खंभे दूर से दृष्टि-गोचर होते हैं।

(४) ख़ुल्दाबाद तथा ख़ुसरोबाग़

चौक से थोड़ी दूर पश्चिम ग्रैंड ट्रंक सड़क एक पक्की सराय के भीतर से निकल कर आगे चली गई है। यह ख़ूब लंबी-चौड़ी है। इसी सराय का नाम 'ख़ुल्दाबाद' है, जिस का क्षेत्रफल १७ बीघा है। इस में चारों ओर मुसाफ़िरों के रहने के लिए कोठरियां बनी हुई हैं। चारों ओर चार फाटक हैं। जिन में से उत्तरवाला सब से विशाल और भव्य द्वार ख़ुसरोबाग़ का है। पूर्व और पश्चिमवाले फाटकों के दोनों कोनों के चार-चार खंभों पर दो-दो गुंबददार छतरियां बनी हुई हैं, जिन के पत्थर अब मरम्मत न होने के कारण गिर रहे हैं। पश्चिमवाले द्वार के ऊपर बाहर की ओर फ़ारसी के उभरे हुए अक्षरों में यह पद्य लिखा है :—

بفرمان شہنشاہ جہانگیر—کہ زیبد ملکش از مہ تا بماهي
بباشد ایں سرائے آسماں قدر

इस का अक्षरांतर इस प्रकार है :—

" बफ़रमाने शहनशाहे जहाँगीर, कि ज़ेबद मुल्कशज़ मह ताबमाही
बिना शुद ईं सराये आसमाँ क़द्र "

अर्थात् "सम्राट् जहाँगीर की आज्ञा से जिस का राज्य आकाश से पाताल तक शोभायमान हो रहा है, यह आकाश के समान उच्च गौरववाली सराय बनाई गई।" परंतु कब बनी ? इस का कोई उल्लेख नहीं है। एक अंग्रेज़ी पुस्तक[1] में सन् ९८७ हिजरी (१५७९ ई०) में इस सराय का बनना लिखा है, जब कि अकबर का राज्यकाल था, परंतु इस की पुष्टि में हम को कोई प्रमाण नहीं मिला।

सराय से उत्तर मिला हुआ ख़ुसरोबाग़ है। इस का क्षेत्रफल ६४ एकड़ या ११५ बीघा है। यह बाग़ चौकोर है, जिस की ऊँची-ऊँची दीवारें पत्थर के बड़े-बड़े ढोंके को जोड़ कर बनाई गई हैं[2]। एक फाटक उत्तर की ओर भी है, जिस की बनावट बिलकुल सादी है। परंतु दक्षिणवाला द्वार जो ख़ुल्दाबाद की सराय में खुलता है, बहुत ही विशाल और उत्तम है। इस की ऊँचाई ६० फ़ुट बतलाई जाती है। इस की बनावट क़िले के महलवाले फाटक से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। इस फाटक के ऊपर फ़ारसी में लिखा है :—

بحکم حضرت شهنشاهی خلافت پناهی ظل الهي نورالدین محمد
جهانگیر بادشاه غازي به اهتمام مزید خاص آقا رضا مصور ایں بنائے عالي
صورت اتمام یافت

"बहुक्म हज़रत शहनशाही ख़िलाफ़त पनाही ज़िल्ले इलाही नूरुद्दीन महम्मद जहाँगीर बादशाह ग़ाज़ी बइहत्माम मज़ीद ख़ास आक़ारज़ा मुसव्विर ईं बिनाय आली सूरत इतमाम याफ़्त।"

इस का भावार्थ यह है कि सम्राट् जहाँगीर की आज्ञा से आक़ा चित्रकार के विशेष प्रबंध से यह विशाल भवन बन कर तैयार हुआ। नीचे हिजरी सन् के ३ अंक १०१ बहुत स्पष्ट है, परंतु उस के आगे दाहिने ओर इकाई की संख्या एक फूल के रूप में इस प्रकार (+) बनी हुई है। यूरोपियन इतिहासकारों ने इसे विंदु ही माना है, जिस के अनुसार यह १०१० हिज़री होता है, जो बराबर है सन् १६०१ ई० के, परंतु उस समय अकबर का राज्य था। सन् १६०५ में युवराज सलीम 'जहाँगीर' के नाम से गद्दी पर बैठा। फिर यह समझ में नहीं आता कि उस ने चार वर्ष पहले क्योंकर अपना भावी नाम बादशाही पदवी के साथ इस द्वार पर अंकित करा दिया ? इस लिए हमारी राय में यह अंक चार (۴) रहा होगा, जो कुछ विकृत हो कर अब इस रूप में दिखाई पड़ता है।

---

[1] 'आर्कियालाजिकल सर्वे अव् इंडिया' (न्यू सीरीज़), १८९१, जिल्द २, पृ० १३१

[2] 'मिफ़्ताहुल-तवारीख़' में लिखा है कि क़िले के बचे हुए मसाले से ख़ुसरो बाग़ की दीवार बनी थी।

बाग़ के बाहर दक्षिण और पूर्व के कोने पर एक सुंदर बावली बनी हुई थी जो सन् १८६२ के पश्चात् दीवार घेर कर वाटर वर्क्स विभाग के भीतर कर ली गई; और फिर पीछे पाट दी गई।

बाग़ के बीचों-बीच थोड़े-थोड़े अंतर से चार बड़ी इमारतें हैं। इन के मध्य में पत्थर के दो बड़े कुंड हैं और उन के बीच में फ़व्वारा छूटने के स्थान बने हुए हैं। सब से पूर्व वाले भवन में जो केवल एक खंड की गुबंददार इमारत है ख़ुसरो की क़ब्र है। इस के ऊपर कुछ लिखा हुआ नहीं है। दीवारों पर बहुत से फ़ारसी के शेर (पद्य) हैं, जिन का इस क़ब्र से कोई संबंध नहीं है। अलबत्ता गुबंद के निकट-भीतर बारह शेर लिखे हैं, जिन के अंतिम पद्य से अबजद के हिसाब से ख़ुसरो के मरने का हिजरी साल १०३१ दो बार निकलता है। वे शेर ये हैं—

آہ افسوس آسماں را سیرتِ بیداد شد
آرے آرے کار چوں بر ظلم آمد داد شد

(१) आह अफ़सोस आसमाँरा सीरते बेदाद शुद।
आरे आरे कार चूँ बर ज़ल्म आमद दाद शुद॥

زندگی زد خیمہ بیروں از دیار خرّمی
دید چوں بنیادِ عالم را خراب آباد شد

(२) ज़िन्दगी ज़द ख़ीमा बेरूं अज़ दयारे ख़ुर्रमी।
दीद चूँ बुनियादे आलम रा ख़राब आबाद शुद॥

اہل اوباش اند آگہ از فلک کاحداث او
ہر کجا زد شعلۂ خاکسترش برباد شد

(३) अल्हे औबाशन्द आगह अज़ फ़लक कहदास ऊ।
हर कुजा ज़द शोलए ख़ाकिस्तरश बरबाद शुद॥

گلبنے ہر جا کہ بینی برگ ریز اندر پے است
بلبل ایں باغ بودن مصلحت از یاد شد

(४) गुलबुने हरजा कि बीनी बर्गरेज़ अन्दर पै अस्त।
बुलबुले ईं बाग़ बूदन मसलहत अज़ याद शुद॥

گلعذارے را طراوت چیست کاخر خار مرگ
از پئے چاکِ قبا صد سوزنِ فولاد شد

(५) गुल अज़ारे रा तरावत चीस्त काख़िर ख़ारे मर्ग।
अज़ पये चाके क़बा सद सोज़ने फ़ौलाद शुद॥

چوں بہ لب رانم حدیثے را کہ می سوزد بہ آہ
مشکل است امّا جہاں تاہست دیں معتاد شد

(६) चूं ब लब रानम हदीसे रा कि मी सोज़द ब आह।
मुशकिलस्त इम्मा जहां ताहस्त ईं मोताद शुद ॥

آں گلِ رعنا کہ بود آرائے گلشن صد دریغ
عندلیباں را برنگ و بوے او دل شاد شد

(७) आं गुले राना कि बूद आराय गुलशन सद दरेग़।
अन्दलीबां रा बरंगो बूय ऊ दिलशाद शुद ॥

چاک پیراھن شد از خارِ قضا در باغِ عمر
هم زمیں بگریست هم از آسماں فریاد شد

(८) चाक पैराहन शुद अज़ खारे क़ज़ा दर बाग़े उम्र।
हम ज़मीं बगिरीस्त हम अज़ आसमां फ़रयाद शुद ॥

شد قبا برقامتِ مردم قبا در ماتمش
شاہ خسرو را بہ سوے خلد چوں ارشاد شد

(९) शुद क़बा बर क़ामते मरदुम क़बा दर मातमश।
शाह ख़ुसरो रा बसूये ख़ुल्द चूं इर्शाद शुद ॥

آں تنِ نازک کہ بروے بود پیراھن گراں
در تہِ خاکِ جفا افسوس استعداد شد

(१०) आं तने नाज़ुक कि बरवै बूद पैराहन गरां।
दर तहे ख़ाके जफ़ा अफ़सोस इस्तेदाद शुद ॥

شد فریقِ رحمتِ حق چوں ولئی پاک بود
خاص درگاہ خدا و همدم اوتاد شد

(११) शुद ग़रीक़े रहमते हक़ चूं वलीए पाक बूद।
ख़ास दरगाहे ख़ुदा ओ हमदमे औताद शुद ॥

سلمی ارشد سال فوتش فیض لایق باز گو
۱۰۳۱ هجری
صفۂ جنت ز جانِ پاک او آباد شد

(१२) सलमी अरशद साल फ़ौतश फ़ैज़ लायक़ बाज़ गो।
सुफ़्फ़ये जन्नत ज़ि जाने पाक ऊ आबाद शुद ॥

१०३१ हि०

इस का अर्थ इस प्रकार है :—

(१) अहो ! आसमान (कालचक्र) का अत्याचार करने का स्वभाव हो गया है। हां हां, जब उस का काम अत्याचार के रूप में प्रकट हुआ तभी तो हाहाकार मचा।

(२) यह देख कर कि संसार की जड़ ढीली है, जीवन, आनंद के देश से बाहर निकल गया (अर्थात् जीवन आनंद-रहित) हो गया।

(३) स्वतंत्र विचारवाले आसमान की करतूत को ख़ूब जानते हैं कि जिस जगह इस ने आग लगाई वहां की राख तक बरबाद हो गई। (अर्थात् जला कर राख तक उड़ा दी गई)।

(४) जहां तुम गुलाब का पौधा देखोगे उस के पीछे पतझड़ लगी हुई है। ऐसे (नश्वर) बाग़ का बुलबुल (के समान लोभी) होना व्यर्थ है।

(५) किसी रूप की कोमलता क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं है) जब कि अंत में मृत्यु का काँटा उस का जीवन-रूपी वस्त्र फाड़ने के लिए, फ़ौलाद की सैकड़ों सुइयों का रूप धारण कर लेता है।

(६) मैं ऐसी बात क्योंकर होठों तक लाऊँ, जो आह की (संताप-रूपी) अग्नि से जल रही है। मुश्किल तो यह है कि जब तक दुनिया है इस का यही स्वभाव है।

(७) हा वह उत्तम फूल जो बाटिका की शोभा था, और उस के रंग तथा सौरभ से बुलबुलों का हृदय गद्‌गद था !

(८) उस का (आयु-रूपी) परिधान, जीवन के उपवन में, मृत्यु के काँटों से फट गया, जिस पर पृथ्वी भी रोई और आकाश ने भी दुहाई दी।

(९) लोगों के शरीर का वस्त्र उस के संताप से शोक का वस्त्र हो गया, जब कि शाह ख़ुसरो को स्वर्ग की ओर जाने का आदेश हुआ।

(१०) वह कोमल शरीर, जिस पर वस्त्र भारी मालूम होता था, दुःख है कि अत्याचार की मिट्टी के नीचे दबने के लिए तैयार हो गया।

(११) वह परमात्मा की दया में डूब गया, क्योंकि वह सिद्ध था। वह भगवान् के समीप पहुँच गया और महात्माओं की पंक्ति में सम्मिलित हो गया।

(१२) हे ! 'सलमी अरशद' (इन पद्यों के रचयिता का नाम है) उस की मृत्यु के साल (की गणना अबजद के अनुसार) "फ़ैज़ लायक़" (शब्दों से होती) है (जिस का अर्थ "अनुग्रह के योग्य" है) फिर कहो कि "उस की पवित्र आत्मा से स्वर्ग आबाद हो गया" (इस मिसरा से भी जो सब से अंत में है, १०३१ हिजरी निकलता है)।

ख़ुसरो जहाँगीर का बेटा था, जो सन् १५८७ ई० में पैदा हुआ, और सन् १६२२ में बुरहानपुर में क़त्ल किया गया। पीछे उस का शव यहां ला कर गाड़ा गया।[1]

---

[1] ख़ुसरो ने सन् १६०६ ई० में पिता से बाग़ी हो कर लाहोर को जा घेरा। इस पर जहाँगीर ने उस को पकड़वा लिया। परंतु उस का वध करने के लिए तैयार न हुआ और न

इस के आगे पश्चिम की ओर दूसरी इमारत दो खंड की है। इस में ख़ुसरो की बहिन सुलतानुन्निसा ने अपने जीवन में अपनी क़ब्र बनवाई थी। यह भवन सन् १६२५ से आरंभ हो कर सन् १६३२ ई० में बन कर तैयार हुआ था। परंतु इस की क़ब्र ख़ाली ही रह गई, क्योंकि पीछे सुलतानुल की राय बदल गई और तदनुसार वह मरने के पश्चात् सिकंदरे में अकबर की क़ब्र के समीप गाड़ी गई।

इस भवन के ऊपरवाले द्वार पर और उस के दोनों बगल में पत्थर पर उभरे हुए अक्षरों में फ़ारसी के अनेक शेर (पद्य) लिखे हुए हैं, जिन में से बीचवाले अब तक सुरक्षित हैं, परंतु जो किनारे पर हैं उन के कुछ अंश खंडित हो गए हैं। इन पद्यों में इस भवन की प्रशंसा की गई है। गुबंद से लेकर नीचे की दीवारों तक रंग का काम बहुत ही उत्तम और चटकीला है। इस के नीचे का भाग बहुत जगह छिल कर नष्ट हो गया है। इस की भी दीवारों पर फ़ारसी के पचासों शेर लिखे हुए हैं, जिन में से अब कुछ खंडित और कुछ सुरक्षित हैं। इन का भाव साधारण उपदेश, चेतावनी, संसार की असारता तथा वैराग्य इत्यादि है। उन में से कुछ बानगी के रूप में नीचे लिखे जाते हैं :—

وقت آں است کزیں دارفنا در گذریم * کارواں رفتہ و ما بر سر راہ سفریم
زاد رہ ہیچ نہ داریم چہ تدبیر کنیم * سفر دور و دراز است وما بیخبریم
پدر و مادرو فرزند و عزیزاں رفتند * رہ چہ من غافل و مستیم چہ کوتہ نظریم
دمبدم میگذرند از نظر ما یاراں * اینقدر دیدہ نداریم کہ برخود نگریم

ख़ियों की ऐसी राय हुई। इस लिए उस को केवल अंधा करा दिया। पर पीछे बहुत पछताया। मई सन् १६२२ में जब ख़ुसरो बुरहानपुर में क़ैद था तो उस के भाई ख़ुर्रम ने, जो पीछे शाहजहाँ के नाम से बादशाह हुआ, यह देख कर कि अब पिता को उस पर दया आ गई है, ऐसा न हो कि पीछे उसी को राज्य दे दे, उस के वध का गुप्त रूप से प्रबंध किया। वह भी उस समय बुरहानपुर ही में था, पर शिकार के बहाने बाहर खसक गया और रज़ा नाम के एक बधिक को ख़ुसरो की हत्या के लिए नियुक्त किया। उस ने पहुँच कर पहले उस के द्वारपाल को मारा, जिस ने उस (रज़ा) को अंदर जाने से रोका था। फिर भीतर पहुँच कर ख़ुसरो पर हाथ साफ़ किया जो उस समय क़ुरान का पाठ कर रहा था। ख़ुर्रम ने जहाँगीर को लिख भेजा कि पेट में शूल उठने के कारण ख़ुसरो की मृत्यु हो गई। उस का शव पहले बुरहानपुर में गाड़ा गया। पीछे जून के महीने में फिर उखाड़ कर आगरा पहुँचाया गया। वहाँ लोग उस की क़ब्र पूजने लगे। यह बात नूरमहल या नूरजहाँ को बुरी लगी, जो सौतेली मां होने के कारण ख़ुसरो से पहले ही से घृणा करती थी। निदान उस ने जहाँगीर से कह-सुन कर ख़ुसरो के शरीर को आगरे से फिर खुदवाकर इलाहाबाद भेजवा दिया और वह यहां इसी बाग़ में गाड़ा गया।

(डाक्टर बेनीप्रसाद-कृत " जहाँगीर " के आधार पर)

خانۂ اصلیِ ما گوشۂ گورستاں است * خورم آن روز که مارخت ازین جا ببریم
گرهمه مملکت و مال جهاں جمع کنیم * ما بجز پیرهنے هیچ زدنیا نبریم
بادشاها تو رحیمي و رحیمی و غفور * دست ما گیر که در مانده و بےبال پریم
یارب از راه کرم عاقبت خاقاني * خیر گردان توکه مں در طلب خواب وخوریم

इस का अर्थ यह है कि:—

(१) इस मृतलोक से विदा होने का समय आ गया है। सब साथी चले गए और हम अभी यात्रा के आरंभ ही में हैं।

(२) हमारे पास मार्ग के लिए कुछ सामान नहीं है। क्या उपाय करें? यात्रा बड़ी लंबी है और हम निश्चिंत बैठे रहे।

(३) माता, पिता, पुत्र तथा अन्य संबंधी सब चले गए। हाय हम कैसे प्रमत्त और लघुदर्शी हैं कि यह देखकर भी अपने जाने की कुछ तैयारी न की!

(४) प्रतिक्षण हमारे सामने से हमारे मित्र चले जा रहे हैं। हमारी इतनी भी आँख (दृष्टि) नहीं है कि हम अपने को देख सकें (अर्थात् फिर भी हम को नहीं सूझता)।

(५) हमारा असली निवास-स्थान तो क़ब्रस्तान (श्मसान भूमि) है। क्या अच्छा वह दिन होगा जब हम यहां से विदा होंगे।

(६) चाहे हम संसार भर की संपत्ति संचित कर लें, पर अंत में सिवा एक वस्त्र (कफ़न) के और कुछ दुनिया से न ले जायँगे।

(७) हे जगदीश्वर! तू दयालु, कृपालु और क्षमाशील हो। हमारा हाथ पकड़ कि हम बिना पंख के (पक्षी के समान) निराश्रय हैं।

(८) भगवन्! कृपा कर के हमारा भला कर, क्योंकि हम यहां केवल आहार और निद्रा की पूर्ति में लगे रहे।

इस भवन का निर्माण-काल तीन पद्यों में इस के द्वार के ऊपर लिखा हुआ था। खेद है कि पहिला शेर मिट-मिटा गया। शेष दो रह गए हैं, जिन की प्रतिलिपि नीचे दी जाती है:—

برو ملایکِ رحمت همیشه نور نثار   زهے نمونۂ خلد برین به مرکز خاک

बरो मलायके रहमत हमेशा नूर निसार। ज़िहे नमूनये खुल्दे बरीं बमरकज़ ख़ाक॥

خرد ز سال بنایش بصفحۂ فکرت   نوشت با قلم اختراع روضه پاک

ख़िरद ज़ि साल बिनायश बसफ़हये फ़िकरत। नविश्त बाक़लमे इख़्तराअ़ रौज़ये पाक॥

इन पंक्तियों का अनुवाद इस प्रकार है:—

(१) (इस भवन पर) दया के फ़रिश्ते सदैव प्रकाश बखेरते रहते हैं। अहा, पृथ्वी के ऊपर क्या अच्छा स्वर्ग का नमूना (बना) है!

(२) बुद्धि ने इस के निर्माण का साल, विचार के पट पर आविष्कार की लेखनी से 'रौज़ा पाक' (पवित्र समाधि) अंकित किया।

इस के पश्चिम तीसरी इमारत में शाहबेगम की क़ब्र है, जो ख़ुसरो की मां थी। यह अफ़ीम खा कर सन् १०१२ हिजरी या सन् १६०३ ई० में मरी थी। यह इमारत तीन खंड की है, जिस के सब से ऊपरवाले भाग में एक गुबंददार छतरी के नीचे क़ब्र का प्रतिरूप बना हुआ है। असली क़ब्र सब से नीचेवाले खंड में है। ऊपर की नक़ली क़ब्र संगमरमर की है, जिस के दोनों ओर बड़े-बड़े उभरे हुए अक्षरों में फ़ारसी के दो शेर लिखे हुए हैं। सिर और पाँव की ओर उसी पत्थर की दो सुंदर तराशी हुई पाटियाँ खड़ी हैं। सिरहानेवाली में उसी प्रकार के अक्षरों में दो शेर लिखे हुए हैं, जिन से बेगम के मरने का हिजरी सन् अबजद[1] से हिसाब से निकलता है। पाँयते वाली पटिया में उभरे हुए बेल-बूटे दर्शनीय हैं, जो पत्थर पर बड़ी सफ़ाई से तराश कर बनाए गए हैं।

क़ब्र के बग़ल में जो-जो पद्य लिखे हैं उन में बेगम के पवित्र आचरण की प्रशंसा इन शब्दों में वर्णन की गई है :—

पूर्व की ओर—

بیگم کہ ز عصمت رخ رحمت آراست — اقلیم عدم ز نور عزت آراست

पश्चिम की ओर—

سبحان الله زہے کمال عفت — کز حسن عمل چہرہ جنت آراست

अक्षरांतर—

बेगम कि ज़ि असमत रुख़े रहमत आरास्त।
इक़लीम अदम ज़ि नूर इज़्ज़त आरास्त॥

सुबहान अल्लाह ज़िहे कमाले इफ़्फ़त।
कज़ हुस्न अमल चिहरये जन्नत आरास्त॥

भावार्थ— "बेगम ने अपने सतीत्व से ईश्वर के दयारूपी मुखमंडल की शोभा बढ़ाई और परलोक को अपने गौरव की ज्योति से सुसज्जित किया। अहो! उस की असीम पवित्रता की क्या प्रशंसा की जाय, जिस ने अपने सुकर्मों से स्वर्ग के मुख को उज्ज्वल कर दिया है!"

सिरहानेवाली पटिया पर लिखा है :—

چوں چرخ فلک ز گردش خود آشفت
در زیر زمیں انیلہ بخفت

---

[1] फ़ारसी में प्रत्येक अक्षर के लिए एक-एक संख्या कल्पित कर ली गई है उसी को 'अबजद' का हिसाब कहते हैं।

تاریخ وفات شاہ بیگم جستم
از غیب ملک بخلد شد بیگم گفت
الکاتبہ عبدالله مشکین قلم جہانگیر شاهي

अक्षरांतर— चूँ चर्ख़ फ़लक ज़ि गर्दिशे ख़ुद आशुफ़् ।
दर ज़ेर ज़मीन आईनः बनिहुफ़् ॥
तारीख़ वफ़ात शाहबेगम जुस्तम ।
अज़ ग़ैब मलक बख़ुल्द शुद बेगम गुफ़् ॥

भावार्थ —"जब आकाश-रूपी काल-चक्र घूमते-घूमते ऊब गया तो उस ने (झुँझला कर) एक दर्पण (के सदृश स्वच्छ अंगोंवाली रमणी) को पृथ्वी के भीतर छिपा दिया। शाह बेगम की मृत्यु किस वर्ष हुई, इस के निर्धारित करने के लिए जब मैंने चेष्टा की तो परोक्ष से एक देवदूत ने कहा कि 'बेगम स्वर्ग में चली गई'[१] ।"

यह (पद्य) जहाँगीर के दरबार के सुलेखक अब्दुल्लाह का लिखा हुआ है। लेखक ने अपने नाम का परिचय अंतिम पंक्ति में दिया है। इसी अब्दुल्लाह ने क़िले में अशोक स्तंभ पर जहाँगीर की वंशावली लिखी थी।

ये तीनों इमारतें एक दूसरे के समीप स्थित हैं, परंतु चौथी इमारत पश्चिम की ओर कुछ दूर हट कर है। इस में कोई क़ब्र नहीं है। दो खंड का छोटा-सा गोलाकार तथा गुंबददार भवन है। इस को लोग तंबोली बेगम का महल कहते हैं। जो इस्तंबोली का संक्षिप्त मालूम होता है। फ़तेहपुर सीकरी में भी इसी नाम से एक महल प्रसिद्ध है। यह 'तंबोली बेगम' कौन थी, इस का पता नहीं लगा।

पिटर मुंडी ने सन् १६३२ ई० में इस बाग़ को देख कर लिखा था :—

"मैं आज संध्या को इस बाग़ में गया जहाँ तीन क़ब्रें हैं, अर्थात् ख़ुसरो, उस की माता और उस की बहन की, जिन में पिछली अब तक जीवित है। ख़ुसरो की कब्र एक मिहराबदार लदाव की छत के नीचे बीचों-बीच में है; और देखने में सुंदर मालूम होती है। यह पृथ्वी से छाती बराबर ऊँचाई पर है। जिस के ऊपर चारों ओर सीप जड़ी हुई लकड़ी का जंगला लगा है और ऊपर मख़मल की छतगीरी टंगी हुई है। सिरहाने ख़ुसरो की पगड़ी और क़ुरान रक्खा हुआ है। जिस को वह पढ़ते हुए मारा गया था।[२]"

बिशप हेबर ने सन् १८२४ ई० में इन इमारतों को देख कर लिखा था :—

"ये सब इमारतें बहुत ही पवित्र, भाव-जनक, हृदयग्राही तथा उत्तम हैं। हां रंगीन

---

[१] यह 'बख़ुल्द शुद बेगम' का अनुवाद है, जिस के अक्षरों से अबजद के हिसाब से १०१२ हिजरी निकलता है।

[२] 'ट्रैवेल्स अव् पिटर मुंडी,' (लंदन), १६१४, जिल्द २, पृ० १००

तथा भड़कीली नहीं हैं। इन के देखने से इंग्लैंड वालों की यह धारणा पूरे तौर से मिथ्या सिद्ध होती है, जिस के अनुसार वह सभी पूर्वीय इमारतों को भद्दी समझते हैं; और उन को अच्छी रुचि से नहीं देखते[1]।"

इस बाग़ में पूर्व की ओर आधे भाग में सन् १८६१ ई० से वाटर वर्क्स के बड़े-बड़े जलाशय बन गए हैं, जहां से जल साफ़ हो कर नलों द्वारा सारे शहर में पहुँचता है। शेष आधे में हर प्रकार के फल-फूल और लताओं की पेड़ियाँ बिकने के लिए तैयार की जाती हैं।

(५) अन्य पुरानी क़ब्रें और मसजिदें

नगर के पश्चिम ख़ुल्दाबाद से देवगिरि के तालाब तक बहुत सी पुरानी पक्की क़ब्रों के चिन्ह पाए जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं पर गुंबद भी बने हुए हैं। यही हाल पूर्व की ओर कीटगंज में है। कुछ क़ब्रों के सिरहाने लिखी हुई पत्थर की पाटियाँ भी खड़ी हैं। परंतु ये सब अत्यंत जीर्ण अवस्था में हैं। बहुतों के समीप लोगों ने घर बना लिए हैं।

मुसलमानों की सब से पुरानी क़ब्र जिस का अब तक पता लगा है, बहादुरगंज में शाह मुहिबउल्लाह की सन् १०५८ हि० (१६४८ ई०) की है। इस के पश्चात् १८वीं शताब्दी की अनेक क़ब्रें हैं। जिन में सब से पुरानी दायरा शाहअजमल में शाह मुहम्मद अफ़ज़ल की सन् ११२४ (हि० १७१२ ई०) की है।

कीटगंज के उत्तर अंग्रेज़ों का भी एक बहुत बड़ा पुराना क़ब्रस्तान है। इस में सब से पुरानी क़ब्र लेफ़्टनेन्ट कर्नल ए० डबल्यू हियरसी की है, जो क़िले के सब से पहिले कामांडेन्ट थे और सन् १७६८ में मरे थे।

शहर में कई मसजिदें और दायरे (मुसलमान फ़क़ीरों के आश्रम) भी पुराने हैं। इन में सब से पुरानी मसजिद बहादुरगंज में दायरा शाह मुहिबउल्लाह की सन् १०६३[2] हि० (१६५२ ई०) की है। इस के बाद सन् १०८८ हि० (१६७७ ई०) की दायरा शाहअजमल की, सन् ११०८ हि० (१६९६ ई०) की दायरा शाहहुज्जतउल्लाह की और सन् ११८८ हि० (१७८४ ई०) की खुलदाबाद की मसजिदें हैं। एक और मसजिद क़दम रसूल के नाम से सिविल लाइन में रेलवे स्टेशन के पास सन् ११८४ हि० (१७७२ ई०) की है। यहां एक

---

[1] 'ट्रैवेल्स अव् बिशप हेबर', जिल्द २, पृ० १३३।

[2] इस मसजिद को दिलरुबाशाह ने बनवाया था इस के निर्माण का साल इस शेर से निकलता है :—

سال تاریخ ایں خجستہ مقام ❀ مسجد عارف خدا آمد

۱۰۶۳ ھجری

कोठरी में पत्थर पर दो पद-चिह्न बने हुए हैं, जिन को महम्मदसाहब के पाँव का निशान बतलाया जाता है। इस मसजिद को शाहआलम के एक फ़ीलवान ने बनवाया था[1]।

(६) अलफ़्रेड पार्क

सन् १८७० ई० में सम्राट् जार्ज पंचम के चचा अलफ्रेड ड्यूक आव् एडिनबरा भारत में आए थे। सर विलियम म्योर उस समय इस प्रांत के लेफ़्टेनेंट गवर्नर थे। उन्हों ने ड्यूक महोदय को प्रयाग में निमंत्रित किया और इस अवसर के स्मारक में वर्तमान अलफ़्रेड पार्क की नींव उन से रखवाई। इतना बड़ा बाग़ जिस का विस्तार १३३ एकड़ से कुछ अधिक या २१३ बीघे के लगभग है, कोई आठ वर्ष में जा कर तैयार हुआ था।

पहले इस में बाजे वाला चबूतरा नहीं था। यह पीछे बाबू नीलकमल मित्र के दान से बना था, जो इस ज़िले में आबकारी के एक प्रसिद्ध ठेकेदार थे।

(७) मेओ मिमोरियलहाल

अर्ल आव् मेओ भारत के गवर्नर जनरल थे, जिन को सन् १८७२ ई० में ऐंडमन (काले पानी) टापू में एक सरहदी कैदी ने मार डाला था। उन्हीं के स्मारक में प्रयाग में लाल ईंटों का यह विशाल भवन १ लाख ८५ हज़ार रुपए की लागत से सन् १८७९ ई० में बनाया गया था। इस की आधार-शिला तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने रक्खी थी। इस का मीनार १८० फ़ुट के लगभग ऊँचा बतलाया जाता है, भीतर सामने उक्त लार्ड मेओ की संगमरमर की गर्दन तक की मूर्ति और एक नक़ली क़ब्र बनी हुई है। बग़ल में एक बड़ा हाल है, जिस में कुछ महसूल देकर जल्से, व्याख्यान तथा नाटक इत्यादि हुआ करते हैं।

(८) स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया की प्रतिमा

सन् १९०५ ई० में अलफ़्रेड पार्क में स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया की पत्थर की मूर्ति स्थापित की गई, जो इटली से बन कर आई थी। इस के बनने में डेढ़ लाख रुपए

---

[1] इस मसजिद के ऊपर इसकी तारीख़ शाह महम्मदअजमल ने इस प्रकार लिखी है :—

قرب قدم رسول رهبر * از بهر نماز ایں مکان است
تعمیر بدور شاه عالم * آن شاه که شاه خسروان است
بنمود رفیق جنگ عالی * کو سید فوجدار خان است
اجمل ز تو گر کسے بپرسد * تاریخ بنائے ایں چساں است
گو بیت خدا وکعبۂ دین * تاریخ بنائے ایں مکان است

١١٨٣ هجري

व्यय हुए थे। इस का उद्घाटन संस्कार २४ मार्च १९०६ ई० को तत्कालीन लेफ्टेनेंट गवर्नर सर जेम्स लाटूश द्वारा हुआ था।

(९) मिंटो पार्क

किले के पश्चिम यमुना किनारे जहां पहली नवंबर सन् १८५८ को तत्कालीन वायसाय लार्ड कैनिंग ने महारानी विक्टोरिया का प्रसिद्ध घोषणा-पत्र पढ़ कर सुनाया था। उस के स्मारक में उसी स्थान पर पंडित मदनमोहन मालवीय जी के उद्योग से उज्ज्वल पत्थर का एक स्तंभ खड़ा किया गया है और उस पर उक्त घोषणा-पत्र तथा उस के समर्थन में महारानी के उत्तराधिकारियों ने भारत के हित के लिए जो वाक्य कहे हैं, उन्हीं के आवश्यक अंश अंकित किए गए हैं।

सन् १९१० में प्रदर्शिनी के अवसर पर उस समय के गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो से ६ नवम्बर सन् १९१० को इस की आधार-शिला रखवाई गई थी। इस लिए इस के गिर्द जो एक छोटा-सा बाग़ १३½ एकड़ का लगाया गया है और उस का नाम मिंटो पार्क रक्खा गया है।

(१०) क्लाकटावर

सन् १९१३ में यहां के सुप्रसिद्ध रईस राय बहादुर लाला रामचरनदास तथा उन के भतीजे लाला विशंशर दास जी ने अपने-अपने पिता अर्थात् स्वर्गीय लाला मनोहरदास और उन के पुत्र लाला मुन्नीलाल जी के स्मारक में यह घंटाघर चौक में बनवाया था। यहां सन् १९१०-११ की प्रदर्शिनी में जो घंटा घर बनाया गया था। यह ठीक उसी के अनुरूप है।

आठवां अध्याय

प्रयाग ज़िले के प्राचीन स्थानों का ऐतिहासिक वर्णन

अरैल

त्रिवेणी-क्षेत्र के सामने यमुना के दक्षिणीय तट पर अरैल एक प्रसिद्ध स्थान है। यह बहुत ही पुरानी जगह मालूम होती है। परंतु खेद है कि इस का इतिहास अत्यंत अंधकारमय है।

कहते हैं, इस का पुराना नाम अलर्कपुरी था। अलर्क ऐतिहासिक युग से पहले एक राजा हुआ था, जिस के विषय में प्रसिद्ध है कि उस ने सत्य के लिए अपनी आँखें निकलवा दी थीं। दूसरी दंतकथा यह है कि, यह स्थान इला के नाम पर बसाया गया था, जिस के वंश में प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) के चंद्रवंशीय नरेश हुए हैं।

'मत्स्यपुराण' के अध्याय १०८ में लिखा है कि प्रयाग में 'कंबल' और 'अश्वतर' दो तट हैं। वहां भोगवती पुरी है, और वह प्रजापति की वेदी की रेखा है। 'कूर्मपुराण' के अध्याय ३७ में इन दोनों तटों को यमुना के दक्षिण बतलाया है, जो अरैल के सिवा दूसरा स्थान नहीं हो सकता।

'तरीख़ आईनए-अवध' में लिखा है कि जलालुद्दीन ख़िलजी के समय (सन् १२८८—१३९५ ई०) में अरैल में राजा रामदेव के पुत्र रायसेन का राज्य था, जो अंत में मुसलमानों के उपद्रव से मारा गया। उस की रानी गर्भवती थी। वह भाग कर प्रतापगढ़ चली गई और उसी के वंश में वहां के सोमवंशीय क्षत्रिय हैं।

गुलबदन बेगम के 'हुमायूँनामा' में भी अरैल की चर्चा इस प्रकार आई है कि हुमायूँ चुनार में शेर ख़ां से हार कर इस स्थान पर आया था। यहां राजा वीरभानु बघेल की सहायता से वह पार उतर कर कड़े की ओर गया था।

अकबर ने इस स्थान का नाम 'जलालाबाद' रख कर (क्योंकि उस का असली नाम जलालुद्दीन था), इसी नाम से परगना स्थापित किया था, परंतु वह नाम प्रचलित नहीं हो सका।

अब इस की अवस्था एक मामूली गाँव की है। यहां पुराने समय के कोई चिह्न नहीं पाए जाते। संभव है, जमुना ने काट कर बहा दिया हो। केवल बेनीमाधव, आदि-माधव और सोमेश्वर महादेव के मंदिर बने हुए हैं, जिन की चर्चा 'पद्मपुराण' स्वर्ग-खंड के अध्याय ६८ तथा ८४ और 'बराहपुराण' के अध्याय १३८ में आई है, परंतु इन में से कोई मंदिर बहुत पुराना नहीं है। सोमेश्वरनाथ का मंदिर अरैल से एक मील पूर्व है। यहां एक पत्थर पर सं० १६७४ वि० का जयपुर के महाराजा मानसिंह का नाम है, जिस के विषय में कहा जाता है कि स्वयं उन्हीं का हस्ताक्षर है।

इन के अतिरिक्त अरैल में बल्लभ संप्रदाय का एक पुराना मठ है, जिस की चर्चा महाप्रभु चैतन्य के देशाटन में आई है वह जब प्रयाग आए थे तो वहां भी जा कर कुछ दिनों ठहरे थे।

जल-मार्ग के अतिरिक्त नैनी की ओर से अरैल को एक कच्ची सड़क गई है। अतः उस के द्वारा मोटर से भी वहां जा सकते हैं।

कड़ा

कड़ा प्रयाग से कोई ३६ मील पश्चिम और कुछ उत्तर के कोने में गंगा के दाहिने किनारे पर स्थित है। प्राचीन समय में यह उत्तर भारत के ६ पवित्र स्थानों में से था। यहां कालेश्वर महादेव का मंदिर है, जिस के कारण इस स्थान का पुराना नाम 'काल-नगर' बतलाया जाता है। 'कर्कोटक नगर' भी इस को कहते थे, जिस के विषय में यह दंतकथा है कि यहां सती (महादेव जी की स्त्री) का कर (हाथ) गिरा था। प्रसिद्ध मुसलमान यात्री इब्न बतूता ने जो सन् १३४० ई० में यहां आया था इस स्थान को हिंदुओं का एक तीर्थ लिखा है। नीचे के एक शिला लेख में इस का नाम 'कट' लिखा है।

पुराने समय में राजनीतिक दृष्टि से यह स्थान बड़े महत्व का था। यहां की वर्तमान बस्ती से कुछ दूर गंगा के किनारे एक पुराने दुर्ग का टीला अब तक मौजूद है। यह नीचे की भूमि से ६० फ़ुट ऊँचा है। इस की लंबाई उत्तर-दक्षिण ६०० फ़ुट और चौड़ाई पूर्व-पश्चिम ५५० फ़ुट है। अधिकांश दीवारें ईंट की और कुछ पत्थर की हैं। यह जयचंद का क़िला कहलाता है, जो कन्नौज का अंतिम-हिंदू नरेश था। यह स्थान उस के साम्राज्य के पूर्वीय भाग की उप-राजधानी थी। परंतु इस के इतिहास का पता इस से और आगे नहीं चलता। यहां हिंदुओं के समय के कई पुराने सिक्के मिले हैं, जिन में से एक 'कौशांबी' राज्य का था। इस से विदित होता है कि पहले यह स्थान कौशांबी राज्य के अंतर्गत था।

यहां अब तक दो पुराने अभिलेख मिले हैं, जिन में से एक संवत् १०६३ वि० (१०३५ ई०) का उक्त क़िले के फाटक पर था। यह कन्नौज के परिहार-वंशीय राजा

'यशःपाल' के समय का है, जो जयचंद्र से १६० वर्ष पहले हुआ था। यह लेख इस प्रकार है—

संव (त) १०६३
आषाढ़ शुदि १
अद्येह श्रीमत्कटे
महाराजधिराज
श्री यशः पालः कौ
शाम्ब मंडले पयहा
स ग्रामे महन्तम
नुसमादिश निय था
यस्ते से कीय माथ
रवि कृप्य शासन
त्व प्रसादि वृाय मन्व
स्त शस्ने हा कार हिर
म्ब प्रत्या दाया दिकं
मस्वो पनेत व्यमिति
दश वन्वेन सह पिकं
ठालं कृत·······
दुरा पोत्रा·······

यह पत्थर ४ फ़ुट ६ इंच लंबा है, परंतु लेख केवल ६ इंच में है। कुल १६ पंक्तियां हैं। लेख खंडित होने से पूरे तौर से समझ में नहीं आता। जहां तक समझा गया इस का आशय यह है कि "संवत् १०६३ में आषाढ़ सुदी प्रतिपदा को कट [कड़ा] के महाराज यशपाल ने कौशांबी मंडल के अंतर्गत पयहास[१] गाँव में ऐसा आदेश दिया·····"

यह अभिलेख इस समय कलकत्ते के इंडियन म्यूज़ियम में है। दूसरा ताम्रपत्र जो यहां मिला है सन् १५५६ ई० का रीवां के राजा रामचंद्र का है। यह एक दान-पत्र है। इस में कोई विशेष बात नहीं है।

मुसलमानों के समय में पहले यह स्थान बहुत दिनों तक उन के शासकों का निवास-स्थान रहा। १२ वीं शताब्दी के अंत में शाहबुद्दीन ग़ोरी ने कन्नौज के राजा जयचंद्र को परास्त कर के काशी तक अपना अधिकार जमा लिया। उस के कुछ दिनों पीछे गंगा के उस पार मानिकपुर और इधर कड़ा में मुसलमानों की सूबेदारी स्थापित हुई और बहुत दिनों तक प्रयाग उसी के अंतर्गत रहा।

---

[१] 'एशियाटिक रिसर्चेज़', जिल्द ६, पृ० ४४०-४४१।

[२] यह गाँव अब 'परास' के नाम से प्रसिद्ध है जो कड़ा से पाँच मील पश्चिम-उत्तर की ओर है।

अब यहां की कुछ मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

क़ुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का पहला मुसलमान बादशाह था। उस ने कड़े का इलाक़ा अपने गुरु क़ुतुबुद्दीन मदनी के सिपुर्द कर दिया था, जिस की क़ब्र वहां आबादी के पश्चिम अब तक बनी हुई है। यह कड़े में सब से पुरानी क़ब्र है।

सन् १२४७ ई० में जब शम्सुद्दीन इस्तुतमिश दिल्ली का बादशाह था, तो नासिरुद्दीन महमूद ने अपने सेनापति उलग़ ख़ां के साथ कड़ा आ कर यहां से पड़ोस के कई हिंदू राजाओं पर आक्रमण किया था।

सन् १२५३ ई० में कड़े की सूबेदारी उलग़ ख़ां को दी गई। उस के तीन वर्ष पीछे कंतलग़ ख़ां ने बाग़ी होकर यहां बड़ा उपद्रव मचाया, जिस को अर्सलां ख़ां ने शांत किया। परंतु सन् १२८५ ई० में वह भी बाग़ी होगया और तब उलग़ ख़ां ने स्वयं आ कर उस को परास्त किया। तब से उलग़ ख़ां स्थायी-रूप से यहां का हाकिम बना दिया गया।

सन् १२८६ ई० में ग़यासुद्दीन बल्बन के मरने पर दिल्ली के तख़्त के लिए उस के बेटे नासिरुद्दीन बुग़रा ख़ां और पोते मुइज़्ज़ुद्दीन कैक़ुबाद में कुछ झगड़ा खड़ा हुआ। बुग़रा उस समय बंगाल में था। वह पिता के मरने का समाचार पा कर दिल्ली की ओर चला। यहां कड़े में उस का बेटा कैक़ुबाद बाप से लड़ने के लिए बड़ी सेना लिए पड़ा था। मध्य गंगा में दोनों से नाव पर भेंट हुई। बाप ने आगा-पीछा सोच कर राज्य उसी को दे दिया और बेटे ने क्षमा मांग ली। इस प्रकार से एक बड़े भावी रक्त-पात की समाप्ति हो गई।

सन् १२८६ ई० में जब दिल्ली में जलालुद्दीन ख़िलजी बादशाह था, उस समय उस का भतीजा मलिक छज्जू कड़े का हाकिम हो कर आया। उस ने मुग़ीसुद्दीन के नाम से अपने को स्वतंत्र बादशाह प्रसिद्ध किया, और अवध के सूबेदार की सहायता से दिल्ली की ओर बढ़ा। परंतु बादशाह के दूसरे बेटे अर्कली ख़ां ने उस को परास्त कर के क़ैद कर लिया।

इस के पीछे जलालुद्दीन का दूसरा भतीजा अलाउद्दीन कड़े का हाकिम हो कर आया। उस ने यहां आ कर खूब सेना बढ़ाई और उस को लेकर दक्षिण के कई हिंदू राजाओं पर आक्रमण किया। यह सब काम बिना बादशाह की आज्ञा के किए गए थे। इस लिए अलाउद्दीन के दुश्मनों ने बादशाह का कान भरना आरंभ किया। परंतु वह ऐसा सीधा-सादा आदमी था कि उस पर इन बातों का कुछ असर न हुआ। इधर अलाउद्दीन यह सुन कर कड़े में लौट आया और अपनी रक्षा के लिए बादशाह को बुला भेजा, जो उस समय गंगा के उस पार मानिकपुर में डेरा डाले पड़ा था। इधर अलाउद्दीन ने उस के बध करने के लिए षड्यंत्र रचा।

'तारीख़-फ़िरिश्ता' में इस हत्याकांड का वृत्तांत इस प्रकार लिखा है :—

"बरसात के दिन थे। गंगा खूब उमड़ी हुई थी। अलाउद्दीन ने अपने भाई

इल्मास बेग को पहले ही बादशाह के पास भेज दिया था, जिस ने जा कर बड़े विनीत भाव से उस से कहा कि 'मेरा भाई (अलाउद्दीन) बहुत डरा हुआ है। कृपया जल्दी चल कर उस को ढारस बँधाइए। परंतु अकेले ही चलें, ऐसा न हो कि आप की सेना देख कर वह डर के मारे आत्मघात कर ले। भोला बादशाह इन चिकनी चुपड़ी बातों में आ गया और वह केवल थोड़े से अंगरक्षक ले कर नाव पर कड़े की ओर चल दिया। जब नाव बीच गंगा में पहुँची तो इल्मास ने यह कह कर कि शस्त्र देख कर मेरा भाई डर जायगा, उन थोड़े से साथियों के भी हथियार रखवा लिए। अब बादशाह बिल्कुल निहत्था हो कर क़ुरान पढ़ता हुआ आगे बढ़ा। मध्याह्न के पश्चात् नाव कड़े के नीचे आ लगी। यहां किनारे पर अलाउद्दीन ने पहले बड़े तपाक से चचा का स्वागत किया, बादशाह ने अलाउद्दीन को बहुत प्यार किया, उस का मुख चुंबन कर के हाथ पकड़ लिया और कहा 'बेटा! मैंने तुम को पुत्र के समान पाला है, तुम मुझ से क्यों डरते हो?' उधर सब कील-काँटा दुरुस्त था। इल्मास के संकेत करते ही महमूद नामक एक मनुष्य ने बादशाह पर तलवार का एक हाथ मारा, परंतु दैव गति से वह वार ख़ाली गया। बादशाह चिल्लाता हुआ गंगा की ओर यह कहते हुए भागा कि 'दग़ाबाज़! विश्वास-घातक! अलाउद्दीन यह तूने क्या किया?' परंतु अब इन बातों का कौन सुनने वाला था? एक और मनुष्य जिस का नाम अख़्तियारुद्दीन था दौड़ा और बादशाह को पटक कर उस का सिर काट लिया। अलाउद्दीन ने चचा के सिर को नेज़े (भाले) पर रखवा कर चारों ओर घुमाया[1] और आप बादशाह बन कर दिल्ली चला गया।[2] यह घटना सन् १२६६ ई० में हुई थी।

अलाउद्दीन के समय में यहां एक प्रसिद्ध मुसलमान फ़क़ीर ख़्वाजा कड़क के नाम से हुए थे, जिन का सन् ७०० हिजरी में देहांत हुआ था। इन की बानियों का संग्रह फ़ारसी में 'इसरारुल-मख़दूमीन' के नाम से मौजूद है।

सन् १३९४ ई० में कड़ा ख़्वाजा जहां के अधिकार में आया, जो महमूद तुग़लक़ का मंत्री था। परंतु कुछ दिन पीछे वह जौनपुर चला गया, और वहां स्वतंत्र बादशाह बन बैठा। उस समय से सन् १४९७ ई० तक कड़ा जौनपुर वालों के अधिकार में रहा। इस के पीछे बहलोल लोदी ने जौनपुर विजय कर के दिल्ली में मिला लिया, और कड़े में अपने बेटे ज़ालिम ख़ां को नियुक्त किया।

सिकंदर लोदी के समय में माँडा और कंतित के राजाओं ने कड़े और मानिकपुर पर हमला किया। वहां के मुसल्मान जागीरदारों से घोर युद्ध हुआ जिस में वे लोग बहुत मारे गए। यहां तक कि कड़े के सूबेदार मुबारक ख़ां का भाई शेर ख़ां भी मारा गया।

---

[1] मौज़ा गन्धौरा में जलालुद्दीन की क़ब्र बनी है जो कड़े से १० मील दक्खिन है।

[2] 'तारीख़-फ़रिश्ता', मक़ाला दोयम, पृ० ९९ (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), १८९२ ई०।

मुबारक गंगा पार उतर कर बहराइच भाग गया, और कड़ा-मानिकपुर पर राजाओं ने अधिकार जमा लिया। २४ दिन के पश्चात् सिकंदर लोदी कड़ा आया। यहां राजाओं ने बड़ी वीरता से उस का सामना किया, परंतु अंत में वे भाग निकले। तब सिकंदर ने मुबारक ख़ां को फिर बुलाकर कड़े-मानिक पुर का हाकिम बना दिया।[1]

सन् १४६६ में कड़ा शाहज़ादा आज़म हुमायूँ की जागीर थी। सन् १५२६ ई० में आज़म का बेटा इसलाम ख़ां कड़े का सूबेदार हुआ। उस समय बाबर इस देश के राज्य के लिए पठानों से लड़ रहा था। उस ने जलालुद्दीन लोहानी पर जो जौनपुर के महम्मदशाह का बेटा था, चढ़ाई की, परंतु कड़ा पहुँच कर दोनों में संधि हो गई।

जब अकबर बादशाह हुआ तो सन् १५५६ ई० में कमाल ख़ां ने उस को कुछ नज़र-भेंट दे कर अपनी कड़े की पुरानी जागीर को फिर प्राप्त कर लिया। उस ने अपने नाम से कड़े के निकट एक गाँव कमालपुर बसाया, जो अब तक इसी नाम से प्रसिद्ध है। सन् १५८१ ई० में उस की मृत्यु हो गई। कड़े में उस की क़ब्र एक इमारत के भीतर बनी हुई है, जिस पर उस का नाम खुदा हुआ है। इस के पीछे कड़ा अकबर के प्रसिद्ध योधा आसफ़ ख़ां को जागीर में मिला।

पीछे सन् १५६६ ई० में जब अकबर ने अपने साम्राज्य को सूबों में विभक्त किया, तो कड़े की सूबेदारी तोड़ कर प्रयाग में स्थापित की और कड़े को उस के अंतर्गत एक 'सरकार' ज़िला (उपप्रांत) बना दिया, जिस के अधीन उस समय निम्नलिखित परगने थे।

(१) बल्दा (सदर) कड़ा (२) हवेली कड़ा (३) करारी (४) अथरवन (५) धाता (६) इकउला (७) हथगाँव (८) कोटिला (६) हँसवा (१०) फ़तेहपुर (११) अयासाह (१२) ग़ाज़ीपुर (१३) कोसौं।

इन में से अब १ से ४ तक प्रयाग के ज़िले में और शेष फ़तेहपुर के ज़िले में शामिल हैं। कड़ा में कक्कड़ खत्री-वंशीय बाबा मलूकदास एक प्रसिद्ध गृहस्थ साधु हुए हैं, जिन का जन्म संवत् १६३१ वि० में हुआ था। यह बाबा बिट्ठलदास के शिष्य थे। इन के पिता का नाम बाबा सुंदरदास था। यह अच्छे संत कवि थे, जिन की बानियां विशेषतया साधु-मंडल में अब तक बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ गाई जाती हैं। उन से मालूम होता है कि उक्त बाबा जी बड़े स्वतंत्र विचार के साधु थे। वह केवल एक ब्रह्म के उपासक थे, वाह्य आडंबरों को बिल्कुल नहीं मानते थे। कहते हैं औरंगज़ेब बाबा जी का इतना आदर करता था कि उस ने कड़े में जज़िया माफ़ कर दिया था तथा उस का

---

[1] 'तारीख़ आईनए-अवध', शाह अबुलहसन कृत, निज़ामी प्रेस, कानपुर। सन् १३०४ हिजरी।

एक कर्मचारी फ़तेह ख़ां बाबा जी के उपदेश से इतना प्रभावित हुआ था कि वह नौकरी छोड़ कर जीवन-पर्यंत मीर माधव के नाम से उन की सेवा में रहा। संवत् १७३६ में १०८ वर्ष की अवस्था में बाबा मलूकदास का स्वर्ग-वास हो गया, उन के कई ग्रंथ हैं, जिन में 'भक्तवत्सावली' तथा 'रत्नखानि' बहुत ही सुंदर भावों से भरे हुए हैं। उन के उत्तराधिकारियों में बाबा कृष्णसनेही जी संत कवि थे, जिन की बानियां प्रसिद्ध हैं। कड़ा में उन के वंशज अब तक महंत और कोई-कोई बाबा जी भी कहलाते हैं।

कड़ा बहुत दिनों तक एक प्रांत का केंद्र रहा। अतः यह एक पूरा नगर था। 'तारीख़ आईनए-अवध' में लिखा है कि इस की आबादी तीन कोस लंबी थी। मीर उम्मीद अली ख़ां 'ज़हूर-क़ुतुबी' में लिखते हैं कि कड़े की आबादी पश्चिम कमालपुर तक, पूर्व शहज़ादपुर तथा दक्षिण दारानगर तक थी। इब्न बतूता ने लिखा है कि कड़ा-मानिकपुर बहुत ही आबाद और हरा-भरा था। परंतु कड़े का पुराना वैभव अब बिल्कुल नष्ट हो चुका है। इस समय उस का रूप एक मामूली क़स्बे से अधिक नहीं है। बस्ती से कई गुना वहां डीह और क़ब्रें हैं, जिन की लंबाई गंगा किनारे-किनारे मीलों तक चली गई है।

ई० आई० आर० के सिराथू स्टेशन से कड़ा पाँच मील के लग-भग है, बीच में पक्की सड़क है। दारानगर रास्ते में पड़ता है। शहज़ादपुर को भी पक्की सड़क गई है। प्रयाग से इन सब जगहों को मोटर से भी सीधे जा सकते हैं।

कड़े से पूर्व मिला हुआ एक गाँव 'सिपाह' के नाम से है। यहां सूबेदारी के समय में फ़ौज की छावनी रहा करती थी। इस से दो मील पूर्व शहज़ादपुर है। यह भी उसी समय का एक पुराना स्थान है, परंतु इस के इतिहास का पता नहीं है कि कब और किस शहज़ादे के नाम से बसाया गया था। यहां सन् १६६६ और १७२६ ई० की बनी हुई मसजिदें मौजूद हैं। स्थानीय दंतकथा यह है कि शाहजहां जब युवराज था तो उसी के नाम पर यह क़स्बा बसाया गया था।

इस संबंध में एक स्थान दारानगर और उल्लेखनीय है, जो कड़े से लगभग एक मील दक्षिण की ओर है। इस का असली नाम चमरूपुर था। सैयद अहसन, सैयद क़ुतुब मदनी के साथियों में से था, जो ख़ुरासान से यहां आया था। उसी के वंश में एक फ़ैज़ुल्ला था, जो दाराशिकोह के मुसाहिबों में था। उसी ने इस गाँव को ख़रीद कर एक गंज बसाया और उस का नाम फ़ैज़ाबाद रक्खा। पीछे फ़ैज़ुल्ला प्रतापगढ़ के राजा के मुक़ाबले में मारा गया और उस का शव इसी स्थान में गाड़ा गया। तत्पश्चात् उस के भाई अफ़ज़लुल्ला ने इस बस्ती का नाम दाराशिकोह के नाम पर दारानगर रख दिया, और दारा ने पुरस्कार के रूप में यह गाँव उस को माफ़ी में दे दिया। कड़े से कोई ६ मील दक्षिण और पश्चिम ग्रैंड ट्रंक रोड पर कोहे ख़िराज़ नामक गांव में एक बड़ी पुरानी मसजिद है जो सन् ७८६ हि० (१३८४ई०) में फ़ीरोज़ तुग़लक़ के समय में बनी थी।

इस पर एक अभिलेख इस प्रकार है :—

بناشد مسجد جامع منوّر * به عهد شاه عادل هفت کشور
زمن فیروز شاهنشاه غازی * بفرمانش بنائے خیر قاضی
حسام الدین حسن صدر زمانه * بفضلش گشت درعالم نشانه
بسلخ ماه رمضان گشت موجود * زهجرت هفت صدهشتاد وشش بود

इस का भावार्थ यह है कि फ़ीरोज़शाह की आज्ञा से हिसामुद्दीन हसन द्वारा यह मसजिद सन् ७८६ हिजरी (सन् १३८४ ई०) में बनी।

इस गाँव के आस-पास सेवरई, परसखी परसरा और कशिया इत्यादि में पांडे ब्राह्मणों की बस्ती है जो 'छप्पन' के नाम के प्रसिद्ध हैं। किंवदंती यह है कि कन्नौज के अंतिम नरेश महाराज जयचंद के समय में इन ब्राह्मणों के पुरुषा गोरखपुर की ओर से आए थे अथवा बुलाए गए थे और उन को ये सब ५६ गाँव जागीर में मिले थे। पीछे मुसलमानों के समय में हिसामुद्दीन नामक योधा ने हमला कर के ये सब गाँव छीन लिए, जिस के उपलक्ष्य में 'कोह' नामक गांव का एक हिस्सा दिल्ली दरबार में उस को इनाम में माफ़ी मिला और दूसरे हिस्से पर मालगुज़ारी या ख़िराज लग गया। तब से ये दो गाँव 'कोहे इनाम' और 'कोहे ख़िराज' के नाम से अलग-अलग प्रसिद्ध हैं।

कहा जाता है कि पीछे ब्राह्मणों के मुखिया के मारे जाने पर उस की विधवा के अनुनय-विनय करने पर हिसामुद्दीन ने १२ गाँव उस के १२ बेटों को निर्वाह के लिए दे दिए थे। उन के वंश वालों की थोड़ी-बहुत ज़मींदारी अब तक उन गांवों में पाई जाती है।

कोह के निकट हिसामुद्दीन के नाम से हिसामपुर परसखी नामक एक गाँव प्रसिद्ध है। यहीं हिसामुद्दीन की क़ब्र है। कोहे ख़िराज, कोहे इनाम, आलमचंद, नज़र गंज, कशिया, बड़ा गाँव नरवर, बसेढ़ी, तथा मेंडारा के सैयद उक्त हिसामुद्दीन के वंशज कहे जाते हैं। (देखिए 'मीरास-जलाली')

कौशांबी (उपनाम कोसम)

बहुत दिनों तक कुछ विद्वानों में यह मतभेद रहा कि प्राचीन कौशांबी का वास्तविक स्थान कौन है। जनरल कनिंघम ने इसी स्थान को प्राचीन कौशांबी माना है, जो प्रयाग के ज़िले में अब 'कोसम' कहलाता है। दूसरी ओर डाक्टर विन्सेन्ट ए० स्मिथ तथा डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल रियासत नागौद के 'भरहुत' को कौशांबी मानते रहे। परंतु अब विविध प्रमाणों तथा शिला-लेखों से जो कोसम के निकटवर्ती स्थानों से मिले हैं, कनिंघम साहब ही के अनुमान की पुष्टि होती है।[1] इस लिए इस विषय पर अधिक न लिख कर हम आगे बढ़ते हैं।

---

[1] नगेंद्रनाथ घोष, 'अर्ली हिस्ट्री अव् कौशांबी'।

यह स्थान यमुना के उत्तरी तट पर परगना करारी में प्रयाग से कोई ३८ मील पश्चिम और कुछ दक्षिण के कोने में है। सच पूछिए तो प्रयाग के ऐतिहासिक महत्व को इसी स्थान ने बढ़ाया है। सम्राट् अशोक का प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ यहीं से उठ कर प्रयाग के क़िले में गया है, जिस का वर्णन विशद रूप से इसी पुस्तक में अन्यत्र किया गया है। शतपथ और गोपथ ब्राह्मण तथा तैत्तरीय ब्राह्मण में इस स्थान को एक बड़ा विद्यापीठ बतलाया है।[1]

पाणिनि के सूत्र और महाभाष्य में भी कौशांबी का नाम आया है। 'कथासरित्सागर' में इस स्थान को 'महापुरी' लिखा है। मत्स्य तथा हरिवंश पुराण में कौशांबी की चर्चा आई है।[2] कहते हैं, संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध आचार्य कात्यायन ऋषि का जन्म इसी जगह हुआ था।

सारांश यह है कि यह स्थान बहुत ही पुराना है। इस का नाम 'कौशांबी' इस लिए पड़ा कि यह राजा कुशांब का बसाया हुआ है, जो चंद्रवंशी नरेशों में पुरूरवा से दसवीं पीढ़ी में हुआ था।[3] परंतु इस की प्रसिद्धि नेमचक्र के समय से अधिक हुई, जो अर्जुन से आठवीं पीढ़ी में हुआ था। इस वंश ने २२ पीढ़ी तक यहां राज्य किया। इस का अंतिम राजा क्षेमक था। हस्तिनापुर के गंगा से बह जाने पर नेमचक्र ने इसी स्थान को अपनी राजधानी बनाया था।[4]

प्राचीन काल में इस का नाम 'वत्स' वा 'वत्सपटन' था। महाराज रामचंद्र जब अयोध्या से चल कर शृंगबेरपुर (सिंगरौर) के घाट से गंगा पार कर के प्रयाग की ओर बढ़े थे, तो इस पार की भूमि का नाम रामायण में 'वत्सदेश' लिखा है।[5] इस की राजधानी कौशांबी थी। कहते हैं, पांडवों ने अपने अज्ञातवास के १३ वर्ष इसी स्थान में व्यतीत किए थे।

यह तो हुई कौशांबी के विषय में प्राचीन समय की कथा। ऐतिहासिक युग में भी यह स्थान कुछ कम महत्व-पूर्ण न था। बौद्ध-काल में हम उस को एक बहुत ही विशाल नगर पाते हैं, जिस के मिटे-मिटाए चिह्न अब तक किसी न किसी रूप में वहां विद्यमान हैं।

---

[1] नगेंद्रनाथ घोष, 'अर्ली हिस्ट्री अव् कौशांबी'।

[2] वही।

[3] 'महाभारत' आदिपर्व, अ० ६४ श्लो० ४४, 'मत्स्यपुराण' में यही बात लिखी है।

[4] 'रामायण' बालकांड, सर्ग ३३, श्लो० ६ तथा कनिंघम द्वारा लिखित 'आरकियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट', जिल्द १, पृष्ठ ३०१

[5] वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकांड, सर्ग ५२, श्लो० १०१

कहा जाता है गौतम बुद्ध ने अपने साधु-जीवन का छठवां और नवां वर्ष इसी स्थान में व्यतीत किया था। बौद्धों की प्राचीन पुस्तक 'महावंस' और 'ललितविस्तर' तथा लंका की अन्य बौद्ध पुस्तकों में कौशांबी का नाम भारत के १६ बड़े नगरों में गिनाया गया है।

संस्कृत साहित्य में बाणभट्ट की 'रत्नावली' नामक नाटिका तथा 'कालिदास' के 'मेघदूत' और भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' में राजा उदयन की चर्चा आई है, जिस ने बुद्ध की एक मूर्ति कौशांबी में स्थापित की थी। इस का विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

मगध-नरेशों में सब से पहले सम्राट् अशोक ने इस स्थान को, अपने पश्चिमीय साम्राज्य की देख-रेख के लिए उप-राजधानी बनाया था, जहां वह पहले अपनी युवराज-अवस्था में बहुधा रहा करता था। अशोक के पीछे बहुत दिनों तक यह स्थान मगध साम्राज्य के अधीन रहा। फिर पीछे इस का कन्नौज राज्य के अंतर्गत होना पाया जाता है, जैसा कि सन् १०३५ ई० के कड़े के क़िले के अभिलेख से प्रकट होता है, जिस में कड़ा का नाम 'कौशांबी मंडल' के अंतर्गत होना लिखा है।

हम ऊपर बतला आए हैं कि बौद्धकाल में कौशांबी एक बड़े महत्व का स्थान था। अतः चीन के दोनों प्रसिद्ध यात्री प्रयाग से इस स्थान को देखने आए थे, उन में से फ़ाहियान का वृत्तांत तो बहुत ही सूक्ष्म है। अलबत्ता ह्वेनसांग का वर्णन कुछ अधिक विस्तार के साथ है। कौशांबी के विषय में वह लिखता है[1]—

"इस देश का घेरा ६००० ली है। राजधानी ३० ली के फैलाव में है। इस की भूमि उपज के लिए प्रसिद्ध है। धान और गन्ना खूब पैदा होते हैं। जल-वायु अत्यंत उष्ण है। लोग कड़े स्वभाव के और उद्दंड हैं, परंतु धार्मिक और पढ़े-लिखे हैं। इस नगर में बौद्धों के १० संघाराम हैं, जो अब उज़ाड़ पड़े हुए हैं। ३०० के लग-भग हीनयान संप्रदाय के पुजारी हैं। ब्राह्मणों के ५० देवमंदिर हैं। उन के अनुयायियों की संख्या भी अधिक है। नगर के एक पुराने महल में एक बड़ा विहार है, जिस की ऊँचाई ६० फ़ुट है। इस में महात्मा बुद्ध की एक मूर्ति चंदन की स्थापित है, जिस के ऊपर पत्थर का एक बड़ा गुंबद है। यह मूर्ति राजा उदयन ने मुद्गलयन पुत्र के द्वारा बुद्ध के जीवन-काल में ठीक उन्हीं के अनुरूप बनवाई थी। इस विहार से १०० क़दम पूर्व चार पुराने बुद्धों के चलने और बैठने के चिह्न हैं। उस के पास ही एक कूप[1] और स्नानागार है, जिस को बुद्ध भगवान् काम में लाया करते थे। कुवों में अब तक जल है, परंतु स्नान-भवन बहुत दिन हुए उजड़ गया है। नगर के दक्षिण और पूर्व में पास ही एक और संघाराम है। यह वह स्थान है जहां गोशिरा का एक विचित्र उद्यान था। यहां अशोक का बनवाया हुआ एक

---

[1] ह्वेनसांग ने इस स्थान का नाम अपनी चीनी भाषा की पुस्तक में 'क्यो-शांग-मी' लिखा है।

२०० फ़ुट ऊँचा स्तूप है। यहां भगवान् बुद्ध ने कई वर्ष रह कर धर्मोपदेश दिया था। इसी स्तूप के बग़ल में वह जगह है जहां चार पुराने बुद्ध चले फिरे और बैठे थे। यहां एक स्तूप और है जिस में महात्मा बुद्ध के केश और नख गड़े हुए हैं। संघाराम के दक्षिण और पूर्व एक दो खंड के भवन के ऊपर पुरानी ईंटों की छत है। इस पर 'विद्यामात्रसिद्धि' नामक बोधिसत्व रहते थे। यहीं उन्हों ने स्वनाम-शास्त्री रचना की थी और हीनयान संप्रदाय के सिद्धांतों का खंडन किया था। इसी संघाराम के पूर्व एक आम के बाग़ में एक पुरानी दीवार की नींव है। यह वह स्थान है जहां असंग बोधिसत्व ने शास्त्र की रचना की थी[२]।"

फ़ाहियान ने कौशांबी के वर्णन में केवल 'गोशिरावन' के विहार की चर्चा की है। वर्तमान कोसम के निकट गुपसहसा के नाम से एक गाँव है, जिस के विषय में जनरल कनिंघम का अनुमान है कि संभवतः यही 'गोशिरावन' रहा होगा।

अब कोशांबी की वर्तमान दशा का कुछ वृत्तांत सुनिए। इस समय वहां दो गाँव 'कोसम इनाम' और 'कोसम ख़िराज' के नाम से बसे हुए हैं। इन्हीं के समीप प्राचीन कौशांबी नगर और उस के दुर्ग के चिह्न पाए जाते हैं जिस को वहां के लोग 'गढ़वा' कहते हैं।

पुरातत्त्व-विभाग के अधिकारियों ने कई बार इस स्थान का विचारपूर्वक निरीक्षण किया। इस की वर्तमान स्थिति को देख कर उस की प्राचीन अवस्था के विषय में जो कुछ अनुमान किया गया है, उस का सार यह है कि पुराने दुर्ग की प्राचीर मिट्टी की थी, जिस का घेरा चार मील से कम न था। दीवारें ३० से ३५ फ़ुट तक ऊँची थीं। उत्तर का धुरेरा (मीनार) ५० फ़ुट और दक्षिण-पूर्व का ६० फ़ुट तक ऊँचा था। इस कोट की रक्षा के लिए बाहर चारों ओर अथवा यमुना की ओर छोड़ कर तीन ओर गहरी खाईं थी। भीतर ईंटों की एक दीवार थी। ये ईंटें असाधारण लंबी-चौड़ी थीं, जैसी कि पुराने समय की ईंटें अन्य स्थानों से मिली हैं।

इस समय इस के बीच में जैनियों का एक मंदिर है, जो सन् १८३४ का बना हुआ है। इस के निकट जनरल कनिंघम कुछ खोदाई कराके अनेक बहुमूल्य वस्तुएं पाई थीं, जिन में से कुछ का विवरण यह है :—

(१) बौद्धकाल की इमारतों के खुदे हुए नक़्शादार तथा सादे पत्थर, जिन की शैली साँची की दीवारों से अधिक मिलती-जुलती है।

---

[१] कौशांबी के बीह में स्तंभ के पास एक बहुत पुराना और गहरा कुवाँ अब तक मौजूद है। हमारा अनुमान है कि यह वही कुवाँ है जिस की चर्चा ऊपर की गई है।

[२] बील्स, 'बुद्धिष्ट रेकर्ड्स', जिल्द १, पृष्ठ २३५

(२) ११वीं शताब्दी के जैनियों की संगतराशी का काम।

(३) चाँदी और ताँबे के सिक्के, जिन की संख्या ४०० के लगभग थी। इन में से ५० मुसलमानी समय के थे, जिन में सब से पुराना अकबर के समय का था। १०० साधारण चौकोने बौद्धकाल के, जिन पर हाथी के चित्र थे। ३० से अधिक हिंदू राजाओं के, जो ईसवी सन् के पहले के थे। इन में १६ पर 'वहसति मित्र' का नाम मिला है, जो पभोसा के अभिलेख में आया है; दो में 'देवमित्र' का और एक में 'आशुघोष' का नाम आया है। कई सिक्कों पर बौद्धों के धर्मचक्र अंकित हैं।

इस स्थान से कई पुराने सिक्के हम को भी मिले हैं। उन में से कुछ इतने घिसे हुए हैं कि पढ़े नहीं जाते। केवल एक कुछ स्पष्ट है। यह काँसे का ढला हुआ सिक्का है, जो जाँच से दूसरी या तीसरी शताब्दी ई० पू० का मालूम हुआ है।

(४) एक पीतल की मोहर जिस में गुप्तकाल की लिपि में 'मुनि पुत्रस्य प्राचीन सं० ३१५' अंकित है। यह प्राचीन संवत् क्या था? इस का पता नहीं चला; संभव है, विक्रमादित्य का या शक हो, जो क्रमशः सन् २५८ तथा ३६३ ई० के होगा।

(५) एक खेत से शिव और पार्वती की एक संयुक्त मूर्ति एक चौकी पर खड़ी हुई मिली। उस के नीचे गुप्ताक्षरों में एक लेख था, जिस का सार यह है कि '(गुप्त) संवत् १३६ के दूसरे महीने के सातवें दिन महाराज श्री भीमवर्मा के समय में यह मूर्ति बनी थी।' भीमवर्मा कौशांबी का राजा था जो संभवतः मगध के स्कंदगुप्त के अधीन रहा होगा। सन् १६३० में इस स्थान से मिस्टर मार्टिन को एक मोहर मिली है, जिस में ब्राह्मी लिपि में 'पृथ्वी शलद्' पढ़ा गया है।

कौशांबी में ऐतिहासिक दृष्टि से इस समय जो सब से महत्व की वस्तु है, वह एक पत्थर का कीर्तिस्तंभ है। यह एक ईंट के डीह में पृथ्वी के धरातल से १४ फ़ुट ऊँचा पहले ५ इंच के झुकाव से खड़ा हुआ था जो अब सीधा कर दिया गया है। इस की मोटाई ६ से १० फ़ुट तक है। इस के निकट दो टुकड़े ४½ और २¾ फ़ुट के और पड़े हुए मिले थे। कनिंघम साहब ने उक्त स्तंभ के चारों ओर ७ फ़ुट तक खोदवाया था, परंतु उस के नीचे के सिरे तक नहीं पहुँचे। इस की बनावट और मोटाई लौरिया अराराज के अशोक-स्तंभ से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इस लिए अनुमान किया गया है कि इस की भी उतनी ही ऊँचाई अर्थात् ३६ फ़ुट रही होगी। कोसम के लोग इस को 'राम की छड़ी' कहते हैं। इस पर गुप्तकाल से ले कर अकबर के समय तक के कुछ न कुछ लेख हैं, जिन का ब्यौरा नीचे दिया जाता है।

(क) सब से पुराना लेख एक यात्री का नाम छः अक्षरों में है।

(ख) स्तंभ के सिरे पर एक खंडित लेख तीन अक्षरों में है, जो चौथी अथवा पाँचवी शताब्दी का मालूम होता है।

(ग) एक लेख छः पंक्तियों में छठवीं या सातवीं शताब्दी का जान पड़ता है।

(घ) अकबर के समय का लेख जो नागरी अक्षरों में है।

(च) तीन पंक्तियों में एक सोनार का लेख।

(छ) संवत् १६२१ वि० का एक बड़ा लेख, जिस में एक सोनार की वंशावली है। इस लेख में इस स्थान का नाम 'कौशांबी पुर' लिखा है।

अब कुछ अन्य महत्वपूर्ण लेखों की नक़ल नीचे दे कर इस प्रसंग को समाप्त किया जायगा।

एक लेख में वहां के किसी राजा 'उग्र भैरों' का नाम गुप्त अथवा कौटल्य—अक्षरों में इस प्रकार लिखा है।

" परम भट्टार-
क महाराजा धिरा-
ज श्री उग्र भैर-
वस्य देयि चय (अथवा) देयि धर्म्म "

दूसरा लेख बंगाक्षरों में इस प्रकार है :—

" चन्द्रपक्ष मनोज वाण धर-
णी लङ्काङ्किते वत्सरे।
शाके पुण्य महीतले द्विज-
वरे दुःशासने पूजके।
चक्रे श्री मधुसूदनस्य-
विजियागार वरं निर्म्मलं।
श्रीमच्छत्रपतिः सदा-
शुभमतिः श्री वासुदेव
आत्मजः शाके १५२१ "

इस का भावार्थ यह है कि "संवत् १५२१ शाका में द्विजवर दुःशासन पुजारी के समय में श्री वासुदेव के पुत्र श्रीमत् छत्रपति ने इस श्रेष्ठ निर्मल विजय के स्थान को निर्माण किया। शाका १५२१ (सन् १५६७ ई०)

अभी हाल में राय बहादुर पंडित ब्रजमोहन व्यास इक्ज़िक्यूटिव आफ़िसर म्युनिस्पल बोर्ड तथा सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट आरकियालॉजिकल सोसाइटी इलाहाबाद के उद्योग से इस स्थान से हज़ारों प्राचीन मूर्तियाँ और सिक्के इत्यादि ला कर म्युनिसिपैलिटी के अजायबघर

में एकत्र की गई हैं और अब तक उन का सिलसिला जारी है। इन में कुछ पुराने शिला-लेख और मुहरें भी हैं जिन से लोगों को इस प्राचीन स्थान के पुरातत्व-भंडार के दिग्दर्शन का अवसर बहुत कुछ सुगम हो गया है। इन में एक बड़ी मूर्ति गौतमबुद्ध की बिना सिर की मिली है जिस के नीचे कनिष्क के राज्यकाल का एक लेख है।

कौशांबी की चर्चा संस्कृत, पाली, अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, चीनी, सिंहाली तथा डैनिश, इत्यादि भाषाओं की इतनी पुस्तकों में आई है कि केवल उन की नामावली कई पन्नों में आवेगी। खेद है कि ऐसे ऐतिहासिक स्थान की यात्रा के लिए प्रयाग से कोई सुगम मार्ग नहीं है। भरवारी स्टेशन से करारी तक दूसरे दरजे की सड़क है जो लगभग ८ मील है। यहां से फिर उतनी ही दूर एक तीसरे दरजे की सड़क कोसम तक गई है। गरमी और जाड़े में इस मार्ग से मोटर द्वारा जा सकते हैं। बरसात में नदी नाले पड़ते हैं, इस लिए सिवा इस के कि राजापुर के सामने महेवा घाट से यमुना में नाव के द्वारा जाँय और कोई रास्ता नहीं है। पर यह जल-मार्ग भी कम से कम १६ मील है।

खैरागढ़

ई० आई० आर० के मेजारोड स्टेशन से दक्षिण और पश्चिम को एक कच्ची सड़क कुंहडार को गई है। उसी पर उक्त स्टेशन से दो मील के लगभग दाहिनी ओर यह क़िला मिलता है। इस का पश्चिमीय सिरा टौंस नदी पर है, जिस का कुछ भाग अब नदी ने काट कर बहा दिया है। इस का क्षेत्रफल लगभग ४८ बीघा है।

यह क़िला बहुत पुराना है। इस को किस ने बनवाया और यह कब बना इस का कुछ पता नहीं है। कहते हैं, यह भरों का क़िला था जो इस परगने के पुराने राजा थे। माँडा के राजा के पूर्वजों ने उन को भगा कर इस परगने पर अधिकार जमा लिया। अब इस की कुछ टूटी-फूटी दीवारों, कुछ बुर्जों, तथा मुख्य द्वार के चिह्न रह गए हैं। इस के भीतर कहीं-कहीं झाड़ियों के जंगल और कहीं छोटे-छोटे टीले पाए जाते हैं, जो मकानों के गिर जाने से बन गए हैं। इस के निकट 'खारा' के नाम से एक गाँव बसा हुआ है। इसी के नाम से यह परगना मुसलमानों के समय में 'खारागढ़' कहलाता था, जो अब कुछ बदल कर 'खैरागढ़' हो गया है। यह स्थान अब सरकारी पुरातत्व-विभाग की ओर से सुरक्षित है।

सन् १८७२ में मेजा के तहसीलदार को यहाँ एक चाँदी का सिक्का मिला था, जिस पर फ़ारसी अक्षरों में एक ओर 'ख़लीफ़ा अबुल फ़तह' और दूसरी ओर 'इब्राहीम शाह सुलतानी' लिखा हुआ था। यह जौनपुर का बादशाह था, जिस का समय सन् १४०१ से १४३८ ई० तक हुआ है। परंतु इस सिक्के से इस के इतिहास पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, क्यों कि यह स्थान मुसलमानी अमलदारी से पहले का है।

इस स्थान तक जाने के लिए मेजारोड स्टेशन से एक कच्ची सड़क गई है पर वह अच्छी नहीं है, फिर भी गरमी व जाड़े में स्टेशन से इक्के जाते हैं। प्रयाग से भी सीधे मोटर जा सकती है। यह सड़क भी ३६ मील से कम लंबी नहीं है। जो लगभग बारह मील तक पक्की है, शेष अधिकांश दूसरे दरजे की है, पर बरसात में मोटर के योग्य नहीं है।

गींज

बारा से चार मील दक्षिण इस नाम की एक पहाड़ी है, जो प्रयाग से कोई २८ मील दक्षिण और कुछ पश्चिम की ओर है। इस की ऊँचाई धरातल से ८०० फ़ुट और घेरा छः मील के लगभग है। इस का शिखर एक लंबाकार छिले हुए शिला के सदृश है, जो २०० फ़ुट की ऊँचाई तक सीधा खड़ा हुआ है। नीचे की भूमि चारों ओर से ढलवान जंगल से घिरी हुई है। नीचे से लगभग आधी दूर की ऊँचाई पर एक नैसर्गिक जलाशय है, जिस का घेरा २०० फ़ुट के लगभग है। यहाँ तक चढ़ाई कुछ सरल है, फिर आगे बहुत ही दुर्गम है।

दक्षिण की ओर पर्वत में शिलाओं की प्राकृतिक स्थित से एक गुफा-सी बन गई है, जो १०० फ़ुट लम्बी ४० से ५० फ़ुट तक चौड़ी तथा २० से २५ फ़ुट तक ऊँची है। आगे का भाग दालान के समान खुला हुआ है। उस के पीछे एक अभिलेख तीन पंक्तियों में खुदा हुआ है, और अक्षरों में लाल रंग भरा हुआ है। कुछ मनुष्य और पशुओं के चित्र भी अंकित हैं। इस में केवल यह लिखा है कि "यह लेख महाराजा श्री भीमसेन का संवत् ५२ के ग्रीष्म ऋतु के चौथे पक्ष की द्वादशी का है।"

महाराज भीमसेन कौन थे और यह ५२ कौन संवत् है, इस का ठीक पता नहीं चला।

प्रयाग से मोटर-द्वारा जाने में बारा गाँव तक १६ मील पक्की सड़क मिलेगी, फिर वहां चार मील कच्ची सड़क है, जो सिवा घोड़ा-हाथी के और किसी पहियादार सवारी के योग्य नहीं है। अलबत्ता सूखे दिनों में किसी तरह से मोटर जा सकती है। रेल पर जाने में जसरा स्टेशन निकट है; वहां से चार मील बारा तक इक्का जा सकता है। पक्की सड़क है और स्टेशन पर इक्के रहते हैं।

जलालपुर

तहसील हँडिया के परगना मह[1] में फूलपुर के रेलवे स्टेशन से कोई पाँच मील

---

[1] डाक्टर फ़ुहरर ने 'आरकियालॉजिकल सर्वे अव् इंडिया' न्यू सीरीज़ जिल्द २ के पृष्ठ १४२ पर इस स्थान की बहुत ही संक्षिप्त चर्चा 'मह' के नाम से की है। हम ने यह स्थान स्वयं देख कर ऊपर का वृत्तांत लिखा है।

दक्षिण और पूर्व के कोने में जलालपुर एक प्रसिद्ध गाँव है। उस की बस्ती से पूर्व दो बहुत बड़े-बड़े टीले हैं, जिन में असंख्य ईंटों के टुकड़े पड़े हुए हैं। इन में से एक का क्षेत्रफल, जो पूर्व की ओर है, ६० बीघे के लगभग है और दूसरे का विस्तार जो पश्चिम की ओर है ५० बीघा। इस के चारों ओर एक झील है, जिस में प्रायः साल भर जल भरा रहता है। दोनों टीलों के बीच में लगभग १५० गज़ अंतर होगा, जिस में एक से दूसरे पर जाने के लिए एक कुछ ऊँचा रास्ता बना हुआ है; और इस लिए इन टीलों की आकृति एक डमरू सी बन गई है। इन टीलों के धरातल पर सैकड़ों छोटे-बड़े मकानों की ईंट की दीवारों के चिह्न अब तक बहुत ही स्पष्ट रूप में देख पड़ते हैं। कहीं-कहीं बड़े-बड़े कुओं की जगत भी मौजूद है। इस गाँव के लोग इन टीलों को 'राजा बेन का कोट' कहते हैं। स्थानीय दंतकथा यह है—"पुराने समय में एक राजा बेन वहाँ रहते थे, जिन के राज्य में इतनी सस्ती थी कि किसानों को केवल एक कौड़ी बीघा खेतों का लगान देना पड़ता था। प्रजा बड़े सुख से रहती थी। परंतु राजा का कोष सदैव ख़ाली रहता था। एक दिन रानी ने राजा से कहा कि यदि एक-एक कौड़ी लगान और बढ़ा दी जाय तो प्रजा को कोई कष्ट न होगा और हमारे पास भी कुछ धन हो जायगा। राजा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल लोगों ने देखा कि कोट से एक बिल्ली घबड़ाई हुई बाहर भागी। किसी ने पूछा कि क्या बात है? कहते हैं उस बिल्ली को ईश्वर ने बोलने की शक्ति दे दी और उस ने कहा कि राजा की नीयत अब बिगड़ गई है, जिस के कारण इस कोट पर जल्द ही कोई घोर आपदा आने वाली है, जो इस को डीह के रूप में परिणत कर देगी। कुछ दिनों के पश्चात् यह बात सत्य निकली और वह कोट नष्ट-भ्रष्ट हो कर डीह हो गया।"

दोआब के मध्य में यही राजा बेन की कथा कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ प्रचलित है, जिस को हम ने इसी पुस्तक में 'बोली' के प्रकरण में लिखा है। पाठक दोनों को मिला कर ध्यान से देखें, कि उन के मूलतत्व में कितनी अधिक समानता है।

वर्षा के अतिरिक्त प्रयाग से इस स्थान तक झूँसी और हनुमानगंज हो कर मोटर से जाने में १८ मील की यात्रा है, जिस में ११ मील पक्की सड़क है, शेष हनुमानगंज से तीसरे दरजे की सड़क है। यदि रेल से जाना हो तो छोटी लाइन से हनुमानगंज, जिस के स्टेशन का नाम रामनाथपुर है उतरना होगा। वहां से सात मील कच्ची सड़क पर जाने के लिए इक्के मिलते हैं। बड़ी लाइन से फूलपुर स्टेशन से दक्षिण उतना ही तीसरे दरजे की कच्ची सड़क है। स्टेशन से इक्के जाते हैं।

प्रभास (उपनाम पभोसा)

पभोसा तहसील मंझनपुर के परगना अथरबन में यमुना के उत्तरी तट पर प्रयाग से कोई ३२ मील कुछ दक्षिण और पश्चिम के कोने में है। इस का पुराना नाम 'प्रभास था। कौशांबी यहां से केवल चार मील के लगभग पूर्व की ओर है, जिस से मालूम होता है कि

प्राचीन काल में यह स्थान वत्स साम्राज्य की राजधानी का एक बाहरी अंग था। यहां जमुना के तट पर एक पहाड़ी है, जिस के दो भाग हैं। दक्षिणवाले से उत्तरवाला अधिक ऊँचा है। इस पर ११० सीढ़ियों की ऊँचाई पर एक जैन-मंदिर मिलता है। जो संवत् १८८१ (१८२४ ई०) का बना हुआ है। इस देवालय से कोई १५० फ़ुट उत्तर और पूर्व ४७ फ़ुट की ऊँचाई तक पहाड़ सीधा खड़ा हुआ है, जिस के ऊपर चढ़ने के लिए कोई रास्ता नहीं है। इस के ऊपर एक पुरानी गुफा है। इस के विषय में वहां के लोगों का विश्वास था, कि उस में एक नाग रहता है जो इतना लंबा है कि उस का मुँह जमुना में और पूँछ उक्त गुफा के भीतर है। यह भी दंतकथा है कि गौतमबुद्ध ने इस गुफा के निकट कुछ दिनों रह कर तपस्या की थी और उक्त नाग को वशीभूत कर के यहां अपनी छाया छोड़ी थी।

सन् ५१६ ई० में चीनी यात्री सुंगयान और सन् ६३६ में ह्वेनसाँग ने आकर इस स्थान को देखा था। इन लोगों का कहना है कि यहां एक स्तूप २०० फ़ुट ऊँचा था इस के अतिरिक्त एक और स्तूप था जिस में भगवान बुद्ध के केश और नख गड़े हुए थे। परंतु अब उन स्तूपों का पता नहीं है। उक्त नाग की कथा ह्वेनसाँग ने भी लिखी है।

पहले-पहल सन् १८८७ ई० की २४वीं मार्च को पुरातत्व-विभाग के अधिकारी डाक्टर फ़ुहरर ने उक्त गुफा में प्रवेश किया था। उन्हों ने लिखा है कि इस की लंबाई ६ फ़ुट चौड़ाई ७ फ़ुट ४ इंच और ऊँचाई ३ फ़ुट ३ इंच है। इस में २ फ़ुट २ इंच × १ फ़ुट ६ इंच का एक द्वार और १ फ़ुट ७ इंच × १ फ़ुट ५ इंच की दो खिड़कियां हैं। इस पर गुप्तकाल के कोई १० खंडित अभिलेख हैं, जो अच्छी तरह से पढ़े नहीं जाते। तीन लेख पश्चिमवाली दीवार में अंकित हैं। ये सब मौर्यकाल की लिपि में हैं। एक में प्रयाग का भी नाम है। इस के द्वार के बाएँ कोने के सिरे पर बाहर की ओर ७ पंक्तियों में एक बहुत ही महत्वपूर्ण लेख है, जिस से इस विलक्षण गुफा के निर्माता का कुछ पता चलता है। वह लेख इस प्रकार है—

राञो गोपाली पुत्रस
बहसति मित्रस[1]
मातुलेन गोपालीया
वेहिदरी पुत्रेन (आसा)
आसाढ़ से नेन लेनं
कारितं उदाकस) दस
में स्वच्छटे कश्शपीयं अरहं
[ता] न ·ो ··ि ···[॥][2]

---

[1] भीटा में जो कौशांबी की मुद्रा मिली है उस में भी यह नाम अंकित है।

[2] 'एपिग्राफ़िया इंडिका', जिल्द २, पृ० २४२

इस का अर्थ यह है कि गोपाली के पुत्र राजा बहसति मित्र के मामा वैहीदरी, के पुत्र आसाढ़सेन ने 'ओदक' के दसवें वर्ष में कश्यप अर्हतों के रहने के लिए यह गुफा बनवाई।

इस का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—
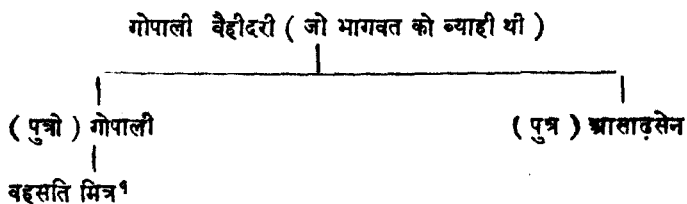
दूसरा लेख गुफा के भीतर इस प्रकार है—

> अही छत्राया राञो शोणकायन पुत्रस्य वंगपालस्य
> पुत्रस्य राञो तेवन्ती पुत्रस्य भागवतस्य पुत्रेण
> वैहीदरी पुत्रेण आसाढ़ सेनेन कारितं [॥]

अर्थात् यह गुफा अहिछद्र के राजा सोणकायन के पुत्र वंगपाल, उन के पुत्र त्रिवनी उन के पुत्र भागवत, उन के पुत्र वैहीदरी, उन के पुत्र आसाढ़सेन ने बनवाई।

डाक्टर फ़ुहरर के अनुसार यह शिलालेख दूसरी शताब्दी (ई० पू०) के हैं। 'अहिच्छत्र' उत्तरी पंचाल की राजधानी थी। यह स्थान इस समय बरेली ज़िले में 'रामनगर' के नाम से प्रसिद्ध है।

दूसरे अभिलेख का विस्तार इस प्रकार है :—
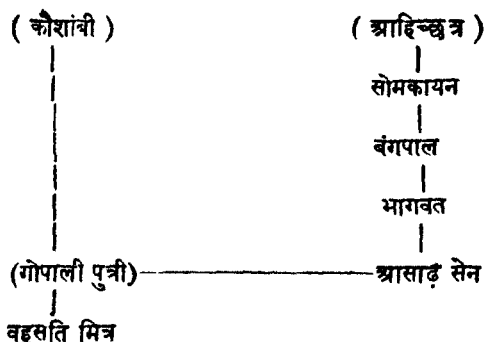
[1] कौशांबी से प्राप्त एक मुद्रा में जो काशी-निवासी श्री दुर्गाप्रसाद जी के संग्रह में है, हम ने इस राजा का नाम ब्राह्मी लिपि में 'बहसति मितस' लिखा हुआ देखा है।

तीसरा शिला-लेख संस्कृत भाषा और नागरी अक्षरों में सं० १८६१ का गाँव की धर्मशाला की दीवार में लगा हुआ है जिस में जैनियों के श्री पारश्वनाथ की मूर्ति के निर्माण की तिथि और उस के निर्माता के नाम इत्यादि का उल्लेख है, जो प्रयाग के निवासी थे। इस लेख में कोई विशेष बात उल्लेखनीय नहीं है, इस लिए इस की प्रतिलिपि नहीं दी जाती।

प्रयाग से इस स्थान तक आने का रास्ता भरवारी और पश्चिमसरीरा हो कर है। ३१ मील तक पक्की और १२ मील तक कच्ची सड़क है पर उस पर मोटर जा सकती है।

इस समय इस जगह का इतना ही महत्व है कि यहां जैनियों का एक मंदिर है, जहां चैत के महीने में उन का बड़ा मेला लगता है।

प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)

प्रयाग के सामने गंगा के पूर्वी तट पर यह एक बहुत ही प्राचीन स्थान है। कहा जाता है किसी समय यह चंद्रवंशीय राजाओं की राजधानी थी। वाल्मीकीय रामायण उत्तर-कांड के सर्ग १०० से १०३ तक तथा 'देवी-भागवत' के बारहवें अध्याय में इस स्थान के आदि राजाओं का वर्णन है। 'लिंगपुराण' पूर्वार्ध के अंतर्गत ६५ वें अध्याय में इस प्रकार लिखा है कि इला के पुत्र पुरूरवा ने यमुना से उत्तर की ओर प्रयाग के निकट अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर में राज्य किया था। इस पुराण के अनुसार उस की वंशावली इस प्रकार है:—

बुध (पुरुष) + इला (स्त्री)
|
पुरूरवा
|
आयु
|
नहुष
|
ययाति[1]

'मत्स्य-पुराण' के अ० ११० तथा 'स्कंदपुराण' काशीखंड के सातवें अध्याय में प्रतिष्ठानपुर के माहात्म्य का वर्णन है और उस का पता इस प्रकार बतलाया गया है कि गंगा के पूर्व त्रिभुवन-विख्यात प्रतिष्ठान नगरी है।

---

[1] ययाति की विस्तृत कथा के लिए देखिए 'महाभारत', आदिपर्व, अ० ८१-९०

महाभारत के उद्योगपर्व अध्याय ११४ में इस स्थान के राजा ययाति की चर्चा है। कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीय' में इसी प्रतिष्ठानपुरी के राजा पुरूरवा को नायक बनाया है। पुराणों से यह भी पता चलता है कि कालांतर में इन्हीं चंद्रवंशियों ने मथुरा इत्यादि विविध स्थानों में जा कर अपना राज्य अलग स्थापित किया था।[१]

परंतु ये सब बातें ऐतिहासिक युग से पहले की हैं। इस स्थान का इधर का इतिहास बहुत ही अज्ञात है। गुप्तवंशीय राजाओं के शासन काल में यद्यपि कौशांबी उन की उपराजधानी थी, तो भी जान पड़ता है कि प्रतिष्ठानपुरी को उस समय तक कुछ महत्व प्राप्त था, क्योंकि वहां सन् १८७६ ई० के लगभग कुमारगुप्त के समय की २४ अशरफ़ियां मिली थीं, और एक विशाल कुआ 'समुद्रकूप' के नाम से वहां अब तक प्रसिद्ध है, जो संभवतः सम्राट् समुद्रगुप्त का खुदवाया हुआ है।

झूँसी के विषय में एक प्रसिद्ध दंतकथा है कि वहां एक 'हरबेंग राजा था, जिस के राज्य में ऐसा अंधेर था कि टका सेर भाजी और टका सेर खाजा बिकता था। कहते हैं उस राजा से, उस समय के एक बड़े महात्मा गोरखनाथ तथा उन के गुरु मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) ने, रुष्ट होकर शाप दिया था, जिस से झूँसी उलट गई। मुसलमान कहते हैं कि सन् १३५६ ई० में सैयद अली मुर्तुज़ा नामक एक फ़क़ीर की बददुआ से झूँसी में एक बड़ा भूचाल आया और उस का क़िला उलट गया। इन कहावतों में कहां तक सचाई है, इस का पता लगाना कठिन है। हमारी समझ में झूँसी के उलट जाने का तात्पर्य यही मालूम होता है कि उस का प्राचीन वैभव तथा उस के राजकीय भवन अब केवल ऊँचे-ऊँचे भग्नावशेष और सुनसान टीलों के रूप में परिवर्तित हो कर रह गए हैं। यही उस की अवस्था का उलट जाना है।

सन् १८३० में झूँसी में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभिलेख ताम्रपत्र पर मिला था जो इस समय एशियाटिक सोसायटी बंगाल के पुस्तकालय में है। इस में देवनागरी अक्षरों तथा संस्कृत भाषा में १६ पंक्तियां हैं। प्रथम पंक्ति निम्नलिखित शब्दों से आरंभ होती है—

"ओम् स्वस्ति श्रीप्रयागसमीप गंगातटावासे परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीविजयपाल देवा पा।"[२]

इस पूरे अभिलेख का सार यह है कि "विजयपाल देव के पौत्र, राज्यपाल देव के पुत्र त्रिलोचन पाल ने जो गंगा किनारे प्रयाग के निकट रहते थे, दक्षिणायन संक्रांति के दिन गंगा-स्नान करने के पश्चात् शिव इत्यादिक का पूजन कर के एक गाँव प्रतिष्ठान के ब्राह्मणों

---

[१] देखो टाड साहब का 'राजस्थान', जैसलमीर के वर्णन में तथा पं० हरिमंगल मिश्र कृत 'प्राचीन भारत', अ० १

[२] इस अभिलेख के चित्र के लिए देखिए 'इंडियन ऐंटिक्वेरी', जिल्द १८

को दान दिया, जो विविध गोत्र और विविध परिवार से संबंध रखते थे"। अंत में श्रावण बदी ४ संवत् १०८४ विक्रमी अंकित है जो २६ जून सन् १०२७ ई० के बराबर है। हिंदुओं के समय की बस यही ऐतिहासिक सामग्री है, जो अब तक झूँसी में मिली है। यदि इस के ऊँचे-ऊँचे टीलों की खुदाई की जाय तो आशा है अनेक ऐसी पुरानी चीज़ें मिलेंगी, जो इस स्थान के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालेंगी।

मुसलमानों के समय में शेख़ तक़ी नामक एक प्रसिद्ध फ़क़ीर यहां रहते थे। उन की क़ब्र गंगा किनारे अब तक बनी हुई है, जहां साल में एक बार मेला लगता है। दिल्ली का बादशाह फ़र्रुख़सियर उन की क़ब्र के दर्शनार्थ एक बार झूँसी आया था। अकबर ने इस स्थान का नाम बदल कर "हादियाबास" रक्खा था, परंतु वह नाम प्रचलित नहीं हुआ। अल्मोड़े के जोशी घराने के ब्राह्मण और रीवां के बेनवंशीय तथा प्रतापगढ़ के सोमवंशीय क्षत्रिय झूँसी को अपनी पुरानी जन्मभूमि बतलाते हैं। परंतु अब यहां उन की जाति का एक व्यक्ति भी नहीं है।

खेद है कि झूँसी जितना ही महत्वपूर्ण स्थान है, उतना ही उस का इतिहास तिमराच्छादित है। इस लिए अब वर्तमान झूँसी का कुछ वृत्तांत लिखा जाता है।

इस समय यह स्थान दो भागों में विभक्त है, जिन के नाम 'नई' और 'पुरानी' झूँसी हैं। नई झूँसी उत्तर की ओर पक्की सड़क (बनारस रोड) के निकट है। इस में केवल कुछ इमारतें उल्लेख करने योग्य हैं। एक तो वहां के सुप्रसिद्ध रईस स्वर्गीय लाला किशोरीलाल जी की धर्मशाला है जिस में एक सदाव्रत या क्षेत्र भी है। दूसरा गंगा के तट पर तिवारी गंगाप्रसाद (उपनाम गंगोली) का बनाया हुआ एक पत्थर का बड़ा शिवालय है। कहा जाता है यह मंदिर सन् १८०० ई० के लगभग सवा लाख रुपए की लागत से बना था। इस की संगतराशी का काम दर्शनीय है। इस के बाहर दालान में चारों ओर खंभों और दीवारों पर नीचे से ऊपर तक देवताओं की असंख्य मूर्तियां तथा कतिपय पौराणिक गाथाओं के दृश्य बड़ी सफ़ाई के साथ पत्थर पर खुदे हुए हैं। गंगोली तिवारी आगरा के रहने वाले थे। किसी समय झूँसी में उन का बड़ा कारोबार था। उन के वंशज अब तक कुछ यहां और कुछ आगरे में रहते हैं।

इस मंदिर से दक्षिण की ओर गाँव में कुछ वैष्णवों और जूना साधुओं के आश्रम हैं परंतु उन के विषय में कोई विशेष बात उल्लेखनीय नहीं है।

नई झूँसी के दक्षिण रेलवे लाइन के निकट से पुरानी झूँसी के स्थान मिलने लगते हैं, जिन का संक्षिप्त वृत्तांत नीचे लिखा जाता है।

(१) श्री तीर्थराज सन्यासी संस्कृत पाठशाला

यह स्थान रेलवे पुल से बिल्कुल मिला हुआ है। पहले इस जगह स्वामी माधवानंद जी की एक छोटी-सी कुटिया थी। सन् १६०६ में रेलवे लाइन निकलने पर उन के शिष्य

स्वामी योगानंद जी ने धीरे-धीरे बहुत सी पक्की इमारतें बनाईं, जो बिल्कुल गंगा के तट पर होने से बहुत ही रमणीक मालूम होती हैं। सन् १९१३ में उन्हों ने इस स्थान में पहले विशेष कर नवयुवक साधुओं की शिक्षा के लिए एक पाठशाला स्थापित की और उन के रहने तथा खाने-पीने का भी उचित प्रबंध किया, परंतु अब इस में अन्य विद्यार्थी ही अधिक पढ़ते हैं। यहां आगंतुक साधुओं को भोजन भी दिया जाता है।

इसी से मिला कर उत्तर की ओर एक और पक्का बड़ा आश्रम नया बना है। जिस को तेरह हज़ार रुपए की लागत से सन् १९३३ ई० में मैनपुरी-निवासी पंडित हीरालाल चौबे ने दंडी साधुओं के लिए बनवाया है। चौबे जी रेलवे में स्टेशनमास्टर थे। विश्राम ले कर अब इसी स्थान में वाणप्रस्थ का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(२) बाबा गंगागिरि की कुटी

यह आश्रम ऊपर की पाठशाला से थोड़ी दूर दक्षिण और पूर्व की ओर है। बड़े एकांत की जगह है। बाबा गंगागिरि जी जो सिंध के रहनेवाले थे, पहले पंजाब की ओर कहीं तहसीलदार अथवा किसी रियासत के दीवान थे। ग़दर के पीछे साधु हो कर यहां चले आए और इस जगह एक छोटी-सी कुटी बना कर रहने लगे। फिर इस में बहुत सी नई-नई इमारतें स्वामी परमानंद जी के समय में बनीं। यह स्वामी जी बड़े सज्जन महात्मा और वेदांत के अच्छे पंडित थे। उन के एक काशमीरी शिष्य पंडित कर्ताकिशुन उन को काशी से यहां लिवा लाए थे। अभी सन् १९३१ में बहुत ही वृद्धावस्था में उन का देहांत हुआ है। बाबा गंगागिरि की वेदांत पर एक पुस्तक 'ज्ञानकथारहस्य' सन् १८५८ ई० में छप कर प्रकाशित हुई थी।

(३) हंसकूप तथा हंस-तीर्थ

स्थान नं० २ के पश्चिम की ओर पुराना 'हंस कूप' है, जिस की चर्चा 'मत्स्य' तथा 'बराहपुराण' में आई है। यह एक पक्का कुँआ है, जिस में निम्न लेख खुदा हुआ है :—

हंस प्रपत वंती
हंस रूपी जगं
नाथः सदास?
तत्र स्नाने पाने
हंस गति लभी
त

अर्थात् इस हंस-रूपी बावली में स्नान करने और इस के जल पीने से मनुष्य हंसगति (मुक्ति) को पाता है।

अब यह कूप सरकारी पुरातत्व-विभाग की ओर से सुरक्षित कर दिया गया है।

इस से कुछ हट कर पूर्व और दक्षिण के कोने में 'हंसतीर्थ' नामक स्थान है, जो 'हंस'-संप्रदाय के साधुओं का एक आश्रम है। ये लोग शिखा-सूत्र रखते हैं और श्वेत वस्त्र

धारण करते हैं। इस को सं० १६२६ वि० में ज़िला भागलपुर के शाहपुर-सोनबरसा नामक स्थान के एक क्षत्री ज़मींदार ठाकुरप्रसाद जी ने साधु हो कर यहां बनवाया था। उन का उपनाम 'आत्मा हंस' था।

यह स्थान बड़े विचार के साथ बनवाया गया है, जिस में हठ योग के सिद्धांत के अनुसार शरीर के आंतरिक स्थलों को स्थूल-रूप में दिखाने का उद्योग किया गया है। बीच-बीच में कुछ देवी-देवताओं की मूर्तियों का भी समावेश है, जिन में से बहुतों का ध्यानयोग के अनुसार षट्-चक्र-भेदन क्रिया से संबंध है। इस का ब्यौरा समझने के लिए पहले कुछ योग-संबंधी परिभाषाओं का जानना आवश्यक है।

प्राचीन तांत्रिक शास्त्रों के आधार पर अन्य संप्रदाय वालों के योग के ग्रंथों में कुछ-कुछ परिवर्तन के साथ शरीर की आभ्यंतर शक्तियों के विविध स्थानों में छः केंद्र माने गए हैं, जिन को 'षट्चक्र' कहते हैं। इन चक्रों का आधार रीढ़ की हड्डी है, जिस का नाम उन की परिभाषा में 'मेरुदंड' है। इस के भीतर से हो कर एक प्रधान ज्ञानतंतु मस्तिष्क से नीचे तक गई है। उस को 'सुषम्णा नाड़ी' कहते हैं। इस के बाँए और दाहिने दो नाड़ियां 'इड़ा' और 'पिंगला' के नाम से ऊपर को चलती हैं जो दोनों नेत्रों के बीच में जिस का नाम 'त्रिकुटी' है एक दूसरे को आरपार करके, दोनों नथनों तक चली गई हैं। एक और दिव्य शक्ति की नाड़ी शरीर में सब से नीचे मानी गई है, जिस का नाम 'कुंडलिनी' है। कहा जाता है कि यह सर्प के समान साढ़े तीन बार लपटी हुई रहती है, जो योगसाधन (प्राणायाम) से सीधी हो कर मेरुदंड द्वारा षट्चक्रों को शनैः-शनैः भेदन करती हुई ऊपर को चढ़ती है; और ब्रह्मांड अर्थात् मस्तिष्क में पहुँच जाती है, जहां 'सहस्रदल कमल' अर्थात् अनंत ज्ञान का भंडार है, अथवा जो ज्ञान-स्वरूप परमात्मा की सत्ता से परिपूर्ण है, यही योगसाधन का अंतिम स्थान है।[1] प्रत्येक चक्र कई-कई कोषों का होता है, जिन को 'दल' कहते हैं। इन के सांकेतिक नाम अक्षरों वा वर्णों के ऊपर रक्खे गए हैं, जो 'बीज' भी कहलाते हैं।[2] इस का ब्यौरा इस प्रकार है।

नामचक्र	स्थान	दलों की संख्या	दलों के निश्चित वर्ण अथवा दलों के नाम वर्णों के रूप में
१—मूलाधार	गुदा	४	व-श-ष-स
२—स्वाधिष्ठान	लिंग	६	ब-भ-य-र-ल-व
३—मणिपूरक	नाभि	१०	ड-ढ-ण-त-थ-द-ध न-प-फ
४—अनाहत	हृदय	१२	क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ
५—विशुद्ध	कंठ	१६	अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ-ओ-औ-अं-अः
६—आज्ञा	भ्रू	२	हं-क्षं

[1] कबीर ने इसी को इन शब्दों में प्रकट किया है :—

"......ब्रह्म जहां दरसै, आगे अगम अपारा"।

[2] इस के विषय में वहां के महंत श्री महादेव हंस के सुयोग्य शिष्य श्री विज्ञान हंस

इतना समझ लेने के पश्चात् अब देखिए कि इस में क्या-क्या बना हुआ है ! पहले हम नीचे से चलते हैं जो उत्तर की ओर है। यहां इस के हाते की दीवार की नोक पर एक छोटा-सा मंदिर है, जिस में कुत्ते के ऊपर भैरों की मूर्ति है। इस के नीचे भीतर की ओर दीवार पर 'एको हंसो भुवनस्या' इत्यादि 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' के अध्याय ६ का १५वां मंत्र तथा उस के नीचे 'नायमात्मा प्रवचनेन' आदि 'कठोपनिषद्' के दूसरे बल्ली का २३वां मंत्र खुदा हुआ है। अब इस के आगे दक्षिण की ओर जो-जो वस्तुएं बनी हुई हैं, उन का वर्णन क्रमशः करते हैं। सुगमता के लिए इस के साथ का मानचित्र सामने पृष्ठ पर देखिए।

(१) एक छोटा-सा चबूतरा पान के आकार का है। इसी का नाम 'कुंडलिनी' है।

(२) एक कुँआ है जिस के ऊपर छत पटी हुई है। इस को 'सुषुम्णा-कूप' कहते हैं। इस कुँए के पीछे पूर्व और पश्चिम से दो पंक्तियां सीढ़ियों की कुँए की छत पर गई हैं। एक ओर ८ और दूसरी ओर ९ सीढ़ियां हैं। इस का तात्पर्य आठ सिद्धियों और नौ निधियों से है। अर्थात् योगसाधन के आरंभ में यदि साधक इन सिद्धियों में लिप्त हो गया तो वह मानों कुँए में गिर पड़ता है और फिर आगे उस का उत्थान नहीं होता।

(३-४) कुँआ के आगे दाहिने-बाँए दो कोठरियां बनी हुई हैं। इन में से एक का नाम 'स्नानभवन' और दूसरे का 'भिक्षाभवन' है।

(५) इन कोठरियों के दक्षिण एक दालान है और उस के आगे एक कोठरी है। फिर उस के पीछे एक छोटी-सी कोठरी कुछ ऊँचाई पर है, जिस का द्वार दक्षिण की ओर

जी ने किसी तंत्र-ग्रंथ का एक श्लोक बतलाया जो—

आधारे लिंगनाभ्यो प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे,
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के।
वासन्ते बालमध्ये डफ-कठ-सहिते कण्ठदेशे स्वराणां,
हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि॥

अर्थ—आधार (अर्थात् गुदा-देशस्थ मूलाधार चक्र), लिंग (स्थ स्वधिष्ठान चक्र), नाभि—(देशस्थ) मणिपूर चक्र), हृदय (स्थ अनाहत चक्र), तालुमूल (कंठदेश में स्थित विशुद्ध चक्र, और) ललाट (भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्र) में (विपरीत अर्थात् अवरोह क्रम से स्थित) २, १६ १२, १०, ६ और ४ दलों वाले कमलों पर (पुनः इस के विपरीत आरोह क्रम से लिखे हुए) व श, ष स, = ४; ब, भ, म, य, र, ल, = ६; ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ = १०; क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, = १२; अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः (कंठ देश में) १६ स्वर तथा हं, क्षं = २ (ये वर्ण हैं। इस प्रकार) सब दलों पर स्थित और तत्त्वार्थ से युक्त वर्णरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।

एक छतदार चबूतरे पर है। इस समस्त भवन का नाम 'त्रिकुटी' है। इस की भूमि उत्तर के धरातल से क्रमशः छः फ़ुट तक दक्षिण की ओर ऊँची होती चली गई है। इस लिए

झूँसी के हंसतीर्थ का मान चित्र
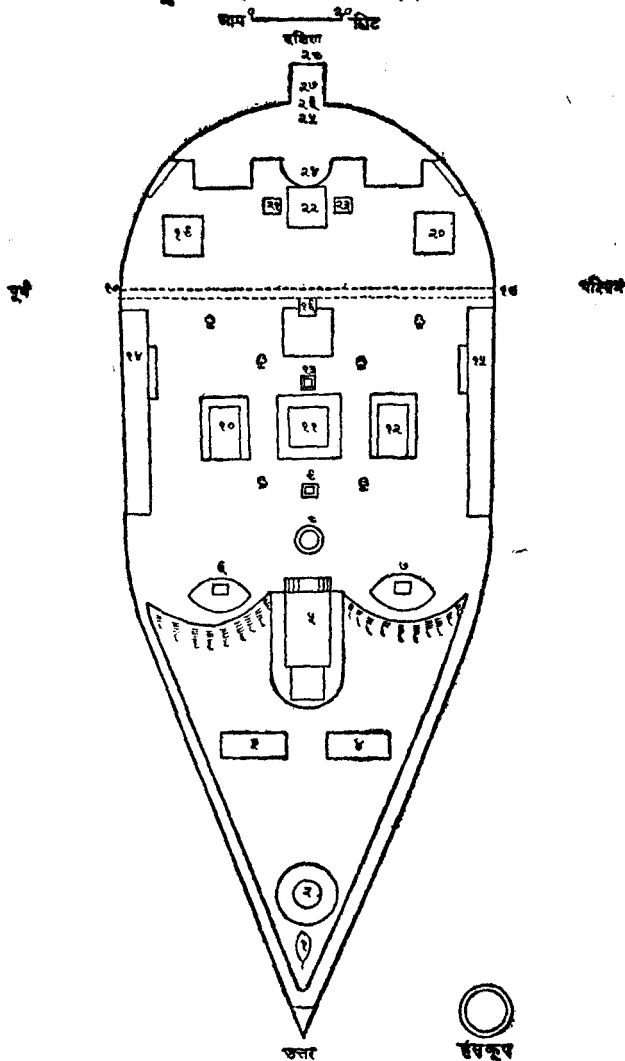
इस भवन के दोनों बग़ल में उत्तर से दक्षिण को ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

(६-७) त्रिकुटी के दोनों बग़ल नेत्रों के अनुरूप दो चबूतरे बने हुए हैं। उन पर मंदिर हैं, जिन में शिव और पार्वती की मूर्तियां हैं। इन का नाम 'आज्ञा-चक्र' है।

(८) यह एक २१ फ़ुट ऊँचा पक्का स्तंभ है। यही 'मेरुदंड' है, जिस पर कुंडलिनी साँप की तरह लपटी हुई दिखाई गई है।

(९) यहां कुछ ऊँचाई पर एक छोटी-सी प्रतिमा है, जिस को नारद जी की मूर्ति कहा जाता है।

(१०) लक्ष्मीनारायण का मंदिर है।

(११ , इस का नाम 'मानसरोवर' है। यह एक छोटा-सा चौकोर तीन-चार हाथ गहरा कुंड है जिस का प्रत्येक किनारा सात फ़ुट के लगभग है। बीच में एक छोटा-सा स्तंभ खड़ा हुआ है, और उस पर ब्रह्मा की मूर्ति है। इस के चारों कोनों पर चार खंभे प्रत्येक सात फ़ुट ऊँचे हैं, जिन के ऊपर छत पटी हुई है। इस कुंड में जल भरा रहता है और चारों ओर सीढ़ियों के चिह्न बने हुए हैं। इस के चारों किनारों पर जिन को इस का घाट समझना चाहिए, चार छोटी-छोटी मूर्तियां सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार की बनी हुई हैं।

(१२) मानसरोवर के पश्चिम गौरीशंकर का मंदिर है।

(१३) कुछ ऊँचाई पर गणेश जी की एक छोटी-सी मूर्ति है, जो मानसरोवर के दक्षिण की ओर है।

(१४-१५) पूर्व और पश्चिम की ओर दो लंबे-लंबे भवन बने हुए हैं। इन का नाम 'अंतःकरण' है।

(१६) नं० १३ के आगे एक पत्थर का तख़्त है और उस के आगे मिला हुआ एक छोटा-सा तहख़ाना है, जिस का नाम 'भ्रमणगुफा' है। इस के ऊपर एक चबूतरा-सा है और उस पर छत पटी हुई है।

(१७-१८) इस आश्रम में पश्चिम और पूर्व आमने-सामने दो द्वार हैं, जो 'इड़ा' और 'पिंगला' नाड़ियों के सूचक है। पश्चिम वाले का नाम 'गंगाद्वार' और पूर्व वाले का 'यमुनाद्वार' है।

(१९-२०) ये खपरैल के दो बँगले हैं जो दोनों द्वार के समीप पूर्व और पश्चिम के कोनों में बने हुए हैं।

(२१) राम-जानकी का मंदिर है।

(२२) नं० २१ के पश्चिम कुछ ऊँचाई पर एक बारहदरी है। इस का नाम 'उभटपीठ' है।

(२३) नं० २२ के पश्चिम राधाकृष्ण का मंदिर है।

(२४) उभटपीठ के दक्षिण एक अर्धचंद्राकार दालान है। उस के पीछे एक
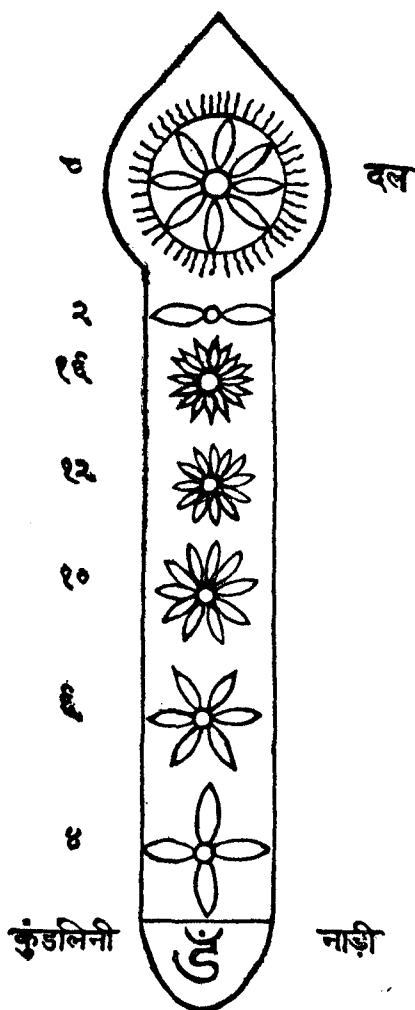
कोठरी है। इस भवन का नाम 'अष्टदल' है। इस में एक हिंडोला लटकता रहता है जिस में शालिग्राम की मूर्ति है। यही 'हंस भगवान्' हैं। इस के पीछे पीतल का एक चपटा दंड

सवा हाथ ऊँचा, पाँच अंगुल चौड़ा खड़ा हुआ है। उस में नीचे कुंडलिनी है, ऊपर दलों के रूप इस प्रकार बने हुए हैं।[1]

प्रत्येक दल-समूह के साथ-साथ उन के वर्ण भी संकेत-रूप में अंकित हैं, जिन की व्याख्या हम पीछे कर आए हैं।

(२५) अष्टदल के ऊपर वाले खंड में आठ द्वार की एक अर्धगोलाकार दालान है। इस का नाम 'शून्यमहल'[1] है।

(२६) शून्यमहल के ऊपर के खंड में एक ऊँचा मंदिर नोकदार गुबंद का बना हुआ है, जिस का नाम 'शून्य-शिखर' है। इस की चोटी पर जो कलस है उस में सब से ऊपर दो दल, फिर क्रमशः ४, ६, १०, १२ और सब से नीचे १६ दल, पंखड़ियों के रूप में दिखाए गए हैं, जिन का क्रम अष्टदलवाले दंड से बिल्कुल उलटा है।

(२७) शून्य-शिखर से एक सीढ़ी पीछे की ओर नीचे चली गई है। इस का नाम 'बंक-नाल' है।

(२८) ऊपरवाली सीढ़ी पीछे अर्थात् दक्षिण की ओर जिस दरवाज़े तक गई है, उस का नाम 'सुषुम्णा द्वार' है। उसी के ऊपर इस भवन का निर्माण-काल लिखा हुआ है।

इस आश्रम का घेरा लग-भग एक लंबे पान के रूप का है, जिस की नोक उत्तर की ओर है। इस के हाते की दीवार पर बहुत से कँगूरे छोटे-छोटे पान के रूप में बने हुए हैं, जिन की संख्या एक हज़ार बतलाई जाती है। यही मानो 'सहस्रदल कमल' है, जिस का स्थान ब्रह्मांड अर्थात् मस्तिष्क में बतलाया गया है।

(४) बाबा दयाराम की कुटी

हंसतीर्थ से कोई दो फ़र्लांग दक्षिण गंगा के तट पर एक बड़ा टीला है। उस पर ४०-४५ वर्ष के लग-भग हुए कि प्रयाग से एक पंजाबी नानकशाही साधु बाबा दयाराम ने जाकर पहले एक गुफा बनाई थी। फिर पीछे धीरे-धीरे अब कई इमारतें बन गई हैं। यहां की गुफा देखने योग्य है।

(५) समुद्रकूप

ऊपर वाले स्थान से मिला हुआ दक्षिण की ओर समुद्रकूप का प्रसिद्ध टीला है, जिस को वहां के लोग 'कोट' कहते हैं। इस पर एक बड़ा पक्का कुँआ है। उसी का

---

[1] संस्कृत के योग शास्त्रों का तो यह शब्द हो ही नहीं सकता। संभवतः कबीर के हठयोग से लिया गया है, क्योंकि उन का एक पद इस प्रकार है। "सुन्न महल मां नौबत बाजै किंगरी, बीन, सितारा"। इसी शून्यमहल अथवा शून्य-चक्र से जीवात्मा शून्य-शिखा पर चढ़ कर, बंक-नाल से होता हुआ शुषुम्णा-द्वार के रास्ते से निकल कर अमरलोक की गति पाता है। यही इन भवनों का तात्पर्य है।

नाम 'समुद्रकूप' है। इस की चर्चा 'मत्स्यपुराण' में भी आई है। अनुमान किया जाता है कि यह कूप सम्राट् समुद्रगुप्त का बनवाया होगा। यह पहले बहुत दिनों तक बंद पड़ा था। वहां के लोगों का विश्वास था कि इस का संबंध नीचे-नीचे समुद्र से है, इस लिए इस के खुलने से समुद्र उमड़ आएगा और सारी पृथ्वी जलमय हो जायगी, परंतु ५५ वर्ष के लगभग हुए कि अयोध्या से एक वैष्णव साधु बाबा सुदर्शन दास ने आ कर इस कूप को खुलवा कर साफ़ कराया और यहां एक सुंदर आश्रम और मंदिर बनवाया। इस में गंगा की ओर एक बड़ी सीढ़ी और कई गुफाएं हैं। स्थान दर्शनीय है।

(६) शेख़ तक़ी का मज़ार

समुद्रकूप के दक्षिण एक टीले पर यह पुरानी क़ब्र है, जिस के चारों ओर एक बड़ा घेरा है। इसी में एक मसजिद भी बनी हुई है। शेख़ तक़ी एक प्रसिद्ध मुसल्मान फ़क़ीर थे, जो सन् १३२० ई० में पैदा हुए और सन् १३८४ में मरे थे। उस समय फ़ीरोज़ तुग़लक़ दिल्ली का बादशाह था। यहां साल में एक बार कार्तिक के महीने में बड़ा मेला लगता है।

(७) छतनाग

समुद्रकूप से कुछ दूर दक्षिण इस नाम का एक गाँव है। उसी के निकट गंगा के तट पर एक पक्का भवन बना हुआ है, जिस को ५५ वर्ष के लगभग हुए अवध (प्रतापगढ़ अथवा अयोध्या) के एक ब्रह्मचारी मथुरानाथ वा मथुरादास ने एकांत-सेवन के लिए बनवाया था। उन की मृत्यु के पश्चात् मिर्ज़ापुर के रईस पंडित गुरुचरण उपाध्याय वानप्रस्थ आश्रम ले कर उस में रहने लगे। तत्पश्चात् उन्हों ने एक संस्कृत पाठशाला उस में स्थापित की, जिस को ४० वर्ष से ऊपर हुए होंगे।

भट्टग्राम (उपनाम गढ़वा)

गढ़वा का किला परगना बारा में प्रयाग से कोई २५ मील दक्षिण-पश्चिम और जबलपुर लाइन के शंकरगढ़ रेलवे स्टेशन से छः मील उत्तर-पश्चिम है। इस का प्राचीन नाम 'भट्टग्राम' है, जो गुप्तवंशीय राजाओं के शासन-काल में एक प्रसिद्ध नगर था। अब उस का शेष 'भट्टगढ़' वा 'बरगढ़' के नाम से केवल एक छोटा-सा गाँव रह गया है, जो गढ़वा से उत्तर डेढ़ मील के लगभग है। इन दोनों स्थानों के बीच पत्थर के असंख्य टुकड़े पड़े हुए हैं जिस से विदित होता है कि प्राचीन नगर का विस्तार वर्तमान गढ़वा से ले कर 'बरगढ़' तक रहा होगा।

इस समय गढ़वा में जो कुछ प्राचीन ऐतिहासिक चिह्न हैं उन का ब्यौरा यह है कि कुछ छोटी-छोटी पहाड़ियों की गोद में एक बड़ी झील है और उस के बीच एक पंचकोण दुर्ग बना हुआ है, जो अपनी इर्द-गिर्द की भूमि से लगभग बारह सीढ़ी की ऊँचाई पर स्थित है। इस का क्षेत्रफल सवा एकड़ या ढाई बीघा के लगभग है। झील से वर्षा का अतिरिक्त जल निकालने के लिए उत्तर की ओर एक नाली बनी हुई है। पहले इस दुर्ग के चारों ओर

जल भरा रहता था, जिस के टूटे-फूटे घाट और सीढ़ी के आकार के कटे हुए पत्थर अब तक देख पड़ते हैं। परंतु अब जल केवल पश्चिम की ओर क़िले की दीवार से मिला हुआ रहता है। यह पंचकोण दुर्ग पश्चिम की ओर ३०० .फ़ुट उत्तर और दक्षिण २५०-२५० .फ़ुट लंबा है। पूर्व की दोनों दीवारें १८०-१८० .फ़ुट की हैं। चारों कोनों पर चार बुर्जियां बनी हुई हैं। मुख्य द्वार दक्षिण की ओर है। उत्तर और पूर्व की ओर भी एक-एक खिड़की है।

गदवा का नकशा
(भाटगढ़ के पास)
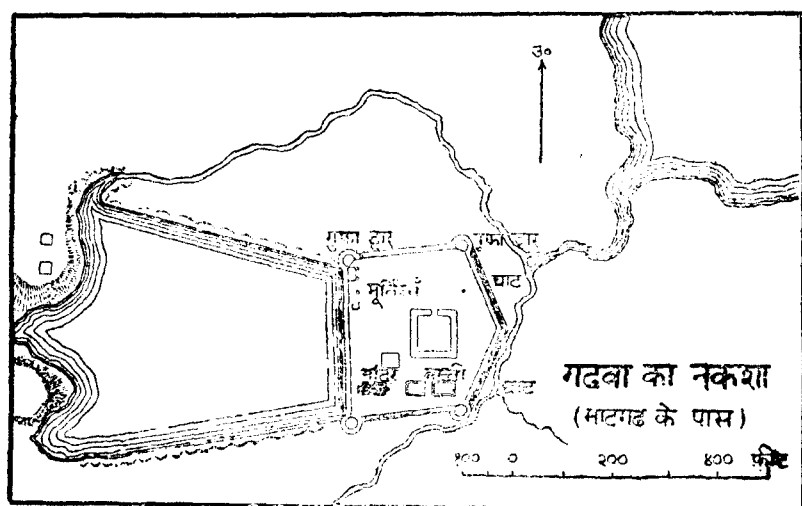
कहते हैं इस हाते को बारा के बघेल राजा विक्रमादित्य ने सन् १७५० ई० में बनवाया था, जो वर्तमान राजा साहब के पुरुषा थे। इस के बीचोंबीच एक चौकोर मकान है, जिस का द्वार पूर्व की ओर है। उत्तर और पश्चिम के कोने पर एक मंदिर है, जिस में अब विष्णु के दस अवतारों की मूर्तियां रक्खी हुई हैं। यह मूर्तियां इसी मंदिर से पश्चिम की ओर खुदाई करने से मिली थीं। इन में से एक संयुक्त मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव की है, जो नौ .फ़ुट लंबी और चार .फ़ुट चौड़ी है। इस के नीचे कौटिल्य-लिपि में लिखा है कि इस को ज्वालादित्य नामक एक योगी ने स्थापित किया था। इस लेख में कोई तिथि नहीं है, परंतु उस के अक्षर दसवीं शताब्दी के मालूम होते हैं।

दूसरा मंदिर पश्चिम और दक्षिण के कोने पर है। इस में किसी देवता की प्रतिमा नहीं है, किंतु एक खंभे के ऊपर एक पुरुष की मूर्ति के नीचे एक लेख मिला था, जिस से मालूम हुआ कि संवत् ११९९ (११४२ ई०) में तत्कालीन राजा बारा के दीवान ठक्कुर रणपाल श्रीवास्तव कायस्थ ने जो ठक्कुर कुंदपाल के पुत्र थे, स्वयम् अपनी मूर्ति इस मंदिर में स्थापित की थी। इसी पर एक दूसरे लेख में एक और सकसेना कायस्थ हरिचंद्र के पुत्र महीधर का नाम लिखा हुआ है, जो भट्टग्राम के रहने वाले थे। इन के सिवा और कई

पंडितों और ठाकुरों के नाम लिखे मिले हैं। कहा जाता है कि इस मंदिर की दीवारों को उस समय के बघेल राजा ने बनवा दिया था, जिन का नाम 'शंकरजू' अथवा 'शंकरदेव' था और जो वर्तमान राजा साहब बारा से २१ पीढ़ी पहले हुए थे।

इस मंदिर से थोड़ी दूर पूर्व की ओर दो पुरानी बावलियां बनी हुई हैं, जो अब बिल्कुल बे-मरम्मत पड़ी हैं।

पहले यह स्थान घने जंगलों से घिरा हुआ था, और किसी को इस का पता न था। पहले-पहल सन् १८७२ ई० में काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' और तत्पश्चात् जनरल कनिंघम ने कई बार वहां जा कर खोज की, जिस का परिणाम यह हुआ कि पत्थर के खंभों पर गुप्त-काल के अनेक पुराने अभिलेख मिले। उन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

पहला लेख सन् १८७२ ई० में राजा शिवप्रसाद ने पाया था। यह कुमारगुप्त के समय का है, जो द्वितीय चंद्रगुप्त का पुत्र था, और गुप्त संवत् ९८ (४१८ ई०) में हुआ था। इस में भी दस दीनारों के दान का उल्लेख है।

दूसरा लेख सन् १८७३ ई० में जनरल कनिंघम को मिला था। यह संस्कृत श्लोकों में द्वितीय चंद्रगुप्त के समय का है। इस में गुप्त-संवत् ८६ (४०६ ई०) लिखा है। इस की कई पंक्तियां खंडित हो गई हैं, जो कुछ रह गई हैं उन में ब्राह्मणों को दस दीनार (स्वर्ण मुद्रा) के दान देने का उल्लेख है; तथा मगध की राजधानी 'पाटलिपुत्र' का भी नाम है।

तीसरा लेख भी कुमारगुप्त के समय का है, जिस में बारह दीनारों के दान की चर्चा है।

चौथा लेख सन् १८७५ ई० में एक कुँवा से जनरल कनिंघम को मिला था। इस में कुल २२ पंक्तियां थीं, जिन का अधिक भाग नष्ट हो गया है। यह लेख भी कुमार-गुप्त के समय का जान पड़ता है, जिस में सदाव्रत के निमित्त कुछ दीनार और यमुना के दक्षिणीय तट पर कुछ भूमि के दान का वर्णन है।

पाँचवां लेख सन् १८७७ में जनरल कनिंघम ने ढूंढ़ा था। इस के राजा का नाम जो आदि में था कट गया है। इस में लिखा है कि गुप्त-संवत् १४८ (४६८ ई०) के माघ महीने की २१ वीं तिथि को अनंत स्वामी (विष्णु) के गंध और धूप इत्यादि के लिए बारह (दीनार) दान दिए गए।

इस दान का संबंध किसी और गाँव की भूमि से भी था, जो उसी देवता को 'चित्रकूट स्वामी' के नाम से दिया गया था। इन सब अभिलेखों के अंत में लिखा है कि 'जो इस दान में हस्ताक्षेप करेगा वह पंच महापातक का भागी होगा'। ये सब अभिलेख अब कुछ कलकत्ता और कुछ लखनऊ के अजायबघर में हैं। पुरातत्व-विभाग-

वालों का अनुमान है[1] कि बौद्धकाल में यह स्थान पहले भिक्षुओं का विहार रहा होगा। तत्पश्चात् ब्राह्मणों के समय में देवताओं की मूर्तियां स्थापित कर दी गईं और अंत में मुसल्मानों से रक्षा के लिए यह स्थान दुर्ग के रूप में परिणत कर दिया गया।

प्रयाग से मोटर सूखे दिनों में जा सकता है। इस का रास्ता इस प्रकार है कि यमुना के उस पार पुल से दाहिनी ओर जसरा होते हुए बारा गाँव तक १७ मील पक्की सड़क है। फिर वहां से शंकरगढ़ हो कर गढ़वा तक ११ मील कच्ची सड़क है। इस प्रकार से कुल २८ मील चलना पड़ता है। रेल पर जाने से शंकरगढ़ पर उतरना पड़ता है, वहां तीन मील जाने के लिए स्टेशन पर कोई सवारी नहीं मिलती।

लाक्षागृह (उपनाम लच्छागिर)

यह स्थान गंगा के उत्तरीय तट पर प्रयाग नगर से कोई २२ मील पूर्व तथा बी० एन० डबल्यू रेलवे के 'हँडिया ख़ास' स्टेशन से तीन मील दक्षिण की ओर है। यहां गंगा किनारे लगभग २६ बीघे का एक बड़ा टीला है। इसी का नाम 'लच्छागिर' है।

'महाभारत' के आदिपर्व में अध्याय १४२ से एक कथा आरंभ होती है, जिस का सार यह है कि दुर्योधन ने पांडवों (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव) के नष्ट करने के लिए एक षड्यंत्र इस प्रकार रचा कि समस्त हस्तिनापुर में यह घोषित करा दिया कि ' वारणावत ' नगर में पशुपति नाम का एक महोत्सव बड़े समारोह से होनेवाला है। यह समाचार सुन कर पांडव अपनी माता कुंती के सहित वहां जाने को तैयार हो गए। यह देख कर दुर्योधन ने अपने मंत्री पुरोचन को बुलाकर कहा कि "तुम पहले से वारणावत पहुँच कर नगर के किनारे जतुगृह अर्थात् सन और धूप इत्यादि अग्नि-वर्धक पदार्थों से एक ऐसा भवन तैयार कराओ, जिस की दीवारें घृत, तैल तथा लाख आदि से लिपी हुई हों। पांडवों को बड़ी अभ्यर्थना के साथ उस में ठहराना और किसी दिन अवसर पा कर जब वे सो जाँय उस में आग लगा देना।" परंतु विदुर जी ने पांडवों से वहां का यह सब रहस्य बता दिया। तदनंतर पांडव फाल्गुन महीने की अष्टमी को रोहणी नक्षत्र में वारणावत को चले। जब वे वहां पहुँचे तो पुरवासियों ने बड़ी धूम के साथ उन का आगत-स्वागत किया। पुरोचन ने भी उन का बहुत आदर-सत्कार किया, और उन को पहले एक पृथक् स्थान में ठहराया। दस दिन व्यतीत होने पर वह उन को जतुगृह में ठहराने के लिए लिवा ले गया। इसी बीच में विदुर का भेजा हुआ एक चतुर खनिक युधिष्ठिर के पास आया और उस ने उस भवन के भीतर से बाहर निकलने के लिए एक सुरंग चुपचाप खोदना आरंभ किया। एक वर्ष के पश्चात् जब सुरंग बन कर तैयार हो गई, तो एक दिन कुंती ने ब्रह्मभोज किया, जिस में वहां के नगर-निवासी भी निमंत्रित किए गए, और पुरोचन भी आया। सब लोग खा-पी कर अपने-अपने घर चले

[1] कनिंघम, 'आर्कियालॉजिकल रिपोर्ट्स,' जिल्द ३, पृ० ५३-६०

गए, परंतु पुरोचन और एक भीलनी, जिस के पाँच बच्चे थे, वहीं सो रहे। उस रात को हवा बड़े वेग से चल रही थी और सब लोग निद्रा देवी की गोद में अचेत पड़े थे। भीम ने सुअवसर देख कर, जिस खंड में पुरोचन सोता था पहले उसी ओर आग लगा दी। अग्नि बात की बात में जतुगृह के चारों ओर फैल गई। पांडव अपनी माता सहित सुरंग में जा घुसे और उस के द्वारा सुरक्षित बाहर निकल आए। वहां से रातों-रात कुछ दूर तक गंगा के किनारे-किनारे चले। फिर विदुर जी की भेजी हुई एक नौका मिली। उसी से पार उतर कर वे दक्षिण की ओर चले गए।

स्थानीय दंतकथा यह है कि उक्त वारणावत यही स्थान था, जो पीछे इस घटना के कारण 'लाक्षागृह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर पीछे बिगड़ कर 'लच्छागिर' हो गया और यह कि पांडव लच्छागिर से कुछ दूर (लगभग छः मील) गंगा के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चल कर सिरसा के सामने गंगा पार कर के दक्षिण मेजा की ओर गए थे।

परंतु यह विषय विवादास्पद है क्योंकि कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन 'वारणावत' मेरठ ज़िले में था, जो अब तहसील ग़ाज़ियाबाद में बरनावा' के नाम से प्रसिद्ध हैं।[1] वहां एक ऊँचा टीला 'खेड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस को लोग लाख का मंडप कहते हैं। मेरठ ज़िले के गज़ेटियर में इतिहास का भाग मिस्टर आर० बर्न ने लिखा है। उन का कहना है कि बरनावा के अतिरिक्त लच्छागिर का भी वारणावत होना बतलाया जाता है।[2]

हम कुछ विस्तार के साथ यहां यह विवेचना करना चाहते हैं कि इन दोनों स्थानों में किस के पक्ष में वारणावत होने का अधिक अनुमान किया जा सकता है। पाठकों की सुगमता के लिए नीचे इन दोनों स्थानों के स्थिति-सूचक दो छोटे-छोटे मानचित्र दिए जाते हैं।

---
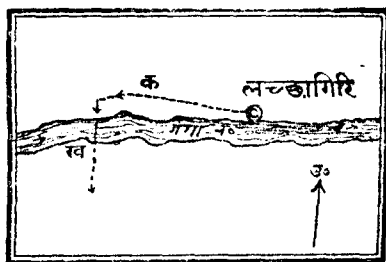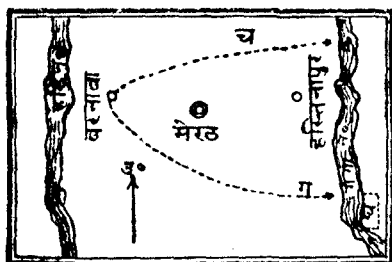
[1] नंदलाल दे, 'जिओग्राफ़िकल डिक्शनरी अव् एंशेंट ऐंड मिडीवल इंडिया', पृ० १०१, तथा 'डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, मेरठ', पृ० २०४-६

[2] 'डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, मेरठ', पृ० १४८ ; तथा फ़ुहरर, 'आर्कियालॉजिकल सर्वे अव् इंडिया', (न्यू सीरीज़) जिल्द २, पृ० १४३

बरनावा के वारणावत होने का अनुमान निम्न कारणों से हो सकता है:—

(१) वारणावत से उस का नाम अधिक मिलता-जुलता है।

(२) बरनावा लच्छागिर की अपेक्षा हस्तिनापुर से अधिक निकट है।

अब लच्छागिर के पक्ष में प्रमाणों तथा युक्तियों को देखिए :—

(१) 'महाभारत' के पढ़ने से मालूम होता है कि वारणावत गंगा के तट पर था[1]। लच्छागिर भी अब तक ठीक गंगा के किनारे पर है। बरनावा गंगा से कम से कम ४० मील हिंडन नदी पर है।

(२) 'महाभारत' में है कि पांडव वारणावत के जतुगृह से निकल कर रात को पहले कुछ दूर गंगा के किनारे-किनारे चले (मानचित्र में 'क' मार्ग देखिए) फिर जब उन को विदुर जी की भेजी हुई नौका मिली तो उस से पार उतर कर वे दक्षिण की ओर ('ख' मार्ग से) रातोंरात भाग गए।

लच्छागिर से दक्षिण मिली हुई गंगा पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। अतः उस के निकट गंगा पार कर के पांडवों का दक्षिण की ओर भागना अधिक युक्ति-संगत है।

दूसरी ओर एक तो बरनावा के निकट गंगा है ही नहीं। दूसरे कम से कम आधी रात के उपरांत जब सब लोग सो गए होंगे तब जतुगृह में आग लगाई गई होगी। अतः उस रात के शेष छः घंटों में पांडवों का बरनावा से ५०-६० मील अंधेरे में सघन बनों[2] से आच्छादित दुर्गम मार्ग द्वारा चल कर गंगा पार करना और फिर उस पार भी कुछ रात रहे[3] पहुँचना, इतना संभव नहीं है, जितना यह मानने में कि लच्छागिर के निकट से गंगा उतर कर वे आगे गए होंगे।

(३) 'महाभारत' में लिखा है कि पांडव गंगा पार कर के सीधे दक्षिण[4] की ओर भागे थे।

मेरठ के ज़िले में गंगा दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। अतः यदि पांडव वहां से पार उतरते तो ('ग' मार्ग से) सीधे पूर्व की ओर उन का जाना अधिक स्वाभाविक था। यदि दक्षिण की ओर उन को जाना था, तो उस पार नाव से उतर पड़ने की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि थल की अपेक्षा जलमार्ग ही से वे अधिक आराम से दक्षिण की ओर जा सकते थे।

---

[1] 'महाभारत' आदिपर्व, अ० १२१ श्लो० ९—११; अ० १४२ श्लो० १६ तथा चिंतामणि विनायक वैद्य, 'हिंदी महाभारत-मीमांसा', पृ० २०१

[2] 'महाभारत' आदिपर्व अ० १४२, श्लो० २२

[3] वही ,, श्लो० २१

[4] वही ,, श्लो० २०

(४) यदि यह कल्पना की जाय कि बरनावा से 'च' मार्ग द्वारा वे भाग कर पार उतरे होंगे तो ऐसी अवस्था में उन का दक्षिण की ओर जिधर उन के शत्रुओं की राजधानी (हस्तिनापुर) निकट पड़ती थी, जाना महामूर्खता थी।

इन सब बातों पर विचार करने से महाभारत के कथनानुसार बरनावा की अपेक्षा लच्छागिर का वारणावत होना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

एक बात इस के पक्ष में और भी उल्लेखनीय है कि लच्छागिर के टीले में अब तक प्राचीन काल से ले कर यवन काल तक की मुद्राएं बहुधा बरसात के दिनों में मिलती हैं; जो इस बात की सूचक हैं कि पुराने समय में यह कोई महत्वपूर्ण स्थान अवश्य था। सोने चाँदी के सिक्कों को तो वहां के लोग बतलाते नहीं हैं। अलबत्ता ताँबे के तीस सिक्के थोड़े दिन हुए हम को इस स्थान से मिले हैं जिन में सब से पुराने दो तीन सौ वर्ष ई० पू० के अनुमान किए गए हैं।

इस समय लच्छागिर एक साधारण गाँव है, जिस का अब केवल इतना महत्व है कि जब कभी सोमवती अमावस्या अथवा वारुणी का पर्व पड़ता है तब वहां गंगा स्नान का बड़ा मेला लगता है।

प्रयाग से इस स्थान तक मोटर पर जाने के लिए झूँसी हो कर हँडिया तक २४ मील पक्की सड़क है। वहां से दक्षिण तीन मील दूसरे दर्जे की सड़क है। रेल से जाने में हँडिया ख़ास स्टेशन से इक्के मिलते हैं।

भीटा

जबलपुर लाइन के इरादतगंज स्टेशन से डेढ़ मील पश्चिम तथा प्रयाग से १२ मील दक्षिण-पच्छिम यमुना के दाहिने किनारे पर तीन बड़े-बड़े टीले हैं, जिन का फैलाव लगभग ४०० बीघे में होगा। यही स्थान तथा इस से मिला हुआ ग्राम 'भीटा' कहलाता है। इस के विषय में आगे जो कुछ लिखा जायगा उस के समझने के लिए इस की स्थिति का नीचे एक मानचित्र दिया जाता है :—
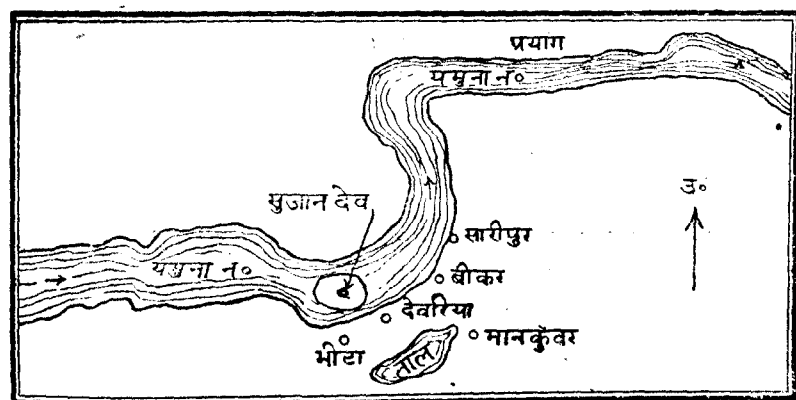
पहले बहुत दिनों तक इस स्थान की प्राचीनता का किसी को पता न था। ग़दर के पश्चात् जब ईस्ट इंडियन रेलवे की शाखा यमुना के उस पार निकली, तो उस के ठेकेदारों ने ईंटों की खोज में, इस स्थान को खोदा। पृथ्वी के भीतर बड़े-बड़े पुराने भवन के भग्नावशेष के निकलने पर उन्हों ने अपने अफ़सरों को सूचना दी। उस के पीछे पुरातत्व-अनुसंधान-विभाग के अधिकारियों का ध्यान इस स्थान की ओर आकृष्ट हुआ।

पहले-पहल जनरल कनिंघम ने इस के एक टीले के निकट खोदाई की और उस के आस-पास के स्थानों का विचारपूर्वक निरीक्षण किया। इस का फल यह हुआ कि एक प्राचीन नगर तथा गढ़ इत्यादि के खंडहर बहुत सी पुरानी वस्तुएँ और कुछ अभिलेख वहां मिले, जिन का वर्णन आगे किया जाता है।

इस पुराने नगर के चिह्न उत्तर की ओर 'सुजानदेव' के मंदिर से आरंभ हो कर दक्षिण कोई डेढ़ मील तक फैले हुए हैं। उक्त मंदिर इस समय यमुना के बीच में है। परंतु पहले वह इस नगर से मिला हुआ उस के उत्तरीय सीमा पर यमुना के किनारे पर था। धीरे-धीरे नदी के प्रवाह से बीच की भूमि कट कर बह गई जिस से मंदिर बस्ती से पृथक् हो कर टापू के रूप में जमुना के बीच में आ गया। इस की ऊँचाई धरातल से ६० फ़ुट के लगभग है। पहले इस पर सुजानदेव का मंदिर था। परंतु शाहजहां के समय में जब शायस्ता ख़ां इलाहाबाद का सूबेदार था, तब उस ने सन् १६४५ ई० में पुराने मंदिर को विध्वंस कर के उस जगह एक अठपहल बैठक जो २१ फ़ुट व्यास की है, बनवाई और फ़ारसी के पाँच पद्यों में अपना नाम तथा उस के निर्माण का हिजरी-संवत् अंकित कराया, जिस की प्रतलिपि यह है :—

الله اکبر

بفرمان شایسته خان شد بنا * چو تخت سلیمان بروے هوا
بجز قصد همراهئی راهبر * ره از ارتفاعش نیابد نظر
بنائے بلند عجب دلکشائے * چو فکر بلند اندرین طرفه جائے
بشد این بنا در سرائے سپنج * بسال هزار و به پنجاه و پنج
تمام این مکان وسیع ولطیف * شد از اهتمام محمد شریف[१]

इस का भावार्थ यह है कि शाइस्ता ख़ां की आज्ञा से यह विचित्र, विशाल, सुंदर तथा अत्यंत ऊँचा भवन सन् १०५५ हिजरी (१६४५ ई०) के महम्मद शरीफ़ के प्रबंध से बन कर तैयार हुआ।

पीछे हिंदुओं ने किसी समय फिर उस पर अधिकार कर लिया और एक मूर्ति उस में स्थापित कर दी। अब कार्तिक की यमद्वितीया को यमुना-स्नान का वहां मेला लगता है। मंदिर के नीचे उत्तर की ओर पाँचों पांडवों की भी मूर्तियां बनी हुई हैं।

---

[१] 'प्रोसीडिंग्स अव् दि एशियाटिक सोसाइटी अव् बंगाल,' १८७४, पृष्ठ १००

इस मंदिर के सामने दक्षिण की ओर यमुना के किनारे देवरिया गाँव है। उस से दक्षिण कोई आधा मील तक एक बड़े ताल के पश्चिम किनारे-किनारे कुछ भूमि डीह के नाम से फैली हुई है। इसी से मिला हुआ पुराने गढ़ का चिह्न मिलता है। यह लगभग चतुष्कोण भूमि है, जिस का उत्तरीय किनारा १२०० फ़ुट और शेष तीनों १५००-१५०० फ़ुट लंबे हैं। भीतर की दीवारें मिट्टी की थीं, परंतु बहुत चौड़ी थीं, और उन की रक्षा के लिए २५-३० फ़ुट के अंतर पर बाहर एक ईंटों की दीवार थी। ये ईंटें बहुत लंबी-चौड़ी थीं, जैसी कि पुराने समय में हुआ करती थीं। इस गढ़ के चारों कोनों की भूमि अब तक कुछ ऊँची है, जिस से अनुमान होता है कि वहां बुर्ज अथवा धुरेरे रहे होंगे। पश्चिमीय कोने पर दो टीले एक-दूसरे के निकट हैं और उन के बीच में कुछ गड्ढा-सा है। संभवतः यही दुर्ग का मुख्य-द्वार रहा होगा। इसी प्रकार उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व के बीच में भी दो दरवाज़ों के चिह्न पाए जाते हैं। क़िले के मध्य की भूमि कुछ ऊँची है। ऐसा जान पड़ता है कि यहां कोई बौद्ध-मंदिर था, क्योंकि उस जगह राजघराने के किसी व्यक्ति की एक मूर्ति, एक पँचमुखा खंभा, जिस में पाँच बौद्ध-मूर्तियां थीं, तथा एक अभिलेख इत्यादि मिले हैं। कुछ गड़े हुए पत्थर और नक़्श की हुई ईंटें भी मिली हैं।

क़िले के भीतर खुदाई करने पर मौर्य-काल से ले कर कुशान, गुप्त तथा सुंग समय तक की इमारतों के बहुत से चिह्न मिले हैं। इस क़िले के अंदर एक बाज़ार भी था, जिस की दूकानें एक ही पंक्ति में गली की ओर हैं। इस के निकट इधर-उधर और अनेक बड़े-बड़े मकानों के चिह्न मिले हैं। यहां खुदाई करने से, जो चीज़ें मिली हैं, उन के विषय में पुरातत्व-वेत्ताओं का मत है कि उन में से कुछ सन् ईसवी से सात-आठ सौ वर्ष पहले से कम पुरानी न होंगी[१]। उन वस्तुओं की संक्षिप्त सूची यह है—

नुकीले लोहे और पत्थर के शस्त्र, संगमरमर और मिट्टी के बरतन, कनिष्क और हविष्क के समय के सिक्के, मिट्टी की मुहर छाप, विविध प्रकार के गहने, मूर्तियां, तराशे हुए पत्थर के खंभे, शृंगारदान तथा मिट्टी और ताँबे के बरतन इत्यादि, जिन में से बहुत सी चीज़ें अब लखनऊ के अजायबघर में हैं।

पहले सन् १८७२ में इस स्थान के एक टीले की खुदाई जनरल कनिंघम ने कराई थी। उस समय जो चीज़ें मिलीं थीं उन के आधार पर कनिंघम साहब का अनुमान था, कि इस स्थान का पुराना नाम 'बीथाव्यपटन' था,[२] परंतु सन् १६१० में सर जान मार्शल ने दूसरा टीला खुदवाया, तो एक मिट्टी की मुहर मिली जिस में इस का नाम 'विछि ग्राम' पाया गया।

अब इस स्थान से प्राप्त कुछ अभिलेखों का संक्षिप्त ब्यौरा दिया जाता है :—

---

[१] कनिंघम, 'आर्कियालॉजिकल रिपोर्ट्स', जिल्द ३, पृ० ४६-५२

[२] नेविल, 'डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर—इलाहाबाद' (१९११), पृ० २३५

(१) सब से महत्वपूर्ण लेख गुप्त-संवत् १८६ (५०६ ई०) का है, जो गौतम बुद्ध की एक मूर्ति पर खुदा हुआ सन् १८७१ ई० में डाक्टर भगवानलाल इंद्र जी को भीटा से थोड़ी दूर पूर्व पंचपहाड़ नामक डीह से मिला था। बुद्ध भगवान् की यह एक पूरी मूर्ति है। ध्यान में आँखें आधी खुली हुई हैं। जिस चौकी पर वह बैठे हैं उस के आगे की ओर बीच में एक धर्म-चक्र बना हुआ है जो, बौद्धमत का मुख्य चिह्न है। उस के नीचे लिखा है:—

"ओम् नमो बुधान भगवतो सम्यक। सम बुद्धस्य स्वमताविरोधस्य इयां प्रतिमा प्रतिष्ठापिता। भिक्षु बुद्धमित्रेण संवत् १००-२०६ महाराज श्री कुमारगुप्तस्य राज्ये ज्येष्ठ मासादि। सर्व्वदुःख प्रहरणार्थम्।"

अर्थात् भगवान् बुद्ध को सम्यक् नमस्कार, जो परम ज्ञानी हैं और जिन के मत का विरोध नहीं हुआ है, ऐसे बुद्ध भगवान् की यह मूर्ति भिक्षु बुद्धमित्र ने श्री कुमारगुप्त के राज्यकाल में संवत् १२६ के ज्येष्ठ महीने की १८वीं तिथि को सब दुखों के दूर रहने के लिए स्थापित की[1]।

अब यह मूर्ति लखनऊ के अजायब घर में है।

(२) मनकुँवार के पूर्व एक पहाड़ी है। उस में कुछ गुफाएं बनी हुई हैं। उन में से एक बड़ी गुफा के द्वार पर, जिस को 'सीता की रसोई' कहते हैं एक लेख तीन पंक्तियों में नवीं शताब्दी का लिखा हुआ है।

(३) उसी के निकट एक और पत्थर पर, जो संभव है उसी गुफा से निकल कर गिर पड़ा हो, उन्हीं अक्षरों में एक लेख आषाढ़ बदी संवत् ६०१ का मिला था।

(४) बीकर से उत्तर-पूर्व पहाड़ी पर 'चंडिका माई' का एक मंदिर है उस के पास एक पत्थर पर छः पंक्तियों में एक लेख संवत् १६८५ का मिला था। उक्त मंदिर से थोड़ी दूर आगे विष्णु की भिन्न-भिन्न अवतारों की मूर्तियां बनी हुई हैं। उस के निकट एक पत्थर पर दो पंक्तियां मिली हैं, जिन के अक्षर नवीं शताब्दी के मालूम होते हैं।

(५) बीकर के निकट सारीपुर में पत्थर के एक खंभे के टुकड़े पर 'कुमारगुप्त महेंद्र' का नाम तथा तेरह पंक्तियों का एक लेख मिला था।

यह तो हुई उन लेखों की सूची, जो कनिंघम साहब को मिले थे अब उन प्राचीन वस्तुओं तथा उन के कुछ अभिलेखों की संक्षिप्त चर्चा की जाती है; जो बाद को सर जान मार्शल को मिले हैं।

(१) तेरह मुहरें जिन में छः आग में पकाई हुई मिट्टी की, एक पत्थर और छः हाथी-दांत की थीं। इन में किसी पर कुछ लेख हैं और किसी में कुछ चिह्न बने हुए हैं।

---

[1] फ्लीट, 'गुप्त इंशक्रिप्शन्स', पृ० ४७

(२) अनेक प्रकार के सैकड़ों मुहरों के छापे मिले। इन के लेख ३-४ शताब्दी ई० पू० से ले कर सन् ९-१० ईसवी तक के हैं। कुछ ब्राह्मी और कुछ गुप्तकाल की लिपि में हैं। भाषा गुप्तकाल के पहले की प्राकृत-संस्कृत मिश्रित है। विषय की दृष्टि से कुछ देवताओं, कुछ राजाओं तथा कुछ मंत्रियों के संबंध में हैं। कुछ पढ़े नहीं गए। एक पर इस स्थान का नाम 'विच्छिग्राम'[1] लिखा हुआ मिला। इन लेखों में 'गोमित्र गौतमी पुत्र-वृषध्वज, शिवमेघ' तथा 'वसिष्टपुत्र-भीमसेन' इत्यादि के नाम आए हैं। विस्तार भय से हम केवल दो लेखों की प्रतिलिपि नीचे देते हैं :—

एक पर लिखा है :—

'श्रीविंध्यावर्धनमहाराजस्य महेश्वरमहासेनातिश्रृष्टराजस्य वृषध्वजस्य गौतमिपुत्रस्य।'

लक्ष्मी की एक मूर्ति के नीचे पुरानी गुप्तलिपि में इस प्रकार का लेख है :—

'महाश्वपतिमहादंड नायकविष्णुरक्षितपादानुग्रहीतकुमारामात्यधिकरणस्य।'

(३) १२० सिक्के निकले, जिन में से एक बहुत ही पुराना ठप्पा किया हुआ (पंचमार्कड.) शेष अयोध्या, कुशान-वंशीय, आंध्र, कलिंग तथा कौशांबी-नरेशों के हैं। अयोध्यावालों में एक पर ब्राह्मी अक्षरों में 'अयूमित्र' तथा कौशांबी के सिक्के में 'बहसति मित्र'[2] लिखा हुआ मिला। इन में से बहुतेरे सिक्कों पर जँगले के भीतर वृक्ष बने हुए हैं, जो बौद्धधर्म का विशेष चिह्न है। कुछ सिक्के मुसलमानी राज्य के सिकंदर तथा इब्राहीम लोदी के भी मिले हैं।

(४) बहुत-सी मिट्टी की मूर्तियां कुछ संपूर्ण और अधिकांश खंडित मिलीं। इन में से कुछ तो बहुत ही पुराने समय की मालूम होती हैं। शेष सुंग, आंध्र, कुशान तथा गुप्त काल की हैं।

---

[1] डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने लिखा है कि इस स्थान से एक पकी हुई मिट्टी की मुहर मिली है, जिस पर इस जगह का नाम सर जान मार्शल के पाठानुसार 'शहिजतिय' अंकित है, परंतु इस का शुद्ध पाठ 'सहजाति' है। यह नाम 'विनयपिटक' में भी आया है। यह नगर चेदि-प्रदेश में था और मौर्यकाल से पहले चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ था। अनुमान किया जाता है कि यह स्थान लगभग १० शताब्दी ई० पू० से १० शताब्दी ई० तक आबाद था। इस बीच में इस पर दो बार आक्रमण हुए थे। यहां जो मुहरें मिली हैं उन में कई एक कुशान और वाकाटक-काल की हैं। एक मुहर किसी महारानी की है, जिस का नाम 'महादेवी रुद्रमती' लिखा है। परंतु यह किस की महारानी थी, यह पता नहीं है। राजकीय मुहरों के अतिरिक्त बहुत-सी मुहरें आमात्य तथा अन्य राजकर्मचारियों की हैं। विस्तार के लिए देखिए, 'हिस्ट्री अव् इंडिया (१५०—३५० ई०) श्री काशीप्रसाद जायसवाल-लिखित पृष्ठ, २२३।

[2] कौशांबी के निकट पभोसा के अभिलेख में भी यह नाम आया है।

(५) उपर्युक्त वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ गहने तथा पत्थर, ताँबा, पीतल, लोहा, हाथीदाँत, हड्डी और मिट्टी के बर्तन, अनेक प्रकार के शस्त्र तथा अन्य वस्तुएं निकलीं, जिन के विवरण के लिए यहां स्थान नहीं है। जिन को इस विषय में अधिक जानना हो, वे सर जान मार्शल लिखित पुरातत्व-विभाग की सन् १९११-१२ ई० की रिपोर्ट देखें।

इतनी वस्तुओं के निकलने पर भी अभी इस स्थान के इतिहास का ठीक-ठीक पता नहीं लगा। एक बड़े टीले में तो अभी हाथ ही नहीं लगाया गया। संभव है उस की खुदाई होने पर कुछ और भी ऐसी चीज़ें निकलें, जो इस स्थान के इतिहास पर अधिक प्रकाश डालें।

प्रयाग से मोटर पर जाने के लिए घूरपुर तक १५ मील पक्की सड़क है, वहां से दो मील तक कच्ची सड़क है, जिस पर वर्षा के अतिरिक्त मोटर चल सकती है। रेल से जाने के लिए इरादतगंज स्टेशन पर उतरना पड़ता है, वहां से दो मील कच्ची सड़क के लिए इक्का मिल जाता है।

शृंगवेरपुर (उपनाम) सिंगरौर

'सीता-सचिव सहित दोउ भाई।
शृंगवेर पुर पहुँचे जाई॥'

(तुलसीदास)

यह स्थान तहसील सोराँव के परगना नवाबगंज में गंगा के उत्तरीय तट पर रामचौरा रोड स्टेशन से ३ मील दक्षिण और प्रयाग से २० मील पश्चिम और उत्तर के कोने पर है। कहते हैं यहां गंगा के तट पर शृंगी ऋषि का आश्रम था, जिन्हों ने राजा दशरथ के यहां संतान उत्पत्ति के लिए पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया था। अतः यह स्थान उन्हीं के नाम से 'शृंगवेरपुर' कहलाता था, जो अब बिगड़ कर 'सिंगरौर' हो गया है।

वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकांड के ५० वें सर्ग में इस स्थान का उल्लेख इस प्रकार है, कि उस समय यहां निषाद जाति का एक राजा 'गुह' राज्य करता था। जब श्री रामचंद्र लक्ष्मण, सीता, सुमंत तथा पुरवासियों सहित अयोध्या से चल कर यहां पहुँचे, तो गुह ने उन का सम्मानपूर्वक स्वागत किया। राम ने इसी स्थान से सुमंत तथा सब अयोध्यावासियों को बिदा कर दिया और आप लक्ष्मण तथा सीता सहित मुनियों का वेश धारण कर नौका-द्वारा गंगा के इस पार उतरे। जिस घाट से वह पार उतरे थे, वह अब 'रामचौरा' कहलाता है जो वर्तमान सिंगरौर से लगभग आधा मील है।

अकबर के समय में सिंगरौर एक परगने का केंद्र था और यहां गंगा के किनारे ईंट का एक क़िला बना हुआ था, जिस के टूटे-फूटे चिह्न अब तक पाए जाते हैं।

जनरल कनिंघम[1] को इस स्थान से बहुत से पुराने सिक्के मिले थे, जिन में से २१ हिंदुओं के समय के, एक हिंदू-सिथियन काल का और १०६ मुसलमानी राज्य के थे।

---

[1] 'आर्कियालॉजिकल रिपोर्ट', जिल्द ११, पृ० ६३

सिंगरौर की पुरानी आबादी के चिह्न गंगा के किनारे-किनारे लगभग तीन मील तक पाए जाते हैं, जिस की पश्चिमीय सीमा 'भरभंडीकुंड' और पूर्वीय 'सीताकुंड' के नाम से प्रसिद्ध है।

गंगा के किनारे शृंगी ऋषि की एक समाधि बनी हुई है और उसी के निकट 'शांता देवी' उपनाम 'आनंदी माई' का मंदिर है, जो उन की पत्नी बतलाई जाती हैं। यहां आषाढ़ और सावन में कृष्णपक्ष की सप्तमी और अष्टमी तथा रामनवमी, वैशाख कृष्ण पक्ष की तृतीया और कार्तिक की पूर्णिमा को मेले लगते हैं।

प्रयाग से मोटर पर सूखे दिनों में २४ मील कच्ची सड़क पर चल कर इस स्थान तक पहुँच सकते हैं।

साथर

तहसील हँडिया के परगना मह में फूलपुर से ८ मील पूर्व सराय ममरेज़ के निकट 'साथर' एक गाँव है। वहां एक बहुत बड़ा लंबा-चौड़ा पथरीला टीला है, जिस का फैलाव ५० बीघे में होगा और ऊँचाई पृथ्वी के धरातल से १०० फ़ुट के ऊपर होगी। इस के निकट पानी की एक बहुत बड़ी झील है, जो वर्षा में इस टीले को तीन ओर से घेर लेती है। वहां के लोग इस को 'भरों का कोट' कहते हैं। निस्संदेह यह देखने में किसी क़िले का भग्नावशेष अवश्य मालूम होता है। पुराने समय में यह दस्तूर था कि ऐसे स्थानों की रक्षा के लिए प्रायः इर्द-गिर्द जलाशय रहा करते थे। वह किसी न किसी रूप में अब तक यहां मौजूद है।

यह क़िला वास्तव में किस का था, और कब आबाद था, इस का कुछ पता नहीं है। परंतु इस में कोई संदेह नहीं कि यह मुसलमानों के समय से पहले का है। हम को बड़ी खोज से इस स्थान से ताँबे के केवल दो सिक्के मिले हैं। उन में से एक इतना खंडित है कि कुछ पढ़ा नहीं जाता। दूसरा कुछ साफ़ है। उस में 'मुबारकशाह' का नाम फ़ारसी अक्षरों में अंकित है और उस की उपाधियां दी हुई हैं। यह मुबारकशाह जौनपुर का बादशाह था, जिस का समय १३९९ ई० से १४०१ ई० तक हुआ है।

इस के सिवाय इस स्थान की और कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिली। यदि यहां खोदाई की जाय तो बहुत कुछ मिलने की संभावना है।

प्रयाग से मोटर का रास्ता इस प्रकार है :—

प्रयाग से फूलपुर तक पक्की सड़क	१७ मील
फूलपुर से साथर सराय ममरेज़ हो कर कच्ची सड़क	८ मील
कुल	२५ मील

रेल से फूलपुर स्टेशन पर उतरना पड़ता है। वहां से इक्के मिलते हैं तथा सराय ममरेज तक लारी चलती है, जहां से साथर एक मील के लगभग है।

नवां अध्याय

प्रयाग के रईसों के वंश का इतिहास

(क) हिंदू रईसों का वृत्तांत

मांडा, डैया तथा बड़ोखर के घराने

यमुना पार परगना खैरागढ़ में ये तीनों घराने गहरवार राजपूतों के हैं। ये लोग अपने को कन्नौज के राजघराने का वंशज बतलाते हैं। कहते हैं सन् ११६४ ई० में जब वहां का अंतिम नरेश जयचंद्र, शहाबुद्दीन ग़ोरी से परास्त हो कर मारा गया और उस की राजधानी यवनों के हाथ से नष्टप्राय हो गई तो उस घराने की एक शाखा राजपूताने की ओर चली गई; और वहां उस ने जोधपुर आदि राज्य स्थापित किए। दूसरी शाखा पूर्व की ओर चली आई और मिर्ज़ापुर के ज़िले के पूर्वीय सीमा पर केरा मंगरौर नामक स्थान में बस गई। यहां इन लोगों ने शनैः-शनैः १४ परगनों पर अधिकार प्राप्त कर लिया, जो राजा शिवराज देव के समय तक बराबर उसी घराने में रहे। यह बड़े दानी राजा थे। इन्हों ने अपना बहुत सा इलाक़ा काशीनरेश के पूर्वजों को दे डाला था।

इस वंश की १६ वीं पीढ़ी में भूर्जसिंह हुए। इन के तीन बेटे थे। देवदत्त, भारतीचंद तथा कुंदनदेव। देवदत्त १६ वीं शताब्दी के मध्य के लगभग शेरशाह के समय में ज़बरदस्ती मुसल्मान बना लिए गए। इस अत्याचार से उन के भाई भारतीचंद कुंहडार (तहसील मेजा) में आ बसे और कुंदनदेव परिवार-सहित कंतित (ज़िला मिर्ज़ापुर) और खैरागढ़ की ओर चले आए। यहां उन्हों ने भरों से बहुत-सा इलाक़ा छीन कर एक राज्य स्थापित किया। कुंदनदेव के दो बेटे थे, भोजराज और उग्रसेन। इन दोनों ने इस राज्य को बाँट लिया, जिस के अनुसार भोजराज माँडा और उग्रसेन विजयपुर (ज़िला मिर्ज़ापुर) के मालिक हुए। भोजराज से छः पीढ़ी पीछे पूर्णमल हुए। इन के भी दो बेटे लखनसेन और छत्रसेन थे। इन दोनों भाइयों ने राज्य का फिर बटवारा किया, जिस से छत्रसेन के हिस्से में तालुक़ा बड़ोखर आया और शेष रियासत लखनसेन के हाथ में रही, जिन्हों ने माँडा को अपनी राजधानी रक्खी। उस समय से १८ पीढ़ी तक बड़ोखर की रियासत छत्रसेन के घराने में रही। तत्पश्चात् माँडावालों ने उसे उन से छीन लिया। लखनसेन के एक पुत्र का नाम मर्दानशाह था। इन के दो बेटे पृथ्वीराज सिंह और छत्रसाल सिंह थे। इन के समय में

माँडा की रियासत फिर बँटी। तदनुसार छत्रसाल सिंह ने डैया में जा कर अपनी अलग राजधानी स्थापित की और पृथ्वीराज सिंह माँडा में रह गए।

माँडा – अब यहां से तीनों घराने का इतिहास अलग-अलग हो जाता है। उन में से पहले हम माँडा का शेष वृत्तांत लिखते हैं।

पृथ्वीराज सिंह के पीछे जसवंत सिंह, अजब सिंह, भारत सिंह और उदित सिंह इस घराने में बड़े वीर हुए। उन्हों ने नवाब वज़ीर अवध के सेनापति 'छोटूख़ाँ' से घोर युद्ध कर के उस को परास्त किया, जो गहरवारी को पराजित करने का बीड़ा उठा कर आया था। तत्पश्चात् राजा पृथ्वीपाल सिंह और तदंतर इसराज सिंह हुए। इन्हीं के समय में अंग्रेज़ी अधिकार इस ज़िले में हुआ। उस समय तक लगभग कुल परगना खैरागढ़ माँडा वालों के घराने में था। इसराज सिंह अंग्रेज़ों की ओर से रीवां के बघेलों से लड़े थे। उस के उपलक्ष्य में लार्ड वेलेसली ने ३१ गाँव उन को माफ़ी में सरकार से दिलाए।

सन् १८०५ में इसराज सिंह का देहांत हो गया। उन के पीछे रुद्रप्रताप सिंह राजा हुए। इन्हों ने अपने जीवन का बड़ा भाग रामायण के पठन-पाठन और उस के अनुवाद में व्यतीत किया। इन के पिता के समय में रियासत काशी के एक महाजन के यहां गिरवी हो चुकी थी। राजा के मरने पर सन् १८१३ तक रियासत का सरकारी प्रबंध रहा। सन् १८२७ में राजा रुद्रप्रताप सिंह के मरने पर राजा छत्रसाल सिंह उन के उत्तराधिकारी हुए। यह संस्कृत तथा अरबी के धुरंधर विद्वान् थे। सन् १८५७ के उपद्रव में इन्हों ने बड़ी वीरता से मेजा तहसील की विद्रोहियों से रक्षा की थी, परंतु रियासत की दशा उन के समय में भी अच्छी न रही। इस का परिमाण यह हुआ कि सन् १८३३ में बहुत से गाँवों का बंदोबस्त वहां के रहनेवालों के साथ कर दिया गया। उन से राज को केवल १० रुपया सैकड़ा मालगुज़ारी पर 'मालिकाना एलाउंस' के नाम से मिलता है।

राजा छत्रपालसिंह सन् १८६४ में १५ लाख क़र्ज़ा छोड़ कर मरे थे, उस समय उन के पुत्र राजा रामप्रताप सिंह बालक थे। इस लिए सन् १८८१ तक रियासत कोर्ट आव् वार्ड्स के प्रबंध में रही। राजा रामप्रताप सिंह हिंदी के अच्छे कवि थे। सन् १९१४ में उन का देहांत हो गया। तब उन के पुत्र रामगोपाल सिंह राजा हुए। परंतु उस समय उन के बालक होने के कारण ३ वर्ष तक रियासत का प्रबंध कोर्ट आव् वार्ड्स द्वारा होता रहा। 'राजा बहादुर' आप की मौरूसी उपाधि है। इस के अतिरिक्त आप आननेरी 'कैप्टेन' भी हैं। यह जयचंद्र से ३९ वीं पीढ़ी में गिने जाते हैं।

इस ज़िले में माँडा सब से बड़ी और पुरानी रियासत है, जिस की सालाना माल-गुज़ारी सवा लाख रुपए से ऊपर है।

डैया—पीछे बता आए हैं कि राजा छत्रपाल सिंह ने माँडा का राज बाँट कर 'डैया' के नाम से एक अलग रियासत स्थापित की थी। इस की राजधानी रामगढ़ में है, जो मेजा रोड स्टेशन से लगभग १८ मील दक्षिण और पूर्व, बेलन नदी के किनारे पर है। पहले यहां के रईसों की पदवी 'लाल' की थी। इस घराने में अंग्रेज़ी अमलदारी के आरंभ में

लाल धौंकल सिंह ने एक बड़ी लंबी मुक़दमेबाज़ी के पीछे इस राज पर अधिकार पाया था। इन के पीछे इन के दत्तक लाल तेजबल सिंह उत्ताराधिकारी हुए। इन्हों ने ग़दर में सरकार की बड़ी सहायता की थी जिस के बदले में उन को जीवन-पर्यंत 'राजा' की पदवी और ३०००) का इलाक़ा मिला था। इन के भी कोई पुत्र न था. इस लिए इन्हों ने दग्विजय सिंह को गोद लिया. जिन को सन् १९०९ में पहले व्यक्तिगत तदनंतर १९११ से वंश-परंपरा के लिए सरकार से 'राजा' की उपाधि मिली। सन् १९२३ में उक्त राजा साहब का देहांत हो गया। इन के भी कोई पुत्र न था। केवल एक कन्या और दो रानियां छोड़ कर मरे थे। अतः उन रानियों ने भगवतीप्रसाद सिंह को गोद ले लिया, जो कुछ मुक़दमेबाज़ी के पश्चात् अब राजा हैं। इस रियासत की सालाना मालगुज़ारी ५० हज़ार रुपए के लगभग है।

बड़ोखर—बड़ोखर वाले, जैसा की ऊपर वर्णन किया गया, 'छत्रसेन' के वंशज हैं। इन की पदवी अब तक 'लाल' की है। इस परिवार की अब कई शाखाएं हो गई हैं, जिन का विवरण इस प्रकार है:—

इन का कुछ इलाक़ा ज़िला शाहाबाद में भी है।

परगना अरैल में कुलमई वाले भी अपने को इसी वंश से बतलाते हैं और कहते हैं कि वह कुँहडार से उठ कर वहां गए थे।

बारा के राजघराने का इतिहास

बारा का पुराना नाम 'कसौटा' है। अकबर के समय में इस को 'भटगोरा' कहते थे। राजा साहब बारा बघेल क्षत्री हैं और रीवां तथा कोटा-नरेश के भाईबंधु है। इस परिवार के आदि-पुरुष का नाम 'व्याघ्रदेव' था, जिन्हों ने संवत् ६०६ के लगभग गुजरात से आ कर वर्तमान रीवां राज्य की नींव डाली थी। व्याघ्रदेव के ५ बेटे थे। पहले के वंश से रीवां-नरेश हैं; पाँचवे का नाम कंधरदेव था, जिन्हों ने संवत् ६६२ में पैदा हो कर 'महाराव' की पदवी प्राप्त की और कुल परगना बारा तथा अरैल के मालिक हुए,। इन दोनों परगनों की जमा उस समय १२ लाख रुपए की थी। कंधरदेव से ३२ वीं पीढ़ी में वर्तमान राजा साहब हैं। इन से २२ पीढ़ी पहले शंकरदेव तथा उन के मंत्री के बनवाए हुए मंदिर गढ़वा के क़िले में अब तक मौजूद है। इस वंश में शाहआलम के समय में विक्रमादित्य सिंह बड़े नामी राजा हुए थे। उन्हों ने अपनी वीरता के कारण दिल्ली दरबार से 'राजा बहादुर' की पदवी तथा ढ़ाई हज़ारी मंसब और दो हज़ार सवारों की अफ़सरी प्राप्त की थी। सन् १८५७ ई० के ग़दर में वर्तमान राजा साहब के पितामह बनस्पति सिंह ने

सरकार की बड़ी सहायता की थी, जिस के उपलक्ष्य में उन को वंश-परंपरा के लिए 'राजा' की पदवी और ५०००) का इलाका मिला था। उस के पहले वह 'लाल' कहलाते थे। इस के पश्चात् उन को कई बार दरबार के अवसर पर सरकार से खलअत और पदक मिले।

सन् १९१९ में उक्त राजा साहब का देहांत हो गया। तब उन के ज्येष्ठ पुत्र गद्दी पर बैठे, जिन का उपाधि-सहित पूरा नाम 'राजा रामसिंह राव बहादुर' था। राव बहादुर उन की व्यक्तिगत पदवी थी, जो रीवां-नरेश से मिली थी। सन् १९३५ में उक्त राजा साहब का देहांत हो गया। अब उन के ज्येष्ठ पुत्र रुद्रप्रताप सिंह राजा हैं।

पहले बारा की रियासत कुल परगने भर में थी। पीछे सन् १८१० ई० में मालगुजारी बाक़ी पड़ जाने के कारण महाराज बनारस के हाथ नीलाम हो गई। तदनंतर सन् १८३१ में सरकार ने एक विशेष कमीशन द्वारा इस नीलाम को रद्द कर दिया और कुल रियासत तत्कालीन बारा-नरेश लाल छत्रपतिसिंह को मिल गई। परंतु उस के पीछे जो बंदोबस्त हुआ, उस में २०) सैकड़ा हक़ मालिकाना के ऊपर कुल रियासत मुस्ताजरों (ठेकादारों) को दे दी गई। इन ठेकेदारों का रियासत पर बहुत दिनों तक अधिकार रहा, यहां तक कि उन में से कुछ लोगों का अब तक कब्ज़ा चला आता है। सन् १८५४ में लाल छत्रपतिसिंह के मरने पर लाल (पीछे राजा) बनस्पतिसिंह उत्तराधिकारी हुए। उन को सन् १८५९ में मुस्ताजरी वाले गाँवों पर कब्ज़ा मिल गया। परंतु उन्हों ने ऋण के कारण सन् १८६३ में अपना मालिकाना १ लाख ४० हज़ार पर नगर के तत्कालीन प्रसिद्ध महाजन लाला मनोहरदास के हाथ बेच डाला और रियासत को पट्टे पर दे दिया। सन् १८७१ में रियासत उऋण हो गई, परंतु फिर पीछे क़र्ज़ा हो जाने के कारण कोर्ट अव् वार्ड्स का प्रबंध हो गया, जो सन् १९१९ तक रहा।

राजा रामसिंह के तीन भाई कुँवर शत्रुघ्नसिंह, लक्ष्मणसिंह, तथा भारतसिंह थे, जिन में कुँवर भारतसिंह स्टेचुरी सिविलियन थे और सेशन जजी से पेंशन ले कर बहुत दिनों तक रियासत में मैनेजर रहे। सन् १९२० में उन का देहांत हो गया। कुछ दिन पीछे उन के पुत्र कुँवर रत्नाकरसिंह ने रियासत के बँटवारे का मुक़दमा किया, जो १९२५ में खारिज हो गया। इस रियासत की मालगुज़ारी दस हज़ार रुपए साल से ऊपर है। इस के अतिरिक्त पत्थर की प्रसिद्ध खान—शिवराजपुर—इसी रियासत के अंतर्गत है। वर्तमान राजधानी शंकरगढ़ में है, जो जी० आई० पी० रेलवे की जबलपुर लाइन पर एक प्रसिद्ध स्टेशन है।

अब इस रियासत के बटवारा के लिए वर्तमान राजा साहब के छोटे भाई ने मुक़दमा दायर किया है जो अदालत में चल रहा है।

रईसों के अन्य घराने।

शाहपुर—शाहजहां के समय में कुछ बिसेन क्षत्रियों को उन के वीरतासूचक कामों के उपलक्ष्य में दिल्ली-दरबार से अथरवन के परगने की ज़मींदारी मिली थी। उन लोगों ने इस घटना के स्मारक में यमुना के किनारे 'शाहपुर' नामक गाँव बसाया, जो अब तक उस घराने के सब से बड़े रईस राय बहादुर ठाकुर जसवंतसिंह का निवास-स्थान

है। इन के पिता ठाकुर नथनसिंह ने ग़दर में अंग्रेज़ों की सहायता की थी, जिस के बदले उन को कुछ इलाक़ा मिला था।

शाहीपुर—बिसेनों का दूसरा प्रतिष्ठित घराना गंगापार परगना किवाई में शाहीपुर में है। यह लोग 'नौलखा' कहलाते हैं। इस का कारण यह बतलाया जाता है कि एक समय राजा माँडा के ज़िम्मे ९ लाख मालगुज़ारी बाक़ी पड़ गई थी। उस समय इस बिसेन परिवार के जो नेता थे, उन्हों ने इस प्रचुर धन के लिए अवध के नवाब वज़ीर से ज़मानत की थी। तब से उन के घराने का नाम 'नौलखा' प्रसिद्ध हो गया। ये लोग गोरखपुर के ज़िले के राजा साहब मझौली के घराने के हैं। वहीं से किसी समय आ कर राजा साहब माँडा के यहां नौकर हुए थे और परानीपुर में बसे थे, जो सिरसा के पूर्व गंगा किनारे एक प्रसिद्ध गाँव है। कहते हैं इन के पूर्वजों ने भरों से बहुत-सा इलाक़ा उन्नाव के एक बैस राजा के लिए विजय किया था। उस ने मुग्ध हो कर उस का एक भाग इन को दे दिया था। पहले परगना किवाई में इन लोगों का बहुत बड़ा इलाक़ा था, परंतु ऋण के कारण अब बहुत घट गया है।

कोटवा और धोकरी—बैस क्षत्रियों का केंद्र परगना झूँसी में कोटवा है। ग़दर से पहले इन लोगों के पास बहुत बड़ी रियासत थी। ग़दर के पश्चात् इस घराने की एक शाखा वहां से कुछ दूर पूर्व धोकरी नामक गाँव में जा कर बस गई है, जिस के नेता ठाकुर शिवपाल सिंह थे, वह बड़े नामी पहलवान थे और ग़दर में उन्हों ने अंग्रेज़ों की बड़ी ख़ैरख़्वाही की थी, इस लिए उन को बहुत-सा इलाक़ा इनाम में मिला था।

नसरतपुर, गोरापुर तथा तारडीह—बिसेन अथवा परिहार रईसों के प्रसिद्ध घराने परगना सिकंदरा में नसरतपुर, गोरापुर और तारडीह में हैं। पिछले स्थान के ठाकुर आसापाल सिंह ने ग़दर में सरकार को बहुत सहायता दी थी, जिस के कारण उन को राय बहादुरी की उपाधि और कई गाँव इनाम में मिले थे। इस परिवार की एक शाखा तहसील हँडिया में प्रतापपुर में है। सराय ग़नी के मालिक भी इसी घराने के हैं जिन के पूर्वज शाही ज़माने में मुसलमान हो गए थे।

नेपाल के गोरखे रईस—नेपाल के जगत-विख्यात प्रधान मंत्री सर राना जंगबहादुर के पुत्र प्रिंस जनरल पद्मजंग राना बहादुर संवत् १९४० वि० में कुछ घरेलू झगड़ों कारण नेपाल से अंग्रेज़ी राज्य में चले आए थे। दो वर्ष तक पटना और बेतिया इत्यादिक स्थानों में रहे। अंत में संवत् १९४२ (सन् १८८५ ई०) में स्थायी रूप से प्रयाग में आ बसे। इन की विशाल कोठी शिवकोटी महादेव के समीप 'फाफामऊकैसेल' के नाम से प्रसिद्ध है।

राना पद्मजंग के कई रानियां थीं, जिन से कोई ५० के लगभग लड़के और लड़कियां उत्पन्न हुईं। इस परिवार में राना योद्धाजंग ने विगत युरोपीय महायुद्ध में बड़ी वीरता का परिचय दे कर मिलिटरी क्रास का सम्मान-सूचक पदक प्राप्त किया है। अब इन लोगों ने यहां कई परगनों में इलाक़ा भी ख़रीद लिया है और राना पराक्रमजंग बहादुर ने अपनी विशाल कोठी बनवा ली है।

बराँव—भूमिहारों की सब से बड़ी रियासत परगना अरैल में बरांव की है। ये

लोग अपने को हीरापुरी पांडे कहते हैं, जिस को कान्यकुब्जों की एक शाखा बतलाते हैं, परंतु अब कान्यकुब्जों से इन का कोई संबंध नहीं है।

इस परिवार के आदि-पुरुष एक पूरनराम पांडे थे, जो क़न्नौज के निकट हीरापुर नामक गाँव के रईस थे। यह दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी की सेना में रिसालदार थे। १५ वीं शताब्दी में बादशाह की ओर से प्रयाग भेजे गए और यहां परगना अरैल की ज़मींदारी उन को जागीर में मिली। पहले वह बीरपुर में बसे थे, जहां अब भी उन के कुछ वंशज रहते हैं। पूरनराम के पुत्र का नाम अनंतदेव था, जिन के अभिमन्युदेव पैदा हुए। इन के दो स्त्रियां थीं एक के वंशज पनासा तथा खांई और दूसरी के बराँव में हैं। बराँव के भूतपूर्व रईस राघोप्रसाद नारायण सिंह को पहले, 'राय बहादुर' और फिर अंत में सदैव के लिए 'राजा' की पदवी मिली थी. बराँव की सलाना मालगुज़ारी ८५ हज़ार रुपए के निकट है, परंतु सन् १९२३ से इस रियासत के दो भाग लगभग बराबर के हो गए हैं। एक के मालिक उक्त राजा साहब और उन के पश्चात् उन के लड़के हैं, और दूसरे हिस्से के अधिकारी उक्त राजा साहब के चचेरे भाई कुँवर सरयूप्रसाद नारायण सिंह और तदनंतर उन के वंशज हुए। बराँव की रियासत सन् १९२४ से ऋण के कारण कोर्ट अव् वार्ड्स, के प्रबंध में है।

बीरपुर—ऊपर बता आए हैं कि बराँववालों के वंश की दो शाखाएं बीरपुर में हैं। उन में सब से बड़ा हिस्सा बाबू हनुमानप्रसाद नारायण सिंह का है, जिस की मालगुज़ारी ३५ हज़ार रुपए सालाना है।

इस घराने की संक्षिप्त वंशावली इस प्रकार है :—
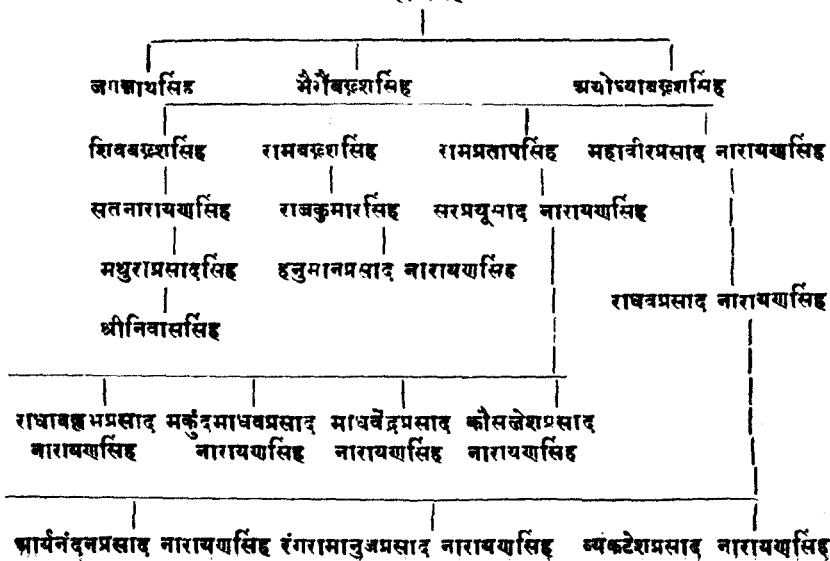
आनापुर—तहसील सोराँव के परगना नवाबगंज में आनापुर वाले रईस भी भूमिहार हैं, जो, छत्रसाल या चतुरसाल 'चौधरी' कहलाते हैं। कहते हैं इस वंश के आदि-पुरुष गोरखपुर के एक महात्मा थे। एक बार झूँसी के मुसलमान हाकिम ने संकट में पड़ कर उन से प्रार्थना कराई थी, जिस के स्वीकार हो जाने पर उस ने ८४ गाँव माफ़ी के रूप में उन को दिलवाए थे। सोराँव के निकट सड़क के किनारे 'उसरही' के नाम से एक डीह है। वहीं इस वंश के पूर्वजों का आदि निवास-स्थान बताया जाता है। अस्तु, यह पुरानी बातें हैं। आनापुर के वर्तमान रियासत का इतिहास इस प्रकार है, कि अंग्रेज़ी अमलदारी के आरंभ में बनारस के बाबू देवकीनंदन सिंह इस परिवार के एक प्रसिद्ध नेता थे। उन्हों ने परगना नवाबगंज के मुस्ताजिरों की सरकार में ज़मानत की थी। पीछे मालगुज़ारी बाक़ी पड़ जाने के कारण जब मुस्ताजिरों का इलाक़ा नीलाम हुआ, तो उस का बड़ा भाग उन्हों ने अपने लिए ख़रीद लिया। सन् १८५७ के ग़दर में उन के भाई के पौत्र शिवशंकर सिंह ने सरकार को बहुत सहायता दी थी, जिन को बाग़ियों का बहुत-सा इलाक़ा ख़ैरख़्वाही में मिल गया। अब इस रियासत के कई भाग हो गए हैं। ब्यौरा यह है:—

(१) बाबू विंध्येश्वरीसरन सिंह

(२) बाबू भगवतीसरन सिंह

(३) श्रीमती योधा कुँवरि (विधवा बा० गौरीशंकरप्रसाद सिंह)[1]

(४) बाबू राजेंद्रकिशोरसरन सिंह

इस घराने की रियासत का एक और भाग बाबू हरिशंकरप्रसाद सिंह का था, जिस को ऋण के कारण बनारस के बाबू माधवदास इत्यादिक महाजनों ने नीलाम करा के ले लिया, और इस लिए अब उस पर उन्हीं के वंशवालों का अधिकार है।

आनापुर वालों के इलाके प्रयाग के अतिरिक्त मिर्ज़ापुर, ग़ाज़ीपुर, आज़मगढ़, बनारस और बलिया में भी हैं। इन की मालगुज़ारी इस ज़िले में २५ हज़ार रुपए से ऊपर है, जिस में सब से अधिक जमा ८ हज़ार से ऊपर योद्धा कुँवरि की है। इस परिवार का संक्षिप्त वंश-वृक्ष आगे दिया गया है:—

---

[1] १६ अगस्त १९३२ को इन का देहांत हो गया है, और इन की जायदाद नं० (१) और (२) को मिली है, जिस के विरुद्ध नं० (४) से मुक़द्दमा चल रहा है।

आनापुर वालों का वंश-वृक्ष
चिंतामन सिंह
भवानीप्रसाद सिंह
×
देवकीनंदन सिंह
जानकीप्रसाद सिंह
रामपरशन सिंह
×
रामरतन सिंह
गौरीशंकरप्रसाद सिंह
योधा कुँवरि (विधवा)
हरीशंकरप्रसाद सिंह
गोपालसरन सिंह (दत्तक)
बिशुनदत्त सिंह
रामसेवक सिंह
शिवशंकर सिंह
सिद्धनारायन सिंह
विंधेश्वरीसरन सिंह
सुखदेवनारायन सिंह
नारायनसरन सिंह
राजेंद्रकिशोरसरन सिंह
देवीसरन सिंह
भगवतीसरन सिंह

होलागढ़ तथा खरगापुर—परगना सोराँव में छत्रसाल चौधरियों के दो और बड़े ताल्लुके 'होलागढ़' और 'खरगापुर' के नाम से थे। पहले की अंतिम मालिक गेंद कुँवरि और दूसरे की रूप कुँवरि नामक विधवा स्त्रियां थीं। इन के कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण सन् १८७८ से होलागढ़ और सन् १८८७ से खरगापुर पर सरकार ने क़ब्ज़ा कर लिया। पीछे कुछ लोग वारिस बन कर मुक़दमा लड़े, परंतु अंत में वे हार गए। होलागढ़ में ५६ और खरगापुर में ५२ गाँव हैं।

कायस्थों में सब से बड़े रईस अहियापुर निवासी स्वर्गीय चौधरी महादेवप्रसाद थे, जिन के रियासत की सालाना मालगुज़ारी ४० हज़ार रुपए के लगभग है। चौधरी साहब के पूर्वज कड़ा के पुराने रईसों में से थे, परंतु आप के इलाक़े का बड़ा भाग बिहार में है। आप बड़े दानशील थे। पुत्र न होने के कारण अब उन की संपत्ति पर उन के नातियों श्री शिवनाथ सिंह और श्री विश्वनाथ सिंह का अधिकार है।

अहियापुर के स्वर्गीय मुंशी रामप्रसाद, वकील हाई कोर्ट, भी पुराने रईसों में थे। उन का इलाक़ा अधिकांश बुलंदशहर के ज़िले में है। मुंशी जी के कोई संतान न थी। अतः उन की संपत्ति के मालिक बाबू श्री नारायन हैं, जो उन के दत्तक के पुत्र हैं।

इन के अतिरिक्त अहियापुर के स्वर्गीय मुंशी राजबहादुर वकील, शहराराबाग़ के बाबू कंधैयालाल, तथा नैनी के मुंशी महेशप्रसाद पुराने रईसो में से थे, जिन की जायदाद अब उन के उत्तराधिकारियों के क़ब्ज़े में है। इस प्रकरण में अहियापुर के लाला राजबहादुर (उक्त मुंशी राजबहादुर वकील से भिन्न) का भी नाम उल्लेखनीय है। आप का इलाक़ा अधिकांश इलाहाबाद और कुछ फ़तेहपुर के ज़िले में है। कायस्थों में शराराबाग़ के स्वर्गीय बाबू कंधैयालाल भी पुराने रईस थे। उन के निस्संतान मरने पर अब उन का इलाक़ा उन की भतीजी और भतीजों में बँट गया है।

ब्राह्मणों में इस ज़िले में सब से बड़े रईस परगना कड़ा में उदहिन के पांडे हैं, जिन की सालाना मालगुज़ारी १६ हज़ार रुपए के लगभग है।

खत्रियों में राय जगतनरायन तथा राय केसरीनरायन का एक प्रसिद्ध घराना है। 'राय' इस परिवार की पुरानी पदवी है जिस को इस वंश के मूल-पुरुष 'लक्ष्मी नरायन' ने १८वीं शताब्दी के मध्य में अवध के नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला से पाया था, वह नवाब के महलात (रनिवास) के दारोग़ा थे। उस समय यह एक ऊँचे दर्जे का पद था, जो बड़े विश्वस्त अधिकारी को मिलता था। इस परिवार में राय बल्देवनरायन को सन् १८५७ के ग़दर में सरकार को सहायता देने के उपलक्ष्य में इलाक़ा मिला था।

इस वंश की दूसरी शाखा राय बल्देवनरायन के भाई राय जगतनरायन की है। यह भी बड़े इलाक़ेदार थे, परंतु उन की मृत्यु के पश्चात् कुछ उन की ज़मींदारी नीलाम हो गई है, और शेष उन के पौत्रों में छोटे-छोटे हिस्सों में बँट गई है। इस परिवार की, जहां से वर्तमान शाखाएं आरंभ होती हैं। वंशावली इस प्रकार है:—

हरनरायन

- विशुननरायन ×
- जगतनरायन
  - बागेश्वरीनरायन
    - सर्वजीतनरायन
    - पृथ्वीनरायन
    - ब्रजनरायन
  - भगवतीनरायन
    - वासुदेवनरायन
    - लक्ष्मीनरायन
    - महादेवनरायन
    - धनवंतनरायन
  - फ़तेहनरायन
    - रमेशरीनरायन
    - सुमेशरीनरायन
    - जगेशरीनरायन
    - जगदीशनरायन
    - इंद्रनरायन
- बलदेवनरायन
  - गोकुलनरायन
    - बद्रीनरायन ×
    - महावीरनरायन ×
    - केसरीनरायन
      - परमेश्वरनरायन
      - गोविंदनरायन
      - बलवंतनरायन
      - त्रिभुवननरायन
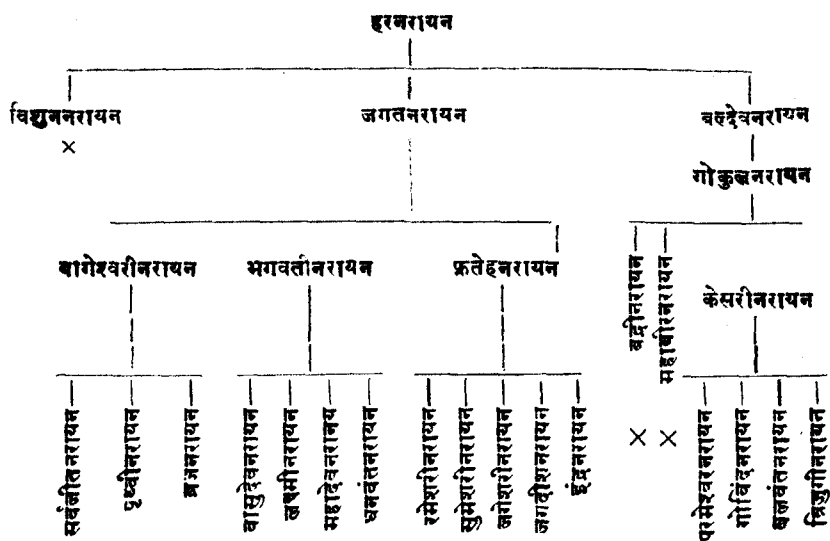
खत्रियों का दूसरा प्रसिद्ध घराना लाला मनोहरदास का है। इस परिवार के आदि-पुरुष लाला कंधैयालाल थे, जिन्हों ने १९वीं शताब्दी के आरंभ में कीटगंज में 'गप्पूमल कंधैयालाल' के नाम से एक कारोबार खोला था। उस में कपड़े का व्यापार, डेरा-ख़ेमा तथा सामान्य ठेकेदारी का काम होता था। उन के पुत्र लाला मनोहरदास हुए। उन्हों ने बड़ी उन्नति की, वह करेंसी, बंगाल बैंक (अब इंपीरियल बैंक) तथा ज़िले के ख़ज़ाने के ज़ामिनदार हुए। उन्हों ने क़िले में सामान पहुँचाने का ठेका लिया और देहातों में नील की कई कोठियां खोलीं, जो पीछे विलायती रंग के मुक़ाबिले में टूट गईं। उन को ग़दर में सरकार की ख़ैरख़्वाही के बदले में परगना कड़ा में एक गाँव भी मिला था। सन् १८६३ ई० में उन का देहांत हो गया। तब उन की संपत्ति उन के पुत्रों और पौत्रों में बँट गई और उस की तीन शाखाएं हो गईं, जिन का विवरण इस प्रकार है—
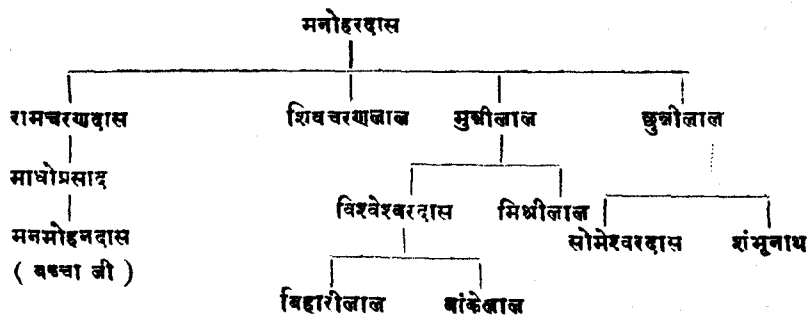
लाला शिवचरणलाल के कोई संतान न थी, इस लिए उन्हों ने अपने भतीजे लाला माधोप्रसाद को गोद लिया। लाला सोमेश्वरदास डिप्टी कलक्टर थे। उन के भी कोई संतान न थी। लाला शंभूनाथ के इकलौते पुत्र का युवावस्था में देहांत हो गया। तब से उन की जायदाद कोर्ट अव् वार्ड्स के प्रबंध में है। अब मुन्नीलाल के फ़र्म का नाम 'मनोहरदास मुन्नीलाल' और छुन्नीलाल के कारोबार का नाम 'मनोहरदास छुन्नीलाल' है। इन लोगों के पास ज़मींदारी भी अधिक है।

खत्रियों का एक पुराना घराना कड़े के निकट फ़रीदागंज में रहता है, ये लोग बक्सर की लड़ाई के बाद जो अंग्रेज़ों और शाहआलम के बीच में हुई थी, यहां आकर बसे थे। इन की ज़मींदारी की सालाना मालगुज़ारी १४ हज़ार रुपए से अधिक है।

अगरवाल रईसों में सब से पुराने दारागंज वाले हैं। सन् १७८१ ई० में पीरूमल, कुंजीलाल और कुँवरसेन — इन तीन भाइयों ने करनाल से आ कर यहां एक कोठी खोली। थोड़े ही दिनों में इन के कारोबार में बहुत उन्नति हुई। पहले मुट्ठीगंज और शहर में दुकानें खुलीं। फिर आगरे में एक कोठी खोली गई। इस के अतिरिक्त विविध स्थानों में कोई १४ शाखाएं खुलीं; और माल लादनेवाली नावों के बीमा का भी काम होने लगा। पीछे तीनों भाइयों के लड़कों ने अपना-अपना कारोबार अलग कर लिया। कुंजीलाल के लड़के गयाप्रसाद इस परिवार में एक बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं, परंतु अब उन के और कुँवरसेन के वंश में कोई नहीं रहा। पीरूमल के दो लड़के थे; रामरिख और रामप्रसाद। इन लोगों ने सन् १८५७ के ग़दर में धन तथा अनाज-पानी से सरकार की बड़ी सहायता की थी जिस के उपलक्ष में उन को वंश-परंपरा के लिए 'राय' की पदवी और बहुत-सा इलाक़ा मिला। रामप्रसाद के वंश में अब कोई नहीं है। अतः अब इस कोठी के मालिक रामरिख के पौत्र राय अमरनाथ तथा उन के भ्राता राय रामकिशोर और राय रामचरण हैं। व्यापार तथा लेन-देन के अतिरिक्त इन के पास ज़मींदारी भी अधिक है, जो कई ज़िलों में है। सन १९३६ में इन तीनों भाइयों की जायदाद बँट गई है।

सवा सौ वर्ष के लगभग हुए लाला मेघराज नामक एक अगरवाल साहूकार करनाल से प्रयाग आए थे। उन्हों ने यहां कुछ कारोबार जारी किया, जिस को उन के पुत्र लाला हरबिलास ने ख़ूब बढ़ाया। उन्हों ने 'मेघराज हरबिलास' के नाम से विविध स्थानों में कई शाखाएं खोलीं, जिन में अधिकांश अनाज, कपास तथा नमक इत्यादि का व्यापार होता था। उन के पुत्र लाला गणेशप्रसाद के समय में व्यापार की बहुत सी शाखाएं बंद हो गईं, अलबत्ता उन्हों ने गंगापार तहसील हँडिया में बहुत सी ज़मींदारी ख़रीदी। सन् १९१० में उन का देहांत हो गया। उन के कोई पुत्र न था, इस लिए उन की विधवा श्रीमती भगवती बीबी ने बाबू हरीराम को गोद लिया और वही अब इस कोठी के मालिक हैं। तहसील हँडिया और तहसील करछना में इन की काफ़ी ज़मींदारी है, जिस की सालना मालगुज़ारी २२-२३ हज़ार रुपए के लग-भग है।

इसी प्रसंग में बाबू सतनरायन प्रसाद का भी नाम उल्लेखनीय है जी मिर्ज़ापुर के रहने वाले हैं, परंतु अब अस्थायी रूप से प्रयाग ही में रहते हैं, इन का इलाक़ा तहसील हँडिया में है जिस की मालगुज़ारी दस हज़ार रुपए के लगभग है।

झूँसी में 'रामदयाल माधोप्रसाद' के नाम से एक कोठी है। इस के मालिकों में लाला किशोरीलाल जी बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं। उन्हों ने बाई के बाग़ में एक संस्कृत पाठशाला खोली तथा झूँसी में एक सदाव्रत जारी किया। इस कोठी की कई शाखाएं कलकत्ता आदि विविध स्थानों में हैं और चीनी के कई कारख़ाने चल रहे हैं, जिन में से दो इस ज़िले में अर्थात् एक नैनी और दूसरा झूँसी में है। सन् १९२४ ई० में लाला किशोरीलाल जी का देहांत हो गया। उन के पीछे उन के परिवार में बटवारे का मामला चल रहा है।

जैनी रईसों में लाला कल्यानचंद और लाला जादोराय, के नाम उल्लेखनीय हैं। कल्यानचंद के कोई पुत्र न था, इस लिए उन्हों ने लाला सुमेरचंद को गोद लिया था। परंतु इन के भी केवल कन्याएं हुईं। इस लिए उन के वसीअत के अनुसार कुछ उन की संपत्ति लड़कियों को मिली और शेष पर उन की विधवा श्रीमती झमोला कुँवरि का अधिकार रहा। पीछे झमोला कुँवरि ने भी लाला कैलाशचंद्र को गोद ले लिया है और यही अब इस कोठी के मालिक हैं।

लाला जादोराय के पुत्र बाबू शिवचरणलाल थे, जिन के नाम से शहर में 'शिवचरणलाल रोड, बनी है। यह हाई कोर्ट के वकील थे। कुछ दिनों तक डिप्टी कलेक्टर भी रहे थे। अंत में कई वर्षों तक स्थानीय म्यूनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन रहे। उन के इकलौते पुत्र का उन्हीं के सामने देहांत हो गया था। अतः उन की मृत्यु के पश्चात् उन की विधवा किशुनप्यारी बीबी ने लाला रामचंद्रप्रसाद को गोद लिया। इन के इलाके की मालगुजारी ७ हज़ार रुपया वार्षिक से कुछ ऊपर थी, परंतु अब कुछ हिस्सा नीलाम हो गया है।

पाँच वर्ष के लगभग हुए किशुनप्यारी बीबी ने रामचंद्रप्रसाद का गोदनामा रद्द होने के लिए मुक़दमा दायर किया, जो ख़ारिज हो गया। अभी उस की अपील हाईकोर्ट से तै नहीं हुई।

इसी प्रकरण में बाबू मुतसद्दीलाल जैन का भी नाम उल्लेखनीय है, जिन का इलाक़ा तहसील हँडिया में है।

१८ वीं शताब्दी में पंजाब से एक भार्गव साहूकार प्रयाग आए। इन का नाम तोड़ीराम था। उन्हों ने 'तोड़ीराम सीताराम' के नाम से यहां एक कारोबार खोला। फिर पीछे बाँदा, कालपी तथा जबलपुर में उस की शाखाएं खुलीं। उन के पुत्र सीताराम के समय में उन के कारोबार में और भी उन्नति हुई। उन्हों ने तहसील करछना में करमा में ज़मींदारी ख़रीदी और कई ज़िलों के ख़ज़ाने की ज़मानत की। उन के पुत्र वंशीधर हुए। यह बड़े

दानशील थे। सन् १८६८ ई० में उन्हों ने हज़ारों रुपया ख़र्च कर के तुलसीकृत रामायण का एक बहुत ही उत्तम संस्करण छपवाया था और उस को पंडितों तथा साधुओं को बाँट दिया था। यह बात के बड़े धनी थे। कहते हैं एक बार नगर के एक कारोबारी व्यक्ति ने आ कर इन से २० हज़ार रुपया उधार माँगा। इन्हों ने मुनीम को रुपया देने के लिए कहा, परंतु वह चुप रहा। थोड़ी देर बाद फिर इन्हों ने मुनीम से कहा। वह फिर टाल गया। कुछ समय बीतने पर इन्हों ने झल्ला कर उस से विलंब का कारण पूछा। तब मुनीम ने आ कर उन के कान में कहा कि अभी थोड़ी देर हुए इस आदमी का दिवाला निकल चुका है, आप का रुपया मारा जायगा। इस पर वह बोले कि जो कुछ हो, अब हम कह चुके। रुपया अवश्य देना होगा। इस पर मुनीम ने रुपया दे दिया। थोड़ी देर बाद तमाम शहर में बात फैल गई कि वह आदमी दिवालिया हो गया। भगवान की लीला कहिए या इन की वाक्य निष्ठा का फल, कि उस रुपए से उस दिवालिए का कारोबार सँभल गया और वह एक महीने के भीतर इन का रुपया लौटा गया।

वंशीधर के पुत्र का नाम रामकिशोर था, जिन्हों ने व्यापार की अपेक्षा ज़मींदारी अधिक ख़रीदी। सन् १८९१ में उन का देहांत हो गया। उन के पुत्र कामतानाथ थे। इन का भी सन् १९२५ में स्वर्गवास हो गया। उन के पुत्र अमरनाथ और त्रिलोकीनाथ थे। उन का भी देहांत हो गया। अतः उन के पुत्र जो अभी बालक हैं इस घराने के मालिक हैं। इन के इलाके की मालगुज़ारी २० हज़ार रुपए से ऊपर है।

इसी वंश में एक और घराना लाला दत्तीलाल का है। इन के पुत्र लाला राजाराम थे। उन के दो लड़के थे, परंतु युवावस्था ही में उन का देहांत हो गया। अब उन में से बड़े बेटे लाला अयोध्यानाथ की विधवा श्रीमती रामजी बीबी इस कोठी की मालिक हैं। इन का इलाक़ा तहसील हँडिया में तालुक़ा सियाडीह के नाम से प्रसिद्ध है जिस की सालाना मालगुज़ारी बाईस-तेईस हज़ार रुपए के लगभग है।

सन् १९३५ से यह इलाक़ा कुप्रबंध के कारण कोर्ट अव् वार्ड्स में आगया है।

भार्गवों की पुरानी कोठियों में तीसरी कोठी कीडगंज में लाला शंकरलाल की है, जिन के कारोबार का नाम 'राधाकिशुन बेनीप्रसाद' है। इस कोठी में अधिकांश व्यापार का काम होता है।

केसरवानी वैश्यों की केवल एक रियासत फूलपुर की श्रीमती गोमती बीबी की है, जिन की सालाना मालगुज़ारी सवा लाख के लगभग है। इन के ससुर राय मानिकचंद बड़े नामी आदमी थे। उन्हों ने सन् १८५७ के ग़दर में बड़ी वीरता से ४ महीने तक तहसील के ख़ज़ाने की रक्षा की थी और उस को सुरक्षित सदर पहुँचा दिया था। इस के उपलक्ष्य में उन को सरकार से 'राय' की पदवी और बहुत-सा इलाक़ा मिला था। उन के मरने के पश्चात् बहुत दिनों तक रियासत कोर्ट अव् वार्ड्स के प्रबंध में रही। फिर उन के पुत्र राय बहादुर प्रतापचंद ने बालिग़ हो कर रियासत का प्रबंध अपने हाथ में लिया। यह बड़े होनहार

रईस थे और इन के सुप्रबंध से रियासत के उन्नति की बड़ी आशा थी। परंतु खेद है कि सन् १६०१ में युवावस्था में उन का देहांत हो गया। कोई संतान न होने से तत्पश्चात् उन की विधवा श्रीमती गोमती बीबी रियासत की मालिक हुईं। इन्हों ने चौथाई रियासत 'रामजानकी' और चौथाई 'द्वारिकाधीश' के नाम अर्पण कर दी है, जिस में से एक का प्रबंध वह स्वय करती हैं और दूसरे के प्रबंधकर्ता उन के भाई बाबू गयाप्रसाद हैं। शेष इलाक़ा कोर्ट अव् वार्ड्स के प्रबंध में है।

इन के पश्चात् इस रियासत का कौन मालिक होगा ? इस के निर्णय के लिए इन के परिवार वालों से अदालत में मुक़दमाबाज़ी हुई, जिस का फ़ैसला सन् १६२८ में फूलपुर के लाला परमेश्वरदयाल के पक्ष में हुआ है। परंतु उस के पीछे सन् १६२६ में गोमती बीबी ने अपने परिवार के एक बालक द्वारिकानाथ को सरकार की मंज़ूरी से गोद ले लिया है।

कलवार रईसों में इस ज़िले में सब से बड़े ज़मींदार बाबू राधेश्याम हैं। इन की सालाना मालगुज़ारी २५ हज़ार रुपए के लगभग है। इन के नाना लाला बाबूलाल बड़े नामी आदमी हुए हैं। ग़दर में उन्हों ने सरकार को सहायता दी थी। उस के बदले में उन को बाग़ियों का, बहुत-सा इलाक़ा मिला। वह बड़े महत्वाकांक्षी थे। उन्हों ने अपने विशाल जमींदारी का, जिस का विस्तार तीन तहसीलों (सोराँव, फूलपुर और हँडिया) में है बहुत ही उत्तम प्रबंध किया था। उन के कोई पुत्र न था। अतः उन के पश्चात् उन की पुत्री यशोदा बीबी और तत्पश्चात् उन के दौहित्र बाबू राधेश्याम उन की संपत्ति के मालिक हुए हैं।

दूसरा घराना मुट्ठीगंज के लाला मेवालाल और उन के भ्राता बाबू लक्ष्मीनारायन का है। यह लगभग १५ हज़ार रुपया सालाना मालगुज़ारी यहां देते हैं। कुछ इन का इलाक़ा बनारस के ज़िले में भी है।

परगना चायल में क़स्बा सराय आक़िल में कुर्मी रईसों का एक प्रसिद्ध घराना है। ये लोग पुराने ज़मींदार हैं और 'ठाकुर' बोले जाते हैं। ग़दर में इस परिवार के नेता ठाकुर ज़ालिमसिंह ने सरकार की ख़ैरख़्वाही की थी, और कुछ इलाक़ा पाया था। अब उन्हीं के वंशज ठाकुर रामकृपाल सिंह इत्यादि उन की संपत्ति के मालिक हैं। इन के इलाके की सालाना मालगुज़ारी लगभग २३ हज़ार रुपए है।

पीपलगाँव के बाबू दक्खिनीदीन इस ज़िले में सब से बड़े तेली रईस हैं। इन के यहां महाजनी का काम बहुत दिनों से होता आया है। इन की कोठी का नाम इन के पुत्रों के नाम से 'शारदाप्रसाद बिंदेसरीप्रसाद' है। यह इलाक़ेदार भी हैं। इलाके की सालाना मालगुज़ारी लगभग ७ हज़ार रुपए है।

(ख) मुसलमान रईस

मुसलमान रईसों में सब से पुराने कड़े के सैयद हैं। यह लोग उस समय यहां आए थे जब कड़े में सूबेदारी स्थापित हुई थी। इन के बाद मऊआइमा के शेख़ों का

परिवार है, जिस के आदि-पुरुष शाह कमालुद्दीन थे। कहा जाता है कड़े में अलाउद्दीन ख़िलजी जब सूबेदार था, उसी समय मऊआइमा की जागीर कमालुद्दीन को मिली थी। इस परिवार में शेख़ नसीरुद्दीन बड़े नामी आदमी हुए हैं। उन्हों ने ग़दर में सरकार की ख़ैरख़्वाही की थी, जिस से कुछ और इलाक़ा उन को इनाम में मिला था। नसीरुद्दीन के मरने पर उन की जायदाद के छोटे-छोटे बहुत से हिस्से हो गए, और उन का बड़ा भाग नीलाम हो कर दूसरों के हाथ में चला गया। अब इस वंश में शेख़ गुलाम मुर्तुज़ा सब से बड़े हिस्सेदार रह गए हैं, जिन की सालाना मालगुज़ारी ५ हज़ार रुपए से कुछ ऊपर है। परगना नवाब में मेंडारा और मंसूराबाद वाले भी पुराने रईसों में हैं, यद्यपि उन की ज़मींदारी बहुत बड़ी नहीं है।

शीयों की सब से बड़ी ज़मींदारी परगना करारी में है। इन के मूल-पुरुष का नाम हिसामुद्दीन था, जिन के विषय में कहा जाता है कि ज़ैदपुर ज़िला बाराबंकी से आ कर इस परगने पर अधिकार कर लिया था, और इस घटना के स्मारक में यमुना किनारे एक गाँव अपने नाम से बसाया था जो 'हिसामबाद-गढ़वा' कहलाता है।

इस समय हिसामुद्दीन के वंशजों के पाँच मुख्य केंद्र हैं, जिन के नाम ये हैं:—

रक्सवारा, महाँवां, मंझनपुर, रानीपुर, और करारी। इन में सब से बड़े ज़मींदार रक्सवारा वाले और फिर क्रमशः सब से कम करारी वाले हैं।

परगना चायल में यद्यपि मुसलमान ज़मींदार अधिक हैं परंतु सब छोटे-छोटे हिस्सेदार हैं। पहले बम्हरौली के शेख़ जो 'चौधरी' कहलाते हैं, और असरावे के शीया सैयद बड़े तालुक़ेदार थे, परंतु अब उन की जायदाद के कुछ तो आपस में बट कर छोटे-छोटे हिस्से हो गए हैं और कुछ भाग ऋण के कारण नीलाम हो कर महाजनों के हाथ में चला गया है।

गंगापार परगना मह में उतराँव के शीया सैयद पुराने रईस हैं। इन का पुराना इलाक़ा कुछ बिक गया है, फिर भी उस ओर के मुसलमानों में वह सब से बड़े ज़मींदार हैं। इस परगने में पूरामियां और परगना सिकंदरा में फूलपुर, मैलहन तथा सरायग़नी के ज़मींदार भी पुराने रईस हैं, परंतु अब उन की ज़मींदारी का बहुत कुछ अंश दूसरों के हस्तगत हो गया है।

शहर के रहने वालों में शाहगंज के मीर फ़ख़ुद्दीन हुसेन ज़िले भर के मुसलमानों में सब से बड़े ज़मींदार हैं, जिन की मालगुज़ारी १७ हज़ार रुपया सालाना के लगभग है। दरियाबाद के पठानों की ज़मींदारी पहले अधिकांश परगना अरैल में थी, जिन के मूल-पुरुष का नाम इरादत ख़ां था। अब इन लोगों में अरबअली ख़ां तथा आग़ाअली ख़ां की ज़मींदारी औरों से अधिक है, जिन का इलाक़ा फ़तेहपुर के ज़िले में भी है।

इन के अतिरिक्त शहर में एक ख़ांदान मीर गडरिया के नाम से प्रसिद्ध है। इन का इलाक़ा तहसील हँडिया में तालुक़ा मवैया में है। ये छः हज़ार रुपए के लगभग सालना मालगुज़ारी देते हैं।

मुसलमानों का एक और बड़ा घराना नवाब मुज़फ़्फ़रहुसेन ख़ां कंबोह का है, जो अवध के अंतिम बादशाह वाजिदअली शाह के समय में एक उच्च पदाधिकारी थे। नवाबी दरबार के अस्त-व्यस्त होने पर वह पहले लखनऊ से कानपुर और फिर इलाहाबाद चले आए। उन के अधिकांश वंशज यहां रानीमंडी में रहते हैं। इन का इलाक़ा इस ज़िले के अतिरिक्त फ़तेहपुर और मेरठ के ज़िले में भी है, जिस की कुल मालगुज़ारी २० हज़ार रुपए से ऊपर बतलाई जाती है।

(ग) अंग्रेज़ रईस

इस जिले में एकमात्र अंग्रेज़ रईस मि० राबर्ट्स वाटन थे, जो तहसील सोराँव के थरवई नामक स्थान में रहते थे। इन के पूर्वज ग़दर के पहले यहां विलायत से आ कर नील का कारोबार करते थे। पीछे उस व्यवसाय के मद्दा पड़ जाने से उन्हों ने बहुत-सा इलाक़ा ख़रीद लिया, परंतु सन् १९३० में उन्हों ने केवल थरवई छोड़ कर जहां उन का बँगला है, और सब गाँव बेच डाला।

पीछे सन् १९३४ में वार्टन साहब निस्संतान मर गए। उन की विधवा मालिक हुईं, जो प्रायः विलायत में रहा करती थीं, अतः उस ने अपना इलाक़ा कोर्ट अव् वार्ड्स के प्रबंध में दे दिया है; और सुना जाता है कि उस के बेचने का प्रबंध कर रही हैं।

परिशिष्ट

पुस्तक लिखे जाने और प्रकाशित होने के बीच कुछ अंतर पड़ गया। इस बीच प्रयाग के सबंध में जो विशेष परिवर्तन हुए हैं अथवा जो कुछ बातें छूट गई थीं उन का उल्लेख पाठकों के सूचनार्थ यहां किया जाता है।

पृष्ट ११८ में प्रयाग नगर में दसहरा के मेले के बंद हो जाने का वर्णन है। अब फिर सन् १९३६ से यह मेला पूर्ववत् होना आरंभ हुआ है। हिंदुओं ने अपने कार्यक्रम में केवल इतना परिवर्तन किया है कि वह रामलीला की सवारी (जलूस) सूर्यास्त के लगभग समाप्त कर देंगे।

पृष्ठ १२९ में सिरसा में अंग्रजी स्कूल के विषय में जो कुछ लिखा गया है, उस के आगे का वृत्तांत यह है कि सन् १९३१ ई० से वहां फिर स्थायी रूप से एक हाई स्कूल की स्थापना हुई है, जिस का श्रेय विशेषतया वहां के प्रसिद्ध रईस बाबू लक्ष्मीनारायण अग्रवाल एडवोकेट को है।

पृष्ठ १३९ में 'कालविन फ्री स्कूल की चर्चा है। अब सन् १९३६ से यह 'बाएज़-हाई स्कूल' में सम्मिलित हो गया है।

पृष्ठ १४२ में आर्य कन्या-पाठशाला का वर्णन है। अब यह अंग्रेज़ी का हाई स्कूल हो गया है।

पृष्ठ १५५ में आधुनिक साहित्य-सेवियों के वर्ग में श्री भगवतीचरण वर्मा और श्री हरिवंशराय उपनाम 'बच्चन' का भी नाम जोड़ देना चाहिए।

इसी पृष्ठ में स्त्रियों में श्रीमिती ज्योतिर्मयी ठाकुर तथा कुमारी गायत्री देवी श्रीवास्तव के नाम उल्लेखनीय हैं। खेद है कि गायत्री देवी का केवल पंद्रह वर्ष की अवस्था में सन् १९३१ में देहांत हो गया है।

पृष्ठ १५८ के फ़ुट नोट में लिखा है कि पं० देवकीनंदन त्रिपाठी ने वाल्मीकीय रामायण के कुछ अंशों का अनुवाद दोहा चौपाइयों में किया था, पर अब हम ने देखा कि उन्हों ने सातों कांड का पूरा अनुवाद किया था।

पृष्ठ १६० पर मासिक पत्रों के वर्णन में यह उल्लेखनीय है कि सन् १९३६ से एक उत्तम पत्र 'जीवन-सखा' के नाम से निकलने लगा है, जिस का उद्देश्य संयम तथा प्राकृतिक साधनों द्वारा स्वास्थ्य लाभ कराना है।

पृष्ठ १६१ में बालोपयोगी पत्रों में इसी साल से एक और पत्र 'अच्छे भैय्या' के नाम से प्रकाशित होने लगा है।

पृष्ठ १६८ में साहित्यिक संस्थाओं की चर्चा है। एक ऐसी और संस्था 'प्राग्रेसिव राइटर्स एशोसिएशन' के नाम से मुख्यतया कुछ नवयुवकों ने खोली है, जिस का उद्देश्य यह है कि उच्चकोटि के स्वतंत्र लेखकों को चाहे वे किसी भाषा के लेखक हों, संगठित किया जाय और उन को उचित सहायता दी जाय।

पृष्ठ २१२ सार्वजनिक संस्थाओं में यहां एक और संस्था सितंबर १६३६ से 'सर गंगाराम-विधवा भवन' के नाम से खुली है। इस में हर प्रकार की असहाय विधवाओं को सहायता दी जाती है और उन का उचित प्रबंध किया जाता है।

पृष्ठ २१३ में लिखी हुई संस्थाओं में एक 'डिस्ट्रिक्ट हरिजन-सेवक-संघ' खुला है, जिस के मुख्य कार्यकर्ता इस समय मुंशी ईश्वरसरन एडवोकेट हैं। इस संघ की ओर से प्रयाग स्टेशन के निकट चांदपुर सलोरी में एक नवीन बस्ती के बनाने की आयोजना हो रही है, जिस में हरिजनों को कुछ दिन रख कर उन का शारीरिक और नैतिक उन्नति की शिक्षा क्रियात्मक रूप से दी जायगी।

पृष्ठ २१६—(शहर के महल्लों का इतिहास) कुछ लोगों का कहना है कि नवलराय के भतीजे खुशहालराय के नाम से दारागंज का पुराना नाम खुशहाल गंज था, पर हम को इस की पुष्टि में कोई लेखबद्ध प्रमाण नहीं मिला।

प्रयाग की घटनावली

त्रेतायुग	अयोध्या से महाराज रामचंद्र लक्ष्मण तथा सीता सहित बन को जाते समय प्रयाग पधारे थे और ऋषि भरद्वाज के आश्रम में ठहरे थे, तत्पश्चात् भरत और उन की माताएं यहां आई थीं।
ई०पू० ४५०	महात्मा गौतमबुद्ध प्रयाग पधारे और यहां कुछ दिन रह कर धर्म प्रचार किया था।
३१६	प्रयाग मगध के चंद्रगुप्त मौर्य के अधीन हुआ।
२३२	सम्राट् अशोक ने कौशांबी में स्तंभ खड़ा किया जो अब प्रयाग के किले में है।
२७२	महाराज अशोक ने प्रयाग में स्तूप बनाया।
ई० ३२६	प्रयाग समुद्रगुप्त के आधीन हुआ।
४००	चीन का बौद्ध-यात्री फ़ाहियान प्रयाग में आया।
४०८	का अंकित किया हुआ चंद्रगुप्त द्वितीय का दानपत्र गढ़वा से मिला।
४१८	के अंकित कई दानपत्र गढ़वा से मिले।
४६८	का अंकित स्कंदगुप्त का दानपत्र गढ़वा से मिला।
५२५	प्रयाग कन्नौज के राजा यशोधर्मन के हस्तगत हुआ।
६४४	चीन का बौद्ध-यात्री हुएन-सांग क़न्नौज के महाराज हर्षवर्धन के साथ प्रयाग में आया।
७३२	प्रयाग गौड़ के पाल-नरेशों के अधीन रहा।
७४८	शंकराचार्य प्रयाग पधारे और यहां कुमारिल भट्ट से उन का साक्षात् हुआ।
८१०	प्रयाग कन्नौज के परिहार राजाओं के अधीन हुआ।
१०२७	का अंकित झूँसी से दानपत्र मिला।
१०३६	का अंकित कड़े से अभिलेख मिला।
१०९०	प्रयाग कन्नौज के गहरवार (राठौर) राजाओं के अधीन हुआ।
११९४	पहले पहल मुसलमानों का अधिकार हुआ।
१२४७	नासिरुउद्दीन महमूद ने दिल्ली से कड़े में आ कर आस-पास के हिंदू राजाओं पर चढ़ाई की।
१२८६	कैक़ुबाद और उस के पिता में कड़े में संधि हुई।

१२९६ अलाउद्दीन ने अपने चचा जलालुद्दीन ख़िलजी को कड़े में क़त्ल किया।

१३०० वैष्णवमत के प्रसिद्ध आचार्य स्वामी रामानंद का जन्म प्रयाग में हुआ।

१३९४ प्रयाग में जौनपुर के बादशाहों का अधिकार हुआ।

१५०० बंगाल के महाप्रभु चैतन्य प्रयाग में आए।

१५२९ बाबर और जलालुद्दीन लोहानी से कड़े में संधि हुई।

१५८३ प्रयाग के क़िले की नींव पड़ी।

१५९६ कड़े से सूबेदारी उठ कर प्रयाग में आई।

१५९९ युवराज सलीम प्रयाग में सूबेदार हो कर आया।

१६०१ खुसरोबाग़ बना। सलीम (पीछे जहाँगीर) ने अकबर के राज्यकाल में अपने को बादशाह घोषित किया।

१६०५ जहाँगीर ने अशोक की लाट पर अपना अभिलेख अंकित कराया।

१६२२ खुसरो का शव आगरे से ला कर प्रयाग में गाड़ा गया।

१६२४ जहाँगीर की सेना से ख़ुर्रम (पीछे शाहजहां) का युद्ध टौंस के किनारे हुआ।

१६२८ शाहजहां ने 'इलाहाबास' के स्थान में प्रयाग का नाम 'इलाहाबाद' रक्खा।

१६६१ प्रयाग के क़िले के लिए औरंगज़ेब और उस के भाइयों में झगड़ा हुआ।

१६६६ महाराज शिवाजी प्रयाग में आए।

१७१२ प्रयाग के सूबेदार अब्दुल्ला और दिल्ली की बादशाही सेना से आलमचंद में युद्ध हुआ। फ़र्रुख़सियर ने प्रयाग आ कर अब्दुल्ला से गोष्ठी की।

१७१९ प्रयाग के क़िलेदार छबीलेराम नागर के भतीजे गिरधर बहादुर और दिल्ली की बादशाही सेना से सात दिन तक घोर युद्ध हुआ।

१७३९ मराठों ने प्रयाग पर चढ़ाई की और नगर को लूटा।

१७४३ प्रयाग में अवध के नवाब-वज़ीर सफ़दरजंग की सूबेदारी हुई।

१७४९ प्रयाग के क़िलेदार राजा नवलराय ने फ़र्रुख़ाबाद पर चढ़ाई की और उस में उस के मारे जाने पर महम्मद ख़ां बंगश के लड़कों को प्रयाग के क़िले में फाँसी दी गई।

१७५० प्रयाग में फ़र्रुख़ाबाद के अहमद ख़ां बंगश तथा अवध के नवाब-वज़ीर से घोर युद्ध हुआ। नगर फूँका और लूटा गया।

१७५९ अवध के नवाब-वज़ीर शुजाउद्दौला ने क़िलेदार को धोखा दे कर क़िले पर अधिकार कर लिया।

१७६४ शाहआलम ने प्रयाग में रहना आरंभ किया और अंग्रेज़ों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी की सनद दी। प्रयाग के क़िले पर पहले-पहल अंग्रेज़ों का अधिकार हुआ।

१७६५ प्रयाग का सूबा अंग्रेज़ों ने शुजाउद्दौला को दिया।

१७७१ शाह आलम प्रयाग से दिल्ली चला गया। मराठों ने प्रयाग को लेना चाहा परंतु अंग्रेज़ों ने रोका।

१७७३ अंगरेज़ों ने सूबा इलाहाबाद ५० लाख पर शुजाउद्दौला के हाथ बेच डाला।

१७८३ प्रयाग में बहुत बड़ा अकाल पड़ा।

१८०१ प्रयाग स्थायी रूप से अंगरेज़ों के हाथ आया।

१८०२ प्रयाग का पहला बंदोबस्त हुआ।

१८०३ बहुत बड़ा अकाल पड़ा।

१८०५ प्रयाग का दूसरा बंदोबस्त हुआ।

१८०८ ,, तीसरा ,, ,, ।

१८१२ ,, चौथा ,, ,, ।

१८१६ परगना किवाई अवध से निकल कर तहसील हँडिया में मिला।

१८२४ हिंदी की खड़ी बोली के आदि गद्य-लेखक मुंशी सदासुखलाल की मृत्यु हुई।

१८२५ फ़तेहपुर का ज़िला इलाहाबाद से निकल कर अलग स्थापित हुआ।

१८२९ पहले-पहल प्रयाग में कमिश्नरी स्थापित हुई।

१८३१ बोर्ड आव् रेवन्यू का दफ़्तर खुला।

१८३६ प्रयाग इस प्रांत की राजधानी बना।

१८३७ मँहगी पड़ी, जिस के कारण कुछ लूटमार हुई।

१८३९ प्रयाग का पाँचवां बंदोबस्त हुआ। गवर्नमेंट हाई स्कूल खुला।

१८४० पंडित अयोध्यानाथ का जन्म हुआ।

१८४३ हाईकोर्ट इलाहाबाद से आगरा गया।

१८४४ पंडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म हुआ।

१८५६ प्रयाग में ईस्ट इंडियन रेलवे आरंभ हुई। देहातों में स्कूल खोले गए।

१८५७ (१६ जून) सिपाही-विद्रोह हुआ।

१८५८ लार्ड कैनिंग ने (१ नवंबर को) महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र सुनाया। प्रांतिक राजधानी आगरे से उठ कर प्रयाग में आई। (के लगभग) धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला स्थापित हुई।

१८६० जमुनापार में मँहगी पड़ी। पंडित श्रीधर पाठक का जन्म हुआ।

१८६१ पंडित मोतीलाल नेहरू तथा पंडित मदनमोहन मालवीय का जन्म हुआ। कालविन डिस्पेंसरी खुली।

१८६३ म्यूनीसिपैलिटी स्थापित हुई।

१८६४ टांस पर रेल का पुल बना। पहले-पहल प्रयाग में प्रदर्शिनी हुई। जान्सटन गंज रोड निकली। पब्लिक लाइब्रेरी खुली।
१८६५ 'पायोनियर' जारी हुआ। जमुनापार में मँहगी पड़ी। जमुना का पुल बना।
१८६७ प्रयाग का छठा बंदोबस्त हुआ। नैनी से जबलपुर लाइन निकली।
१८६८ हाईकोर्ट आगरे से उठ कर प्रयाग आया। जमुनापार में अकाल पड़ा।
१८६९ शिवराखन स्कूल (अब सी० ए० वी० स्कूल) खुला।
१८७० पब्लिक लायब्रेरी स्थापित हुई। बोर्ड आव् रेवन्यू इत्यादि की चारों इमारतें बनीं—अल्फ्रेड पार्क बना।
१८७२ मेओ हाल बना। म्योर सेंट्रल कालेज खुला।
१८७३ चौक की सब्ज़ी मंडी बनी। कायस्थ पाठशाला की स्थापना हुई। जमुनापार में अकाल पड़ा।
१८७४ गवर्नमेंट प्रेस की इमारत बनी।
१८७५ प्रयाग में गंगा-यमुना की बहुत बड़ी बाढ़ आई। सर तेजबहादुर सप्रू का जन्म हुआ। ऐंग्लो-बंगाली स्कूल खुला।
१८७७ मेजा और बारा में अकाल पड़ा। 'हिंदी प्रदीप' निकला।
१८७९ मेओ हाल बन कर तैयार हुआ।
१८८० चौक में पहले-पहल आर्यसमाज स्थापित हुआ। 'प्रयाग-समाचार' निकला।
१८८३ ट्रेडिंग कंपनी स्थापित हुई। गोशाला खुला।
१८८४ नार्मल स्कूल स्थापित हुआ।
१८८६ कायस्थ पाठशाला के संस्थापक मुंशी कालीप्रसाद का देहांत हुआ।
१८८७ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्थापित हुई।
१८८८ पहले-पहल इंडियन-नेशनल-कांग्रेस का (प्रयाग में) अधिवेशन हुआ।
१८८९ भारती-भवन पुस्तकालय स्थापित हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म हुआ। दारागंज हाई स्कूल खुला।
१८९१ वाटर वर्क्स खुला। सरयूपारीण ब्राह्मण पाठशाला की स्थापना हुई।
१८९२ पंडित अयोध्यानाथ का देहांत हुआ। इंडियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। टीचर्स ट्रेनिंग कालिज स्थापित हुआ।
१८९६ अकाल पड़ा। हिंदू अनाथालय खुला।
१८९८ क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल लखनऊ से प्रयाग आया।
१८९९ प्रयाग के ज़िले में मऊ आइमा में पहले-पहल प्लेग फैला।
१९०० 'सरस्वती' पत्रिका निकली। गंगा की नहर कानपुर से आई।
१९०१ कोआपरेटिव बैंक स्थापित हुआ। हिंदू बोर्डिंग हाउस बना।
१९०२ क्रिश्चियन कालेज खुला।
१९०३ आर्य कन्यापाठशाला की स्थापना हुई। 'हिंदुस्तान रिव्यू' तथा 'इंडियन पीपुल' निकले।

१६०४ गौरी पाठशाला खुली ।

१६०५ इलाहाबाद-फ़ैज़ाबाद रेलवे खुली। महारानी विक्टोरिया की मूर्ति स्थापित हुई। सरवेंट आव् इंडिया की शाखा खुली ।

१६०६ विद्या-मंदिर हाई स्कूल खुला। जौनपुर-रेलवे निकली । लूकरगंज बसा। पहले-पहल कुंभ के अवसर पर मालवीय जी के उद्योग से 'अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म सभा' की बैठक हुई ।

१६०७ अकाल पड़ा। 'अभ्युदय' निकला, कांग्रेस का प्रांतिक अधिवेशन पहले-पहल पंडित मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में हुआ ।

१६०६ नैनी में चीनी का कारखाना खुला। 'लीडर' निकला। जार्जटाउन बसा ।

१६१० प्रदर्शिनी हुई। इंडियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। मिंटो पार्क बना। अगरवाल विद्यालय खुला। सेवा-समिति स्थापित हुई। 'हिंदी-प्रदीप' बंद हुआ ।

१६११ हिंदी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। हिवेट रोड निकली। इलाहाबाद राय-बरेली लाइन खुली।

१६१२ नैनी में एग्रीकलचरल इंस्टीटयूट खुला। बंगाल नार्थ-वेस्टर्न रेलवे निकली। यूनीवर्सिटी का सेनेट हाल बना।

१६१३ नैनी में ग्लास फ़ैक्टरी खुली। चौक में घंटाघर बना। झूँसी में तीर्थराज सन्यासी संस्कृत-पाठलाशा खुली।

१६१४ दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल खुला। पंडित बालकृष्ण भट्ट का देहांत हुआ। विज्ञान-परिषद् तथा ज़मींदार एसोसीएशन की स्थापना हुई।

१६१५ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। यमुना के पूर्व की ओर दोहरा पुल बना। नगर में बिजली की रोशनी होने लगी।

१६१६ यमुना में बड़ी बाढ़ आई। नया हाईकोर्ट तथा ला (अब सर सुंदरलाल तथा सर प्रमदाचरण बनरजी) होस्टेल बने । शिवचरणलाल तथा क्रास्थवेट रोड निकलीं। सर सुंदरलाल जी का देहांत हुआ।

१६१७ मजीदिया इसलामिया स्कूल तथा मिफ़ताहुल-उलूम मदरसा खुला । इंडियन प्रेस से 'बालसखा' निकला। हिंदू-मुसलमानों में दंगा हुआ।

१६१८ हिंदी-विद्यापीठ स्थापित हुआ। लिबरल एसोसीएशन स्थापित हुआ।

१६१६ कारपेंटरी स्कूल तथा जगत्-तारन गर्ल्स हाई स्कूल खुले। बम्हरौली में हवाई-जहाज़ के लिए मैदान बना।

१६२० मेडिकल एसोसीएशन स्थापित हुआ । गांधी राष्ट्रीय विद्यालय खुला। बाबू गिरजाकुमार घोष का देहांत हुआ।

१६२१ उर्दू के महाकवि सैयद अकबर हुसैन का देहांत हुआ। इंग्लैंड के युवराज प्रिंस आफ़ वेल्स प्रयाग आए। परगना झूँसी में हेतापट्टी के निकट एक

बड़ा काला पत्थर आकाश से बड़े गड़गड़ाहट के साथ गिरा-जो, अब लखनऊ के अजायबघर में है।

१६२२ 'चाँद' जारी हुआ। महिला-विद्यापीठ स्थापित हुआ।

१६२३ चौक में मीरख़ां की सराय की सड़क चौड़ी हुई। करारी में शिया-सुन्नियों में बलवा हुआ। गुरु नानक सेवासमिति संगठित हुई। गंगा में बाढ़ आई।

१६२४ हिंदू सभा तथा अगरवाल सेवासमिति की स्थापना हुई। हिंदू मुसलमानों में दंगा हुआ। झूँसी में चीनी का कारख़ाना खुला। दशहरे का मेला बंद-हो गया। हिवेट रोड पर सौदामिनी संस्कृत-विद्यालय खुला।

१६२५ प्रयाग संगीत-समिति स्थापित हुई। बारा की तहसील टूट कर करछना में मिली।

१६२६ हिंदू मुसलमानों में दंगे हुए। ओरियंटल कान्फ्रेंस हुई। यूनानी मेडिकल-स्कूल खुला।

१६२७ हिंदुस्तानी एकेडेमी खुली। नया कटरा बसा। चौधरी महादेवप्रसाद का देहांत हुआ।

१६२८ पंडित श्रीधर पाठक का देहांत हुआ। 'भारत' निकला। कृषि-संघ खुला। सिंगरौर में श्री गौरीशंकर-स्मारक संस्कृत पाठशाला खुली।

१६२६ हवाई डाक प्रयाग आने लगी। साइंस कांग्रेस की बैठक हुई।

१६३० मेजर वामनदास वसु का देहांत हुआ। भारतीय संगीत-परिषद् की बैठक हुई। महिला-सेवा सदन खुला।

१६३१ (६ फ़रवरी) पंडित मोतीलाल नेहरू का देहांत हुआ। अलाबंदे के फाटक में पार्क बना। म्यूनिसिपैलिटी ने अजायबघर खोला।

१६३२ (४ जनवरी) प्रयाग नगर में पहले-पहल पुलीस की ओर से कांग्रेसवालों पर लाठी चार्ज हुआ।

" (१३ जनवरी) स्वराज्य-भवन पर सरकारी अधिकार हुआ।

" (६ अप्रेल) पहले-पहल कांग्रेसवालों के भीड़ पर पुलीस ने गोली चलाई।

१६३४ १२ जुलाई स्वराज्य-भवन को सरकार ने छोड़ दिया।

" २६ अगस्त जमुना में बहुत बड़ी बाढ़ आई।

१६३६ प्रयाग में दशहरा का मेला होने लगा।

१६३७ (१ जनवरी) रायबहादुर लाला सीताराम का देहांत हुआ।

सहायक पुस्तकों की सूची

संस्कृत

देवीभागवत, अग्नि, कूर्म, पद्म, मत्स्य, लिंग, वामन, वराह, विष्णु, शिव और स्कंद पुराण; मनुस्मृति; महाभारत; रघुवंश; रामायण; शंकरदिग्विजय।

हिंदी

अकबर की राजव्यवस्था—लेखक, पंडित शेषमणि त्रिपाठी
अशोक की प्रशस्तियां—लेखक, प्रोफेसर रामावतार शर्मा
अशोक के धर्म लेख—संपादक, पंडित जनार्दन भट्ट
अंग्रेज़ और मराठे—अनुवादक, बाबू सूरजमल जैन
इतिहास-तिमिर-नाशक—लेखक, राजा शिवप्रसाद
जंगनामा—लेखक, कविवर श्रीधर
प्रयाग-माहात्म्य
प्राचीन मुद्रा—अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा
प्राचीन भारत—लेखक, पंडित हरिमंगल मिश्र
प्राचीन-लेख मणि-माला—संपादक, बाबू श्यामसुंदर दास
फ़ाहियान की भारत-यात्रा—अनुवादक, बाबू जगन्मोहन वर्मा
भारत के महापुरुष—लेखक, पंडित दयाशंकर त्रिपाठी
भारत के हिंदू सम्राट्—लेखक, श्री चंद्रराज भंडारी
भारत-भ्रमण—लेखक, श्री साधुचरणप्रसाद
मध्यप्रदेश का इतिहास—लेखक, पंडित प्रयागदत्त शुक्ल
माधुरी (लखनऊ)
मिश्र-बंधु-विनोद—लेखक, मिश्रबंधु
विशाल-भारत (कलकत्ता)
श्री गौरांग महाप्रभु—लेखक, बाबू शिवनंदन सहाय
शिवाबावनी—लेखक, भूषण त्रिपाठी
समुद्रगुप्त अनुवादक श्री रविशंकर अंबाराम छाया
सरस्वती (प्रयाग)
स्त्री-कविता-कौमुदी—संग्रहकर्ता पंडित ज्योतिप्रसाद निर्मल
हिंदी साहित्य का इतिहास—लेखक, पंडित रामचंद्र शुक्ल
हुएन सांग की भारतयात्रा—अनुवादक, पंडित ठाकुर प्रसाद शर्मा (सुरेश)

अंग्रेज़ी

Akbar. By Dr. Vincent A Smith. Oxford, 1917.

Alberuni's India. Translated by Dr. Sachau. London 1888.

An Account of Steam Navigation in British India. By G. A. Princep. London, 1828.

Ancient Geography of India. By Sir Alexander Cunningham. (Revised Edition). London, 1926.

Annual Reports of various departments published by the U. P. Government.

Archaeological Survey Reports.

Asiatic Researches.

Asoka. By various writers.

Balwant-Nama. Translated by R. Curwen. Allahabad, 1875.

Bangash Nawabs of Farrukhabad. By W. Irvine.

Buddhist Records. By Samuel Beal. London, 1911.

Bengal & Agra Guide. By G. W. Rushton. Calcutta 1892.

Biographical Dictionary of India.

Catalogue of Coins in the Indian Museum. By H. Nelson Wright. Oxford, 1907.

Census Reports.

Chahar Gulshan. Translated by Sir J. N. Sarkar.

Christian Tombs & Monuments in U. P. By E. H. H. Blunt Allahabad. 1911.

Civic Survey Report of Allahabad.

Chronology of Modern India. By Dr. James Burgess. Edinburgh 1913.

Coins of Ancient India. By Sir Alexander Cunningham. London 1891.

Comprehensive History of India. By H. Beveridge. London 1871

Corpus Inscriptionum Indicarum. By Sir Alexander Cunningham. Calcutta 1877.

Do. By J. F. Fleet. Calcutta 1888.

Do. By E. Hultzsch. Oxford 1925.

Diary of Travels in Upper India. By E. J. C. Davidson. London 1843.

District Gazetteers.

Early History of India. By Dr. Vincent A. Smith. Revised edition. Oxford, 1919.

Early History of Kausambi. By Prof. N. N. Ghosh. Allahabad, 1935.

East India Gazetteer. 1815.

Epigraphia Indica.

Essays of Jones Princip. London 1858.

Excursions in India. By T. Skinner. London 1833.

First Impression and Studies from Nature in Hindustan. By T. Racon. London. 1837.

From Adam's Peak to Elephanta. By Edward Carpenter London 1892.

Geographical Dictionary. By Mr. Nundo Lal Dey. Calcutta, 1899.

Geographical Statistics of Hindustan. By A. Dean. London 1823.

Government Gazette.

Hand-Book of Architecture. By Jones Furgusson. London 1867.

Hand-Book of Visitors to Allahabad. By H. G. Keene Allahabad, 1899.

Hayden's Dictionary of Dates .By B. Vincent. 1906. London, 1863.

Hindustan. By Emma Roberts. London 1846.

Hindustan Review.

Historical Accounts of India. By Hogg, Murray etc. Edinburgh, 1832.

Historical Geography of British India. By P. E. Roberts. Oxford 1616.

History of the British Empire and the East. By E. H. Nolan. London.

History of the British Empire in India. By Edward Thornton London 1857.

History of India. By Sir Henery M. Elliot. London 1687.

History of India. By Jones. C. Marshman. London 1863.

History of India. By Talboys Wheeler. London 1867.

History of India. By Dr. Vincent A Smith. Oxford 1919.

History of the Marathas. By C. Grant Duff. Bombay 1863.

History of the Reign of Shah Alam. By W. Franklin. London 1798.

History of India (150-350 A. D). By Dr. K. P. Jayaswal. Lahore 1933.

Histories of Sepoy War. By various writers.

Hodge's Select Views in India. London 1794.

Ibn Batuta. Translated by the Rev. Samuel Lee. London 1929.

Imperial Gazetteer from 1854 down to latest revised Edition.

Indian Antiquary.

India of Aurangzeb. By Sir J. N. Sarkar. Calcutta 1901.

Indian Recreation. By W. Tenent London. 1899.

Inscriptions of Asoka. By Prof. D. R Bhandarkar. Calcutta 1920.

Inscriptions and Antiquities of N. W. P. By Dr. Fuhrer. Allahabad, 1893.

Jahangir By Dr. Beni Prasad' Oxford.

Journals of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland.

" (Bombay Branch.)

" (Bengal Branch.)

Journey from Bengal to England. By George Forster. London 1798.

Later Moghals By W. Irvine. London 1903.

Les Inscriptions De Piyadasi. Paris 1881.

Life of Lord Clive. By Sir George Forrest. London 1918.

Linguistic Survey of India. Edited by Dr. George A. Grierson. Calcutta 1927.

List of Christian Tombs. By Dr. Fuhrer. Allahabad 1896.

Megastheneses's Fragments. By J. W. Mc. Crindle. Bombay 1877.

Memoirs of Sir Henry Havelock. By J.S. Marshner. London. 1860.

Nautical Almanac published by the Royal Observatory London.

Narrative of Journey. By Bishop Heber. London 1828.

Notes on Pre-Mutiny Records in the U. P. By D. Dewar. Allahabad. 1911.

Official Hand-book of the U. P. Exhibition. 1910-11.

Oriental Scenary. By. T. W. Daniell. London 1816.

Oxford Survey of British Empire. Oxford 1914.

Picturesque India. By W. S. Coine. London 1891.

Prayag or Allahabad. Calcutta. 1910.

Proceedings of the Asiatic Society of Bengal.

Purchas His Pilgrimages, By Samuel Purchas. Glasgow 1906.

Report on the Industrial Survey of Allahabad.

Settlement Reports of the Allahabad District.

Short History of Muslim Rule in India. By Dr. Ishwari Prasad. Allahabad 1921.

Sketches of India. London. 1824.

Storia de Mogor. By Niccolai Manucci. Translated by W. Irvine London. 1907.

Tod's Rajasthan. London 1839.

Tour in India. By Capt. Mundy, London 1814.

Travels in India by W. Hodges. 1791.

Travels in India by Capt. Von Orlich.

Travels in India by J. B. Tavernier. Edinburgh 1839.

Voyages and Travels to India. By Greye. V. Valentia. London 1811.

Wanderings of a Pilgrim in Search of the Picturesque. By Mrs. Fanny Park. London 1850.

अंग्रेजी-संस्कृत

प्रियदशा प्रशस्तयः --By. Prof. Ramavatar Sharma. M. A. Calcutta 1915.

फ़ारसो

اکبر نامہ (अकबरनामा) (ابوالفضل) نول کشور پریس لکھنؤ -

آئین اکبری (आईन-अकबरी) ,, ,,

تاریخ فرشتہ (तारीख़-फ़रिश्ता) (محمد قاسم) ,,

توزک جہانگیری (तुज़ुके-जहांगीरी)

سیرالمتاخرین (सैरुल-मुताख़िरीन) (غلام حسین) ,,

طبقات اکبری (तबक़ाते-अकबरी) (نظام الدین احمد) ,,

منتخب التواریخ (मुनतख़बुल-तवारीख़) (عبدالقادر بدایونی)

مفتاح التواریخ (मिफ़ताहुल-तवारीख़) (تامس ولیم بیل صاحب) نول کشور پریس لکھنؤ -

ماثرالامرا (मासिरुल-उमरा) (شاہ نواز خاں) ایشیاٹک سوسائٹی بنگال

ھمایوں نامہ (हुमायूँनामा) (گلبدن بیگم)

उर्दू

आरायशे-महफ़िल	آرایش محفل (شہر علی افسوس)
उर्दू त्रैमासिक (हैदराबाद)	اُردو (سہ ماہی حیدرآباد)
उमराय-हिनोद	اُمرائے ہنود (سعید احمد مارہروی)
तारीख़-अवध	تاریخ اودھ (نجم الغنی خاں رامپوري)
तारीख़-आईना-अवध	تاریخ آئینہ اودھ (شاہ ابوالحسن) نظامي پریس کانپور
तारीख़-क़ैसरी	تاریخ قیصري (کمال الدین حیدر)
तरीख़ हिंदोस्तान	تاریخ ہندوستان (ذکاالہہ)
दरबार-अकबरी	دربار اکبري (محمد حسین آزاد)
सहीफ़ा-ज़रीं	صحیفہ زریں (نول کشور پریس)
क़ामूसुल-मशाहीर	قاموس المشاہیر (نظامي بدایوني)
मशाहीर-निसवां	مشاہیر نسواں
मीरास-जलाली	میراث جلالی (خلیل الدین)

अनुक्रमणिका

अ

आ

इ

ई

उ

ए

ओ

औ

क

च

छ

ज

झ

ट

ड

त

त

थ

द

ध

न

प

प

फ

ब

भ

भ

म

स

ह

क़िला

प्रयाग के स्तंभ पर अशोक का अभिलेख

जहाँगीर के लेख द्वारा कटी हुई सात पंक्तियाँ

पृथक लेख

कौशाम्बी का लेख

रानी का लेख

इलाहाबाद के क़िले में अशोक-स्तंभ पर अंकित अभिलेख
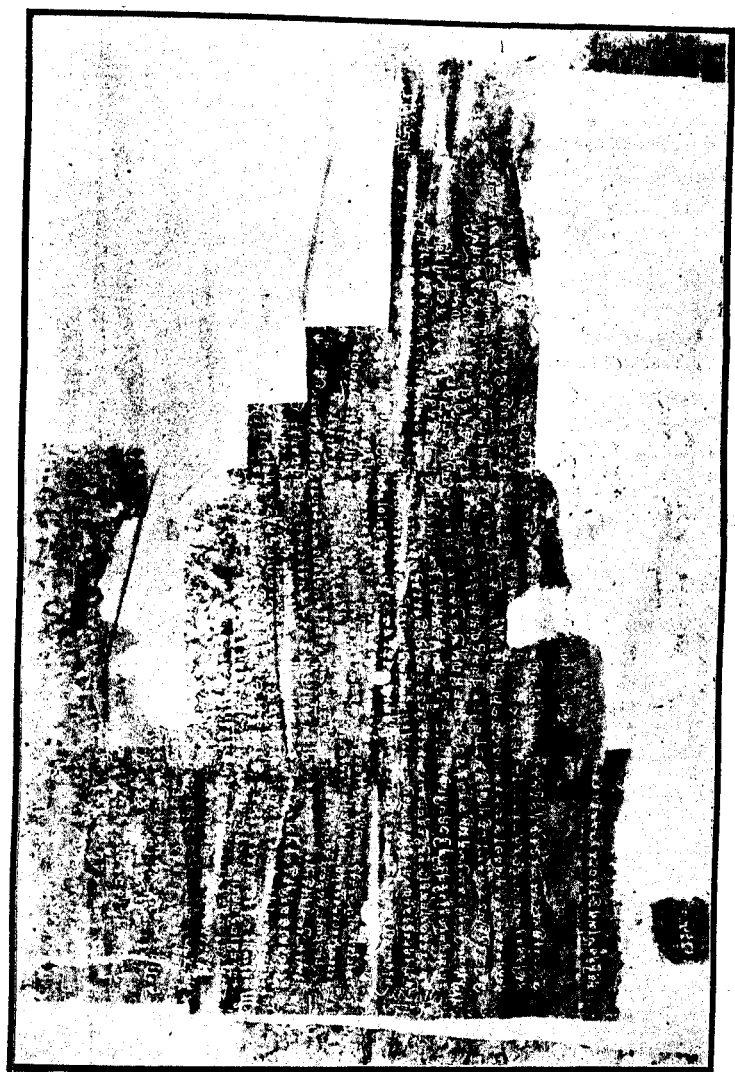
प्रयाग के अशोक-स्तंभ पर समुद्रगुप्त का अभिलेख

कौशांबी का स्तंभ

पभोसा की पहाड़ी
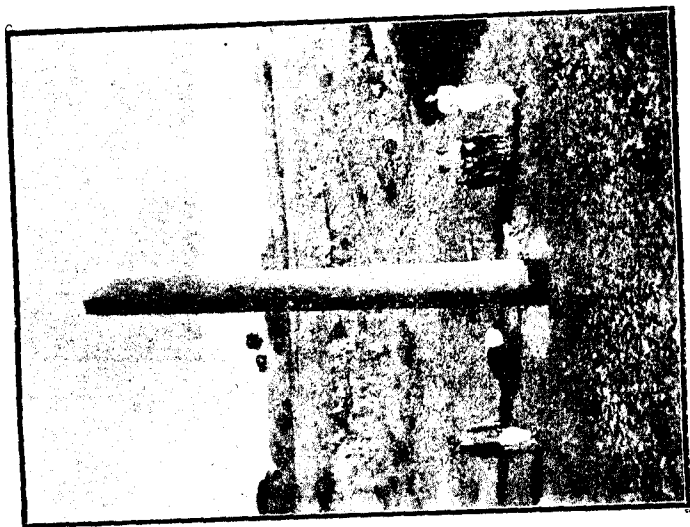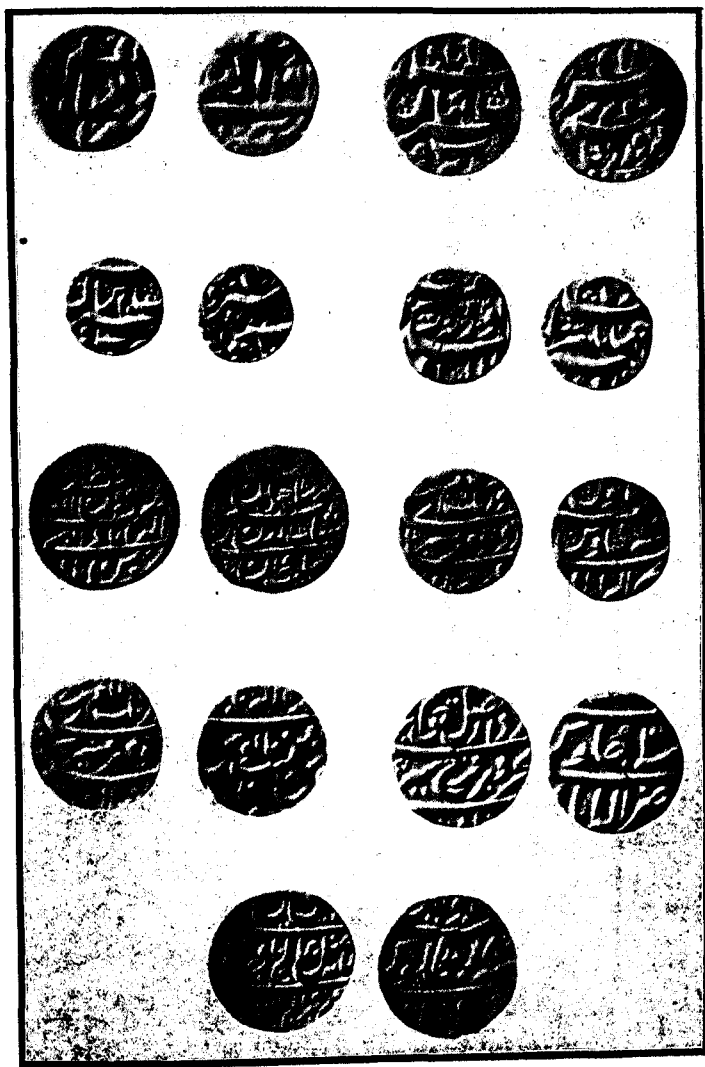
इलाहाबाद के मुसल्मान-कालीन सिक्के

ख़ुसरो बाग़

माघ मेले का एक दृश्य

माघ मेले में हाथियों का जलूस
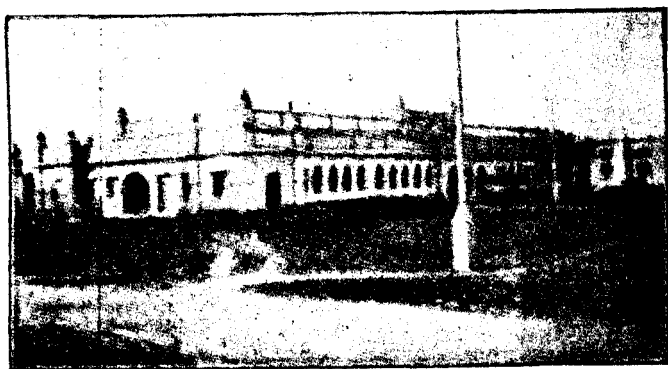
इलाहाबाद की बड़ी नुमाइश में शिक्षा-विभाग
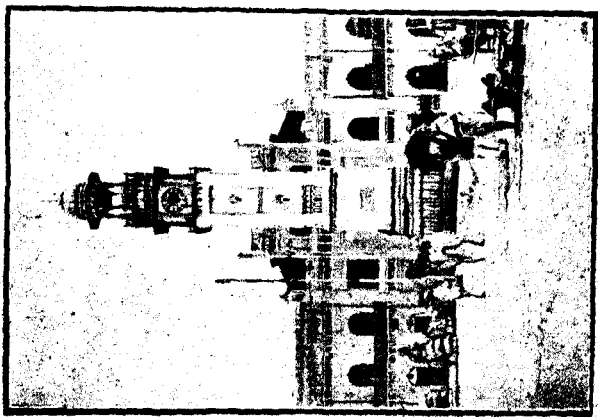
मिंटो पार्क

चौक का घंटाघर
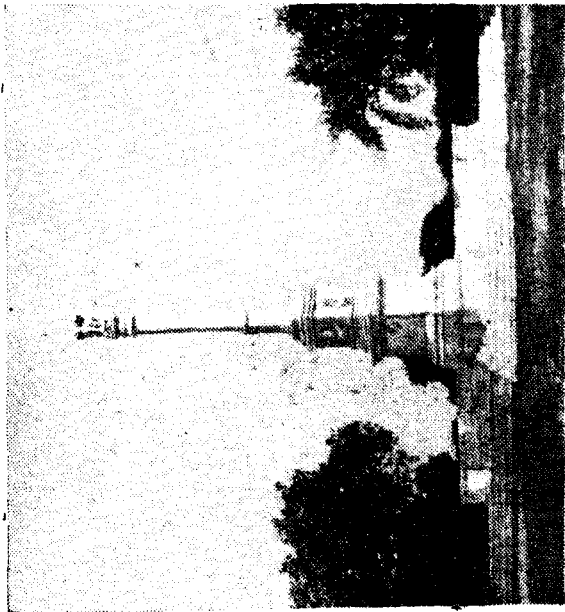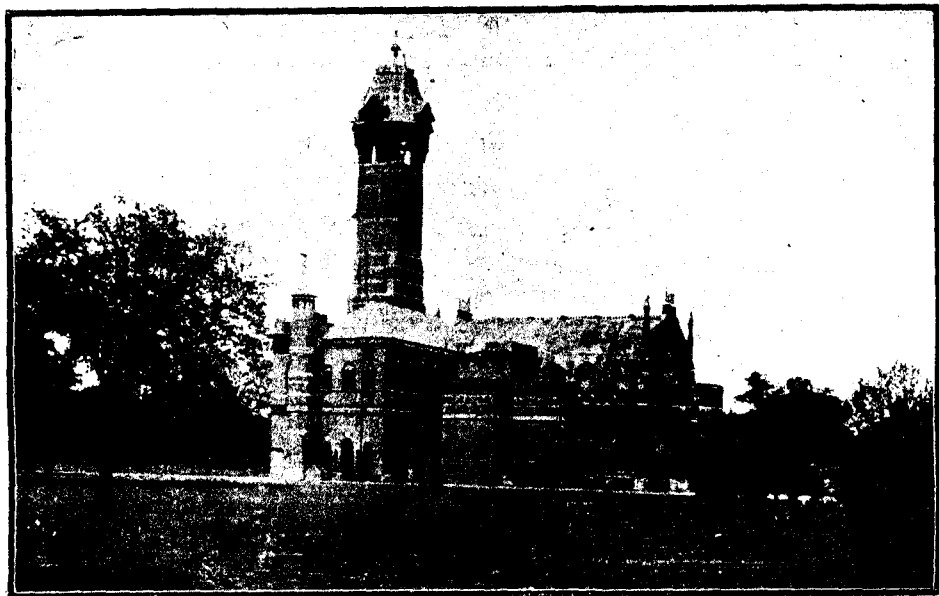
मेओ हाल

म्योर सेंट्रल कालेज

सिनेट हाल
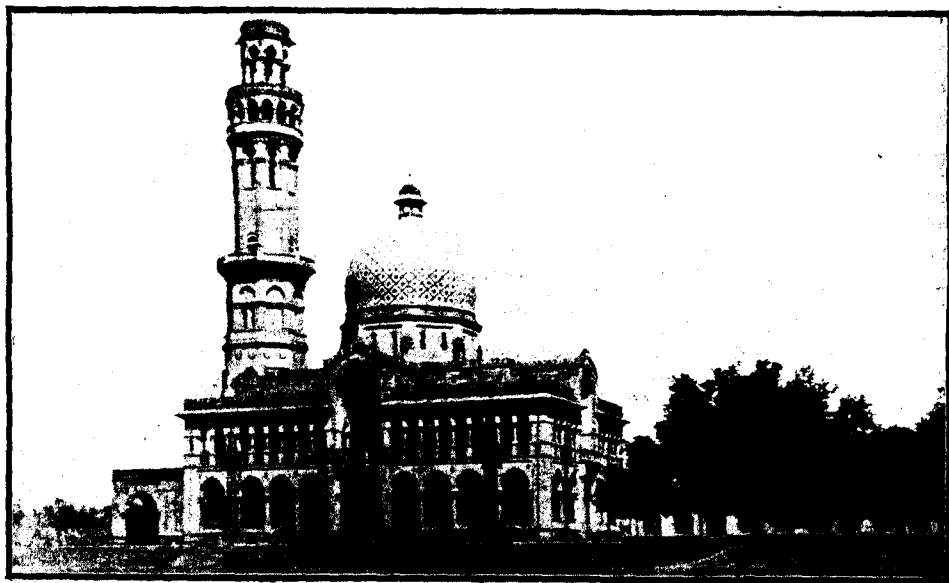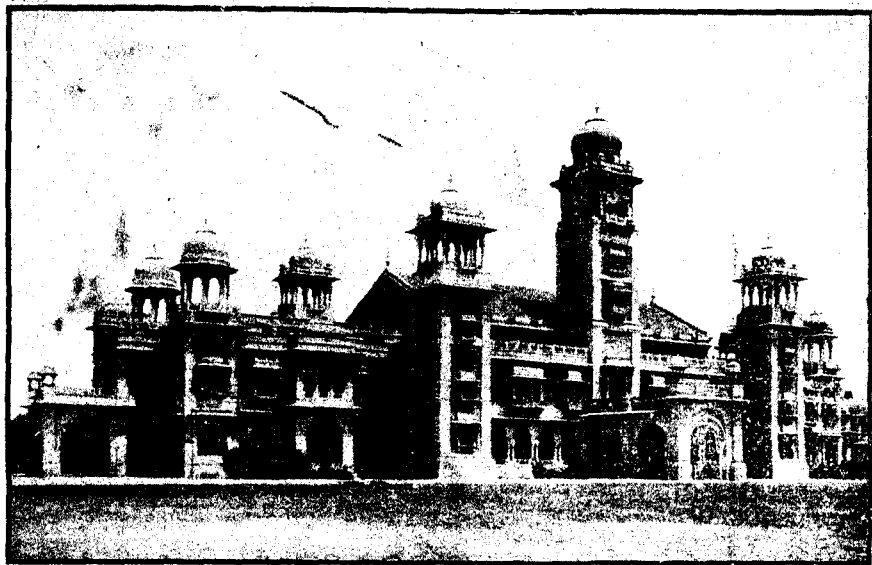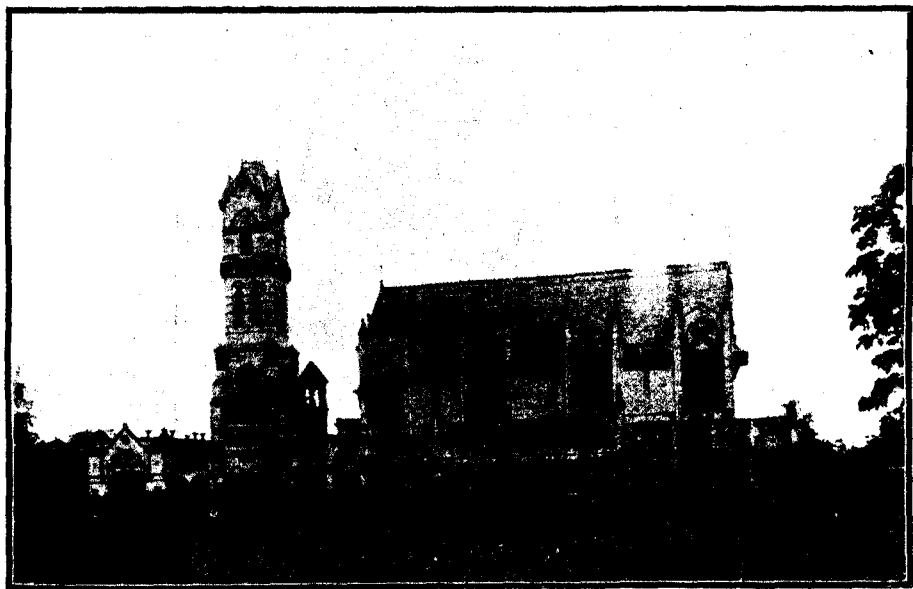
पब्लिक लाइब्रेरी
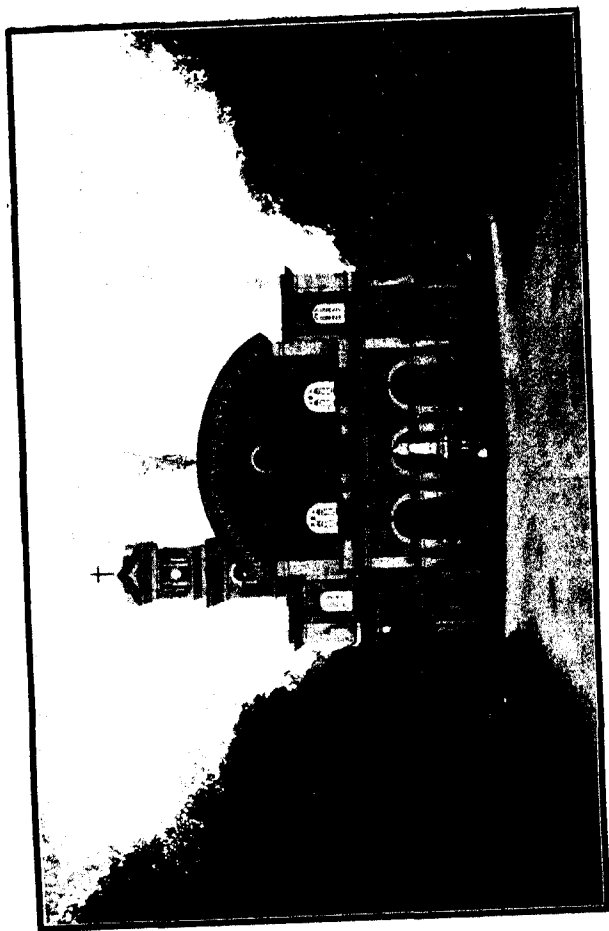
रोमन कैथोलिक गिरजाघर

आल सेंट्स गिरजाघर

मेकफ़र्सन लेक

कर्ज़न ब्रिज

हाई कोर्ट
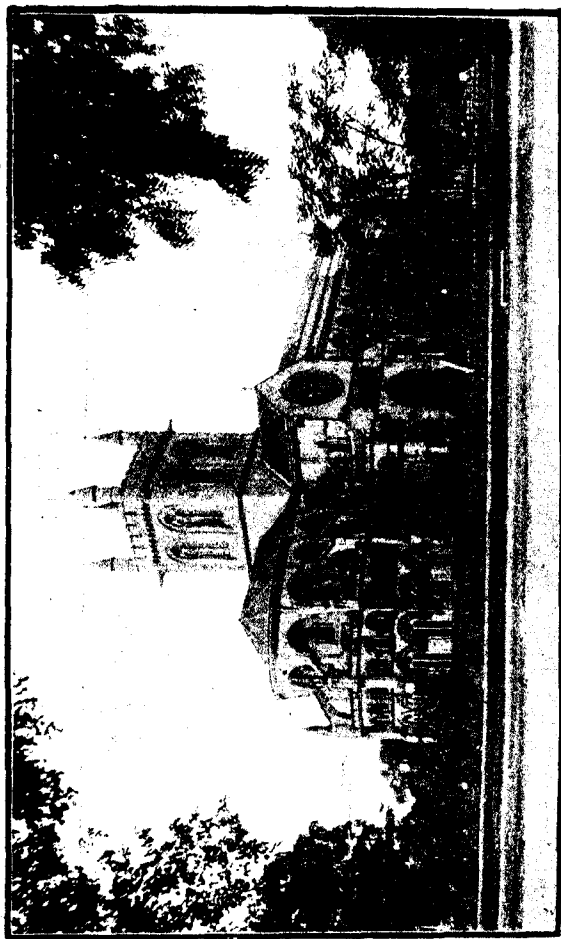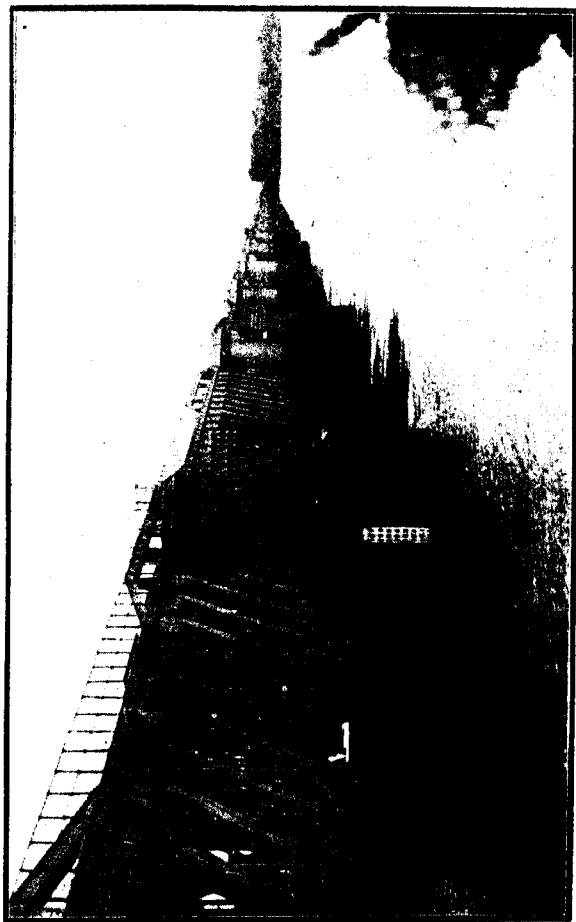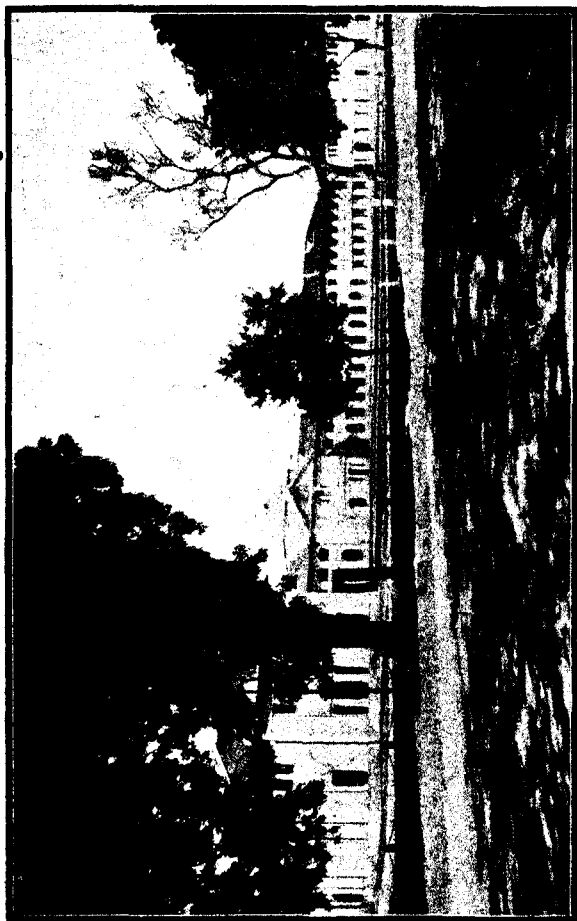
शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	२७	पियामीर	मियांमीर
	२६	کود	کرد
	३०	نیردون	یزدان
	,,	حورد	حورد
	,,	دےتول	اےنول
६२	१७	हुआ था	हुई थी
६२	२६	हर	शहर
६५	२६	आठे	आँठे
६७	२४	तीन	तीज
१५५	११	राजेश्वरी प्रसाद सिंह	राजेश्वर प्रसाद सिंह
१६२	३०	वह	यह
१६७	३१	१२०००)	१२००)
१७०	१२	कृषक जाति वालों के ऊपर ऊपर २ की संख्या होनी चाहिए।	
१८६	२६	जंदाई	जंबई
१९४	२५	१९० बोरियां / २७५	११० बोरियां / २७५ मन
१९६	११	बड़ोघर	बड़ोखर
२११	१७ (के अन्त में)	अजमल	अफ़ज़ल
२१६	१६	नगरों	नगर
२३६	१५	बनावट के	बनावट की
	२८	दिया	दियो
२५६	५	इल्तुतमिश	अल्तमश
२६२	२६	कूर के ऊपर जो १ का चिन्ह है उसका फ़ुट नोट अगले पृष्ठ के नीचे है।	
२६३	५	स्वनाम शास्त्री	स्वनाम शास्त्र की
२६४	१६	शाक	शाका
२७४	१८	ज्ञाम कथा रहस्य	ज्ञान कथा रहस्य
,,	,,	१८२८	१८८५
२८०	२	१ यह अंक सातवीं पंक्ति में शून्यमहल के ऊपर होना चाहिये।	
२८७	३०	मानकुंवर	मनकुंवार
३०३		वाटन	वाटंन

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य सजिल्द १॥), बिना जिल्द १)

नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुल्फ़ज़्ल। मूल्य १।)

हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य सजिल्द ४), बिना जिल्द ३॥)

औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य सजिल्द ५॥), बिना जिल्द ५)

ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य ४॥) सजिल्द, बिना जिल्द ४),

भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार मूल्य प्रत्येक भाग का सजिल्द ५॥), बिना जिल्द ५)

आई० सी० एम्०।

सर्

प्र [illegible] -महात्मा [illegible] [illegible] ुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरि रामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य सजिल्द २), बिना जिल्द १॥)

विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १।)

न्याय—जॉन गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक—श्रीयुत प्रेमचंद। मूल्य २।)

हड़ताल—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ़' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक—श्रीयुत प्रेमचंद। मूल्य २)

धोखाधड़ी—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक—श्रीयुत ललताप्रसाद शुक्ल, एम्० ए०। मूल्य १॥।)

चाँदी की डिबिया—जॉन गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बॉक्स' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक— श्रीयुत प्रेमचंद। मूल्य १॥)